मृदा-उर्वरता

लेखक
डॉ. काशीनाथ तिवारी

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

मृदा-उर्वरता

लेखक
डॉ. काशीनाथ तिवारी
निदेशक
पोटाश एंड फास्फेट इंस्टीट्यूट ऑफ कनाडा-
इंडिया प्रोग्राम
सेक्टर 19, डुंडाहेड़ा, गुड़गाँव–122016 (हरियाणा)

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग),
भारत सरकार

2000

3261 HRD/2000—1

PED—798
500—2000 (DSK-II)

पुनरीक्षक

डा. ब्रह्म मिश्र
प्राचार्य, मृदा विज्ञान
गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
पंत नगर

Price : **Inland : Rs. 410.00**
Foreign : £ 6.20 or $ 8.65

प्रथम संस्करण : 2000
प्रथम ई-संस्करण : 2019

प्रकाशक

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली - 110 066

अध्यक्ष की कलम से

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, उच्चतर शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, 1961 में अपनी स्थापना समय से ही, उसे सौंपे गए कार्य-भार अनुसार भारतीय भाषाओं में शिक्षा माध्यम परिवर्तन हेतु विभिन्न विषयों में भारतीय भाषाओँ की मानक शब्दावली तथा विश्वविद्यालय स्तरीय विभिन्न विषयक पुस्तकों का निर्माण एवं प्रकाशन करता आ रहा है । इस दीर्घ अवधि में आयोग ने विभिन्न आवश्यक विषयों से संबंधित अंग्रेजी-हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषा शब्दावलियों का निर्माण एवं प्रकाशन किया है । इक्कीसवीं सदी के सूचना प्रौद्योगिकी के इस दौर में शिक्षा एवं ज्ञानार्जन के साधन को सद्यः उपलब्धता में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है । ई-गवर्नेंस, ई-व्यवसाय एवं डिजिटल इंडिया जैसे क्रिया-कलाप दैनंदिन जीवन के अंग हो गए हैं। ऐसे में आयोग ने भी इन अधुनातन साधनों का उपयोग करने का निश्चय किया । इस क्रम में आयोग द्वारा निर्मित सभी शब्दावलियों, परिभाषा-कोशों का ई-संस्करण आपको सहज रूप से उपलब्ध कराने के उद्देश्य से ई-बुक निर्माण योजना पर कार्य प्रारंभ किया गया है । इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु **'मृदा-उर्वरता'** का ई-बुक का संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है ।

मुझे इस पुस्तक का ई-संस्करण आप सबको सुलभ कराते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है । इसी भांति आयोग द्वारा अन्य विषयों के भी हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं की शब्दावली, परिभाषा-कोशों का ई-संस्करण प्रकाशित करने के कार्य भी प्रगति पर है । आयोग को सौंपे गए महत्वपूर्ण दायित्व में से एक दायित्व, निर्मित शब्दवलियाँ प्रयोक्ताओं तक पहुँचाने का रहा है । इलेक्ट्रोनिक माध्यम से आयोग अपने प्रकाशनों के प्रचार-प्रसार में अधिक प्रभावशाली होगा । मुझे आशा है आयोग द्वारा किए जा रहे इस प्रयास से निर्मित शब्दावलियाँ जन-जन तक पहुंचेगी साथ ही सभी जिज्ञासु इस ई-संस्करण का अधिक से अधिक लाभ उठा सकेंगे।

प्रो. अवनीश कुमार
अध्यक्ष

मृदा-उर्वरता ई-शब्द संग्रह निर्माण से संबद्ध आयोग के अधिकारी

प्रधान संपादक

प्रो. अवनीश कुमार

अध्यक्ष

संपादक

डॉ. अशोक एन. सेलवटकर

(सहायक निदेशक)

श्री शिव कुमार चौधरी

(सहायक निदेशक)

श्री जय सिंह रावत

(सहायक वैज्ञानिक अधिकारी)

श्रीमती चक्प्रम बिनोदिनी देवी

(सहायक वैज्ञानिक अधिकारी)

सुश्री मर्सी ललरोहलू हमार

(सहायक वैज्ञानिक अधिकारी)

प्रस्तावना

भारतीय भाषाओं को स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तरों पर शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने के लिए यह आवश्यक है कि इन भाषाओं में उच्च कोटि के प्रामाणिक ग्रंथ पर्याप्त संख्या में उपलब्धहों। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारत सरकार ने विभिन्न विषय–क्षेत्रों में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण तथा विकास और विश्वविद्यालय–स्तरीय मानक ग्रंथों के मौलिक लेखन तथा अनुवाद की विस्तृत योजना बनाई। 1962–63 में यह दायित्व वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग को सौंपा गया। आयोग अब तक विज्ञान, प्रौद्योगिकी, मानविकी, प्रशासन आदि विषय–क्षेत्रों के लगभग 8 लाख हिंदी तकनीकी शब्द विकसित कर चुका है।

इन शब्दों का अब कम्प्यूटरीकरण किया जा रहा है जिसके प्रथम चरण में समेकित प्रशासनिक शब्दावली और सामाजिक विषयों की समस्त शब्दावली का कम्प्यूटरीकरण किया जाएगा। इस प्रक्रिया में सभी विषयों के शब्द–संग्रहों के हिंदी–अंग्रेजी तथा अंग्रेजी–हिंदी दोनों संस्करण साथ–साथ तैयार होंगे। कम्प्यूटरीकरण के दूसरे चरण में अंग्रेजी–हिंदी के अतिरिक्त विभिन्न भारतीय भाषाओं को डाटाबेस में भरा जाएगा जिसके आधार पर एक कम्प्यूटर–आधारित राष्ट्रीय शब्दावली बैंक विकसित करने की योजना है। इसके पश्चात् हिंदी की तकनीकी शब्दावली को विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिपिबद्ध किया जायेगा और अंत में राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र द्वारा देश के विभिन्न जिलों में स्थापित की जा रही उपग्रह सूचना सेवा (Nicnet) से तकनीकी शब्दावली के इस डाटाबेस को जोड़ा जाएगा जिससे देश के विभिन्न भागों में कम्प्यूटर के माध्यम से भारतीय भाषाओं के पर्याय तुरंत उपलब्ध हो सकेंगे।

पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग को सहज बनाने तथा इसकी परिभाषागत संकल्पनाएं स्पष्ट करने की दृष्टि से आयोग विभिन्न विषयों के मानक परिभाषा–कोशों का निर्माण कर रहा है। तकनीकी शब्दावली को अखिल भारतीय स्वरूप तथा मान्यता देने की दृष्टि से ग्यारह भारतीय भाषाओं में

विभिन्न विषयों के अखिल भारतीय मूलभूत शब्द तैयार किए जा रहे हैं। आयोग द्वारा विकसित तकनीकी शब्दावली के प्रयोग को बढ़ावा देने और कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में हिंदी के माध्यम से तकनीकी विषयों के अध्यापन का विकास करने की दृष्टि से विश्वविद्यालय के विभिन्न विषयों के अध्यापकों के लिए शब्दावली कार्यशालाएं/प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त ज्ञान–विज्ञान की हिंदी पत्रिकाएं भी आयोग द्वारा प्रकाशित की जाती हैं।

हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में सभी प्रकार से उपादेय पारिभाषिक शब्दावली के उपलब्ध हो जाने के पश्चात् इनके प्रयोग हेतु विभिन्न विषयों में विश्वविद्यालय स्तर के मौलिक ग्रंथों के निर्माण तथा अनुवाद का विशाल कार्य हाथ में लिया गया। भारत सरकार ने राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों और प्रकाशकों के सहयोग से 1962–63 में ग्रंथ निर्माण का कार्य शुरू किया। सन् 1967 के अखिल भारतीय कुलपति सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि स्नातक स्तर पर भारतीय भाषाओं को शिक्षा एवं परीक्षा का माध्यम बना देना चाहिए। सन् 1968 में संसद के दोनों सदनों द्वारा अपनाई गई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के कार्यान्वयन के लिए शिक्षा मंत्रालय ने माध्यम परिवर्तन की आवश्यक तैयारी के रूप में ग्रंथ–निर्माण का एक व्यापक कार्यक्रम अपनाया, जिसके अधीन चौथी पंचवर्षीय योजना में 18 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया और प्रत्येक राज्य को अपनी प्रादेशिक भाषा में विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकें तैयार करने के लिए एक–एक करोड़ रुपए की धनराशि देने की व्यवस्था की गई। इसी क्रम में भारत सरकार के अनुदान से 15 राज्यों में राज्य–स्तरीय ग्रंथ अकादमियां तथा पाठ्य-पुस्तक मंडल स्थापित किए गए जिनका कार्य भारतीय भाषाओं में विभिन्न विषयों की विश्वविद्यालय–स्तरीय पाठ्य पुस्तकें निर्मित तथा प्रकाशित करना है। विश्वविद्यालय–स्तरीय ग्रंथ निर्माण के इस कार्यक्रम के अंतर्गत विज्ञान, मानविकी तथा सामाजिक विज्ञान से संबंधित महत्वपूर्ण विषयों की पाण्डुलिपियों के लेखन और प्रकाशन का दायित्व इन संस्थाओं को सौंपा गया और इनकी मॉनीटरिंग तथा समन्वय स्थापित करने का दायित्व वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग को सौंपा गया।
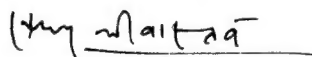
अब तक किए गए प्रयासों के फलस्वरूप तकनीकी विषयों की हिंदी में लगभग 2,900 पुस्तकें तथा अन्य भारतीय भाषाओं की 8,700 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कृषि, आयुर्विज्ञान और इंजीनियरी की पुस्तकों का निर्माण शब्दावली आयोग के तत्वावधान में हो रहा है। अब तक कृषि की 240,

आयुर्विज्ञान की 76 तथा इंजीनियरी की 85 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इन ग्रंथों के तैयार हो जाने से भारतीय भाषाओं में विज्ञान तथा मानविकी के लगभग सभी विषयों में स्नातक स्तर की पाठ्य पुस्तकों की आवश्यकता काफी हद तक पूरी हो चुकी है।स्नातकोत्तर तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के क्षेत्र में पर्याप्त पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं लेकिन अभी भी काफी कार्य शेष है।

हमारे देश की संपूर्ण अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है। अतः यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों को अपनी क्षेत्रीय भाषा में कृषि विज्ञान के स्नातक और स्नातकोत्तर स्तरों के मानक ग्रंथ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों जिससे उन्हें कृषि विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करने में किसी प्रकार की असुविधा न हो।

प्रस्तुत पुस्तक ''मृदा-उर्वरता'' डॉ. काशी नाथ तिवारी, निदेशक, पोटाश एंड फास्फेट इंस्टीट्यूट ऑफ कनाडा इंडिया प्रोग्राम, डुंडाहेड़ा, गुड़गाँव द्वारा तैयार की गई है। पुस्तक में लेखक ने मृदा उर्वरता को प्रभावित करने वाले कारकों, भारत की मृदाओं के प्रकार, उर्वरता का मूल्यांकन तथा पौधों के मुख्य और सूक्ष्म मात्रिक पोषक तत्वों का विस्तृत विवरण दिया है। इसके अतिरिक्त मृदा उर्वरता के अनुरक्षण में सूक्ष्म जीवों के महत्व का बखूबी उल्लेख किया है।

पुस्तक का पुनरीक्षण डॉ. ब्रह्म मिश्र, प्राचार्य, मृदा विज्ञान, गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंत नगर ने किया है। लेखक तथा पुनरीक्षक के अथक परिश्रम के फलस्वरूप ही यह कार्य संपन्न हो पाया है, जिसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। आशा है कि यह पुस्तक मृदा विज्ञान विषयक पाठ्य पुस्तकों के अभाव को पूरा करेगी तथा कृषि से संबंधित अध्यापकों, वैज्ञानिकों, विद्यार्थियों तथा किसानों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

(डा. राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव)
अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
(मानव संसाधन विकास मंत्रलय)
भारत सरकार

नई दिल्ली
जून, 2000

प्राक्कथन

भूमि एक प्राकृतिक संसाधन है जिससे हमारी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। अतः इस अमूल्य संसाधन की रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है। मनुष्य सदियों से इस सम्पदा का उपयोग अपने जीवन के लिए भौतिक सुविधाएं जुटाने के लिए करता आ रहा है जिससे जाने–अनजाने मिट्टी की उर्वरता का दोहन होता रहता है। जनसंख्या में अनवरत वृद्धि होने के कारण कृषि जोत का आकार छोटा होता जा रहा है। भविष्य में कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल बढ़ाना आसान नहीं है। अतः बढ़ती जनसंख्या के भरण–पोषण के लिए प्रति इकाई क्षेत्र से अधिकतम् उत्पादन प्राप्त करने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रह जाता। सघन कृषि प्रणाली के फलस्वरूप कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि होने के साथ ही भूमि में पोषक–तत्वों की कमी बढ़ी है जिससे भूमि में उनका आपसी संतुलन डगमगाया है। अनेक क्षेत्रों में प्रमुख पोषक–तत्वों के साथ ही गौण और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी का संकेत मिला है। ऐसे क्षेत्रों की कृषि उत्पादकता प्रभावित हुई है। अतः सघन कृषि प्रणाली में उन्नत टिकाऊ खेती के लिए मृदा–उर्वरता पर विशेष ध्यान देना होगा।

अनुमानतः वर्ष 2000 तक देश की जनसंख्या 100 करोड़ हो जायेगी जिसके भरण–पोषण के लिए लगभग 24 करोड़ टन खाद्यान्न की आवश्यकता होगी। ऐसा अनुमान है कि 1960 की तुलना में 2000 तक फसलों द्वारा पोषक–तत्वों का भूमि से निष्कासन 174 प्रतिशत या 4.35 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ेगा जबकि कुल कृषिगत क्षेत्र में इस अवधि में केवल 31 प्रतिशत या 0.77 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से वृद्धि होगी। फसलों द्वारा पोषक–तत्वों के निष्कासन और उर्वरकों के माध्यम से होने वाली पूर्ति में 80–100 लाख टन पोषक–तत्वों का अन्तर प्रति वर्ष बना रहेगा। उर्वरक प्रयोग की तुलना में पोषक–तत्वों का निष्कासन अधिक होने के कारण मृदा–उर्वरता स्तर में गिरावट आना स्वाभाविक है। 80 के दशक में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम के वार्षिक ह्रास की दर क्रमशः 11.3, 30.8 और 2.5 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर रही।

भारतीय मिट्टियों की बदलती उर्वरता के सन्दर्भ में यह आवश्यक हो जाता है कि इस विषय में सम्बन्धित उपलब्ध ज्ञान को एकत्रित करके एक पुस्तक का रूप दे दिया जाए। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार के वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा मृदा–उर्वरता नामक पुस्तक तैयार करने की योजना बनायी गयी और मुझे यह पुस्तक लिखने का अवसर दिया जो कि पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। यह पुस्तक मृदा उर्वरता के विभिन्न पहलुओं पर भारत में किए गए अनुसंधान कार्यों के आधार पर तैयार की गयी है। अतः मैं देश के उन सभी वैज्ञानिकों का आभारी हूं जिनके सतत् प्रयासों से मृदा उर्वरता विषयक बहुमूल्य ज्ञान का विकास हुआ। पुस्तक में कुल 11 अध्याय हैं जिनसे भारत की मिट्टियों की विशेषताओं, मृदा उर्वरता मूल्यांकन विधियों, प्रमुख पोषक–तत्वों, गौण तत्वों और सूक्ष्म पोषकतत्वों के साथ ही अन्य सूक्ष्म आवश्यक तत्वों के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है। इसके साथ ही, मृदा उर्वरता अनुरक्षण में सूक्ष्म–जीवों के महत्व तथा भारत में स्थायी और दीर्घकालीन उर्वरक परीक्षणों से सम्बन्धित अध्यायों का भी समावेश है। आशा है कि यह पुस्तक मृदा–उर्वरता में रूचि रखने वाले वैज्ञानिकों एवं छात्रों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

मैं डा. जे.एस.पी. यादव, अध्यक्ष, मृदा विज्ञान नामिका, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार के डा. हरीश कुमार, प्रधान वैज्ञानक अधिकारी का इस पुस्तक के लेखन में विशेष रुचि और उत्साहवर्धन के लिए हृदय से आभारी हूं। श्री शैयद शमशाद अहमद भूतपूर्व कुलपति, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर ने इस पुस्तक को लिखने की सहर्ष अनुमति प्रदान की जिसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूं। मैं डा. मनोदत्त पाठक, महानिदेशक, उ.प्र. कृषि अनुसंधान परिषद, लखनऊ तथा डा. ए.एन. पाठक भूतपूर्व प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, मृदा एवं कृषि रसायन विभाग, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर के आशीर्वाद, प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन के लिए हृदय से आभारी हूं। पुस्तक के लेखन में श्री अरविन्द कुमार शुक्ल, श्री प्रमोद कुमार सिंह, श्री अशोक तिवारी, श्री शिवराम सिंह एवं श्री अवधेश तिवारी, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर तथा डा. सुनीता तिवारी, वैज्ञानिक अधिकारी और श्री राम सेवक, आशुलिपिक उ.प्र. कृषि अनुसंधान परिषद से प्राप्त सहयोग के लिए अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

काशीनाथ तिवारी

विषय-सूची

उत्पादकता बढ़ाने में गंधक का महत्व, गंधक का फसलों की गुणवत्ता पर प्रभाव, गंधक का अमीनो अम्ल और प्रोटीन की मात्रा पर प्रभाव, गंधक की अन्य पोषक तत्वों के साथ अन्तर्क्रिया, सघन कृषि प्रणाली में गंधक संतुलन।

सूक्ष्म पोषक तत्व—मिट्टियों में सूक्ष्म पोषक तत्व, मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कुल मात्रा, मिट्टियो में सूक्ष्म पोषक तत्वों के विभिन्न रूप, पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्व।

जिंक—कुल मात्रा, उपलब्ध मात्रा, परिच्छेदिका में वितरण, उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारक, पौधों के पोषण में जिंक का महत्व, भारत में जिंक के प्रयोग का फसलोत्पादन मेंमहत्व, फसलों में जिंक अनुक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक, मिट्टी में जिंक की उपलब्ध मात्रा, जिंक—उर्वरकों की आपेक्षिक क्षमता, जिंक की आवश्यक मात्रा, जिंक की उपयोग विधि।

लोहा—मृदा में लोहे की कुल मात्रा, परिच्छेदिका में वितरण, उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारक, पौधों के पोषण में लोहा का महत्व, भारत में लोहा के प्रयोग का फसलोत्पादन में महत्व, फसलों में लोहे की अनुक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक।

मैंगनीज—कुल मात्रा, परिच्छेदिका में वितरण, उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारक, पौधों के पोषण में मैंगनीज का महत्व, भारत में मैंगनीज के प्रयोग का फसलोत्पादन में महत्व।

तांबा—कुल मात्रा, उपलब्ध मात्रा, परिच्छेदिका में वितरण, मृदा में तांबे की उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारक। पौधों के पोषण में तांबा का महत्व, भारत में तांबा के प्रयोग का फसलोत्पादन में महत्व।

बोरान—मृदा सतह में कुल मात्रा, परिच्छेदिका में वितरण, मृदा सतह में उपलब्ध बोरान की मात्रा, उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारक, पौधों के पोषण में बोरान का महत्व, भारत में बोरान के प्रयोग का फसलोत्पादन में महत्व।

अध्याय-1

मृदा उर्वरता परिचय

भूमि एक प्राकृतिक संसाधन है, जिससे हमारी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। अतः प्रकृति से प्राप्त इस अमूल्य संसाधन की रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है। मिट्टी ही पेड़ पौधों के जीवन का आधार है, जिससे हमें भोजन, ईंधन, लकड़ी, खाद, ऊर्जा, पशुओं के लिए चारा आदि सामग्री प्राप्त होती है। मिट्टी के गुण–दोष पर भूमिगत जल के गुण प्रभावित होते हैं। निःसन्देह भूमि हमारे जीवन का आधार है।

उल्लेखनीय है कि भूमि की ऊपरी परत के निर्माण के लिए प्रकृति को हजारों वर्ष लगते हैं, परन्तु भूमि कटाव और अपवाह की क्रियाएं इस परत को क्षणों में बहा ले जाती हैं। मनुष्य सदियों से इस संसाधन का उपयोग अपने जीवन के लिए भौतिक साधन जुटाने में करता आ रहा है जिसके फलस्वरूप जाने–अन्जाने में भूमि का दोहन होता जा रहा है। भूमि के दुरूपयोग के फलस्वरूप उसके गुणों में गिरावट आती जा रही है, जिससे उपजाऊ भूमि कम उपजाऊ बनती जा रही है।

वर्षा तथा सिंचाई जल का सुव्यवस्थित और समुचित उपयोग न होने के कारण शुष्क कृषि के साथ ही जल–भराव और मृदा लवणता की समस्या उत्पन्न हो रही है। फलतः अच्छी भूमि भी कृषि के लिए बेकार होती जा रही है। यदि भूमि एवं जल संसाधनों का भविष्य में बड़े ही सतर्कतापूर्वक उपयोग न किया गया तो भूमि के गुणों पर उसका कुप्रभाव अवश्य पड़ेगा और भूमि की उत्पादकता दिनोदिन घटती जाएगी। हमारा यह प्रयास होना चाहिए कि अच्छी भूमि की उत्पादकता को बनाए रखें और जो भूमि किसी न किसी कारण समस्याग्रस्त हो गई है उसे सुधार करके अच्छी हालत में लाया जाए ताकि इन समस्याग्रस्त क्षेत्रों से भी भरपूर उत्पादन मिल सके।

भविष्य में जनसंख्या में वृद्धि होते रहने के कारण कृषि जोत का आकार छोटा होना स्वाभाविक है। बढ़ती जनसंख्या के भरण–पोषण के लिए कृषि

उत्पादन लक्ष्य भी बढ़ेगा जिसे प्राप्त करने के लिए प्रति इकाई क्षेत्र से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करना अनिवार्य हो जाता है। भविष्य में कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल बढ़ाना आसान नहीं है। सघन कृषि प्रणाली में उर्वरकों के असंतुलित प्रयोग का मिट्टी के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ा है। अतः टिकाऊ खेती के लिए मृदा–उर्वरता अनुरक्षण पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

यहां मृदा–उर्वरता एवं मृदा–उत्पादकता के सह–संबंध, मृदा उर्वरता को प्रभावित करने वाले कारक, भारत में मृदा उर्वरता की समस्याएं, भारत में मृदा उर्वरता अनुसंधान–अतीत, वर्तमान और भविष्य का विवरण तथा मृदा–उत्पादकता बढ़ाने के उपायों का वर्णन किया गया है।

मृदा-उर्वरता एवं मृदा-उत्पादकता में सह-सम्बन्ध

साधारणतया मृदा–उर्वरता और मृदा–उत्पादकता को पर्याय समझा जाता है परन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मृदा उर्वरता और मृदा उत्पादकता के अर्थ अलग–अलग हैं। मृदा–उर्वरता से हमारा तात्पर्य मिट्टी की उस क्षमता से है जो पौधों के लिए आवश्यक सभी पोषक तत्वों को उपलब्ध रूप में और संतुलित मात्रा में पौधों को सुलभ करा सके और मिट्टी किसी विषैले या हानिकारक पदार्थों के प्रभाव से सर्वथा मुक्त हो, किन्तु मृदा उत्पादकता का तात्पर्य उनकी फसलोत्पादन क्षमता से है।

यद्यपि मृदा उर्वरता और मृदा उत्पादकता एक दूसरे से सम्बन्धित हैं फिर भी यह आवश्यक नहीं है कि मृदा विशेष की उर्वरता अधिक होने पर उसकी उत्पादकता भी अधिक हो उदाहरणार्थ, लवणीय तथा क्षारीय मिट्टियों की उर्वरता समान होते हुए भी उनकी उत्पादकता बहुत कम होती है क्योंकि इन मिट्टियों में लवणों और क्षारों का बाहुल्य होता है जिनका पौधों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सोडियम की अधिकता में पोटैशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम आदि तत्व उचित संतुलन में नहीं रह पाते। इसी प्रकार कुल क्षेत्रों की मृदाएं अधिक उर्वर होने के बाबजूद जल प्लावन की समस्या के कारण अपेक्षित उत्पादन देने में असमर्थ होती हैं।

जहां एक ओर अधिक उर्वरता वाली मृदाओं की भी उत्पादकता कुछ कारकों के प्रतिकूल प्रभाव के कारण कम हो जाती है वहीं दूसरी ओर कम उर्वरता वाली मृदाओं से उन्नत मृदा एवं शस्य प्रबन्ध द्वारा अधिक उत्पादन

भी प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए हल्के गठन वाली बलुई मृदाओं में पोषक तत्वों के संतुलित प्रयोग और सिंचाई जल की समुचित पूर्ति द्वारा फसलों की उपज में सार्थक वृद्धि की जा सकती है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मृदा–उर्वरता से हमें मिट्टी में पौधों के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धि का बोध होता है जो कि आमतौर पर इनके भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों द्वारा प्रभावित होता है। जबकि मृदा–उत्पादकता फसलोत्पादन को प्रभावित करने वाले अनेक मिट्टी–सम्बन्धी तथा वाह्य कारकों के प्रभाव का सामूहिक प्रतिफल होती है।

मृदा–उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारकों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है। वे कारक जिन्हें मानवीय प्रयासों द्वारा बदला नहीं जा सकता जैसे मृदा–प्रकार, उसकी प्रकृति, गुण एवं गठन, मिट्टी की गहराई, स्थलाकृति, जलवायु आदि प्रथम वर्ग में आते हैं। द्वितीय वर्ग में मानव प्रयासों से नियंत्रित होने वाले कारक अर्थात मिट्टी में पोषक तत्वों की मात्रा, फसल प्रबन्ध आदि आते हैं। मानव–प्रयासों द्वारा नियंत्रित होने वाले कारकों का मृदा–उत्पादकता के सृजन में विशेष महत्व होता है।

मृदा उर्वरता को प्रभावित करने वाले कारक

मृदा–उर्वरता को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक निम्नांकित हैं:–

मूल पदार्थ

जनक पदार्थों की विभिन्नता के अनुसार मिट्टी के गुणों एवं उसकी उर्वरा शक्ति में अन्तर पाया जाता है। अम्लीय स्वभाव वाली आग्नये शैलों, क्वार्ट्जीसग्रिट्स और बालू पत्थर के अपक्षय के फलस्वरूप बलुई मिट्टियों का निर्माण होता है। इन मिट्टियों में केओलिनाइट प्रकार का क्ले खनिज पाया जाता है। इसमें क्षार की मात्रा कम होने के साथ ही इनकी उर्वरा शक्ति भी अपेक्षाकृत कम होती है। क्षारीय एवं अवसादी शैलों के अपक्षय के फलस्वरूप भारी मटियार मिट्टियों का निर्माण होता है, जिनमें क्षार की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होने के साथ ही इनकी उर्वरता भी अधिक होती है। कठोर तथा शुद्ध चूना पत्थर पर निर्मित मिट्टियां बलुई और उथली होती हैं। इसके विपरीत मृदु चूना पत्थर से महीन कणों वाली गहरी मिट्टियों का जन्म होता है।

3261 HRD/2000—2

जलवायु

वर्षा और तापमान में विभिन्नता के कारण मृदा–उर्वरता में अन्तर पाया जाता है।

वर्षा

भारत का 20 प्रतिशत क्षेत्र अधिक वर्षा (1125 मि.मी.), 36 प्रतिशत मध्यम वर्षा (750–1125 मि.मी.), 22 प्रतिशत कम वर्षा (350–750 मि.मी.) और 13 प्रतिशत क्षेत्र अत्यन्त कम वर्षा (350 मि.मी.) के अन्तर्गत है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में भी वर्षा का वितरण वर्ष भर एक समान नहीं रहता। अधिक वर्षा वाले आर्द्र क्षेत्रों की मिट्टियों में साधारणतया नाइट्रोजन और कार्बन की प्रचुरता होती है। इन मिट्टियों में क्ले की मात्रा, समुच्चयन और बेस–संतृप्तता और विनिमयशील हाइड्रोजन अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इसके विपरीत दशाओं में विनिमयशील बेस ओर पीएच मान अपेक्षाकृत कम होता है। चुनही मिट्टियों में कैल्सियम कार्बोनेट की मात्रा गहराई और नमी में वृद्धि के साथ ही साथ बढ़ती जाती है। इन मिट्टियों में फास्फोरस, बोरॉन, लोहा और जिंक की विशेष कमी होती हे।

तापमान

जीवांश पदार्थ के विघटन और मिट्टी में मौजूद सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता पर तापमान का विशेष प्रभाव पड़ता है। तापमान में वृद्धि होने पर शैल अपक्षय अधिक होता है, फलतः क्ले की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। तापमान में वृद्धि होने के साथ ही नाइट्रोजन एवं जीवांश पदार्थ की मात्रा तथा सिलिका : ऐल्युमिनियम और बेस : ऐल्युमिनियम अनुपात घट जाता है। जेनी और रायचौधरी (1960) ने भारत की मिट्टियों के कार्बन और नाइट्रोजन की मात्रा से संबंधित अध्ययन में बताया है कि हिमालय पर्वत के आर्द्र क्षेत्रों की भांति समुद्रवर्ती गर्म क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा में वृद्धि के साथ ही मिट्टी में नाइट्रोजन और कार्बन की मात्रा बढ़ जाती है। वार्षिक तापमान में वृद्धि का मिट्टी के जैविक कार्बन और नाइट्रोजन की मात्रा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि अधिकांश पर्वतीय मिट्टियों में जैविक पदार्थ की मात्रा समुद्र स्तर पर पायी जाने वाली मिट्टियों की अपेक्षा अधिक होती है।

भारत में शुष्क और अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों की अपेक्षा नम और पूरी तरह नम क्षेत्रों में अधिक नाइट्रोजन पायी जाती है जैसा कि सारणी 1.1 में दिये गये आंकड़ों से स्पष्ट है।

सारणी 1.1: भारत के विभिन्न जलवायु क्षेत्रों की कृष्य मृदाओं में नाइट्रोजन की औसत मात्रा (प्रतिशत में)

मृदा–प्रकार	शुष्क	अर्द्ध शुष्क	नम	पूर्णतया नम
काली मृदाएं	–	0.049	0.055	–
भूरी मृदाएं	0.068	0.033	–	0.090
लाल मृदाएं	–	–	0.049	0.137
चूने दार मृदाएं	0.049	–	0.099	–
औसत	0.051	0.049	0.055	0.102

वनस्पति एवं जैव पदार्थ

किसी क्षेत्र विशेष में पायी जाने वाली वनस्पतियों का उस क्षेत्र की मिट्टियों में जैव पदार्थ की मात्रा पर सीधा प्रभाव पड़ता है। जंगली वनस्पतियों पर विकसित मिट्टियों की परिच्छेदिका के संस्तर अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट होते हें। इन मिट्टियों के 'क' संस्तर का निक्षालन कम होने के कारण इनके जीवांश पदार्थ में ह्यूमस की मात्रा अधिक पायी जाती है। भू–क्षरण रोकने में वनस्पति का विशेष महत्व होता है। अतः वनस्पति रहित क्षेत्रों की तुलना में वनस्पति आच्छादित क्षेत्रों की मिट्टियों की उर्वरता अधिक होती है।

स्थलाकृति

स्थलाकृति का मुख्य रूप से जल विकास और भूमि की अधो–सतह में पाये जाने वाले जल स्तर के साथ सीधा सम्बन्ध देखा गया है। स्थलाकृति के सम्बन्धित दोनों ही कारक मृदा–उर्वरता को प्रभावित करते हैं।

वे मिट्टियां जिनका विकास ढालू पहाड़ी प्रक्षेत्रों में होता है उनका 'क' और 'ख' संस्तर बहुत उथला होता है। उल्लेखनीय है कि ऐसे क्षेत्रों की स्थलाकृति ढालू होने के कारण मृदा–परिच्छेदिका में जल का प्रवेश बहुत ही

कम मात्रा में हो पाता है और ऊपरी सतह का क्षरण बहुत तेजी से होता है। इसके विपरीत कम ढालू स्थलाकृति की दशा में विकसित मिट्टियां में अधिकांश जल भूमि की अधोसतह तक घुस जाता है। अतः ये मिट्टियों अधिक गहरी और भारी गठन वाली होती है। इन मिट्टियों पर वनस्पति–आच्छादन अधिक होने के कारण इनमें जैव पदार्थ की प्रचुरता रहती है। इसके विपरीत अत्यन्त ढालू स्थलाकृति की दशाओं में विकसित मिट्टियां छिछली तथा हल्के गठन वाली होती हैं। अतः इनमें जैव पदार्थ की मात्रा कम होना स्वाभाविक है। ये मिट्टियां कम ढालू या चौरस स्थलाकृति की दशा में विकसित मिट्टियों की तुलना में कम उर्वर होती हैं।

परिपक्वता

अपक्षय और निक्षालन की प्रावस्था से गुजर रही परिपक्व मिट्टियों की उर्वरता शक्ति अपरिपक्व (नवनिर्मित) मिट्टियों की तुलना में कम होती है।

भौतिक दशा

मिट्टी की उर्वरता को प्रभावित करने वाले लगभग सभी कारकों में उनकी भौतिक दशा का अपना विशेष महत्व है। पौधों की जड़ों का भूमि में प्रवेश, जल–निकास, वातन दशा, जलधारण क्षमता, पोषक–तत्वों की उपलब्धि आदि मिट्टियों के भौतिक गुणों से प्रभावित होते हैं। मिट्टियों के भौतिक गुणों का इनके रासायनिक और जैविक गुणों पर भी प्रभाव पड़ता है जो किसी न किसी रूप में मिट्टी की उर्वरता को अवश्यमेव प्रभावित करते हैं।

सूक्ष्म जीव

मिट्टी के सूक्ष्म जीवों का मृदा–उर्वरता अनुरक्षण में विशेष महत्व है। उल्लेखनीय है कि ये सूक्ष्म जीव मिट्टी में मौजूद पोषक तत्वों को पौधों के उपलब्ध होने के रूप में परिवर्तित करने में सक्षम हैं। अतः इन सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता का पौधों के पोषक तत्वों की उपलब्धता पर सीधा प्रभाव पड़ता है। सूक्ष्म जीवों के सक्रिय न होने की दशा में जैविक खादों का प्रभाव शून्य हो जाता है। उल्लेखनीय है कि सूक्ष्म जीव अपनी उर्जा की पूर्ति के लिए कार्बनिक पदार्थों का उपयोग करते हैं जिसके फलस्वरूप नाइट्रोजन, फास्फोरस और गंधक के कार्बनिक यौगिक अकार्बनिक रूप में परिवर्तित हो जाते हैं जिसे पौधे सुगमतापूर्वक अपने उपयोग में लाते हैं। अनेक खनिज तत्व

जिनमें सूक्ष्म मात्रिक तत्व भी सम्मिलित हैं, कार्बनिक यौगिकों के रूप में उपस्थित रहने के कारण पौधों को सुलभ नहीं हो पाते। सूक्ष्म जीवों द्वारा जैव–पदार्थों के अपघटन के फलस्वरूप ये पोषक तत्व पौधों को उपलब्ध होने की दशा में परिवर्तित हो जाते हैं। साथ ही जैव–पदार्थों के अपघटन के समय उत्पन्न विभिन्न कार्बनिक अम्लों द्वारा अनुपलब्ध अवस्था में मौजूद पोषक तत्व पौधों को उपलब्ध होने वाले रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। क्षारीय मिट्टियों में गंधक का आक्सीकरण उनमें पाए जाने वाले ऑक्सीकारक जीवाणुओं द्वारा सम्पन्न होता है। उल्लेखनीय है कि गंधक के आक्सीकरण के फलस्वरूप गंधक के अम्ल का निर्माण होता है।

दलहनी फसलों में राइजोबियम जीवाणुओं द्वारा नाइट्रोजन यौगिकीकरण के महत्व से हम भलीभांति परिचित ही हैं। इसके अलावा मिट्टी के अविलेय फास्फोरस को विलेय रूप में परिवर्तित करने वाले जीवाणुओं के उपयोग का उल्लेख सुन्दर राव तथा उनके सहयोगियों द्वारा किये गये शोध कार्यों में मिलता है।

अन्य कारक

ऊपर बताये गये कारकों के अलावा मिट्टी की अम्लता, क्षारीयता और जलाक्रान्त जैसे दशाओं का भी मृदा–उर्वरता पर विशेष प्रभाव पड़ता है।

मिट्टी की अम्लता

भारत में हिमालय पर्वत के अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों, उत्तरी–पूर्वी क्षेत्र, पश्चिमी घाट, पूर्वी घाट और केरल के तटवर्ती क्षेत्रों में 490 लाख हैक्टर क्षेत्र अम्लीय मिट्टियों के अन्तर्गत है। इनमें से लगभग 870 लाख हैक्टर क्षेत्र की मिट्टियों का पी एच–मान 5.5 से कम तथा 230 लाख हैक्टर क्षेत्र का पी एच 5.5–6.0 के बीच है। निम्न पी एच–मान, निम्न क्षारक संतृप्तता और विनिमेय हाइड्रोजन तथा ऐल्युमीनियम की अधिकता अम्लीय मिट्टियों की प्रमुख विशेषताएं हैं।

अधिकांश फसलों के लिए 6.0 से 7.5 पी एच परास विशेष उपयुक्त माना जाता है। पी एच–मान का मिट्टी के पोषक तत्वों की उपलब्धता पर प्रभाव के लिए देखे रेखा चित्र हाइड्रोजन आयन के उच्च सान्द्रण का अम्लीय मिट्टियों में पौधों की बृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अम्लीय मिट्टियों

में कैल्सियम, मैग्नीशियम, मालिब्डेनम, बोरॉन9 की कमी पायी जाती है। इसके विपरीत इनमें एल्यूमीनियम और लोहे की विषालुता की समस्या होती है। अधिक अम्लीयता के कारण नाइट्रीकरण और नाइट्रोजन यौगीकीकरण जैसी क्रियाओं में बाधा पड़ती है। अधिक अम्लता की स्थिति में स्थूल गठन वाली मिट्टियों में फास्फोरस, जस्ता, तांबा, जैसे पोषक तत्वों की भी कमी हो जाती है। मृदा–अम्लता का सूक्ष्म जीवों की संख्या एवं उनकी क्रियाशीलता पर प्रभाव पड़ता है। अम्लीय मिट्टियों में जीवाणुओं की संख्या कम किन्तु कवकों का बाहुल्य होता है।

मृदा–अम्लता से सम्बन्धित पादप–पोषण की प्रमुख समस्याओं का उल्लेख सारणी 1.2 में दिया गया है।

सारणी 1.2: मृदा अम्लता से सम्बन्धित पादप–पोषण की प्रमुख समस्याएं

पी एच–परास	मृदा परिस्थिति	पादप–पोषण समस्या
45	अम्ल सल्फेट मृदा	लोह तथा ऐल्युमिनियम विषालुता
अति अम्लीय	जैव पदार्थ की मात्रा	
	निम्न (<0.5% कार्बन)	फास्फोरस की कमी, लौह विषालुता
	जीवांश–पदार्थ की मात्रा	
	उच्च (>0.75% कार्बन)	फास्फोरस की कमी, लौह विषालुता
	मैंगनीज की मात्रा उच्च	मैगनीज विषालुता (विशेष परिस्थितियों में)
	पोटैशियम में निम्न (<118 कि.ग्रा./हैक्टर)	लोह–विषुलता, पौटेशियम की कमी
45–55 (अम्लीय)	बेस तथा सिलिका में निम्न	हाइड्रोजन सल्फाइड विषालुता से सम्बन्धित पोषक–तत्वों का असन्तुलन

मृदा-लवणता व क्षारीयता

भारत के शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क जलवायु वाले प्रदेशों की 70 लाख हैक्टर भूमि लवणता एवं क्षारीयता की समस्या से प्रभावित है। अधिकांश क्षेत्र उत्तर

भारत के पंजाब, हरियाणा एवं उत्तर प्रदेश राज्यों में पाया जाता है। उत्तर प्रदेश के 34 जिले इस समस्या से प्रभावित हैं। इन राज्यों के अलावा मृदा लवणता एवं क्षारीयता की समस्या गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश की काली मिट्टी वाले प्रदेशें में पायी जाती है। गुजरात के शुष्क क्षेत्रों तथा पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु के आर्द्र क्षेत्रो में तटवर्ती लवण प्रभावित मिट्टियां पायी जाती हैं। भारत में लवण प्रभावित मिट्टियो के भौगोलिक वितरण सम्बन्धी विवरण सारणी 1.3 में दिया गया है।

क्षारीय मिट्टियों का उच्च पी एच–मान तथा उनमें विनिमेय सोडियम की उच्च मात्रा के कारण मिट्टी में मौजूद विभिन्न धनायनों का आपसी संतुलन बिगड़ जाता है जिसका शस्य दैहिकी और पोषक तत्वों की उपलब्धता पर प्रतिकूल पड़ता है। क्षारीय मिट्टियों में आमतौर पर नाइट्रोजन, फास्फोरस और कैल्सियम की कमी पायी जाती है। इन मिट्टियों में जीवांश पदार्थ की मात्रा प्रायः कम होती है। इन पोषक तत्वों के साथ ही क्षारीय मिट्टियों में अनेक सूक्ष्म पोषक तत्वों की भी कमी पायी जाती है। जस्ता की कमी हर प्रकार की क्षारीय मिट्टी में पायी जाती है। इसके विपरीत ऐसी मिट्टियों में बोरॉन की विषालुता देखी गयी है। भरत में किये गये शोध कार्यों से इस तथ्य की पुष्टि हो चुकी है कि लवणीय एवं क्षारीय मिट्टियों में जल विलेय बोरॉन की मात्रा उदासीन मिट्टियों की तुलना में अधिक होती है। मिट्टी के पी एच–मान एवं उनमें उपस्थित लवणों की मात्रा में बृद्धि होने के के साथ ही जल विलेय बोरॉन की मात्रा में भी बृद्धि देखी जाती है। इसके अतिरिक्त अनेक शोधकर्ताओं ने मिट्टी के पी एच–मान तथा उनमें उपस्थित उपलब्ध तांबा, जस्ता, मैंगनीज और लोहे की मात्रा में विपरीत सह सम्बन्ध पाया है। रेखाचित्र 1.1 में मिट्टी के पी एच–मान और पोषक तत्वों की उपलब्धा का आपसी सम्बन्ध दर्शाया गया है। राजस्थान, हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में खारे भूजल की समस्या सम्बन्धी सूचनाएं उपलब्ध हैं। ऐसे जल में घुलनशील लवणों की सान्द्रता अधिक होने के साथ ही अवशिष्ट सोडियम कार्बोनेट की उपस्थिति का भी संकेत मिला है। ऐसे जल से सिंचाई करने से मिट्टी लवणता एवं क्षारीयता बढ़ रही है जिसका मिट्टी की उर्वरता तथा उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

सारणी-1.3 भारत में लवण प्रभावित मिट्टियों का भौगोलिक वितरण

समस्या	प्रदेश जहां यह मिट्टियां पायी जाती है	अनुमानित क्षेत्रफल (लाख है.)
1. तटवर्तीय लवण प्रभावित मिट्टियां		
क. शुष्क प्रदेशों की तटवर्ती लवण प्रभावित मिट्टियां	गुजरात	7.14
ख. आर्द्र प्रदेशों की मुहाने वाली तटवर्ती लवण प्रभावित मिट्टियां	पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु	13.94
2. मध्यम और गहरी काली मिट्टियों वाले क्षेत्र की लवण प्रभावित मिट्टियां	कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र आंध्र प्रदेश, राजस्थान	14.20
3. शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क प्रदेशों की लवण प्रभावित मिट्यिां	गुजरात, राजस्थान, पंजाब हरियाणा, उत्तर प्रदेश	10.00
4. सिन्धु–गंगा के मैदानी प्रदेशों की लवण प्रभावित मिट्टियां	हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश	25.16
योग		70.44

जलाक्रान्त दशा

जलाक्रान्त दशा में मिट्टी में मौजूद लोहे और मैंगनीज का अपचयन हो जाता है जिसे पौधे सुगमतापूर्वक उपयोग में लाते हैं। अवकृत लोहे और मैंगनीज के आयन धनायन विनिमय प्रक्रिया में भाग लेते हैं जिससे मिट्टी में विनिमेय कैल्सियम, मैग्नीशियम और पौटेशियम की मात्रा में बृद्धि हो जाती है। ये विनिमेयशील आयन मृदा में विलयन माध्यम से पौधों को सुलभ होने की स्थिति में रहते हैं। लोहे के अवकरण के फलस्वरूप फास्फोरस की उपलब्धता भी बढ़ जाती है। इन लाभकारी प्रभाव के विपरीत जलाक्रान्त दशा

में जिंक जैसे महत्वपूर्ण सूक्ष्म पोषक तत्व की उपलब्धता पर कुप्रभाव पड़ता है। साथ ही सल्फेट आयन के अवकरण के फलस्वरूप सल्फाइड का निर्माण होने से गंधक जी उपलब्धता कम हो जाती है। जलाक्रान्त दशा में मिट्टी में नाइट्रेट–नाइट्रोजन के निक्षालन एवं विनाइट्रीकरण की समस्या भी उत्पन्न हो जाती है। नहरों से सिंचाई के कारण जलप्लावन एवं मृदा लवणता की समस्या बढ़ी है। सारणी 1–4 में दिये आंकड़ों से इस कथन की पुष्टि होती है। यह प्रमाणित हो चुका है कि जलप्लावन और मृदा–लवणता के कारण भूमि की उर्वरता और उत्पादकता बुरी तरह प्रभावित हो रही है।

सारणी-1.4: कुछ सिंचाई परियोजनाओं में जल प्लावन और मृदा लवणता की समस्या का अनुमान

सिंचाई परियोजना	राज्य	जल प्लावन		मृदा–लवणता	
		क्षेत्रफल (000 है.)	प्रतिश सिंचाई–क्षमता	क्षेत्रफल (000 है.)	प्रतिशत सिंचाई क्षमता
श्री राम सागर	आंध्र प्रदेश	60.0	47.6	1.0	0.8
तुंग भद्रा	आंध्र प्रदेश कर्नाटक	4.6	1.3	24.5	6.7
गंडक	बिहार उत्तर प्रदेश	211.0	21.1	400.0	40.0
शारदा सहायक	उत्तर प्रदेश	303.0	28.3	50.0	4.7
रामगंगा	उत्तर प्रदेश	195.0	33.0	352.4	59.6
उकाई–काकरा पान	गुजरात	16.2	4.3	8.3	2.2
मही–कादाना	गुजरात	82.0	16.8	35.8	7.3
तांबा	मध्य प्रदेश	–	–	6.6	3.8
चम्बल	मध्य प्रदेश राजस्थान	98.7	20.3	40.0	8.2
राजस्थान नहर	राजस्थान	43.1	8.0	29.1	5.4
योग		1013.6	–	947.7	–

भारत में 17 राज्यों का 60 लाख हेक्टर क्षेत्र जल प्लावन की समस्या से प्रभावित है। इसमें से 34 लाख हेक्टर क्षेत्र ऐसा है जहां भूमि की ऊपरी सतह पर जल–भराव हो जाता है। यह क्षेत्र मुख्यतयः पश्चिम–बंगाल, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु, केरल और मध्य प्रदेश में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त 26 लाख हे. क्षेत्र में ऊंचे जलस्तर के कारण जलप्लावन की समस्या है। केन्द्रीय भू–गर्भ जल बोर्ड द्वारा किये गये सर्वेक्षण से पता चला है कि मानसून के समय 364 लाख हेक्टर क्षेत्र अस्थाई रूप से जलप्लावित हो जाता है।

फसल चक्र

हमारे देश में आमतौर पर तीन प्रकार की शस्य प्रणाली अपनायी जाती है: (1) फसल चक्र (2) लगातार एक ही फसल का उगाया जाना और (3) मिलवां खेती। उर्वरता की दृष्टि से उचित ़सल चक्र का अपनाया जाना ही सर्वोत्तम रहता है। इसके अनेक लाभ हैं। खेत में एक के बाद दूसरी फसल लेते रहने से विभिन्न फसलें अपनी जड़ों की रचना में अन्तर के अनुसार विभिन्न गहराई से पोषक तत्वों का अवशोषण करती है। उदाहरणार्थ, उथली जड़ों वाली फसलें गेहूं, मक्का, धान, जौ आदि मिट्टी की ऊपरी सतह तथा गहरी जड़ों वाली फसलें गन्ना, कपास, सरसों आदि अपेक्षाकृत अधिक गहराई से पोषक तत्वों का अवशोषण करतीन है। परिणामतः भूमि की एक ही सतह की उर्वरता में अधिक क्षीजन नहीं हो पाता। दलहनी फसलों (अरहर, उर्द, मूंग, चना, मटर, मसूर आदि) की जड़ों में पायी जाने वाली जड़ ग्रंथियों में नाइट्रोजन यौगिकीकरण की क्षमता पायी जाती है जिससे इन फसलों की नाइट्रोजन आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है, साथ ही दलहनी फसल के बाद भूमि की अवशिष्ट उर्वरता में बृद्धि हो जाती है जैसा कि रेखा चित्र–1.2 से स्पष्ट है लगातार अनाज वाली फसलों को उगाने से मिट्टी की उर्वरता शक्ति से अपेक्षाकृत ह्रास होता है। अतः अनाज वाली फसलों के बाद दलहनी फसलों का उगाना मृदा–उर्वरता की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण होता है।

भू-क्षरण

भारत में 15 करोड़ हे. क्षेत्र जल तथा वायु क्षरण की समस्या से प्रभावित है। इसके अलावा 66 लाख हेक्टर खड्ड तथा अवलिकाओं के रूप में परिवर्तित हो गया है। प्रतिवर्ष 80 लाख हे. क्षेत्र खड्ड के रूप में परिवर्तित हो रहा है।
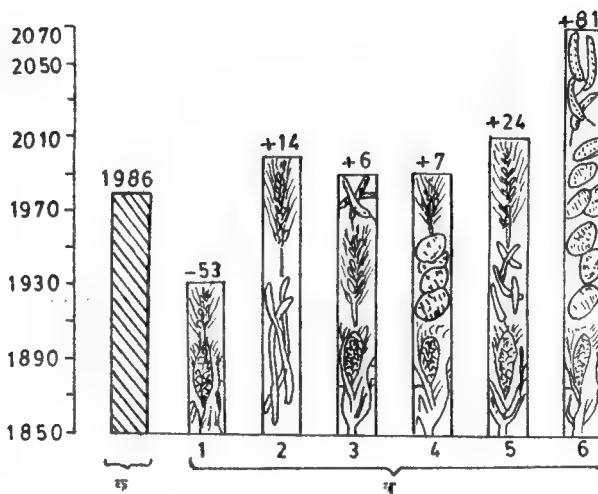
रेखाचित्र-1. विभिन्न फसल-चक्रों का मिट्टी के नाइट्रोजन स्तर पर प्रभाव

ऐसा अनुमान है कि प्रतिवर्ष 8 करोड़ हेक्टर कृष्य क्षेत्र से क्षरण द्वारा 600 करोड़ टन मिट्टी की हानिर हो जाती है जिससे 8 करोड़ टन पोषक तत्व बह जाते हैं जो कि अनाज वाली फसलों द्वारा पोषक तत्वों की कुल अवशोषित मात्रा से कहीं अधिक है।

भारत मे मृदा-उर्वरता की समस्याएं

चालीस वर्ष पूर्व भारत की जनसंख्या 36 करोड़, खाद्यान्न उत्पादन 5.1 करोड़ टन और प्रति व्यक्ति खाद्यान्न की उपलब्धता 395 ग्राम प्रति दिन (334 ग्राम अनाज + 61 ग्राम दालें) थी। 1989 में भारत की जनसंख्या 83 करोड़, खाद्यान्न उत्पादन 17 करोड़ टन और प्रति व्यक्ति खाद्यान्न की उपलब्धता 496 ग्राम प्रतिदिन (456 ग्राम अनाज + 40 ग्राम दालें) हो गई। गत 40 वर्षों में खेती योग्य क्षेत्रफल में लगभग 5 करोड़ हेक्टर की बृद्धि हुई जिसमें से 2.4 करोड़ हेक्टर नया क्षेत्र खेती के अन्तर्गत लाया गया और शेष क्षेत्र अर्थात 2.6 करोड़ हेक्टर बहुफसली कृषि के कारण बढ़ा। 2000 तक देश की जनसंख्या 100 करोड़ हो जायेगी जिसके भरण पोषण के लिए 22.5–24.0 करोड़ टन खाद्यान्न की आवश्यकता होगी।

राष्ट्रीय कृषि आयोग द्वारा 1976 में भारत में फसलों द्वारा पोषक तत्वों के अवशोषण का अनुमान लगाया गया। सम्बन्धित आंकड़े सारणी 1.5 में दिये गये हैं।

विभिन्न फसलों द्वारा पोषक तत्वों की अवशोषित मात्रा में से नाइट्रोजन की 75 प्रतिशत मात्रा, फास्फोरस की 65 प्रतिशत और पोटेशियम की 70 प्रतिशत मात्रा खाद्यान्न फसलों द्वारा अवशोषित की जाती है। उल्लेखनीय है कि फास्फोरस के ही बराबर फसलों द्वारा लगभग 2 करोड़ टन नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम का निष्कासन हुआ और भविष्य में जैसे–जैसे उत्पादन बढ़ता जायेगा, पोषक तत्वों का भूमि से निष्कासन भी बढ़ता जाएगा।

सारणी-1.5: भारत में फसलों द्वारा पोषक तत्वों का उद्ग्रहण–अतीत, वर्तमान और भविष्य

वर्ष	खाद्यान्न उत्पादन (करोड़ टन)	पोषक तत्व	उद्ग्रहण, लाख टन		
			खाद्यान्न फसलें	अन्य फसलें	कुल योग
1961	8.2	N	24	7	31
		P2O5	9	4	13
		K2O	37	14	51
		योग	70	25	95
1971	10.8	N	33	8	41
		P2O5	12	5	17
		K2O	50	15	65
		योग	95	28	123
1986	15.8	N	44	15	59
		P2O5	17	9	26
		K2O	70	33	103
		योग	131	57	188
1989	17.0	N	4.8	17	66
		P2O5	2.0	10	30
		K2O	7.9	37	116
		योग	148	64	212
2000	24.0	N	70	24	94
		P2O5	27	15	42
		K2O	112	53	165
		योग	209	92	301

स्रोतः टन्डन एच.एल.एस. एवं नारायण, प्रताप (1990) फर्टिलाइजर्स इन इन्डिएन एग्रीकल्चर, फर्टिलाइजर डेवलपमेन्ट एन्उ कन्सल्टेशन आर्गनाइजेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं.–19

ऐसा अनुमान है कि 1960 की तुलना में 2000 तक फसलों द्वारा पोषक तत्वों का भूमि से निष्कासन 174 प्रतिशत या 4.35 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ेगा जबकि कुल कृषिगत क्षेत्र में इस अवधि मे केवल 31 प्रतिशत या 0.77 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बृद्धि होगी। परिणाम स्वरूप प्रति ईकाई

क्षेत्रफल से पोषक तत्वों का निष्कासन अधिक होगा और मृदा–उर्वरता स्तर गिरेगा। अनुमानतः फसलों द्वारा पोषक तत्वों के निष्कासन और उर्वरकों के माध्यम से होने वाली पूर्ति में 80–100 लाख टन पोषक तत्व का अन्तर प्रतिवर्ष बना रहेगा जैसा कि रेखाचित्र में दिये गये आंकड़ों से स्पष्ट है। चूंकि सभी पोषक तत्वों की फसलों द्वारा भूमि से निष्कासित मात्रा उस मात्रा से बहुत अधिक होती है जो उर्वरकों के माध्यम से दी जाती है, अतः मृदा–उर्वरता में अनवरत कमी होना स्वाभाविक है। अस्सी के दशक में औसत रूप में पोषक तत्वों की वार्षिक ह्रास की दर इस प्रकार रही:

फास्फोरस – 19,22,000 टन या – 11.3 कि.ग्रा प्रति हे. प्रति वर्ष
पोटैशियम – 5,39,000 टन या – 30.8 कि.ग्रा. प्रति हे. प्रति वर्ष
गंधक – 4,57,000 टन या – 2.5 कि.ग्रा. प्रति हे. प्रति वर्ष

व्यावहारिक दृष्टि से भारतीय मिट्टियों नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, गंधक और जस्ता के उपयोग की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है। मिट्टियों में इन तत्वों की व्यापक कमी हो गई है जैसा कि सारणी 1.6 में दिए गये विवरण से स्पष्ट है।

सारणी-1.6: भारतीय मिट्टियों का उर्वरता स्तर औरप कमी की सीमा

पोषक तत्व	मृदा–उर्वरता स्तर
नाइट्रोजन	– 228 जिलों में न्यून, 118 में मध्यम और 18 जिलों में उच्च।
फास्फोरस	– 170 जिलों में न्यून, 184 में मध्यम और 17 जिलों में उच्च।
पोटैशियम	– 47 जिलों में न्यून, 192 में मध्यम और 122 जिलों में उच्च।
गंधक	– 90–100 जिलों में कमी का संकेत मिला है।
मैंग्नीशियम	– केरल, अन्य दक्षिणी राज्य, अति अम्लीय मिट्टियों में कमी।
जस्ता	–1,50,000 मृदा नमूनों में 50 प्रतिशत में कमी।
लोहा	–चुनही मिट्टियों में लोहे के प्रयोग से लाभ।
बोरॉन	– बिहार के कुछ भाग, कर्नाटक और पश्चिमी बंगाल।

स्रोतः टन्डन एच.एल.एल. एवं प्रताप नारायण (1990) फर्टिलाइजर्स इन इन्डियन एग्रीकल्चर–पास्ट, प्रजेन्ट एन्ड फ्युचर (1950–2000) फर्टिलाइजर डेवलपमेंट एण्ड कन्सल्टेशन आर्गनाइजेशन नई दिल्ली।

भारत में मृदा-उर्वरता अनुसंधान

अतीत का चिन्तन

पौधों के उचित पोषण के लिये खाद के प्रयोग का उल्लेख अथर्व वेद में मिलता है। भ्रत संहिता, अग्निपुराण, पारासरप के कृषि संग्रह और सुक्र नीति में इसका विस्तृत वर्णन है। उस समय खाद मुख्य रूप से बकरी, भेड़, गाय–भैंस आदि के गोबर तथा मांस को पानी में सड़ाकर तैयार की जाती थी। ब्रह, शुक्र और अग्नि पुराण में दलहनी फसलें, तिल, जौ, बकरी तथा भेड़ के मल, मछली तथा जानवरों के मांस, बसा आदि पदार्थों से कम्पोस्ट बनाने का वर्णन मिलता है। कौटिल्य ने पेड़ के चारों ओर नाली खोदने, अन्दर की मिट्टी जला देने और इसमें हड्डी तथा गोबर की खाद डालने का सुझाव दिया। वस्तु लक्ष्ण तथा अग्निपुराण में अन्य उर्वरकों जैसे आम के लिये मछली युक्त शीतल जल, नारियल तथा ताड़ के लिये लवणीय जल और अन्य वृक्षों के लिये मछली तथा मांस–युक्त जल के उपयोग का वर्णन किया गया है। उर्वरक के रूप में खलियों के प्रयोग का उल्लेख प्राचीन काल में यद्यपि कहीं नहीं मिलता है।

हरी खाद में महत्व के विषय की जानकारी 1000 वर्ष ईसा पूर्व हो गई थी। तिल के पौधों के तनों तथा डंठलों का खाद के रूप में प्रयोग की चर्चा तो अथर्ववेद से ही मिलती है। फास्फोरसधारी उर्वरकों जैसे हडड्डी का प्रयोग लगभग 3000 वर्ष ईसा पूर्व से ही किया जा रहा है। बकरियों तथा भेड़ों के मल मूत्र का महत्व यद्यपि वैदिक काल के बाद अर्थात 500 वर्ष ईसा पूर्व से सन् 500 के बीच समझा गया। खलियों का प्रयोग सन् 1000 से 1400 के बीच प्रारम्भ हुआ।

इस समय तक रासायनिक उर्वरकों के विषय में जानकारी नहीं थी। हमारे देश में उर्वरकों का प्रयोग तो अभी लगभग 100 वर्ष पूर्व से होने लगा है। प्राचीन काल में लोगों को खाद की रासायनिक संरचना के विषय में सही जानकारी थी या नहीं, यह सही ढंग से नहीं कहा जा सकता, फिर भी उस समय लोगों को खाद के उपयोग का मृदा उर्वरता में योगदान तथा मृदावयन और मृदा की जल–ग्रहण क्षमता पर खाद के प्रभाव के बारे में जानकारी निश्चित रूप से थी। खाद में सभी आवश्यक पोषक तत्वों की उपस्थिति की जानकारी विज्ञान के आधुनिक विकास के साथ–साथ हुई। वास्तव में कृषि

रसायन शास्त्र को मृदा–उर्वरता अनुसंधान का जनक माना जाता है। भारत में इस शाखा का जन्म 1882 में डा. जे.डब्ल्यू. लेदर की इम्पीरियल कृषि विभाग देहरादून के प्रथम वैज्ञानिक अधिकारी के रूप में नियुक्ति के साथ हुआ। इसके बाद पूसा स्थित इम्पीरियल कृषि अनुसंधान संस्थान में इम्पीरियल कृषि रसायनज्ञ के पद पर नियुक्ति के बाद वह 1906 में बिहार चले गये। यह संस्थान 1936 में पूसा से नई दिल्ली स्थानान्तरित हो गया और इसे भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान जैसे स्वदेशी नाम से अलंकृत किया गया। पूसा में इसकी प्रथम स्थापना के कारण यह संस्थान आज भी पूसा इन्स्टीट्यूट के नाम से जाना जाता है। कालान्तर में भारत में मृदा उर्वरता और उर्वरक उपयोग अनुसंधान का चतुर्दिक विकास हुआ जिसका उल्लेख सारणी 1.7 में किया गया है।

यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बहुत पूर्व भी मृदा–उर्वरता अनुसंधान के क्षेत्र में अत्यन्त रोचक विकास हुए। ब्रिटेन रोथम स्टेज के स्थाई खाद प्लाटो से प्रेरणा लेते हुये हमारे देश में भी कई दीर्घकालीन उर्वरक परीक्षण प्रारम्भ किये गये, जिनमें कानपुर 1985, पूसा 1908, कोयम्बटूर 1909, पाड़ेगांव 1933, शाहजहांपुर 1935, अट्टारी 1942 आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। कोयम्बटूरको छोड़कर अन्य स्थानों के परीक्षण 1980 तक समाप्त हो गये परन्तु रोथम स्टेड में चलाया गया परीक्षण अब भी चल रहा है। मृदा–उर्वरता और उर्वरक–उपयोग के क्षेत्र में हुई क्रमिक प्रगति का विवरण इस प्रकार है:

वैद्यनाथन (1933) ने पांच हजार खाद परीक्षणों के परिणामों का विश्लेषण करके कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले। यहां यह बता देना आवश्यक है कि उस समय रासायनिक उर्वरकों तथा जैव खादों दोनों के लिये खाद शब्द का प्रयोग किया जाता था। जैसा कि कुछ क्षेत्रों में आज भी इस शब्द का प्रयोग हो रहा है। इन परिणामों के समीक्षात्मक अध्ययन के आधार पर बर्न्स इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भारतीय मिट्टियों में केवल नाइट्रोजन के प्रयोग की आवश्यकता है। एक अन्य विदेशी विशेषज्ञ डा. ए.बी. स्टेवर्ट जो कि भारत सरकार के अनुरोध पर यहां चल रहे मृदा उर्वरता कार्यक्रम के मूल्यांकन हेतु 1947 में भारत आये, उन्होंने नाइट्रोजन पर पूरी तरह निर्भरता से अपनी असहमति प्रकट करते हुए यह मत व्यक्त किया: "यह विचार कि भारतीय मिट्टियों को फास्फोरस की आवश्यकता नहीं है, बड़ा ही आश्चर्यजनक और वास्तव में बहुत हद तक खतरनाक है।" वास्तव में थोड़े समय के लिये बर्न्स और अपेक्षाकृत अधिम समय के लिये स्टेवर्ट का कथन उचित ही था।

सारणी-1.7: भारत में मृदा–उर्वरता और उर्वरक–उपयोग अनुसंधान के क्रीमक विकास का विवरण (1947–1990)

वर्ष	मृदा–उर्वरता एवं उर्वरक–उपयोग अनुसंधान
1947	डा. ए.बी. स्टेवार्ट द्वारा भारत में मृदा–उर्वरता अनुसंधान का मूल्यांकन।
1948	बिहार में नाइट्रोजन तथा फास्फोरस पर आधारित साधारण उर्वरक परीक्षण की शुरूआत।
1953	क. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा कृषकों के खेतों पर साधारण उर्वरक परीक्षण और माडल एग्रोनामी प्रोजेक्ट की शुरूआत।
	ख. टी.सी.एम. सहायता से मृदा–उर्वरता एवं उर्वरक–उपयोग योजना का श्रीगणेश।
1954	24 मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओं की स्थापना।
1956	भारत में मिट्टी–परीक्षण विधिका पहली बार विकास (सुब्याह एवं असीजा द्वारा नाइट्रोजन की जांच)
1960	प्रथम कृषि विश्व–विद्यालय की फूलबाग (अब पन्त नगर) में स्थापना।
1965	भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पुनर्गठन तथा समन्वित अनुसंधान परियोजनाओं की शुरूआत एवं सुदृढ़ीकरण।
1966	उत्तर प्रदेश में डा नैने द्वारा जिंक की कमी सूचित।
1969	भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा मिट्टी परीक्षण शस्यअनुक्रिया सह–सम्बन्ध नामक अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना की शुरूआत, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा सूक्ष्म पोषक–तत्वों पर अनुसंधान की समन्वित योजना की शुरूआत, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा केन्द्रीय मृदा–लवणता अनुसंधान संस्थान की स्थापना रामामूर्ति और बजाज द्वारा जनपद स्तर पर मृदा–उर्वरता मानचित्रों के प्रकाशन का प्रथम प्रयास।

1970	क. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा बारानी खेती की समन्वित अनुसंधान परियोजना की शुरूआत।
	ख. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा दीर्घकालीन उर्वरक परीक्षणों पर समन्वित अनुसंधान योजना की शुरूआत।
1971	अंतर्राष्ट्रीय मृदा उर्वरता गोष्ठी, नई दिल्ली में आयोजित।
1971	नाइट्रोजन–उपयोग क्षमता बढ़ाने में नीम की खली की उपयोगिता–बेन्स एवं सहयोगियों द्वारा सूचित।
1977	इण्डिएन पोटाश लिमिटेड द्वारा आयोजित पोटाश अनुसंधान संस्थान की स्थापना
1979	इफ्को द्वारा परीक्षणों के लिये यूरिया सुपर ग्रेन्यूलस के उत्पादन की शुरूआत।
1980	नेशनल फर्टिलाइजर्स लिमिटेड द्वारा परीक्षणें के लिये द्रव यूरिया–अमोनियम नाइट्रेट का उत्पादन।
1982	इण्डिएन सोसायटी आफ स्वायल साइंस द्वारा 12वें अन्तर्राष्ट्रीय मृदाविज्ञान कांगेस का आयोजन
1986	राष्ट्रीय केमिकल्स एवं फर्टिलाइजर्स लिमिटेड द्वारा परीक्षणों के लिये पालीफास्फेटों का उत्पादन
1987	भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा भोपाल में भारतीय मृदाविज्ञान संस्थान की स्थापना
1988	पाइराइटस–फास्फेटस एवं केमिकल्स लिमिटेड द्वारा पायलट प्लाण्ट में परीक्षणो के लिये फास्फेटी चट्टानो का आंशिक–अम्लीकरण करके उर्वरक–उत्पादन
1990	जिंकेटेड यूरिया, बोरोनेटेड सिंगल सुपर फास्फेट जैसे समृद्ध उर्वरकों तथा यूरिया–सुपर ग्रेन्यूल्स का फर्टिलाइजर कण्ट्रोल आर्डर में सम्मितिल किया जाना

स्टेवर्ट ने यह भी उल्लेख किया कि भारत में प्रारम्भ में खाद–सम्बन्धी अध्ययनों के लिये किये गये परीक्षण विशेष सुजियोजित नहीं थे और उनसे महत्वपूर्ण आवश्यक सूचनाएं भी नहीं मिल सकी फिर भी इनसे वे निम्नांकित सामान्य निष्कर्ष निकाल सकेः

1. भारतीय मिट्टियों में आमतौर पर नाइट्रोजन की कमी है।

2. विभिन्न नाइट्रोजनधारी उर्वरकों की क्षमता लगभग एक जैसी है।

3. दीर्घ अवधि वाली फसलों जैसे गन्ना और कपास में नाइट्रोजन का विभाजित प्रयोग विशेष प्रभावी सिद्ध होता है।

4. असिंचित दशाओं में फलियों और सम्भवतः अमोनियम सल्फेट को छिटकवां डालने की तुलना में पौधों को कतारों के बगल या कूंड़ में निवेशन विशेष अच्छा सिद्ध होता है।

5. भारतीय मिट्टियों में फास्फोरस देने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु दलहनी फसलों विशेष बरसीम, उथली जड़ वाली गेहूं की फसल, पंजाब के कुछ भागों तथा हल्के गठन वाली लाल मिट्टियों में उगाई जाने वाली फसलों में उर्वरक फास्फारेस द्वारा सार्थक वृद्धि होती है।

6. फास्फेट का गहराई में निवेशन लाभप्रद सिद्ध होता है।

7. फास्फेट के विभिन्न उर्वरकों का अपेक्षिक–क्षमता या उनको पहले से उपचारित करने की आवश्यकता सम्बन्धी आंकड़े अपर्याप्त हैं।

8. लैटेराइट को छोड़कर अधिकांश भारतीय मिट्टियों में पोटाश की उपलब्धता पर्याप्त है, किन्तु अन्य पोषक तत्वों की पर्याप्त पूर्ति की दशा में पोटैशियम की अनुक्रिया सम्बन्धी अध्ययन बहुत कम हुये हैं।

9. बंगाल की अम्लीय मिट्टियों वाले धान के क्षेत्रों में चूना डालने से धान की उपज पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है किन्तु दलहनी और तेलहनी फसलों जो कि धान के साथ क्रमानुसार फसल–चक्र में उगाई जाती है उनकी उपज में चूना डालने से सार्थक वृद्धि होती है।

10. सिंचाई तथा खाद के प्रयोग में सुधार एवं बड़े पैमाने पर उन्नत बीज व प्रजातियों के प्रचलन से फसलों की उपज में वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप भारतीय मिट्टियों में सूक्ष्म मात्रिक तत्वों की कमियों से संकेत मितले हैं।

11. यदि गोबर का प्रयोग ईंधन के लिये न भी किया जाय और सभी उपलब्ध अपशिष्ट, कार्बनिक एवं अन्य सामग्रियों का उपयोग सावधानी से संवयन करके खाद के रूप में पुनः भूमि में लौटा दिया जाय तो भी उच्च उपज स्तर पर मृदा उर्वरकों के सुधार एवं अनुरक्षण के लिये वोषक तत्वों की पर्याप्त पूर्ति नहीं हो सकेगी। गोबर की खाद के प्रति फसलों की अनुक्रिया में अन्तर पाया जाता है। कपास या गेहूं की तुलना में ज्वार की उपज में विशेष वृद्धि पायी जाती है। कुछ निश्चित मिट्टियों जैसे कर्नाटक की लाल मिट्टियों में गोबर की खाद या इसी तरह से स्थूल कार्बनिक खादों का मूल खाद के रूप में इस्तेमाल करने पर फसलों की उर्वरकों के प्रति अनुक्रिया में वृद्धि पायी जाती है।

उपलब्ध सूचनाओं की उपरोक्त कमियों को ध्यान में रखते हुए डा. स्टेवर्ट ने निम्नांकित सुझाव दियेः

1. गत कार्या के महत्वपूर्ण परिणामों के सत्यापन हेतु कृषकों के खेतों पर साधारण क्षेत्रपरीक्षणों का आयोजन तथा

2. अनुसंधान केन्द्रों के साथ ही कुछ चुने हुये केन्द्रों पर अनुसंधान और बड़े पैमाने पर क्षेत्रपरीक्षण।

उल्लेखनीय है कि उस समय तक जो भी प्रयोगशाला विधियां अपनाई जा रहीं थीं वे क्षेत्रपरीक्षणों से प्राप्त परिणामों पर आधारित नहीं थी अतः प्रयोगशाला के परिणामों ओर क्षेत्र परीक्षणों से प्राप्त आंकड़ों में आपसी सह–सम्बन्ध स्थापित करने की आवश्यकता महसूस की गयी। उपरोक्त रिपोर्ट के प्रकाश में मृदा–उर्वरता कार्य को विशेष सुदृढ़ और विस्तृत करने में मदद मिली।

इसी अवधि में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की स्वीकृति से मृदा–कार्य के साथ ही कृषकों के खेतों पर उर्वरक परीक्षणों की भी शुरूआत

हुई। प्रारम्भ में यह योजना बम्बई, बिहार और बंगाल में लागू की गई। उत्तर प्रदेश सरकार ने भी मृदा–सर्वेक्षण कार्य के साथ ही कृषकों के खेतों पर उर्वरक परीक्षणों की योजना की शुरूआत हुई। इन परीक्षणों के परिणाम राजकीय प्रक्षेत्रों पर किये गये परीक्षणों के परिणामों से सर्वथा भिन्न रहे। इनसे पूर्वधारणा के विपरीत यह ज्ञात हुआ कि भारतीय मिट्टियों में न केवल नाइट्रोजन की कमी है बल्कि फास्फोरस और पोटाश का भी अभाव है।

1953 से उर्वरक प्रयोग सम्बन्धी ठोस शोध कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। कृषकों के खेतों पर साधारण उर्वरक प्रयोग तथा अनुसंधान केन्द्रों पर आदर्श सस्य प्रयोग नामक समन्वित योजनाओं का प्रादुर्भाव इसी समय हुआ। ये योजनायें भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के आपसी सहयोग से चलायी गयीं। अखिल भारतीय मृदा एवं भूमि उपयोग सर्वेक्षण सम्बन्धी संगठन का भी गणेश भी इस दशा में किये जा रहे शोध कार्यों में से एक दूसरा महत्वपूर्ण कार्य था।

कृषकों के खेतों पर किये गये उर्वरक प्रयोगों से यह भलीभांति स्पष्ट होने लगा कि हमारे देश की मिट्टियों में नाइट्रोजन के साथ ही फास्फोरस और पोटाश का भी अभाव है। फलतः इसी समय से उर्वरकों के सन्तुलित प्रयोग का महत्व अनुभव किया जाने लगा। वास्तव में द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में ही उर्वरक प्रयोग की तकनीकी में अभूतपूर्व विकास हुआ।

अमेरिका की सहायता से 1954 में 24 मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओं की स्थापना के बाद मिट्टी की जांच विषयक कार्य को विशेष बल मिला। मिट्टी में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम की उपलब्ध मात्रा की जांच के लिये विभिन्न रासायनिक विधियों का मूल्यांकन किया गया। मिट्टी परीक्षण से प्राप्त आंकड़ों का फसलों द्वारा पोषक तत्वों के उद्गंहण और उनकी पोषक तत्वों के प्रति अनुक्रिया से सहसम्बन्ध स्थापित किया गया। सीमित उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर विशिष्ट पोषक तत्वों की उपलब्ध मात्रा के आधार पर मिट्टियों का वर्गीकरण जैसा कि सारणी 1.8 मे दिया गया है, निम्न मध्यम और उच्च उर्वरतास्तर में किया गया। इस समय हमारे देश के प्रयोगशालाओं में अमेरिका में विकसित जांच विधियां उपयोग में लायी गयीं।

सारणी 1.8: उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा के अनुसार विभिन्न उर्वरता–स्तर में मिटटी के नमूनों का वर्गीकरण

पोषक तत्व	मिट्टी परीक्षा विधि	सामान्य उर्वरता–स्तर		
		निम्न	मध्यम	उच्च
नाइट्रोजन	जैव कार्बन (%)	<0.5	0.5-0.75	>0.75
नाइट्रोजन (कि.ग्रा./हे.)	क्षारीय परमैगनेट	<280	280-560	>560
फास्फोरस (कि.ग्रा./हे.)	सोडियम बाईकार्बोनेट	<23	23-56	>56
पोटैशियम (कि.ग्रा./हे.)	अमोनियम एसीटेट	<130	130-335	>335

उल्लेखनीय है कि ये सीमाएं बहुत ही सामान्य हैं जो कि मिट्टी के प्रकार, फसल और मिट्टी की जांच विधियों के अनुसार परिवर्तनीय हैं।

इण्डियन सोसाइटी आफ एगोनामी व फर्टिनाइजर एसोसिएशन आफ इण्डिया की स्थापना 50 के दशक में हुई जबकि इण्डियन सोसाइटी आफ स्वायल सांइस की स्थापना 1934 में हो गयी थी। इन संस्थाओं के माध्यम से मृदा उर्वरता और उर्वरक अनुसंधान की महत्वपूर्ण उपलब्धियों के प्रचार–प्रसार में काफी मदद मिली।

60 के दशक में कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना के साथ ही अनुसंधान की सुविधाओं में वृद्धि हुयी और अनुसंधान के लिये योग्य एवं प्रशिक्षित कार्यकर्ता वैज्ञानिक मिल गये। इसी समय सौभाग्य से फसलों की अधिक उपज देने वाली जातियों का आविष्कार हुआ जिसके फलस्वरूप कृषि अनुसंधान को नया मोड़ मिला। फसलों की इन जातियों के लिये विभिन्न मृदा–जलवायु की परिस्थितियों में उर्वरकों की आवश्यक मात्रा, सिंचाई जल की आवश्यकता एवं अन्य आवश्यक शस्य–विधियों की खोज की गयी। देश के सभी कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि संस्थानों और प्रमुख कृषि महाविद्यालयों का शस्य एवं मृदा–विज्ञान विभाग में मृदा–उर्वरता एवं उर्वरक–अनुसंधान को विशेष महत्व दिया गया। विभिन्न स्थानों पर विभिन्न परिस्थितियो में उर्वरक परीक्षणों की सुनियोजित शुरूआत हुई। यह समय वास्त में भारतीय कृषि अनुसंधान के लिये उत्साह, समर्पण और कसौटी का समय कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। इस अवधि में हमारी उपलब्धियों की तुलना भूत ओर भविष्य से नहीं की जा सकती।

फसल सुधार योजनाओं के अन्तर्गत विकसित की जा रही विभिन्न प्रजातियों की उर्वरक–आवश्यकता की जानकारी सम्बन्धी अध्ययन इसी समय हुए।

सिंचित दशाओं में अधिक उपज देने वाली प्रजातियों की उर्वरक आवश्यकता 120:60:30/60 किलोग्राम नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश आंकी गयी जो कि देशी जातियों की तुलना में 2–3 गुना अधिक थी किन्तु इन जातियों की उत्पादन क्षमता भी देखी जातियों की तुलना कही इससे भी अधिक है।

इसी समय नाइट्रोजन के विभाज़ित प्रयोग तथा बुआई के समय या पूर्व फास्फोरस के निवेशन के महत्व की जानकारी हुई। इन अनुसंधानों की व्यावहारिक उपलब्धियों की जानकारी विभिन्न संस्थाओं द्वारा समय–समय प्रकाशित "उन्नत कृषि विधिया नामक प्रकाशन से होती रहती हैं।

उर्वरक के रूप में यूरिया का प्रचलन बढ़ने के साथ हा इसके जल अपघट, रूतान्तरण और प्रयोग के बाद होने वाली हानियो का अध्ययन विभिन्न दशाओं में किया गया। इस समय मुख्य रूप से जल प्लावित धान की दशाओं मे नाइट्रोजन की गतिवता का अध्ययन हुआ क्योंकि अब तक विभिन्न माध्यमों से नाइट्रोजन हानि की समस्याओं का कुछ हद तक अन्दाज हो चुका था। इस अवधि में उत्पादन द्वारा अमोनिया के रूप में होने वाली नाइट्रोजन हानि का अध्ययन विशेष रूप से किया गया किन्तु निक्षालन या विनाइट्रीकरण द्वारा होने वाली नाइट्रोजन हानि सम्बन्धित अध्ययनों का अभाव रहा। इन अध्ययनों से यह भलीभांति ज्ञात हो गया कि मिट्टी की सतह पर यूरिया या अमोनियाई उर्वरकों का प्रयोग छिटकवा करने पर अमोनिया गैस के रूप में नाइट्रोजन की हानि की विशेष संभावना रहती है। मोटे कणों वाली बलुई तथा क्षारीय मिट्टियों में गर्म और शुष्क मौसम में इस प्रकार की हानि अपेक्षाकृत अधिक होती है। उर्वरकों को कुछ नीचे डाल देने के बाद हल्की सिंचाइ कर देने से गैस रूप में नाइट्रोजन–हानि की संभावना कम हो जाती है। इसी अवधि में डा. प्रसाद (1971) के नेतृत्व में नाइट्रीकरण प्रतिरोधों तथा मन्द गति से नाइट्रोजन मुक्त कराने वाले उर्वरकों पर अनुसंधान कार्य प्रारम्भ किये गये।

60 के दशक में फास्फोरस से सम्बन्धित अनुसंधान के अन्तर्गत मिट्टियों में उर्वरक फास्फोरस डालने पर विभिन्न प्रभाजों में उनके रूपातन्तरण सम्बन्धी

अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया गया। फास्फोरसधारी उर्वरकों मे आवश्यक जल विलेयता तथा अमोनियम नाइट्रेट फास्फेट या नाइट्रोफास्फेट की क्षमता सम्बन्धी अध्ययन भी इसी समय हुए।

रामामूर्ति एवं पाठक (1967) की उपज–लक्ष्य–संकल्पना की स्वीकृति के बाद मिट्टी परीक्षण अनुसंधन में एक नया मोड़ आया। इस विधि में विभिन्न उपज लक्ष्यों के लिए फसल आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उर्वरक–मात्राओं की संस्तुति की गयी।

नाइट्रोजन फास्फोरस ओर पोटैशियम के साथ ही अन्य तत्वों के महत्व की ओर ध्यान गया। पंजाब के मूंगफली उगाए जाने वाले क्षेत्रों तथा हिमाचल प्रदेश के चाय के बागानों की मिट्टियों में गंधक की कमी की सूचना कवर तथा टक्कर (1963) ने दी। पन्तनगर के धान में बड़े पैमाने पर जस्ता की कमी की नैने (1966) द्वारा दी गयी सूचना के बाद सूक्ष्म पोषक तत्वों सम्बन्धी अनुसंधान को विशेष महत्व मिला। इसी समय सूक्ष्म पोषक तत्वों की अखिल भारतीय समन्वित योजना का प्रादुर्भाव हुआ जिसे कालान्तर में सूक्ष्म पोषक तत्वों को उर्वरक–उपयोग–अनुसंधान की मुख्य धारा में लाने का श्रेय मिला। इस योजना के अन्तर्गत किये गये मिट्टी और पौधों के रासायनिक विश्लेषणों तथा क्षेत्र परीक्षणों से जस्ता की व्यापक कमी की पुष्टि हुई।

इसी दशक में कई संस्थानों मे नाइट्रोजन, फास्फोरस और गंधक के आइसोटोपों का अध्ययन शुरू हुआ। दशक के अन्त में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम जैसे प्राथमिक तत्वों का जनपद स्तर पर मृदा–उर्वरता मानचित्र तैयार करने का राममूर्ति तथा बजाज (1969) का प्रथम प्रयास विशेष सराहनीय रहा। इसके लिए भारत की मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओं से प्राप्त आंकड़ों का उपयोग किया गया। इसके फलस्वरूप भारतीय मिट्टियों में प्राथमिक पोषक तत्वों की कमी का अनुमान लगाने में विशेष मदद मिली।

70 के दशक मे मृदा–उर्वरता अनुसंधान का और विकास हुआ। अब तक माडल एग्रोनामी प्रोजेक्ट को अखिल भारतीय सस्य विज्ञान अनुसंधान की समन्वित योजना का नाम दे दिया गया जिससे इसका कार्य–क्षेत्र ओर विस्तृत हो गया। देशों के विभिन्न भागो में स्थित अनुसधान केन्द्रों पर फसलोंकीन उर्वरकों के प्रति अनुक्रिया विभिन्न उर्वरकों की सापेक्ष दक्षता विभिन्न फसलों एवं फसल–चक्रों के लिए उन्नत शस्य–विधियों तथा उनके

द्वारा पोषक तत्वों के निष्कासन सम्बन्धी महत्वपूर्ण अध्ययन किए गये जिनसे पता चला कि सघन फसल–चक्रों के अन्तर्गत नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम का वार्षिकनिकासन 500–900 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर हो जाता है और स्थायी रूप से उच्च उत्पादकता–स्तर बनाए रखने के लिए अधिक मात्रा में पोषक तत्वों के प्रयोग की आवश्यकता का संकेत मिला।

मिट्टी–परीक्षण और शस्य–अनुक्रिया सह–सम्बन्ध योजनान्तर्गत विभिन्न मृदा–जलवायु की परिस्थितियों के अन्तर्गत फसलों की विभिन्न उपज लक्ष्यों के लिए उर्वरकां की मात्रा का आंकलन रासायनिक–सांख्यिकीय समीकरणों द्वारा किया गया। इस दशक में जनपद स्तर पर मृदा–उर्वरता मानचित्र तैयार करने का दूसरा दौर पूरा हुआ। इस प्रयास के फलस्वरूप नाइट्रोजन की सार्वभौम तथा फास्फोरस की यंत्रतंत्र कमी की पुष्टि हुई। इसके साथ ही पोटैशियम की कमी पायी गयी। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा संकलित सूचनाओं के आधार पर टण्डन (1971) ने भारतीय मिट्टियों को 13 मृदा–उर्वरता वर्गों में विभाजित किया है जो कि रेखा चित्र 1.1 में प्रस्तुत है। इन परिणामों से स्पष्ट है कि उच्च उपज के लिए 122 जिलों में नाइट्रोजन + फास्फोरस और 225 जिलों में नाइट्रोजन + फास्फोरस + पोटाश देने की आवश्यकता है। उल्लेखनीय है कि निम्न और मध्यम उर्वरता की स्थिति में उर्वरकों के प्रयोग से उपज में सार्थक वृद्धि होती है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों की योजनान्तर्गत किए गये अध्ययनों से जस्ता की व्यापक कमी की पुष्टि हुई है। वैसे तो राज्यवार कमी में अन्तर देखा गया किन्तु औसतन 50 प्रतिशत नमूनों में जस्ता की कमी पायी गयी। अब तकऐसा महसूस किया जाने लगा कि नाइट्रोजन और फास्फोरस के बाद जस्ता एक तीसरे पोषक तत्व के समान महत्वपूर्ण है किन्तु अभी तक मिट्टियों एवं शस्य परिस्थितियों में जस्ता की कमी का निर्धारण एक ही क्रान्तिक सीमा के आधार पर किया गया।

अब तक नाइट्रोजनधारी उर्वरकों की आपेक्षित क्षमता सम्बन्धी अध्ययनों से यह सर्वथा स्पष्ट हो गया था कि उच्च भूमि वाली फसलों के लिए सभी उर्वरकों की दक्षमता लगभग समान है, बशर्ते उन्हें सही ढंग से डाला जाये। हां, जल प्लावन की दशा में उगाए गये धान में रोपाई के समय नाइट्रेट युक्त उर्वरकों का प्रयोग करने पर उनकी क्षमता कम हो जाती है।

फास्फेटधारी उर्वरकों की आपेक्षिक क्षमता सम्बन्धी अध्ययनों से पता चला कि उदासीन और क्षारीय अभिक्रिया वाली मिट्टियों में अधिक जल विलेयता वाले उर्वरकों की आवश्यकता होती है। इसीलिए इन मिट्टियों में डाई अमोनियम फास्फेट और सिंगल सुपर फास्फेट को प्राथमिकता मिल रही है। देश के दक्षिणी तथा उत्तर पूर्वी भागों में रोपी फसलों में राक फास्फेट के प्रयोग की संस्तुति की गयी है। गंधक की कमी वाले क्षेत्रो मे सिंगल सुपर फास्फेट विशेष प्रभावी पाया गया।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में नामिक अनुसंधान प्रयोगशाला की 1971 में स्थापना के बाद आइसोटोपीय अध्ययनों का विस्तार हुआ। उर्वरक नाइट्रोजन की क्षमता उनके रूपान्तरण एवं हानि सम्बन्धी अध्ययनों में 15N का उपयोग किया गया। बहुफसली कृषि प्रणाली में किए गऐ अध्ययनों से पता चला कि पहली फसल के बाद 35–40 प्रतिशत उर्वरक नाइट्रोजन शेष रह जाता है परन्तु आगामी फसल इसका केवल 1–3 प्रतिशत अंश उपयोग कर पाती है (सुब्याह एवं दास 1974)। रेडियो सक्रिय 32P का उपयोग विभिन्न अध्ययनों जैसे फसलों द्वारा उर्वरक फास्फोरस के उपयोग, उर्वरक फास्फोरस का विभिन्न प्रभावों में रूपान्तरण, जड़ अध्ययन, उर्वरक देने की विधियों आदि के सन्दर्भ में किया गया (गुप्ता और विरमानी 1974)। इसी समय 35S ओर 65Zn सम्बन्धी अध्ययनों का विस्तार हुआ।

बारानी कृषि की अखिल भारतीय समन्वित योजनान्तर्गत किए गये अध्ययनों से पता चला है कि इन क्षेत्रों की फसलें केवल प्यासी ही नहीं बल्कि भूखी भी हैं। इन परीक्षणों में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम तीनों ही पोषक तत्वों की आवश्यकता का संकेत मिला। मिट्टीन में मौजूद नमी का फसलों की पोषक तत्वों विशेषकर नाइट्रोजन के प्रति अनुक्रिया पर विशेष प्रभाव पड़ा। मिट्टी में नमी की मात्रा में वृद्धि के साथ नाइट्रोजन–आवश्यकता भी बढ़ी।

इसी अवधि में हैदराबाद (आंध्रप्रदेश) में अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय फसल शोध संस्थान की स्थापना हुई परन्तु मृदा–उर्वरता एवं उर्वरक–उपयोग अनुसंधान संबंधी विशेष महत्वपूर्ण अध्ययनों को इनकी अनुसंधान कार्य योजना में उचित स्थान न मिल सका।

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान की करनाल तथा विभिन्न केन्द्र पर किए गये अध्ययनों से पता चला कि क्षारीय भूमि का सुधार करके उर्वरकों के संतुलित प्रयोग द्वारा (विशेषकर नाइट्रोजन9 और जस्ता) उचित उपज की आशा की जा सकती है। भूम्बला (1974) के अनुसार प्रारम्भ के कुछ वर्षों में फास्फोरस और पोटाश देने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

दीर्घकालीन उर्वरक परीक्षणों की समन्वित योजनान्तर्गत 1971 से देश के 11 केन्द्रों पर नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश के साथ गोबर की खाद, जस्ता, गंधक, चूना और खरपतवार नियंत्रण का प्रभाव देखा जा रहा है। इन परीक्षणों के परिणामों से पता चला है कि उच्च उपज के लिए नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश के अलावा अन्य कार्बनिक तथा अकार्बनिक निवेशों के प्रयोग की आवश्यकता है।

70 के दशक के प्रारम्भ में खनिज तेल की विकट समस्या उत्पन्न हो जाने से उर्वरकों के मूल्य में वृद्धि हो गयी। इस समय उर्वरकों के सघन उपयोग के बजाय विस्तृत उपयोगी सिफारिश की गयी अर्थात उर्वरकों की पूरी संस्तुत मात्राको अधिक क्षेत्र में प्रयोग करने की सिफारिश की गयी। फास्फोरस जैसे तत्व जिनका अवशेष प्रभाव आगामी फसल परपड़ता है उन्हें धान–गेहूं फसल चक्र में केवल गेहूं की फसल में डालने की संस्तुति की गई क्योंकि यह फसल फास्फोरस का उपयोग धान की अपेक्षा विशेष कुषालता से कर लेती है। गोबर की खाद एवं अन्य कार्बनिक खादों के प्रयोग पर फिर से बल दिया जाने लगा। धान–गेहूं फसल चक्र में हरी खाद के प्रयोग की महत्वपूर्ण संस्तुति इसी समय की गयी (तिवारी इत्यादि 1980)।

राष्ट्रीय कृषि आयोग (1976) द्वारा भारत में कृषि फसलों द्वारा नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश के निष्कासन सम्बन्धी जो आंकड़े प्रस्तुति किए गये उनसे सर्वधा स्पष्ट है कि उर्वरकों द्वारा पोषक तत्वों की होने वाली पूर्ति फसलों द्वारा निष्कासित मात्रा से कहीं बहुत कम है अतः भविष्य में मृदा–उर्वरता का ह्रास होना स्वाभाविक है।

वर्तमान स्थिति

भारत में 80 के दशक में मृदा–उर्वरता और उर्वरक–उपयोग पर हुए अनुसंधान को वर्तमान कार्य कहा जा सकता है। यहां 70 के दशक के कुछ

अनुसंधानों का उल्लेख अपरिहार्य हो जायेगा क्योंकि इस अवधि के अनुसंधान अब भी चल रहे हैं। इस सारे कार्यों का उल्लेख इण्डियन सोसाइटी आफ स्वायल साइंस द्वारा 1982 में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय स्वायल साइंस कांग्रेस के अवसर पर प्रकाशित "रिव्यु आफ स्वायत रिसर्च इन इण्डिया" में मिलता है।

भारतीय कृषि इस समय विभिन्न पोषक तत्वों की कमी से प्रभावित है। इनमें उपयोग की दृष्टि से कम से कम पांच तत्व–नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम, गंधक और जस्ता विशेष महत्वपूर्ण माने जा रहे हैं। कुछ क्षेत्रों में प्रगतिशील किसान 4–6 तत्वों का इस्तेमाल कर रहे हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि वर्तमान परिपेक्ष में संतुलित उर्वरक प्रयोग की परिभाषा बदल गयी है। अब उन सारे तत्वों जिनकी मिट्टी में कमी हो, उनका उचित अनुपात में प्रयोग "संतुलित उर्वरक उपयोग" कहा जायेगा। इनकी संख्या एक या अनेक हो सकती है। अब प्रमुख पोषक तत्वों और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कोई सीमा नहीं रह गयी है। मिट्टी में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होने पर फसल में प्रयुक्त नाइट्रोजन, फास्फोरस ओर पोटाश का उपयोग पौधे सफलतापूर्वक नहीं कर पाते। इन दशाओं में 200–300 कि.ग्रा. प्रति हे. की दर से प्रयुक्त प्राथमिक पोषक तत्वों का उपयोग बिना 200–300 ग्राम सूक्ष्म पोषक तत्वों के बेकार सिद्ध होता है। फसल की उपज भारी जाती है, उर्वरकों की क्षमता बुरी तरह प्रभावित होती है और कृषकों के मन में उर्वरकों के उपयोग के बारे में भ्रम पैदा हो जाता है।

विभिन्न राज्यों द्वारा विभिन्न फसलों के लिए तदर्थ उर्वरक–संस्तुतियां तैयार कर ली गयी हैं। कुछ राज्यों में मिट्टी की विभिन्नता, भौगोलिक क्षेत्रों मौसम तथा फसलों की पकने की अवधि को ध्यान में रखते हुए उर्वरक संस्तुतियां तैयार की गयी हैं। लगभग 100 से भी अधिक मृदा–शस्य परिरिस्थितियों के लिए विभिन्न उपज लक्ष्यों हेतु मिट्टी परीक्षण पर आधारित संस्तुतियां तैयार हैं जिनका उल्लेख रेड्डी आदि (1986) ने किया है। भारत में मृदा–उर्वरता मूल्यांकन विधियो से सम्बन्धित अनुसंधान कार्यों का वर्णन सिंह (1987) ने किया है।

भारत में नाइट्रोजन सम्बन्धित आधुनिक अनुसंधानों का संकलन प्रसाद इत्यादि (1990) ने किया है। नाइट्रोजन के सक्षम उपयोग के लिए इसके

विभाजित प्रयोग (असिंचित दशाओं को छोड़कर) मध्यम गठन वाली मिट्टियों में धान में नीम की खली से उपचारित यूरिया, मिट्टी से उपचारित यूरिया तथ यूरिया सुपर गेन्युल की संस्तुति की गयी है। कुछ परिस्थितियों (बारानी खेती, क्षारीय भूमि) में यूरिया के पर्णीय छिड़काव की भी सिफारिश की जाती है।

कुछ राज्यों में फसल चक्रों के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए उर्वरक संस्तुतियां तैयार की गयी हैं। धान–गेहूं फसल चक्र में हरी शाद के साथ धान में 60–80 किलोग्राम नाइट्रोजन देने का सुझाव है। दलहनी फसलों के बाद गेहूं की फसल में 25 प्रतिशत तक नाइट्रोजन की मात्रा में कटौती की जा सकती है। इसके विपरीत ज्वार या बाजरा की फसल के बाद गेहूं लेने पर नाइट्रोजन की मात्रा में 25 प्रशित वृद्धि की संस्तुति की जाती है। आलू के बाद गेहूं लेने पर उर्वरक की मात्रा में कटौती की जा सकती है। यह कुछ उदाहरण मात्र हैं।

भारत में फास्फोरस से सम्बन्धित मृदा–उर्वरता और उर्वरक–उपयोग अनुसंधानों की समीक्षा गोस्वामी तथा कामध (1984), टण्डन (1987, 1990) और देव (1990) ने किया है। प्रमुख संस्तुतियों में मिट्टी–परीक्षण पर आधारित प्रयोग ड्रिल या पोरा द्वारा कूड़ में निवेशन, धान के पौध की जड़ों को उर्वरक फास्फोरस की स्लरी में डुबो कर रोपाई, पूर्व फसल में फास्फोरस की मात्रा का अनुगामी फसल पर अवशेष प्रभाव को ध्यान में रखकर उर्वरक प्रयोग, मिट्टियों के गुणों के अनुसार उर्वरकों में जल–विलयेता के अनुसार प्रयोग आदि हैं।

बहुफसली–कृषि–प्रणाली में जिन फसलों की फास्फोरस के प्रति विशेष अच्छी अनुक्रिया होती है और जो अवशिष्ट फास्फोरस का उपयोग करने में विशेष सक्षम नहीं होती जैसे गेहूं, आलू आदि उनमें प्राथमिकता के आधार पर फ़ास्फोरस के प्रयोग करने की संस्तुति की जाती है। धान एक ऐसी फसल8 है जो अवशिष्अ फास्फोरस से विशेष लाभान्वित होती है। आलू को फास्फोरस सिंगल सुपर फास्फेट के 1.5 प्रतिशत सान्द्रता वाले विलयन में चार घंटे डुबोने के बाद बोने पर आलू की उपज में सार्थक वृद्धि की सूचना ग्रेवाल तथा जायसवाल (1990) ने दी। साधारणता बुआई या रोपाई के पहले फास्फोरस प्रयोग की संस्तुति की जाती है। बुआई के समय यदि फास्फोरसधारी उर्वरक

उपलब्ध न हो तो इस दशा में फास्फोरस का प्रयोग खड़ी फसल में प्रारम्भिक वृद्धि की अवस्था में करने की सुस्तुति की जाने लगी है। यदि हरी खाद फसल के बाद अनाज वाली फसल ली जाती हो तो अनाज वाली फसल के फास्फोरस का पूरा हिस्सा हरी खाद वाली फसल में प्रयोग कर देने की संस्तुति है। यदि गोबर की खाद उपलब्ध है तो उस दशा में प्रति टन गोबर की खाद पर फास्फोरस की मात्रा 1 कि.ग्रा की दर से कम कर देनी चाहिए। आलू में जैविक खादों के प्रयोग से फास्फेट और पोटैशियम की पर्याप्त पूर्ति हो जाती है।

गत 10–12 वर्षों में पोटैशियम अनुसंधन के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई। इन अनुसंधानों की समीक्षा टण्डन तथा शेखों (1988) ने की है। देश के विभिन्न भागों में पोटैशियम द्वारा उपज वृद्धि सूचित है। फास्फोरस की भांति पोटाश की प्रयोग खाद के रूप में बोआई/रोपाई के समय करने की संस्तुति की जाती है। मोटे कणों वाली मिट्टियों अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों या आवश्यकता से अधिक सिंचाई करने पर पोटैशियम की हानि नीक्षालन द्वारा हो जाती है। ऐसी दशा में पोटाश के विभाजित प्रयोग की संस्तुति की जाती है। यद्यपि मृदा–संगठन और मृत्तिका–खनिजों के प्रकृति के अनुसार की व्यावहारिक संस्तुति के संकेत मिले हैं फिर यह अभी तक क्षेत्र–स्तर तक नहीं पहुंच पाई।

भारतीय मिट्टियों में गन्धक की व्यापक कमी देखी जा रही है। 90–100 जिलों में गंधक की कमी सूचित है। टण्डन (1986) तिवारी (1990) तथा गन्धक संस्थान वॉसिंगटन और भारतीय उर्वरक संघ (1988) ने भारत में हुए गंधक अनुसंधानों का समीक्षात्मक अध्ययन किया है। उच्च विश्लेषी उर्वरकों के अधिकाधिक प्रयोग से मिट्टी की गन्धक–उर्वरता स्तर में कमी आई। अभी तक हमारा ध्यान् केवल नाइट्रोजन, फास्फोरसक और पोटैशियम के संतुलित उपयोग तक ही केन्द्रित रहा है। हम यह सर्वथा भूल जाते हैं कि फसलें फास्फोरस के बराबर या उससे भी अधिक मात्रा में गन्धक का निष्कासन करती हैं। गन्धक के प्रयोग से विभिन्न फसलों की उपज में सार्थक वृद्धि हुई है जिसका विस्तृत उल्लेख अध्याय 7 में किया गया है। अब तक उपलब्ध सूचना के अनुसार प्रति हेक्टर 20–40 कि.ग्रा गन्धक देने की संस्तुति की जाती है। तेलहनी और दलहनी फसलों का उत्पादन बढ़ाने में गन्धक का विशेष महत्व देखा गया। ऐसा अनुमानित है कि गन्धक की कमी वाले क्षेत्रों में प्रति इकाई गन्धक द्वारा खाद्य तेलों की उत्पादन में 3.0 से 3.5 इकाई वृद्धि होती है (टण्डन 1986)।

सूक्ष्म तत्वों की योजनार्न्तगत गन्धक के साथ ही कैल्सियम और मैग्नीशियम को अध्ययन के आशय के सम्मिलित कर लिया गया है। सूक्ष्म तत्वों विशेषकर जस्ता की बड़े पैमाने पर कमी देखी गई है। भारत में दो दशक में सूक्ष्म पोषक तत्वों की समन्वित योजनान्तर्गत किये गये अनुसंधानों का विस्तृत संकलन अभी हाल में टक्कर एवं सहयोगियां (1989) ने किया है।

मिट्‌टी के 1,50,000 नमेनों के विश्लेषण से पता चला है कि लगभग 50 प्रतिशत नमूनों में जस्ता की कमी है। स्थाई रूप से उच्च उपज के लिए इन क्षेत्रों में जस्ता का प्रयोग अनिवार्य होगा। जस्ता की पूर्ति के लिए जस्ता सल्फेट (21% जस्ता) डालने की संस्तुति की जाती है। लोहा और मैगनीज की कमी सुधारने के लिए इनके पर्णीय छिड़काव की सिफारिश की जाती है। तांबे की कमी दूर करने के लिए मिट्‌टी में प्रयोग उपयुक्त समझा जाता है। बोरॉन का मिट्‌टी में प्रयोग या पर्णीय छिड़काव दोनों ही उपयुक्त होता है। बीजोपचार या पर्णीय छिड़काव द्वारा मालिब्डेनम की पूर्ति का सुझाव दिया जाता है। मोटे कणों वाली बलुई मिट्‌टियों में प्रति हेक्टर 25 कि.ग्रा. तथा महीन कणों वाली मटियार मिट्‌टियों या क्षारीय मिट्‌टियों में 50 कि.ग्रा. जस्ता सल्फेट देने की संस्तुति की जाती है। फसल गहनता और उत्पादन स्तर के अनुसार यह मात्रा 1–3 वर्ष के लिए पर्याप्त होती है। क्षारीय मिट्‌टियों में खड़ी फसल में जस्ता की कमी सुधारने के लिए इसके पर्णीय छिड़काव की भी सिफारिश की जाती है। धान की पौध की जड़ों को जिक आक्साइड के निंलबन या जस्ता सल्फेट के विलयन में डुबोने या धान के बीजों को जस्ता सल्फेट के विलयन में सिक्त करने से लाभ के संकेत मिले हैं।

बारानी खेती में उर्वरकों, जैवे–खादों एवं जीवाणविक उर्वरकों के समाकलित प्रयोग की संस्तुति की जाती है।

दीर्घकालीन उर्वरक परीक्षणों से पता चला है कि सघन कृषि में केवल नाइट्रोजन का प्रयोग अल्पकालीन लाभ के लिए होता है। अधिक मात्रा में पोषक तत्वों के निष्कासन के फलस्वरूप पोषक तत्वों की होने वाली कमियों को सही ढ़ग से न सुधारने पर उपज घटने के साथ ही मृदा उर्वरता में ह्रास होता है। जिन स्थानों पर प्रारम्भ में मिट्‌टी में फास्फोरस, पोटैशियम या गंधक की उपलब्ध मात्रा पर्याप्त थी वहां भी लगातार केवल नाइट्रोजन या गन्धक विहीन उर्वरकों का प्रयोग करते हुए फसल उगाने से कालान्तर में इन तत्वों

की कमी हो गई। अधिकांश परिस्थितियों में उर्वरकों की संस्तुत मात्रा के साथ 10–15 टन गोबर की खाद प्रति हे./वर्ष देने पर ही उच्च उपज स्तर बनाये रखना सम्भव हो सका है। उर्वरकों के माध्यम से पोषक तत्वों की पूर्ति तथा फसलों द्वारा पोषक तत्वों निष्कासन के बीच आपसी संतुलन का मृदा–उर्वरता स्तर में सुधार या कमी का प्रभाव पड़ा है। इन परीक्षणों से एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण जानकारी यह हुई है कि जिन प्लाटो में दो फसलों द्वारा बिना उर्वरक डाले प्रति हे मात्र 1300 कि.ग्रा. अन्य पैदा हुआ वहीं आवश्यक पोषक तत्वों का उचित मात्रा में प्रयोग करने से 7424 कि.ग्रा. अर्थात 5.7 गुना दाने की अधिक उपज मिली।

इस अवधि में विभिन्न पोषक तत्वो की अन्योव्य क्रिया सम्बन्धी महत्वपूर्ण जानकारी हुई। लवण प्रभावित मिट्टियों तथा अम्लीय मिट्टियों में उर्वरक उपयोग की व्यावहारिक विधियां विकसित की गई।

भावीन दृष्टिकोण

भविष्य में मृदा–उर्वरता और उर्वरक अनुसंधान की गति और तेज हो जानी चाहिए। मृदा–पादप तन्त्र में पोषक तत्वों की गतिक जानकारी ठीक ढंग से करनी होगी। मृदा–उर्वरता प्रबन्ध के लिए आधारिक एवं व्यावहारिक अनुसंधान की आवश्यकता होगी ताकि विशिष्ट मृदा–कृषि–जलवायु परिस्थितियों के लिए आवश्यक संस्तुतियों की जा सकें। इससे न केवल उत्पादकता बढ़ेगी बल्कि कृषकों द्वारा खर्च की गई प्रति इकाई लागत से होने वाला लाभ अधिक होगा और मृदा–उर्वरता अनुरक्षण एवं उन्नयन में मदद मिलेगी।

आगे आने वाले वर्षों में मृदा–उर्वरता सम्बन्धी अनुसंधानों की कार्य योजना आज की तुलना में सर्वथा भिन्न होगी। भविष्य में अनुसंधान केन्द्रों एवं प्रयोगशालाओं की संख्या में वृद्धि के बजाय हमें अपने दृष्टिकोण, कार्यशैली और अनुसंधान कार्य–योजना में गुणात्मक सुधार लाना होगा। यदि ऐसा करने से हम असमर्थ रहे तो भविष्य में धरती की भूख और प्यास निरन्तर बढती जाएगी जिसका प्रतिफल हम सबों को भोगना पड़ेगा।

अब हम अनुसंधान के नाम पर व्यावहारिक तथा अनावश्यक परीक्षणो का बोझ नहीं उठा सकेंगे। किसी भी अनुसंधान के लिए काफी सूझ–बूझ के

साथ उपचारों का निर्धारण करना होगा और इन उपचारों का चयन समस्या–आधारित होना चाहिए।

मृदा–उर्वरता मानचित्र तैयार करने के लिए नये मापदण्ड विकसित करने होंगे। समय–समय पर मृदा–उर्वरता स्तर में हो रहे परिवर्तनों के सही ऑकलन के लिए कम्प्यूटर की सुविधा उपलब्ध करानी होगी। भविष्य में तहसील, विकास खण्ड तथा गांव स्तर के मृदा–उर्वरता मानचित्र तैयार करने होंगे। जिन खेतों से मिट्टी के नमूने एकत्र किये जायें उन स्थानों का समुचित लेखा–जोखा रखा जाये ताकि कालान्तर में उन्हीं स्थानों से फिर नमूने एकत्र किये जा सकें और पिछली उर्वरता से वर्तमान उर्वरता की सही तुलना हो सके। इसके लिए कुछ निर्दिष्ट स्थान चुनने होंगे और उन स्थानों पर लगाई जाने वाली फसलों में उर्वरक आदि की प्रयोग की गई मात्रा, उपज आदि का विवरण भी रिकार्ड किया जाना चाहिए। समय–समय पर मृदा–उर्वरता की जांच के लिए आवश्यक विश्लेषण होते रहने चाहिए।

ग्रीन हाऊस में किये गये परीक्षणों के आधार पर विभिन्न पोषक तत्वों की निर्धारित क्रान्ति सीमाओं का सत्यापन क्षेत्र परीक्षणों के आधार पर करना होगा। मिट्टी परीक्षण के आधार पर की जाने वाली उर्वरक संस्तुतियां मिट्टी के गुणों, फसल उगाने के समय उनकीन पोषक तत्वों को मुक्त करने की क्षमता तथा फसल विशेष प्रजातियों के अनुसार करनी होगी। इस प्रकार विभिन्न पोषक तत्वों की क्रान्तिक सीमा में परिवर्तन होना स्वाभाविक होगा।

फास्फोरस तथा ज़िंक जैसे तत्वों के अवशिष्ट प्रभाव को ध्यान में रखते हुए उर्वरक संस्तुतियां करनी होंगी।

मिट्टी में सूक्ष्म पोषक तत्वों की भविष्य में कमी और बढ़ेगी जस्ता के अतिरिक्त लोहा, बोरॉन जैसे तत्वों से सम्बन्धित अनुसंधान कार्य को सुदृढ़ करना होगा। अभी तक मृदा–पादप तन्त्र में इन तत्वों के आचरण सम्बन्धी हमारी जानकारी बहुत कम है। इसके लिए मृदा परीक्षण विधियों का विकास करना होगा।

उत्पादन में वृद्धि के साथ ही गन्धक की कमी की भी व्यापक सम्भावना होगी। विभिन्न मृदा–जलवायु परिस्थितियों में गन्धक की पूर्ति के लिए सस्ते एवं प्रभावी गन्धक उर्वरकों की खोज करनी होगी। विभिन्न परिस्थितियों के लिए गन्धक सन्तुलन आंकड़ों का सृजन करना होगा।

3261 HRD/2000—4

भविष्य में एक मौसम वाले एक फसली परीक्षणों का विशेष महत्व नहीं मिल सकेगा। विभिन्न फसल–प्रणालियों के अन्तर्गत हो रहे मृदा–उर्वरता परिवर्तनों की ओर विशेष ध्यान देना होगा क्योंकि विभिन्न फसलें एक निश्चित अनुक्रम में ही उगाई जाती हैं।

भविष्य में पोषक तत्वों की अन्योव्य क्रिया सम्बन्धी अध्ययनों को विशेष महत्व मिलेगा परन्तु यह अध्ययन क्षेत्र परीक्षणों पर आधारित होने चाहिए। सघन कृषि में धनात्मक अन्योव्य क्रिया का पूरा लाभ सुनिश्चित करना होगा क्योंकि विभिन्न निवेशों पर होने वाला खर्च दिनों–दिन बढ़ता ही जाएगा।

पोषक तत्वों की कमी के प्रति विभिन्न फसलों की प्रजातियों की संवेदनशीलता सम्बन्धी अध्ययन चलता रहेगा।

अनवरत उच्च उत्पादन प्राप्त करने के लिए दीर्घकालीन परीक्षणों की आवश्यकता होगी जिनसे मृदा की उत्पादन क्षमता से सम्बन्धित गुणों में होने वाले परिवर्तनों की जानकारी होती रहे।

मृदा-उत्पादकता बढ़ाने के उपाय

कुछ प्रमुख कृषि सम्बन्धी कारक जो कि मानव के नियंत्रण में हैं उनके समुचित प्रबन्ध से मृदा–उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है। इन्हें रेखाचित्र 1.3 में दर्शाया गया है। स्पष्ट है अनवरत् उच्च मृदा–उत्पादकता स्तर बनाए रखना खेत की तैयारी से लेकर फसल कटने तक मानव के अधिकार क्षेत्र में आने वाले उपज को प्रभावित करने वाले सभी कारकों के उचित प्रबंधन से सम्भव हो सकता है।

इनके अतिरिक्त भूमि उत्पादकता को टिकाऊ बनाए रखने के लिए रासायनिक उर्वरकों के साथ ही जैव खादों (कम्पोस्ट, गोबर की खाद, हरी खाद आदि) और अणुजैविक उर्वरकों (राइजोवियम कल्चर, नीलहरित शैवाल, ऐजोस्पिरिलम, एजोला) के समाकलित प्रयोग पर विशेष बल देना होगा।

समस्याग्रस्त मिट्टियों की उत्पादकता बढ़ाने के उपाय

क्षारीय, लवणीय तथा अम्लीय मिट्टियां

क्षारीय, लवणीय और अम्लीय मिट्टियों का सुधार करके इन

समस्याग्रस्त क्षेत्रों की उत्पादकता में सार्थक वृद्धि की जा सकती है। जिन क्षेत्रों में जल–प्लावन के कारण मिट्टी के गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है और उपज मारी जा रही है वहां जल निकास में सुधार हेतु वृहत् कार्यक्रम चलाने की आवश्यकता है।

भौतिक गुणों से सम्बन्धित समस्याओं वाली मिट्टियों की उत्पादकता बढ़ाने के उपाय

कुछ क्षेत्रों में मिट्टी के भौतिक गुण अच्छी उपज के लिए बाधक सिद्ध होते हैं, वहां मिट्टी की भौतिक दशा में सुधार के लिए कारगर उपाय अपनाना आवश्यक होता है। इनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

रेतीली मिट्टियां

अत्यधिक पारगम्यता वाली मोटे कणों वाली बलुई मिट्टियों के संघनन से उत्पादकता में सार्थक वृद्धि होती है। सघनन के फलस्वरूप मिट्टी की अधो सतह का आभासी घनत्व बढ़ जाता है जिससे जल प्रवेशता की गति कम हो जाती है और पोषक तत्वों की नीक्षालन द्वारा होने वाली हानि कम होती है। तालाब की मिट्टी तथा बेन्टोनाइट मृत्तिका का प्रयोग मिट्टियों में नमी और नाइट्रोजन–स्तर में सुधार लाने में सहायक सिद्ध हुआ है जिससे बाजरे की उपज में वृद्धि हुई।

काली "रेगुर" मिट्टियां

काली मटियार "रेगुर" मिट्टियों में वासन की समस्या होती है और इनकी पारगम्यता बहुत कम होती है जिससे वर्षा काल में फाजिल जल का निकास बाधित रहता है। इससे जड़–क्षेत्र में आक्सीजन की कमी हो जाने से फसल प्रभावित होती है। मध्य प्रदेश, सब उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में इस प्रकार की समस्या है। इस समस्या के समाधान के लिए एकान्तर पर 3–6 मीटर चौड़े उठे हुए तथा दबे हुए प्लाट बनाकर उठे हुए हिस्से में सोयाबीन या अन्य फसलें जैसे अरहर, उर्द, मूंग, बाजरा, ज्वार आदि तथा दबे हुए हिस्से में धान उगाने से फसलों की उपज में सार्थक वृद्धि होती है। इस तकनीकी का सोयाबीन की उपज पर प्रभाव सम्बन्धी सारणी 1.9 में दिए गये हैं।

सारणी-1.9: समस्याग्रस्त काली क्ले मिट्टी में सोयाबीन कीनउपज

विवरण	समतल दबे हुए प्लट	उठे हुए प्लाट 6 मीटर	उठे हुए प्लाट 12 मीटर	क्रान्तिक अन्तर
दाने की उपज (कु./हे.)	10.5	20.0	22.0	1.82
कुल शुष्क पदार्थ (कु./हे.)	26.5	54.8	53.8	4.94
1000 दाने का वजन (ग्रा.)	103	124.6	122.7	3.09

स्रोतः वार्षिक रिपोर्ट 1984–85 कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा विभाग, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

ऊपरी सतह पर पपड़ी बनने तथा अधो सतह में मृतिका संचयन की समस्या

भारत के अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में जहां कुल वर्षा 600–1000 मि.मी. होती है वहां मिट्टियों की ऊपर सतह का गठन (बलुई) होता है परन्तु अधो सतह में मृत्तिका का संचयन हो जाता है। इन मिट्टियों में ऊपरी सतह पपड़ी बन जाने की गंभीर समस्या उत्पन्न हो जाती है जिससे अंकुरण बुरी तरह प्रभावित होता है, जड़ क्षेत्र में आक्सीजन की कमी हो जाती है, दलहनी फसलों की जड़ों में ग्रंथियां ठीक से नहीं बन पातीं तथा पादप–वृद्धि सम्बन्धी अन्य कारकों पर कुप्रभाव पड़ता है। इससे मिट्टी में जल–प्रवेशता बाधित रहती है और जल–अपवाह द्वारा मिट्टी और पोषक तत्वों की हानि होती रहती है। गोबर की खाद, कम्पोस्ट, धान की भूसी या गेहूं का भूसा बीज वाली पक्तियों में डालने से बाजरा के अंकुरण में 30–80 प्रतिशत, मक्का में 20–30 प्रतिशत, ज्वार में 100–120 प्रतिशत तथा कपास के अंकुरण में 5–6 गुना वृद्धि देखी गयी। हिसार में किए गये परीक्षणों के परिणाम सारणी 1.10 में दिए जा रहे हैं।

सारणी-1.10: मिट्टी पर पापड़ी बनने तथा उसके सुधार–विधियों का बाजरा की उपज पर प्रभाव

उपचार	(अंकुरण प्रतिशत)	दाने की उपज (कु./हे.)
बिना पपड़ी तोड़े	25.0	31.4
पपड़ी तोड़ने पर	49.4	43.9
यांत्रिक विधि से पपड़ी तोड़ने पर	33.3	41.8
गेहूं का भूसा, 2 टन/हे.	5.0.1	44.0
गोबर की खाद, 4 टन/हे.	41.2	40.9
क्रान्तिक अन्तर 5%	6.6	3.4

स्रोतः गुप्ता जे.पी., अग्रवाल आर.के. एवं कौल पी. (1980) जर्नल आफ इण्डिएन सोसाइटी आफ स्वायल साइंस 20,444।

समस्याग्रस्त चाका मिट्टियां

आंध्र प्रदेश की लाल बलुई दोमट "चाका" मिट्टियों में बाजरा, ज्वार और मूंगफली के पोधों की वृद्धि मिट्टी के सूख जाने पर अत्यन्त कठोर हो जाने से बुरी तरह प्रभावित होती है। पिसे हुए मूंगफली के छिलकों, धान की भूसी या गोबर की खाद का 5 टन प्रति हेक्टर की दर से बुआई के दो सप्ताह पहले मिट्टी की ऊपर सतह पर प्रयोग करने से यह कठोरता काफी कम हो जाती है। इस उपचार से मृदा–शक्ति तथा आभासी घनत्व कम हो जाता है। मिट्टी का जलधारण शक्ति बढ़ जाती है और इन फसलों की उजप में 30 से 60 प्रतिशत वृद्धि देखी गयी है। इन उथली मिट्टियों मे 15 से.मी. उंची मेड़ें बना देने से मिट्टी की गहराई बढ़ जाती है जिसका मक्के और ज्वार की उपज पर अनुकूल प्रभाव देखा गया। इन फसलों की उपज में क्रमशः 40 व 24 प्रतिशतकी वृद्धि देखी गयी।

ऊपरी सतह के ठीक नीचे अधिक आभासी घनत्व वाली मिट्टियां

तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश की लाल बलुई मिट्टियों, आध्रंप्रदेश की काली मृदा–सिरींज तथा उत्तर पूर्वी भारत की जलोढ़ बलुई दोमट मिट्टियों

की ऊपरी सतह से ठीक नीचे आभासी घनत्व अधिक होता है जिससे पौधों के जड़ों की वृद्धि रूक जाती है। 35 से.मी. की दूरी पर 45 से.मी. गहरी यांत्रिक गुड़ाई इस समस्या का हल सिद्ध हुई है।

उन्नत कृषि-उत्पादन तकनीक

उन्नत कृषि विधियां अपनाने से मृदा–उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। मृदा–उत्पादकता वृद्धि से सम्बन्धित प्रबन्ध योग्य कारकों के समुचित प्रबन्ध से उपज में होने वाली अनुमानित प्रतिशत वृद्धि का विवरण रेखाचित्र 1.1 में दिया गया है जिससे स्पष्ट है कि ठीक ढंग से खेत की तैयारी करने पर 10–25 प्रतिशत, सही प्रजातियां बोने पर 20–40 प्रतिशत, समय पर बुआई करने पर 20–40 प्रतिशत, सही ढंग से बुआई करने पर 5–20 प्रतिशत, प्रति इकाई क्षेत्र में पौधों की उचित संख्या रखने पर 10–25 प्रतिशत, आवश्यकतानुसार सिंचाई करने पर 10–20 प्रतिशत, खरपतवार नियंत्रण करने पर 5–50 प्रतिशत तथा उर्वरकों का संतुलित प्रयोग करने पर 20–50 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है। अतः टिकाऊ मृदा–उत्पादकता के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि फसल की बुआई से कटाई तक सभी उन्नत–कृषि विधियां अपनायी जायं।

अध्याय-2

भारत की मृदायें

जलवायु, मिट्टी और उसकी उर्वरता पर किसी भी देश की सुख–सृमृद्धि आश्रित होती है। भारत 8^0 से 37^0 उत्तरी अक्षांश और 60^0 से 93^0 पूर्वी देशान्तर रेखाओं के मध्य आवृत है। इसका भोगौलिक क्षेत्रफल 3247.6 लाख हेक्टर (3274.600 लाख वर्ग कि.मी.) है। यहां की वनस्पति, जलवायु, चट्टानें और स्थलाकृति में काफी विभिन्नता पायी जाती है। इन्हीं विशेषताओं ने समय समय पर अनेक प्रकार की मिट्टियों को जन्म दिया है। भारतीय मिट्टियों का वैज्ञानिक अध्ययन एवं वर्गीकरण सर्वप्रथम वोल्कर (1893) और लेदर (1898) ने करने का प्रयास किया। इसके बाद शैलों की विभिन्नता के आधार पर भारत की मिट्टियों का मानचित्रीकरण बाडिया एवं सहयोगियां (1945) ने तथा एन. एस. गुणांक के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों की मिट्टियों का वर्गीकरण विश्वनाथ एवं उकिन (1944) ने किया। इन अध्ययनों में केवल जलवायु को मृदा–निर्माण–कारक के रूप में महत्व दिया गया। मिट्टियों के निर्माण में जलवायु, वनस्पति और स्थलाकृति के प्रभाव को दृष्टि में रखते हुये राय चौधरी एवं माथुर (1954) ने भारतीय मिट्टियों को 16 प्रमुख वर्गों और 108 उप वर्गों में बांटा। भारतीय मिट्टियों को नवीनतम संशोधन के साथ गोविन्द राजन (1965) तथा गोविन्द राजन एवं दत्ता विश्वास (1968) ने 25 प्रमुख वर्गों में विभाजित किया है जिसे सारणी 2.1 एवं मानचित्र 2.1 में दर्शाया गया है।

लाल मिट्टियां

लाल मिट्टियों को लाल दोमट और लाल बलुई नामक दो वर्गों में बांटा गया है। इन मिट्टियों के गुणों का उल्लेख नीचे किया गया है:

(क) लाल दोमट मिट्टियां

ये मिट्टियां ग्रेनाइट, नीस, वार्नोकाइट्स डियोराइट्स एवं अन्य चट्टानों के विघटन से बनी है। इनमें क्ले युक्त खनिजों की प्रचुरता और सिलिका की मात्रा कम होती है। फेल्सपार, माइका, हार्नब्लेण्डी या अन्य भस्मीय खनिजों
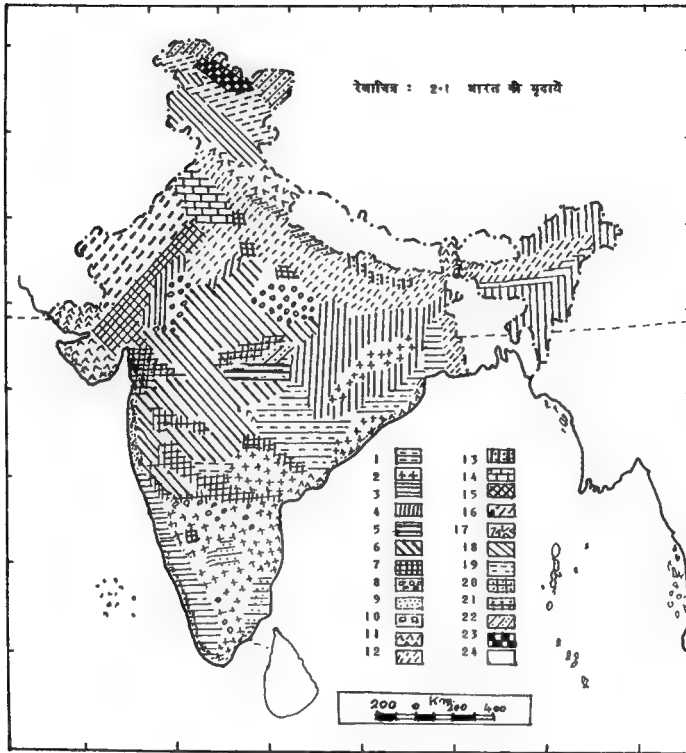
रेखाचित्र-2.1 भारत की मृदायें

संकेतः 1. लाल दुमट मिट्टियाँ 2. लाल बलुई दुमट मिट्टियाँ 3. लैटेराइट मिट्टियाँ 4. लाल-पीली मिट्टियाँ 5. उथली काली मिट्टियाँ 6. मध्यम काली 7. गहरी काली मिट्टियाँ 8. मिश्रित लाल और काली मिट्टियाँ 9. तटीय जलोढ़ मिट्टियाँ 10. तटीय रेत 11. डेल्टा प्रदेश वाली मिट्टियाँ 12. कछारी जलोढ 13. अधिक चूनेदार मिट्टियाँ 14. चूनदार सिरोजम 15. धूसर भूरी 16. मरुस्थली रेगोसालिक 17. मरुस्थली (लीथेसालिक) 18. तराई की मिट्टियाँ 19. भूरी पर्वतीय 20. अपर्वतीय 21. पर्वतीयशाल मिट्टियाँ 22. लवणीय क्षारीय 23. पीट तथा लवणीय मिट्टियाँ 24. अधकचरी मिट्टियाँ।

के अपक्षय के फलस्वरूप महीन कणों वाली मिट्टियों का निर्माण होता है। यह दोमट से लेकर सिल्टयुक्त मटियार और मटियार दोमट गठन वाली होती है। इनका पीएच मान उदासीन अथवा थोड़ा अम्लीय होता है। चुनही मिट्टियों का पीएच मान 8.2 से 8.4 तक है। ऊपरी सतह की मिट्टी का रंग लाल भूरा से लेकर गहरा लाल भूरा होता है।

(ख) लाल बलुई मिट्टियां

इसका निर्माण ग्रेनाइट, ग्रेनीटायड, नीस, क्वार्टजाइट्स, सैण्डस्टोन आदि चट्टानों के विघटन से हुआ है। इनमें बालू की प्रचुरता होती है। यह मिट्टियां महीन रेत से लेकर दोमट युक्त रेत अथवा मोटी रेत वाली होती है। पीएच मान साधारणतया अम्लीय (4.5 से 6.5) होता है। कुछ मिट्टियों का पीएच मान उनमें उपस्थित भस्म एवं चूने की मात्रा के अनुसार क्षारीय भी होता है। क्ले खनिजों पर लाल हिमेटाइट या पीले लिमोनाइट या दोनों लोह–आक्साइडों के मिश्रण की पर्त चढ़ जाने के कारण ऊपरी सतह की मिट्टी का रंग पीला–लाल लिये हुये भूरा या पीला–लाल होता है।

लैटेराइट मिट्टियां

ठोस अथवा कोणीय चट्टानें जो मुख्यतया एल्युमिनियम और लोहे के बुझे हुये आक्साइडों का मिश्रण होती है, आर्द्र एवं गर्म जलवायु के प्रभाव से लैटेराइट मिट्टियों का निर्माण करती हैं। इनमें मैंगनीज आक्साइड के साथ टिटेनियम भी थोड़ी मात्रा में पाया जाता है।

वर्षा ऋतु में नम और सूखा मौसम एक अन्तर पर बना रहता है उस समय चट्टानों की सिलिकायुक्त सामग्री निक्षालन द्वारा बहकर नीचे चली जाती है। अनेक प्रकार की चट्टानों के अपक्षय के फलस्वरूप ऐसी मिट्टियों का निर्माण होता है। ऊंचे भागों की लैटैराइट मिट्टियां हल्के गठन की और निचले भागों की अपेक्षाकृत भारी गठन वाली होती है। ऊंचे भागों की मिट्टियां चाय, रबड़ और सिनकोना तथा निचले भागों की मिट्टियां धान की खेती के लिये उपयुक्त होती हैं। इन मिट्टियों में फास्फोरस और पौटेशियम की कमी होती है।

सारणी-2.1: भारतीय मिट्टियों का वर्गीकरण, क्षेत्रफल, वितरण तथा नई यू.एस. टेक्सानामी के अनुसार उनका नामकरण

क्र सं	मृदा–वर्गीकरण ईकाई	क्षेत्रफल (वर्ग कि.मी.)	वितरण	यू.एस.डी.ए. प्रणाली के अनुरूप नाम
लाल मिट्टियां				
1.	लाल दुमट मिट्टियां	2,13,271	आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, उड़ीसा	पैल्युस्टाल्फ्स स्यूडझैस्टाल्फ्स
2.	लाल बलुई दोमट मिट्टियां	3,30,590	तमिलनाडु, कर्नाटक आंध्र प्रदेश	हैप्ल्युस्टाल्फ्स
3.	लैटेराइट मिट्टियां	1,30,066	तमिलनाडु, केरल कर्नाटक, आंध्र प्रदेश उड़ीसा, महाराष्ट्र गोआ, आसाम	प्लिन्थाक्यल्ट्स प्लिन्थस्टोल्ट्स प्लिन्थहल्टस आक्सीलाल्स
4.	लाल एवं पीली	4,03,651	मध्य प्रदेश, उड़ीसा	हैप्ल्युस्टल्ट्स आक्राक्यल्ट्स रोडूस्टोल्ट्स
काली मिट्टियां				
5.	उथली काली मिट्टियां	3,15,32	महाराष्ट्र	उस्टोथेन्ट्स उस्टोथेन्ट्स
6.	मध्यम काली	4,30,383	महाराष्ट्र मध्य प्रदेश	पेल्यस्ट्र्टस क्रोमूस्टर्ट्स
7.	गहरी काली मिट्टियां	1,12,060	महाराष्ट्र आन्ध्र प्रदेश, कनार्टक मध्य प्रदेश, गुजरात	पेल्यूस्टर्ट्स कामस्ट्र्टस पैल्लूडर्ट्स

8.	मिश्रित लाल और काली मिट्टियां	1,62,255	कर्नाटक, तमिलनाडु महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश	ऐल्फीसाल्स और वर्टिसाल्सका साहचर्य जिसे अलग से नक्शे में प्रदर्शित नहीं किया जा सकता।
9.	तटीय जलोढ़ मिट्टियां	54,403	तमिलनाडु, केरल आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र	हेप्लाक्वेन्ट्स
10.	तटीय रेत	4,534	उड़ीसा	उस्टीसैम्मेन्ट्स
11.	डैल्टा प्रदेश वाली	87,045	तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश उड़ीसा, पं. बंगाल	कवार्टजीसैम्मेन्ट्स ट्रोपाक्वाल्फस
12	कछारी जलोढ़	3,56,720	उत्तर प्रदेश, पंजाब, बिहार	हैप्लाक्वेन्ट्स उस्टीफ्लवेन्ट्स उडीफ्लवेंट्स
12.	बांगर (पुरानी जलोढ़ मिट्टियां	3,56,720	पश्चिमी बंगाल	हैप्लुस्टाल्फस उस्टोक्रेप्ट्स
13.	अधिक चूनेदार जलोढ़	13,611	उत्तरी–पूर्वी उत्तर प्रदेश बिहार	कैल्सीअर्थेन्ट्स
14.	चूनेदार सीरोजेम मिट्टियां	45,080	पंजाब	कैल्सीआर्थिड्स
15.	धूसर भूरी मिट्टियां मरुस्थली मिट्टियां	10,1,572	गुजरात	कैल्सीआर्थिड्स
16.	मरुस्थली मिट्टियां (रीगोसालिक)	1,54,423	राजस्थान	कैल्सिआर्थिड्स सैम्मेन्ट्स
17.	मरुस्थली मिट्टियां (लीथेसालिक) तराई की मिट्टियां			लिथिक एन्टीसाल्स

18.	तराई की मिट्टियां	28,919	उत्तर प्रदेश बिहार प. बंगाल	हैप्लाक्वाल्फस
पहाड़ी मिट्टियां				
19.	भूरी पहाड़ी मिट्टियां (सेन्डस्टोन तथा शेल पर निर्मित)	81,242	उत्तर प्रदेश, भूटान सिक्किम हिमाचल प्रदेश	पाल्यूमुल्ट्स
20.	उप पर्वतीय मिट्टियां (पोडजोल मिट्टी)	76,695	उत्तर प्रदेश, जम्मू और कश्मीर	हैप्लूडाल्फस
21.	पर्वतीय शाल मिट्टियां	59,790	कश्मीर जिसमें लद्दाख भी सम्मिलित है।	क्राइजोबोरोल्स क्राइजोक्रेप्टस
लवणीय एवं क्षारीय मिट्टियां				
22.	लवणीय तथा क्षारीय	17,377	उत्तर प्रदेश, पंजाब कर्नाटक, महाराष्ट्र तमिलनाडु	रौजोर्थिड्स सेलार्गिडस नेटार गिड्स कुछ एन्टीसाल्स तथा वर्टीसाल्स भी सेलिक या नेट्रिक है।
23.	पीट तथा लवणीय मिट्टियां	2,270	केरल	हिस्टोसाल्स
अन्य मिट्टियां				
24.	अधकचरी मिट्टियां	79,151	मध्य प्रदेश	लिथिक एन्टीसाल्स
25.	हिम नदी तथा हिमाच्छादित मिट्टियां	29,335	उत्तर प्रदेश कश्मीर	

स्रोत: गोविन्द राजन एस.वी. एवं गोपाल राव एच.जी. (1978) स्टडीज आन स्वायल्स आफ इन्डिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट, लिमिटेड, नई दिल्ली

लाल एवं पीली मिट्टियां

लाल या लाल–पीला रंग लिये हुये पीली मिट्टियां भारत के पूर्वी एवं मध्य भाग में पायी जाती है। लोह आक्साइड का जलीयन अधिक होने से इनका रंग पीला हो जाता है। इनका रंग साधारणतया लाल–पीला या पीला–भूरा होता है। ये मिट्टियां दोमट या सिल्ट युक्त दोमट गठन की होती है। इनका निर्माण माइकायुक्त क्वार्टजाइट शिस्ट, फाइलाइट, हार्नब्लेण्डी शिस्ट और नीस चट्टानों के अपक्षय से हुआ है। मिट्टी का पीएच मान उदासीन अथवा थोड़ा अम्लीय होता है। इनमें ह्यूमस काफी मात्रा में पायी जाता है।

काली मिट्टियां

काले रंग वाली तथा कपास की खेती के लिये विशेष उपयुक्त माने जानी वाली मिट्टियों को कपास की काली मिट्टी (ब्लैक काटन स्वायल) के नाम से पुकारते हैं। इनका स्थानीय नाम रेगुर है। इनकी तुलना रूस की "शर्नोजेम" और अमेरिका की "प्रेरी" मिट्टी से की जाती है। ऐसी मिट्टियां कैलीफोर्नियां के आसपास पाई जाने वाली काले ईंट जैसी मिट्टियों के समान है। ऐसी मिट्टियां दक्षिण और राजमहल के पास (टेप) तथा लौहयुक्त नीस और शिस्ट द्वारा बनी है। काली मिट्टियों को चार वर्गों में बांटा गया है वे हैं–1. उथली काली, 2. मध्यम काली, 3. गहरी काली और 4. मिश्रित लाल एवं काली मिट्टियां।

दक्षिणी भारत के पास की वेसाल्ट चट्टानों के अपक्षय के फलस्वरूप उथली काली मिट्टियां बनी हैं और कर्नाटक राज्य के बीजापुर एवं गुलवर्गा जिले तथा महाराष्ट्र के वर्धा, नागपुर और अहमद नगर जिले में पायी जाती हैं।

मध्यम काली मिट्टियों का निर्माण वेसाल्टयुक्त पाश, वारवार शिस्ट, भस्मीय ग्रेनाइट, नीस, हार्न ब्लेण्डी और क्लोराइट युक्त शिस्ट के अपक्षय के फलस्वरूप हुआ है। कर्नाटक राज्य के वेल्लारी और धारवार जिले तथा तमिलनाडु के तिरूनेलवेली जिले, मालवा, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश राज्य में पायी जाती है। ये मिट्टियां सिल्ट युक्त मटियार या मटियार गठन वाली होती हैं। इनमें जीवांश पदार्थ भी औसत से लेकर उच्च मात्रा में पाया जाता है। मृदा परिच्छेदिका के "सी" संस्तर में 20–30 से.मी. मोटी पर्त में चूने की छर्रियां पायी जाती हैं तथा भूमि में एक मीटर की गहराई पर जिप्सम भी पाया जाता है।

गहरी काली मिट्टियों की गहराई एक मीटर से अधिक होती है। ये मिट्टियां बेसाल्टयुक्त पाश से निर्मित हुई है। महाराष्ट्र के विदर्भ एवं अन्य भागों में, मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र तथा भोपाल जिले और कर्नाटक के बैल्लारी जिले में पायी जाती हैं।

काली मिट्टियां बेसाल्ट जैसी क्षारीय चट्टानों तथा लाल मिट्टियां ग्रेनाइट, ग्रेनाइट युक्त नीस या सैण्डस्टोन से बनी है। कर्नाटक, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश के मध्य भाग और राजस्थान के कोटा और बूंदी जिलों में लाल और काली मिट्टियां आपस में मिली हुई अलग–अलग पायी जाती हैं। लाल मिट्टी वाले क्षेत्रों के निचले भागों में कहीं–कहीं काली मिट्टी छोटे–छोटे खंडों में पायी जाती है। लाल मिट्टियां मुख्तया ऊंचे हिस्सों में पायी जाती हैं। काली मिट्टी वाले क्षेत्रों में लाल मिट्टियां छोटे टुकड़ों में पायी जाती है।

काली मिट्टियां प्रायः उपजाऊ होती हैं। किन्तु ढालू और ऊंचे स्थानों पर स्थित ऐसी मिट्टियां कम उर्वर हैं। इन मिट्टियों में क्ले और सिल्ट के साथ ही कैल्सियम की प्रचुरता होती है। इनमें मोन्टमोरिलोनाइट और बीडेलाइट नामक गौण खनिज पाये जाते हैं। जिसके कारण ये मिट्टियां पानी लगने या वर्षा होने पर अत्यन्त चिपचिपी और सूखने पर अत्यधिक कठोर हो जाती हैं और इनमें बड़ी–बड़ी दरारें पड़ जाती हैं। इन मिट्टियां में लोहे और चूने की छोटी–छोटी छर्रियां पायी जाती हैं। इनमें नाइट्रोजन, जीवांश पदार्थ और फास्फोरस का अभाव होता है। सभी रेगुर मिट्टियां विशेषकर वे जिनमें लोह–मैगनीशियम युक्त सिल्ट पाया जाता है, उनकी सतह और अपक्षयित कटान के बीच कैल्सियम कार्बोनेट छर्रियों के रूप में बहुतायत से पाया जाता है। भारत की लाल, लैटेराइट और काली मिट्टियों की रसायनिक विशेषताओं का विवरण सारणी 2.2 में दिया गया है।

जलोढ़ मिट्टियां

जलोढ़ मिट्टियां को निम्नांकित 6 वर्गों में विभाजित किया गया है, (क) तटवर्ती जलोढ़ मिट्टी (ख) तटवर्ती रेत (ग) मोहाने की जलोढ़ मिट्टी (घ) सिंधु गंगा की जलोढ़ मिट्टी (च) चुनही जलोढ़ मिट्टी (छ) चुनही सीरोजम मिट्टी। (देखें मानचित्र–1) इनकी विशेषताओं का उल्लेख नीचे किया गया है।

(क) तटवर्ती जलोढ़ मिट्टी: प्रायद्वीप प्रदेश में समुद्र तट के किनारे समुद्र

सारणी-2.2: भारत की लाल, लैटेराइट और काली मिट्टियों की रासायनिक विशेषतायें

विशेषतायें	लाल मिट्टियां		लैटेराइट	काली मिट्टियां				
	लाल दोमट मिट्टियां	लाल बलुई मिट्टिया	मिट्टियां	उथली काली	मध्यम काली	हल्की काली	भारी काली	गहरी काली
1	2	3	4	5	6	7	8	9
pH	6.0	8.3	5.1	7.6	8.1	7.6	7.3	7.8
CEC	3.0	10.4	6.1	28.6	59.1	45.0	57.1	61.3
कार्बनिक कार्बन	0.35	0.40	0.19	0.76	0.35	0.67	1.60	0.60
कणिक संगठन								
मोटा बालू	60.2	52.8	40.3	28.8	1.7	1.8	19.2	0.3
महीन बालू	-	18.1	15.6	-	15.4	18.6	-	9.1
सिल्ट	16.4	9.3	14.3	21.8	21.7	34.4	19.4	12.1
क्ले	23.4	19.2	29.4	49.4	56.2	43.0	61.4	69.9
N	0.03	0.06	0.06	0.07	0.05	0.03	0.10	0.05
P2O5	0.04	0.32	0.36	0.21	0.74	0.05	0.13	0.29
K2O	0.9	1.82	0.34	1.9	0.27	0.28	8.2	0.79

1	2	3	4	5	6	7	8	9
विनिमेय धनायन								
(मि.इ.प्रति 100 ग्राम)								
Ca	1.40	5.2	3.4	18.5	47.1	17.5	36.5	42.7
Mg	1.20	3.9	2.2	9.2	9.3	2.4	19.8	15.2
Na	0.67	0.8	0.61	1.4	1.1	2.5	2.7	1.4
K	0.20	0.5	0.08	0.53	0.72	0.96	0.50	1.04
SiO2	40.5	56.8	56.5	55.7	58.5	55.03	47.9	59.2
R2O3	57.3	35.1	21.1	37.1	38.9	28.3	46.1	35.9
Fe2O3	16.4	14.5	8.6	14.1	18.7	6.99	15.1	16.6
Al2O3	40.9	19.8	12.5	23.9	18.9	21.3	31.0	19.5
CaO	0.26	0.7	0.42	0.76	0.9	1.15	1.54	0.9
MgO	0.61	4.1	0.32	3.70	5.3	3.34	3.25	6.0
मोलर अनुपात								
Sio2/Al2O3	1.6	4.8	3.9	3.9	5.2	4.37	2.6	5.1
SiO2/R2O3	1.3	3.3	4.5	2.8	3.2	3.63	2.0	3.4
Sio2/Fe2O3	13.7	15.5	11.2	14.5	15.5	13.1	12.5	14.3
सूक्ष्म पोषक तत्व (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)								
B	8	15	14	27	25	30	24	25
Cu	12.0	17	41	77	79	63	125	130
Mo	4.0	0.8	1	2.5	2.8	2.5	2.7	6.2
Zn	21.0	40	35	39	42	70	45	52
Mn	800	1150	1100	874	1122	775	1116	1225

स्रोतः दास एस.सी. एवं चटर्जी आर.के. (1982) रिव्यु आफ स्वायल रिसर्च इन इन्डिया, पार्ट 1, 12वीं इन्टरनेशनल कांग्रेस आफ स्वायल साइंस पृष्ठ 84–109.

एवं पहाड़ियां के बीच ऐसी मिट्टियां पायी जाती हैं जिनका निर्माण अपेक्षाकृत नम जलोढ़ पदार्थ के जमा होने से होता है। ऐसी मिट्टियां महाराष्ट्र, केरल, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश और उड़ीसा के तटवर्ती भागों में पायी जाती है। इन मिट्टियों का गठन हल्की बलुई से लेकर शिल्टयुक्तमटियार, गहराई अधिक और रंग चमकीला लाल–भूरा तथा पीला–भूरा से लेकर धूसर एवं गहरा धूसर होता है। कैल्सियम युक्त जनक पदार्थ से बनी मिट्टियों का रंग गहरा और गठन भारी होता है। ग्रेनाइट और नीस चट्टानों से बनी मिट्टियों का रंग लाल होता है इनका गठन मध्यम या हल्का, उर्वरा शक्ति कम और समुद्र तट के किनारे पाये जाने के कारण इनमें लवण की प्रचुरता होती है।

(ख) तटवर्ती रेतः भारत में रेतीली मिट्टी पट्टी के रूप में तमिलनाडु के तंजावर के तटवर्ती क्षेत्रों, केरल में गंटूर जिले में वपताला के पास, आंध्र प्रदेश में मेसुलिपटम और उड़ीसा में पुरी जिले में पायी जाती हैं। रेत की प्रधानता होने के कारण इन्हें तटवर्ती रेगोसाल माना जाता है। ये मिट्टियां गहरी तो होती हैं परन्तु रेतीले जनक पदार्थों के कारण मृदा परिच्छेदिका का विकास नहीं हो पाता है। इन मिट्टियां में लवणता की समस्या नहीं होती क्योंकि ऐसे क्षेत्रों का भूगर्भ जल–पटल काफी नीचे और जल निकास भी अच्छा होता है। निचले हिस्सों में पाई जाने वाली दल–दल एवं लवणीय मिट्टियां कृषि के लिये अनुपयुक्त होती हैं। इनमें नारियल, काजू अथवा केजुआ राइना जैसी बागानी फसलें ली जाती हैं।

(ग) मोहाने की जलोढ़ मिट्टियांः नदियां समुद्र में मिलते समय मुहाने पर कुछ मिट्टी छोड़ जाती है। इसी प्रकार पूर्व की ओर गंगा, जमुना जैसे प्रमुख नदियां बहती हैं जो कि बंगाल की खाड़ी में मिलते समय मोहाना बनाती हैं। भारत के उत्तरी भाग में गंगा और ब्रह्मपुत्र, दक्षिणी तथा मध्यवर्ती क्षेत्र में महानदी, गोदावरी और कृष्णा तथा सुदूर दक्षिणी क्षेत्र में कावेरी नदी द्वारा मोहाने की मिट्टी का निर्माण हुआ है।

ऐसी मिट्टियां बहुत हल्की बलुई से लेकर दोमट तथा मटियार गठन वाली हैं। उत्तर प्रदेश और बिहार की मिट्टियों में चूना युक्त अभेद्य पर्त, बंगाल और आसाम की जलोढ़ मिट्टियां में लोहयुक्त अभेद्य पर्त; और सुन्दरवन डेल्टा प्रदेश में सिलिकायुक्त अभेद्य पर्त पायी जाती है। मटियार गठन और अभेद्य पर्त वाली जलोढ़ मिट्टियों में जल निकास की समस्या बनी रहती है। इन मिट्टियों में

3261 HRD/2000—5

सोडियम और मैग्नीशियम के हानिकारक लवणों के एकत्र हो जाने के कारण ऊसर मिट्टियां बन जाती है जो कि कृषि के लिये सर्वथा अनुपयुक्त होती हैं।

गंगा–सिन्धु की जलोढ मिट्टियों का रंग मटमैला, हल्का भूरा अथवा हल्का पीला होता है किन्तु दक्षिण में नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी और कृष्णा नदी की घाटियों मे पायी जाने वाली जलोढ़ मिट्टियों का रंग गहरा भूरा तथा हल्का काला होता है। जलोढ़ मिट्टियों की परिच्छेदिकाओं में स्पष्ट संस्तरों का अभाव रहता है।

असम में पायी जाने वाली जलोढ़ मिट्टियां अम्लीय हैं। नदियों के किनारे पायी जाने वाली नयी जलोढ मिट्टियों की तुलना में जलोढ़ मिट्टियां अधिक अम्लीय हैं। आसाम के निचले भाग में ब्रह्मपुत्र की जलोढ़ मिट्टियां साधारणतया बलुई हैं। अव–भूमि अपेक्षाकृत अधिक बलुई और अम्लीय होती है। अत चाय की खेती के लिये विशेष उपयुक्त होती है। इनका पीएच. मान लगभग 5.2 होता है।

नादिया, मुर्शिदाबाद, माल्टा, 24 परगना, हावड़ा, बर्दवान और हुगली जिलों की जलोढ़ मिट्टियां का निर्माण गंगा द्वारा लाये गये जलोढ़ पदार्थ से हुआ है। पश्चिमी बंगाल का लगभग तीन–चौथाई भाग जलोढ़ मिट्टियों के अन्तर्गत है। ये मिट्टियां अपरिपक्व हैं और इनकी परिच्छेटिकाओं में विभिन्न गहराइयों में चूनायुक्त कंकड़ पाया जाता है इनका पीएच मान उदासीन, क्ले की मात्रा अधिक और गौण खनिजों में इलाइट का बाहुल्य होता है। ये उपजाऊ मिट्टियां हैं। इनमें धान और जूट की खेती प्रमुख रूप से की जाती है। गंगा की पुरानी जलोढ़ मिट्टियों का उद्यानों की दृष्टि से विशेष महत्व है। इन क्षेत्रों की फल वाली प्रमुख फसलें आम, लीची, केला, पपीता और अमरूद हैं।

विंध्याचल के पूर्व की पर्वत श्रृंखलाओं से निकलने वाली दामोदर, कंरावती और मयूराक्षी नदियां द्वारा वीरभूम, बाकुरा, पुरूलिया, बर्दवान, हुगली, मिदनापुर और पश्चिमी मुर्शिदाबाद जिलों में पायी जाने वाली जलोढ़ मिट्टियों का निर्माण हुआ है। विभिन्न स्थानों पर मुहाने वाली जलोढ़ मिट्टियों का निर्माण हुआ है। विभिन्न स्थानों पर मुहाने वाली जलोढ़ मिट्टियों का निर्माण जिन पदार्थों से हुआ है, उनके संगठन एवं बनावट में काफी अन्तर पाया जाता है। गंगा की जलोढ़ मिट्टियां हल्के रंग की सिल्टी और सिल्टी क्ले गठन वाली है। महानदी के मोहाने की मिट्टी सिल्ट युक्त, दोमट, दोमट और बलुई गठन

वाली हैं। गोदावरी और कृष्णा नदियों द्वारा निर्मित मिट्टियां गहरे रंग की हैं और इनका गठन भी सिल्टी क्ले है। कावेरी नदी के मोहाने की मिट्टियां भी गहरे रंग की सिल्ट तथा सिल्टी क्ले गठन वाली हैं।

गंगा की जलोढ़ मिट्टी को छोड़कर मुहाने वाली अन्य मिट्टियां का जल निकास अच्छा होता है। इसलिए अब भूमि में धूसर या चितकबरे संस्तर का अभाव पाया जाता है। मुहाने वाली गंगा की जलोढ़ मिट्टियों के क्षेत्र में अनूप वनस्पति पाये जाने के कारण इनमें जीवांश पदार्थ अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में पाया जाता है। इसके विपरीत मोहाने वाली अन्य मिट्टियां में सघन कृषि के फलस्वरूप जीवांश पदार्थ का इस तरह संचय नहीं हो पाता। महानदी के मुहाने क्षेत्र में रेत तथा रेत युक्त पहाड़ियों की पट्टी और दलदली मिट्टी एक अन्तर से पायी जाती है। इस पट्टी के पीछे एक बहुत बढ़ा मुहाना क्षेत्र पाया जाता है। यहां बड़े पैमाने पर खेती की जाती है। ये मिट्टियां बलुई होते हुये भी महीन गठन वाली हैं और इनमें पोटाश की पर्याप्त मात्रा पायी जाती है परन्तु इनमें फास्फोरस का अभाव होता है। गोदावरी और कृष्णा की जलोढ़ मिट्टियां उपजाऊ हैं और इनकी जलधारण क्षमता भी अधिक है। मोहाने वाली मिट्टियों में तम्बाकू, केला, गन्ना, धान आदि फसलें उगायी जाती हैं।

(घ) सिंधु-गंगा की जलोढ़ मिट्टियां: गंगा–सिंधु, ब्रह्मपुत्र तथा इनकी सहायक नदियों द्वारा लाकर जमा किये गये जलोढ़ पदार्थों से ऐसी मिट्टियों का निर्माण हुआ है। ये नदियां इस जलोढ़ पदार्थ को हिमालय की ऋतुक्षरित चट्टानों के रूप में बहाकर नीचे लायी हैं और मैदानों में वेग शिथिल हो जाने पर अपने किनारों पर छोड़ती चली गयी हैं। कालान्तर में मृदा निर्माण–प्रक्रियाओं द्वारा इन्हीं मूल पदार्थों से जलोढ़ मिट्टियां बनती हैं।

मृदा निर्माण की दृष्टि से हम जलोढ़ को दो प्रमुख वर्गों अर्थात नयी तथा पुरानी जलोढ़ मिट्टियां में विभाजित कर सकते हैं। नई जलोढ़ मिट्टियां साधारणतया हल्के रंग की बलुई गठन वाली है। इनमें कंकड़ की मात्रा बहुत कम होती है। इसे "खादर" भी कहते हैं। पुरानी जलोढ़ मिट्टी को "बांगर" कहते हैं। यह गहरे रंग की मटियार गठन वाली मिट्टी होती है। इनमें कंकड़ पाया जाता है। नवीन जलोढ़ अथवा "खादर" मिट्टी निर्माण की अवस्था और पुरानी जलोढ़ अथवा "बांगर" मिट्टी विघटन की अवस्था में है। इन मिट्टियों का पीएच मान 5.5 से 7.2 तक है। मिट्टी की गहराई के साथ लोहा तथा अन्य

क्षारीय भस्मों की मात्रा बढ़ती जाती है। भूमि में पायी जाने वाली लोहे और मैंगनीज की छर्रियां आंतरिक जल निकास की द्योतक हैं। विंध्य क्षेत्र की पुरानी जलोढ़ मिट्टियों में नीक्षालन के फलस्वरूप क्ले पदार्थ, सैस्कवी आक्साइड, क्षार और क्षारीय भस्म निम्न संस्तरों में एकत्रित हो जाते हैं।

जलपाईगुढ़ी, दार्जिलिंग और पश्चिमी दीनाजपुर के कुछ भागों में पायी जाने वाली तराई क्षेत्र की मिट्टियां जलोढ़ किस्म की है। यह हिमालय पर्वत से वीस्वा महानंदा, सोषी और जल डाक नदियों द्वारा लाये गये जलोढ़ पदार्थ से निर्मित हैं। यह अधिकांशतया बलुई गठन वाली हैं और इनमें अपरिवक्व हयूमस पाया जाता है। उनकी गहराई भी कम है। अधिक वर्षा के कारण ऐसी मिट्टियां अत्यधिक अम्लीय (पीएच 4.2 से 6.2) हो जाती हैं। धान औरे जूट इस क्षेत्र की मुख्य फसलें हैं।

समुद्र के तटवर्ती क्षेत्रों–24 परगना, मिदनापुर और हाबड़ा जिले में भी जलोढ़ मिट्टियां पायी जाती हैं। यह मिट्टियां छोटे–छोटे टापुओं के रूप में पायी जाती हैं, जिनके बीच नदियों और नालों का जाल बिछा हुआ हैं। इन मिट्टियों में सोडियम, कैल्सियम, मैग्नीशियम और विभिन्न अवस्थाओं में विघटित हो रहे जीवांश पदार्थ प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इन मिट्टियों में मृदा संस्तरों का अभाव होता है जो कि इनकी अपरिपक्वता का द्योतक है। इस क्षेत्र में तटीय लवणीय मिट्टियां पायी जाती हैं। इन मिट्टियों में विनिमयशील मैग्नीशियम की मात्रा विनिमयशील सोडियम से लगभग दो गुना अधिक होती है। मैग्नीशियम के प्रभाव के कारण यह मिट्टियां सुखाने पर बहुत कठोर हो जाती हैं। अधिक जल की उपस्थिति की दशा में इन क्षेत्रों में जल निकास की समस्या उत्पन्न हो जाती है। जिप्सम के प्रयोग से इस क्षेत्र में धान की उपज में 20–25 प्रतिशत वृद्धि हो जाती है। भारत की जलोढ़ मिट्टियों की रासायनिक विशेषताओं का विवरण सारणी 2.3 में दिया गया है (दास एवं चटर्जी 1982)।

स्थिति और गुणों के आधार पर बिहार की जलोढ़ मिट्टियों को दो मुख्य भागों में विभाजित किया गया है। (1) गंगा के उत्तर की जलोढ़ मिट्टियां (2) गंगा के दक्षिण की जलोढ़ मिट्टियां।

गंगा के उत्तर में स्थित जलोढ़ मिट्टियां हिमालय के निकलने वाली कोसी, महानंदा, अधवारा, गंडक, बूड़ी–गंडक, सरजू और गंगा द्वारा लाये गये जलोढ़

सारणी-2.3: भारत की जलोढ़ मिट्टियों की रासायनिक विशेषतायें

विशेषताएं	गंगा की जलोढ़ मिट्टियाँ	चुनही जलोढ़ मिट्टियां	मुहाने की मिट्टियां	नई जलोढ़ मिट्टियां (खादर)	पुरानी जलोढ़ मिट्टियां	अम्लीय जलोढ़ मिट्टियां	तटवर्ती जलोढ़ मिट्टियां
1	2	3	4	5	6	7	8
pH	7.4	8.7	7.5	7.2	8.0	6.3	5.2
CEC	10.1	7.9	23.2	10.1	10.1	38.0	3.19
कार्बनिक कार्बन	0.97	0.51	0.32	0.27	0.45	0.81	0.20
कणिक संगठन							
मोटी बालू	3.4	52.2	29.8	20.5	2.6	14.19	29.0
महीन बालू	56.7	-	-	25.6	68.5	19.1	50.9
सिल्ट	22.4	30.4	44.5	22.1	12.1	34.4	16.2
क्ले	14.0	17.4	25.2	32.6	12.2	30.2	4.8
N	0.03	0.04	0.03	0.05	0.03	0.03	0.03
P2O5	0.24	0.21	0.15	0.12	0.3	0.90	0.031
K2O	2.59	9.0	1.8	0.82	2.16	0.05	0.03

1	2	3	4	5	6	7	8
विनिमेय धनायन (मि.इ.प्रति 100 ग्राम)							
Ca	5.7	4.9	7.7	7.5	5.9	18.5	1.1
Mg	1.6	2.0	10.3	1.8	2.6	12.5	0.35
Na	2.0	1.2	3.1	0.61	1.2	0.9	0.3
K	0.4	0.7	0.7	0.38	0.2	4.3	0.25
SiO	54.9	48.5	47.8	49.2	52.5	85.5	
R2O3	39.2	40.2	30.3	36.5	41.7	31.9	8.62
Fe2O3	14.1	12.0	7.1	12.3	16.5	2.9	2.26
Al2O3	24.0	29.2	23.2	24.4	24.5	29.4	6.4
CaO	1.1	1.06	-	0.45	0.9	0.93	0.065
MgO	3.9	3.5	5.6	2.45	4.7	2.34	0.042
मोलर अनुपात							
SiO2èAl2O3	3.9	2.9	3.49	3.42	3.7	3.08	2.8
SSiO2èR2O3	2.8	2.3	2.93	2.6	2.6	2.89	2.4
SiO2èFe2O3	14.2	11.6	17.5	13.1	15.2	17.5	9.32
सूक्ष्म पोषक तत्व (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)							
B	16	13.5	18	16	8	19	22
Cu	19	23	17	15	15.5	35	22
Mo	5	5	4.5	3.5	2.0	4	3.5
Zn	542	560	45	62	35	31	30
Mn	1480	335	750	965	780	360	200

पदार्थ पर विकसित हुई है। कोसी, महानंदा और अधवारा नदियों द्वारा लाये गये जलोढ़ पदार्थ में चूने की प्रचुरता होती है। इसका सीधा संबंध हिमालय में इन नदियों के जल समेट क्षेत्र में पाये जाने वाली खनिजों से हैं। इन मिट्टियों का गठन प्रायः बलुई किस्म का है। उत्तर–पूर्व में स्थित पूर्निया जिले की जलोढ़ मिट्टियां अम्लीय हैं। साधारणतया उनका पीएच मान 5.6 से 6.5 तक होता है किन्तु कुछ स्थानों में 5.5 से भी कम पीएच मान वाली मिट्टियां पायी जाती हैं।

गंगा के दक्षिण में स्थित जलोढ़ मिट्टियां गंगा और दक्षिण के पठारी भाग के मध्य में पायी जाती है। ये मिट्टियां हल्के भूरे से लेकर काले रंग की हैं। इनका गठन दोमट मटियार किस्म का है। इन मिट्टियों के अन्तर्गत क्षेत्र का आकार प्याले के समान है, अतः वर्षा ऋतु में पानी भर जाने के कारण झील का रूप धारण कर लेता है। इन मिट्टियों का पीएच मान लगभग उदासीन है किन्तु दक्षिणी भागों में कुछ अम्लीय मिट्टियाँ भी पायी जाती हैं।

उत्तर प्रदेश की जलोढ़ मिट्टियों को निम्नलिखित चार भागों में बांटा गया है।

(1) पश्चिमी और उत्तर पश्चिमी क्षेत्र की हल्के गठन वाली जलोढ़ मिट्टियां।

(2) पूर्वी क्षेत्र की भारी गठन वाली जलोढ़ मिट्टियां।

(3) मध्यवर्ती क्षेत्र की मध्यम गठन वाली जलोढ़ मिट्टियां।

(4) चूना युक्त जनक पदार्थ पर विकसित उत्तरी पूर्वी क्षेत्र की जलोढ़ मिट्टियां।

उपरोक्त वर्गीकरण से यह सर्वथा स्पष्ट है कि इस प्रदेश की मिट्टियों का गठन उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूर्व की ओर क्रमश भारी होता जाता है। आमतौर पर ये मिट्टियां उदासीन एवं हल्की क्षारीय प्रतिक्रिया वाली हैं।

दिल्ली क्षेत्र की जलोढ़ मिट्टियां बलुई दोमट से लेकर दोमट गठन वाली हैं। इनमें रेत की मात्रा 60 प्रतिशत से अधिक और क्ले की मात्रा 10 प्रतिशत से कम होती है। इनका पीएच मान लगभग 8.0 है। यत–तत्र रेह युक्त भूखंड भी पाये जाते हैं।

जम्मू और कश्मीर की जलोढ़ मिट्टियां चिनाव, रावी, तवी, और उनकी सहायक नदियों द्वारा लाये गये जलोढ़ पदार्थ पर विकसित हुई हैं। ये महीन बलुई दोमट से लेकर दोमट मोटी बलुई जैसे हल्के गठन वाली मिट्टियां हैं। यह उथली या मध्यम गहराई वाली मिट्टियां हैं। इनका पीएच मान 6.5 से 8.7 तक होता है किन्तु कहीं–कहीं न्यूनतम 6.0 और अधिकतम 9.1 पीएच पाया गया है। मध्यम पारगम्यता वाली ये मिट्टियां प्रमुख रूप से कछुआ और जम्मू जिलों में पायी जाती हैं। इस वर्ग की मिट्टियों में कहीं–कहीं रेह और ऊसर के भूखंड भी पाये जाते हैं।

चुनही जलोढ़ मिट्टियां

ऐसी मिट्टियां उत्तर प्रदेश के उत्तरी–पूर्वी हिस्से के देवरिया और गोरखपुर जिलों में पायी जाती हैं। यह क्षेत्र पूर्व में बिहार के पश्चिमी भाग तक फैला हुआ है। इन चुनही मिट्टियों का निर्माण गंडक नदी के जलोढ़ पदार्थ से हुआ है। गंड़क हिमालय से निकलकर उत्तर पश्चिम से दक्षिण–पूर्व की ओर बहती हुई गंगा नदी में मिल जाती है। इन मिट्टियों की प्रमुख विशेषता कैल्शियम कार्बोनेट की अधिक मात्रा का पाया जाना है जो कि 10 से 40 प्रतिशत तक पाया जाता है। उल्लेखनीय है कि कैल्शियम कार्बोनेट की यह मात्रा पूरी मृदा परिच्छेदिका में एक समान वितरित रहती हैं। इन मिट्टियों का रंग हल्का पीला–भूरा एवं गठन बलुई दोमट या दोमट किस्म का होता है। ये मिट्टियां साधारणतया क्षारीय होती हैं। इनमें उपलब्ध फास्फोरस और पोटाश का अभाव पाया जाता है। उत्तर प्रदेश में इन मिट्टियों का स्थानी नाम "भाट" है। कैल्शियम नीक्षालन के आधार पर इन मिट्टियों को निम्नांकित तीन वर्गों में बांटा गया है।

टाइप–1: मृदा चूने के भंडार वाली कैल्शियम युक्त मिट्टियां।

टाइप–2: मृदा परिच्छेदिका के निम्न संस्तर में एकत्रित कैल्शियम कार्बोनेट की पर्त वाली कैल्शियम नीक्षालित मिट्टियां।

टाइप–3: कार्बोनेट रहित निम्न कोटि की कैल्शियम युक्त मिट्टियां।

इन मिट्टियों में सिल्ट और क्ले की प्रचुरता के साथ ही 50 प्रतिशत तक चूना पाया जाता है। यह इस क्षेत्र की उपजाऊ मिट्टी मानी जाती हैं। इनमें प्रमुख रूप से गन्ने की खेती होती है।

मुजफ्फरपुर, दरभंगा और चम्पारन जिलों की जलोढ़ मिट्टियां उदासीन, पीएच मान 6.6–7.3 तथा हल्की क्षारीय (पीएच मान 7.4 से 8.3) और चुनही हैं। प्रदेश के पश्चिम में गंडक ओर गंगा के बीच सारन और चम्पारन जिलों में पायी जाने वाली जलोढ़ अत्यधिक चुनही है और इसका पीएच मान 8.4 से 8.7 तक हैं। इनमें चूने की मात्रा साधारणतया 10 प्रतिशत से अधिक होती हैं। कुछ स्थानों में चूने की मात्रा 60 प्रतिशत तक पायी जाती है। उत्तर विहार की यह अत्यन्त उपजाऊ मिट्टियां हैं। अधिकांश क्षेत्रों में धान, गेहूं, मक्का और जौ की खेती की जाती है। गन्ना, मिर्च और तम्बाकू इस क्षेत्र की अन्य महत्वपूर्ण फसलें हैं।

(छ) चुनही सीरोजेम मिट्टियां

सिंधु नदी के जलोढ़ पदार्थ पर विकसित होने के कारण इन मिट्टियां का वर्गीकरण भी जलोढ़ मिट्टियों के अन्तर्गत किया गया है। ये मिट्टियां भारत के उत्तरी पश्चिमी भाग खासकर पंजाब और हरियाणा में पायी जाती है। इन मिट्टियों के निर्माण पर आर्द्र एवं शुष्क जलवायु का प्रभाव पड़ा है। जलवायु की विभिन्नता के अनुसार इस क्षेत्र को 6 जोन में विभाजित किया गया है। उप आर्द्र जलवायु वाले क्षेत्रों में पायी जाने वाली मिट्टियों की परिच्छेदिकाओं के अध्ययन के आधार पर इन्हें चुनही सीराजेम मिट्टियों के अन्तर्गत रखा गया है। ये मिट्टियां हल्के रंग वाली गहरी एवं मटियार गठन वाली हैं। मध्य के संस्तरों में क्ले के नीक्षालन का प्रमाण मिलता है। साथ ही कैल्शियम कार्बोनेट भी निचले हिस्सों में पाया जाता है। मिट्टी का पीएच मान उदासीन या क्षारीय होता है। इनमें 2:1 प्रकार के क्ले खनिजों की प्रधानता होती है। इन मिट्टियों में फास्फोरस की कमी पायी जाती है।

धूसर भूरी मिट्टियां

ये मिट्टिया गुजरात और राजस्थान के अर्द्धशुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में विकसित हुई हैं। बलुई दोमट किस्म के हल्के गठन वाली इन मिट्टियां में मोटे रेत की प्रधानता होती है। अधोभूमि अपेक्षाकृत भारी गठन की होती है। मिट्टी के विनिमय शील सम्मिश्र में कैल्शियम की प्रधानता पायी जाती है और इनका पीएच मान उदासीन या क्षारीय होता है। क्ले खनिज में मोन्टमोरिलोनाइट की प्रधानता होती है। इन मिट्टियां में आम तौर पर नाइट्रोजन और फास्फोरस का अभाव पाया जाता है किन्तु पोटाश की मात्रा पर्याप्त होती

है। इन मिट्टियों को गठन के अनुसार बलुई और बलुई दोमट से लेकर मटियार दोमट गठन के दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया है। इसके अलावा इनके अन्तर्गत समुद्र तट के क्षेत्र में पायी जाने वाली जलोढ़ मिट्टियां भी हैं।

सिंधु की जलोढ़ मिट्टियां अहमदाबाद, कैरा और मेहसाना जिले के उत्तर पूर्वी भाग में पायी जाती है। इस क्षेत्र की पुरानी जलोढ़ मिट्टियां का स्थानीय नाम 'गोरडू' अथवा 'गोरट' है। नवीन जलोढ़ मिट्टियों को "माटा" कहते हैं। "गोरडू" अथवा 'गोरट' मिट्टी इस क्षेत्र की सबसे महत्वपूर्ण और उपजाऊ मिट्टी मानी जाती है। यह पीले मटमैले रंग की, हल्के क्षारीय अभिक्रिया वाली चूना रहित, बलुई दोमट और दानेदार बनावट वाली मिट्टी है। इसमें घुनलशील लवण की मात्रा बहुत कम होती है। इनकी गहराई 5 फुट से अधिक होती है और इनमें विनिमयशील कैल्शियम की प्रचुरता होती है। इन मिट्टियों में जीवांश पदार्थ एवं नाइट्रोजन की कमी पायी जाती है किन्तु फास्फोरस व पोटाश पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं।

मरूस्थली मिट्टियां

भारतवर्ष के उत्तर पश्चिम भाग के शुष्क क्षेत्रों अर्थात् राजस्थान और हरियाणा में इस तरह की मिट्टियां पायी जाती हैं। इन राज्यों में यह क्षेत्र सिन्धु नदी के पश्चिमी और अरावली पर्वत के पूर्वी भाग के बीचो–बीच स्थित है। इस समूह के अन्तर्गत पायी जाने वाली मिट्टिया मुख्यतया दो प्रकार की हैं। (क) रेगोसॉल (2) लीथेसॉल।

रेगोसॉल

रेगोसॉल मिट्टियों का निर्माण तटवर्ती क्षेत्रों और सिन्धु की घाटी से हवा द्वारा लाये गये रेत या अन्य जलोढ़ सामग्री के जमाव के कारण होता है। इन क्षेत्रों में वर्षा बहुत कम होती है। भारत में मरुस्थली मिट्टियों का क्षेत्रफल लगभग 154000 वर्ग किलोमीटर है, जिसमें 105000 वर्ग किलोमीटर रेगोसॉल के अंतर्गत है। इस प्रकार के मरूस्थली रेत में क्वार्टज की प्रधानता होती है किन्तु चुनही छर्रियों के साथ ही फेल्सपार और हार्नब्लेण्डी भी अच्छे अनुपात में पाया जाता है। इन मिट्टियों की गहराई 50 से.मी. से अधिक होती है। भूमि का "ए" संस्तर अल्प विकसित या अविकसित रहता है। उल्लेखनीय है कि "बी" संस्तर का विकास भी "ए" संस्तर की तरह ही होता है। ये मिट्टियां पीले भूरे से लेकर

गहरे पीले भूरे रंग की होती है। इनमें जीवांश पदार्थ की प्रायः कमी पायी जाती है। कभी–कभी इन मिट्टियों में अपक्षयशील खनिज भी पाया जाता है।

कुछ स्थानों की अवभूमि में लवणों की अधिकता पायी जाती है। बीकानेर के आस–पास अवभूमि में पर्याप्त मात्रा में जिप्सम पाया जाता है। मिट्टी का पीएच मान भी अधिक होता है। क्षारीय मिट्टियों में चूने तथा लवण की उपस्थिति देखी गयी है। कुछ हिस्सों में लवणीय एवं क्षारीय भूमि पायी जाती है। बातोड़ रेत के खनिज संगठन संबंधी अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि इनका संगठन स्थानीय चट्टानों के संगठन से मेल नहीं खाता। अतः कहा जाता है कि इनकी उत्पत्ति खासकर समुद्री पदार्थों से हुई है। बातौढ़ रेत में नाइट्रेट और फास्फोरस की मात्रा अधिक पायी जाती है। फिर भी कुल नाइट्रोजन की मात्रा कम होती है। कैल्शियम आक्साइड की प्रतिशत मात्रा 1.0 से 1.5 के बीच होती हैं।

जोधपुर और जयपुर क्षेत्र की पुरानी रेगोसॉल मिट्टियों में कैल्शियम की मात्रा निचली सतहों में बढ़ती जाती है। अतः अवभूमि में कैल्शियम कार्बोनेट के जमा हो जाने से कंकड़ की तह बन जाती है। ऊपरी सतह की अपेक्षा निचली सतह में कैल्शियम की मात्रा लगभग दस गुना अधिक होती है।

लीथोसॉल

दक्षिणी–पश्चिमी राजस्थान में पोखरन के पास से लेकर जयसलमेर तक एक लम्बी पट्टी के रूप में फैली हुई अत्यन्त उथली किस्म की मरूस्थली मिट्टियां पायी जाती हैं। राजस्थान का लगभग 40000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल इस प्रकार की मिट्टियों के अन्तर्गत है।

इनका निर्माण लाल सेण्डस्टोन की आधारशिला के सतह पर खुल जाने के फलस्वरूप होता है। इसके ऊपर बजरी अथवा रेत की एक उथली तह पायी जाती है। कुछ क्षेत्रों में इन मिट्टियों का रंग जंगदार भूरा और गहरा लाल–भूरा होता है। इस प्रकार की मिट्टियों की जलधारण क्षमता शून्य प्राय होती है, जिससे पौधों का उगना सर्वथा असम्भव होता है। जिन क्षेत्रों में मिट्टियों की गहराई 10–15 से.मी. तक होती है। वहां थोड़ी बहुत घास तथा अन्य मरुस्थली वनस्पति उगती है। समय–समय पर हवा द्वारा रेत की पतली सतह के इधर–उधर उड़ जाने के कारण मृदा परिच्छेदिका का विकास हो पाता।

तराई की मिट्टियां

हिमालय पर्वत के निचले हिस्से में स्थित पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिमी बंगाल में इस तरह की मिट्टियां एक लम्बी पट्टी के रूप में पायी जाती हैं। सिवालिक तथा हिमालय पर्वत श्रेणी की चट्टानों के टूटने फूटने या भूक्षरण से निर्मित पदार्थ नदियों के जल प्रवाह द्वारा निचले हिस्सों में पर्वत के किनारे–किनारे जमा होते रहते हैं जिसके फलस्वरूप ऐसी मिट्टियों का निर्माण होता है। तराई क्षेत्र में स्थित होने के अनुसार ही इनका नामकरण भी हुआ है।

ऊपरी सतह की मिट्टी साधारणतया बलुई दोमट या सिल्टी दोमट गठन वाली होती है। उल्लेखनीय है कि इन क्षेत्रों में बारीक मृदा–कण नीक्षालन द्वारा नीचे स्थित "बी" होराइजन में चले जाते हैं। भूमि की निचली सतह में जल प्रवाह द्वारा लाये गये गोल पत्थर और बजरी पायी जाती है, जिसके फलस्वरूप इन मिट्टियों की पारगम्यता बढ़ जाती है। ये पत्थर कभी–कभी ऊपरी सतह पर भी दिखायी पड़ते हैं। निचली सतह में अनवरत जल गम्यता की स्थिति बनी रहती है क्योंकि ऊंचे हिस्सों से बराबर पानी जाता रहता है। इन मिट्टियों की उर्वरा शक्ति अधिक होती है। जल निकास का उत्तम प्रबंध करने पर फसलों से अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है।

मिट्टी में नमी की विभिन्नता के अनुसार तराई क्षेत्र की मिट्टियों को दो भागों में बांटा जा सकता है। पहले प्रकार की मिट्टियां अपेक्षाकृत शुष्क होती हैं। इन्हें भॉबर कहते हैं। इसके विपरीत दूसरे प्रकार की मिट्टियों में नमी अपेक्षाकृत अधिक होती हैं। इन्हें "तराई मिट्टियों" के नाम से पुकारते हैं।

पहाड़ी मिट्टियां

भूरी पहाड़ी मिट्टियां

हिमालय और सिवालिक पर्वतीय क्षेत्र की इन मिट्टियों का निर्माण अवसादी तथा कायान्तरित चट्टानों से हुआ है। इनमें सेण्डस्टोन, धूसर माइकायुक्त सेण्डस्टोन और शेल्स प्रमुख हैं। यहां अधिकांश क्षेत्र में पर्णपाती वन पाये जाते हैं। जिसमें शंकुधारी एवं उष्णकटिबन्धीय सदाबहार वन सम्मिलित हैं। शंकुधारी वनस्पति काटने के बाद इन मिट्टियों का निर्माण होता है।

ऊपरी सतह की मिट्टी गहरे भूरे रंग की तथा दोमट से लेकर सिल्टी क्ले गठन की होती है। इन मिट्टियों में जीवांश पदार्थ की प्रचुरता पायी जाती है। इन मिट्टियों का –बी' होराइजन काफी गहरा (50–80 से.मी.) होता है तथा गठन सिल्टी दोमट से लेकर मटियार दोमट तक होता है। इन मिट्टियों में चूने का अभाव है, फलतः ये उदासीन या थोड़ा अम्लीय होती हैं। अव–भूमि (1 से 2 मीटर की गहराई तक) का पीएच मान 6 से 6.5 के बीच होता है और मिट्टी धूसर और गहरे भूरे रंग की मटियार दोमट गठन वाली होती है।

उपर्वतीय मिट्टियां

हिमालय के उप पर्वतीय क्षेत्र में जहां शंकुधारी वन पाये जाते हैं, वहां इस प्रकार की मिट्टी की उत्पत्ति होती है। उत्तर प्रदेश में इन मिट्टियों का निर्माण लाइम स्टोन, डोलोमाइट, स्लेट, क्वार्टजाइट, सिस्ट, सेण्डस्टोन आदि चट्टानों से हुआ है। इन क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा 170 से 225 से.मी. तक होती है। भूरे रंग की पोडसाल मिट्टी में जीवांश पदार्थ की प्रचुरता एवं स्वतंत्र कैल्शियम की कमी रहती है। मिट्टी की 10–15 से.मी. मोटी ऊपरी सतह आमतौर पर गहरे भूरे या काले रंग की और बलुई दोमट गठन वाली होती है। भू–सतह पर अविघटित जीवांश पदार्थ पाया जाता है। इसके बाद की 15 से.मी. मोटी तह अपेक्षाकृत हल्के रंग की होती है जो कि अवक्षालन की परिचायक होती है। इसके बाद एक मीटर की गहराई तक की मिट्टी का रंग भूरा या लाल भूरा होता है। इनका गठन ठोस बलुई मटियार किस्म का होता है। निचली सतह में अपक्षयित सेण्डस्टोन और कठोर शेल जैसे मूल पदार्थ की बजरी पाई जाती है।

इस क्षेत्र की सभी मिट्टियों का पीएच मान अम्लीय होता है और इनमें कैल्शियम आक्साइड स्वतंत्र रूप में नहीं पाया जाता। ऊपरी सतह की मिट्टी में सिलिका युक्त पदार्थ की प्रधानता होती है। आमतौर पर 60 से.मी. की गहराई पर सैस्क्वी आक्साइट की तह पाई जाती है जो कि समहोन (Eluviation) द्वारा ऊपरी सतह से निचली सतह में आकर जमा हो जाती है।

पर्वतीय शाद्धल मिट्टियां

हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र के ऊंचे हिस्सों में इस प्रकार की उथली मिट्टियां पायी जाती हैं जो कि भू–रक्षण रोकने में काफी हद तक सहायक होती हैं।

कम तापक्रम एवं घासयुक्त वनस्पति वाले क्षेत्र की मिट्टियों में जीवांश पदार्थ की मात्रा अधिक पायी जाती है। आंशिक रूप से अपेक्षयित बजरी, सेण्डस्टोन और शेल्स के टुकड़ों की विभिन्न मात्रा में उपस्थिति के कारण इन मिट्टियों के गठन एवं बनावट में काफी अन्तर पाया जाता है।

लवणीय और क्षारीय मिट्टियां

भारत का 70 लाख हेक्टर क्षेत्रफल इस प्रकार की मिट्टियां के अन्तर्गत है। इन्हें अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग नामों से जाना जाता है जेसे उत्तर प्रदेश में रेह, रेहाला और ऊसर, पंजाब और हरियाणा में धर, कल्लर, राकर, धारा और वारी, गुजरात में सार और लीमा, दकन में चौपान या कार्ल, आन्ध्र प्रदेश और तामिलनाडु में चांदू एवं डप्पू तथा केरल में कांरी आदि नामों से पुकारा जाता है। ये मिट्टियां छोटे–छोटे टुकड़ों अथवा बड़े भूखण्डों के रूप में पायी जाती है। जलवायु की विभिन्नता और मिट्टी के गुणों के अनुसार भारतवर्ष की लवणीय और क्षारीय मिट्टियों को निम्नांकित चार भागों में विभाजित किया गया है।

(क) सिंधु–गंगा के मैदान के शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों की मिट्टियां।

(ख) राजस्थान और गुजरात के शुष्क क्षेत्रों की मिट्टियां।

(ग) काली कपास की मिट्टियों वाले क्षेत्रों के शुष्क एवं अर्द्धशुष्क भागों की मिट्टियां और

(घ) तटवर्ती लवणीय मिट्टियां।

इन मिट्टियां में क्षारीय भस्मों के घुलनशील लवणों की मात्रा अधिक होती है।

(क) सिंधु गंगा के मैदान के शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों की मिट्टियां

इस क्षेत्र के अन्तर्गत पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, बिहार तथा राजस्थान राज्य आते हैं। इन राज्यों में ऊसर भूमि का क्षेत्रफल 28 लाख हैक्टर है। इन क्षेत्रों में लवणीय तथा क्षारीय दोनों ही प्रकार की मिट्टियां पायी जाती हैं किन्तु कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जहां केवल लवणीय मिट्टियां ही पायी जाती हैं। घुलनशील लवणों में कार्बोनेट और बाई–कार्बोनेट की प्रचुरता के

कारण क्षारीय मिट्टियों का सुधार काफी कठिन हो जाता है। समान ढाल एवं अवरोधी जल निकास के कारण इन क्षेत्रों में ऊसर की विशेष समस्या है। भारतवर्ष की कुल ऊसर भूमि का आधे क्षेत्र से कुछ ही कम भाग इसी क्षेत्र में पाया जाता है। इन क्षेत्रों में वर्षा ऋतु में भूमि गत जल का स्तर काफी ऊपर आ जाता है और इसके बाद काफी नीचे चला जाता है। साधारणतया इन क्षेत्रों का पानी अच्छी किस्म का होता है। इन मिट्टियों में इलाइट खनिज की प्रधानता होती है। ये मिट्टियाँ आम तौर पर चुनही हैं किन्तु इनमें जिप्सम का अभाव होता है।

(ख) राजस्थान और गुजरात के शुष्क क्षेत्रों की मिट्टियां

वर्षा के साथ ही सिंचाई जल के अभाव के कारण इन क्षेत्रों की मिट्टियों के सुधार में कठिनाई होती है। लवणयुक्त भूमि गत जल के कारण सुधार की समस्या और भी दुष्कर हो जाती है। मिट्टियों में क्लोराइड और सल्फेट जैसे ऋणायनों की प्रधानता रहती है। हालांकि, कुछ हिस्सों में कार्बोनेट भी पाये जाते हैं। साथ ही कुछ भागों में जिप्सम भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

(ग) काली कपास की मिट्टियों वाले क्षेत्रों के शुष्क एवं अर्द्धशुष्क भागों की मिट्टियां

ये मिट्टियां मुख्यतया मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक और तमिलनाडु में पाई जाती है।

इन मिट्टियों में मान्टमोरिलोनाइट क्ले खनिज की प्रमुखता रहती है। अव–भूमि में कंकड़ भी पाया जाता है। ये मिट्टियां नम दशा में फूल जाती हैं और सूखने पर फट जाती हैं। नम मिट्टियों में जल प्रवेश बहुत ही धीमी गति से हो पाता है। अतः इन मिट्टियों में उपस्थित लवणों के नीक्षालन में कठिनाई होती है। अतः लवणों के नीक्षालन हेतु सर्वप्रथम सुधारकों का प्रयोग करके मिट्टी की भौतिक दशा में सुधार करना अति आवश्यक होता है। कुछ क्षेत्रों में जिप्सम की भी उपस्थिति पायी जाती है।

(घ) तटवर्ती लवणीय मिट्टियां

इस तरह की लवणीय मिट्टियां गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल में नदियों के किनारे सागर

संगम और समुद्री खाड़ी में पाई जाती है। सुन्दरवन (पश्चिमी बंगाल), कृष्णा और गोदावरी नदियों के किनारे केरल की काली मिट्टी तथा महाराष्ट्र और गुजरात की खार भूमि वाले क्षेत्र विशेष रूप से प्रभावित हैं। मिट्टियों में क्लोराइट और सल्फेट मुख्य ऋणायन तथा सोडियम मुख्य धनायन हैं। कुछ क्षेत्रों में मैग्नीशियम की भी उपस्थिति देखी गयी है। आमतौर पर जिप्सम की अनुपस्थिति पायी जाती है।

पीट एवं अम्लयुक्त लवणीय मिट्टियां

केरल राज्य में इस प्रकार की मिट्टियां पायी जाती हैं जो कि खारे पानी में पाइराइट की प्रचुर मात्रा में उपस्थिति के कारण बन जाती हैं। ये मिट्टियां पहाड़ी क्षेत्रों में एवं केरल राज्य में बहने वाले स्रोतों और समुद्री जल के संगम स्थान के आस–पास पायी जाती है। इन मिट्टियां में प्रचुर मात्रा में उपस्थित गंधक युक्त यौगिकों के आक्सीकरण के फलस्वरूप गंधक के अम्ल का निर्माण होता है जिसके कारण मिट्टी का पीएच मान काफी कम अर्थात 3-4 के बीच पहुंच जाता है। कभी–कभी तो मिट्टी का पीएच मान इससे भी कम हो जाता है। इन मिट्टियों में उपस्थिति क्ले पर गंधक के अम्ल की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अल्युमिनियम और लोहा स्वतंत्र रूप में काफी अधिक मात्रा में पाया जाता है। मिट्टी की पीट युक्त सतह में जीवांश पदार्थ की प्रचुरता रहती है। इन मिट्टियों का जल निकास अच्छा नहीं होता। बिहार के उत्तर भाग में भी पीट मिट्टियों का कुछ क्षेत्रफल पाया जाता है। भारत की मरूस्थली, पीट–कारी, भूरी पर्वतीय और लवणीय–क्षारीय मिट्टियों की विशेषताओं का विवरण सारणी 2–4 में दिया गया है।

सारणी-2.4: भारत की मरुस्थली, पीट–कारी, भूरी पर्वतीय और लवणीय–क्षारीय मिट्टियों की विशेषतायें

विशेषतायें	मरुस्थलीय मिट्टियां	पीट–कारी मिट्टियां	भूरी पर्वतीय मिट्टियां	लवणीय क्षारीय मिट्टियां
pH	8.0	5.9	4.7	10.2
CEC	2.5	13.8	28.0	16.4
कार्बनिक कार्बन	0.69	2.35	0.75	0.52

कणिक संगठन				
मोटी बालू	38.1	16.8	23.1	52.5
महीन बालू	36.9	24.35	31.27	-
सिल्ट	9.8	22.9	27.5	27.6
क्ले	10.6	33.8	15.5	20.9
N	0.02	0.23	0.08	0.04
P2O5	0.04	0.11	0.08	0.08
K2O	0.23	0.14	3.12	3.43
विनिमेय धनायन (मि.इ. प्रति 100 ग्राम)				
Ca	0.9	-	18.5	1.7
Mg	0.40	-	12.5	0.28
Na	0.50	-	0.9	12.5
K	0.53	-	4.3	1.2
SIO2	93.3	64.5	50.8	50.2
SiO2 R2O3	5.4	18.7	29.1	47.17
R2O3 Fe2O3	1.2	8.9	7.0	22.13
Al2O3	4.2	10.1	22.19	25.04
CaO	0.70	0.35	-	2.63
MgO	0.49	0.20	2.03	-
मोलर अनुपात				
SiO2/Al2O3	2.57	3.75	3.82	3.42
SiO2/R2O3	2.12	2.75	7.64	2.19
SiO2/Fe2O3	12.21	19.5	15.7	18.8
सूक्ष्म पोषक तत्व (पीपीएम)				
B	21.0	-	10	12
Cu	-	50	24	25
Mo	-	-	0.9	0.4
Zn	-	-	70	140
Mn	350	-	825	775

3261 HRD/2000—6

संदर्भ साहित्य

Govindarajan, S.V. (1965). World Soil Resources, Report No. 26, F.A.O., UNESCO.

Datta Biswas, N.R. (1968). Classification of Indian Soils and their mapping, International Geogr. Congress India, Vol. I : 374-376.

Leather, J.W. (1898). On the composition of Indian Soils, Agricultural Ledger 5 (2).

Mathur, L.M. (1954). A basic land resource map of India, Bull, Nat.Inst. Sci., India, 3 : 111-114.

Viswanath, B. and Ukil, A.C. (1944). Comparative studies on Indian soils : Regional and Environmental factors associated with Indian soils, Indian J. Agric. Sci. 14 : 333-44.

Voelcker, J.A. (1893). Improvement of Indian Agriculture.

Wadia, D.N. Krishna, M.S. and Mukherjee P.N. (1955). Introductory note on the geological formation of the soils of India, Rec. Geol, Survey of India, 68 : 363-91.

अध्याय-3

मृदा उर्वरता मूल्यांकन

पौधों के उचित पोषण हेतु उर्वरकों एवं खादों का समुचित प्रयोग आवश्यक होता है। उर्वरकों एवं खादों की सही मात्रा के निर्धारण हेतु मिट्टी में पौधों को सुलभ होने की दशा में मौजूद पोषक तत्वों की मात्रा की सही जानकारी होना नितान्त आवश्यक होता है। किस फसल में कौन सा उर्वरक कितनी मात्रा में प्रयोग किया जाय, यह फसल की जाति विशेष की पोषक तत्वों की आवश्यकता तथा उसे खेत की मिट्टी में पौधों को सुलभ होने की दशा में मौजूद पोषक तत्वों की मात्रा पर निर्भर करता है। जब मिट्टी में किसी तत्व की कमी हो जाती है, ऐसी दशा में उस तत्व की पूर्ति किए बिना पौधों की वृद्धि सामान्य नहीं हो सकती। अतः मिट्टी में किस तत्व की कमी है, इसकी जानकारी समय--समय पर करते रहना चाहिए। मिट्टी में तत्व विशेष की कमी की जानकारी हो जाने के बाद उर्वरकों के प्रयोग द्वारा इस कमी को आसानी से पूरा किया जा सकता है। मिट्टी की उर्वरता की जानकारी या दूसरे शब्दों में मिट्टी की पौधों के लिए सुलभ रूप में पोषक तत्वों को प्रदान करने की क्षमता की जानकारी निम्नांकित विधियों द्वारा की जा सकती है:

(क) पौधों में पोषक तत्वों के अभाव के लक्षणों के आधार पर उर्वरता का निर्धारण।

(ख) पौधों के रासायनिक विश्लेषण द्वारा उर्वरता की जानकारी।

(ग) जैविक–परीक्षण द्वारा उर्वरता की जांच।

(घ) मिट्टी की जांच द्वारा उर्वरता–मूल्यांकन।

(च) प्रक्षेत्र–प्रयोग द्वारा उर्वरता की जानकारी।

(क) पौधों मे पोषक तत्वों के अभाव के लक्षणों के आधार पर उर्वरता का निर्धारण

मृदा में किसी तत्व की कमी हो जाने पर उस तत्व के अभाव की पूर्ति किये बिना निश्चित उपज प्राप्त करना सर्वथा असम्भव हो जाता है। मृदा में

तत्व विशेष की ठीक से पूर्ति न होने पाने के कारण पौधे अपना जीवन–चक्र तक पूरा नहीं कर पाते। मृदा में पोषक तत्वों की कमी तभी होगी जब या तो लगातार फसल लेने के फलस्वरूप भूमि में पोषक तत्वों की उपलब्ध मात्रा में कमी हो जाए अथवा किसी तत्व विशेष की अत्यधिक मात्रा का दूसरे तत्व (अभाव सूचक) की उपलब्धता पर कुप्रभाव पड़े। ऐसी दशा में पौधों को पोषक तत्वों की आवश्यक मात्रा नहीं मिल पाती। परिणाम स्वरूप पौधों में तत्व विशेष की कमी के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। विभिन्न फसलों में विभिन्न पोषक तत्वों के विशिष्ट प्रकार के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। इन लक्षणों की सही पहचान करके उनकी कमी को आसानी से दूर किया जा सकता है।

(ख) पौधों के रासायनिक विश्लेषण द्वारा उर्वरता की जानकारी

पौधों के रासायनिक विश्लेषण से हमें निम्नांकित जानकारी होती है:

1. पौधों में तत्व विशेष की कमी की जानकारी एवं पुष्टि।
2. फसल में पोषक तत्वों की प्रच्छन्न–भूख का अनुमान।
3. फसल में विभिन्न पोषक तत्वों की कमी की जानकारी के आधार पर तत्व विशेष की कमी वाले क्षेत्रों का रेखांकन।
4. प्रयुक्त उर्वरकों का फसलों द्वारा किए गए उपयोग की जानकारी और
5. विभिन्न पोषक–तत्वों की पारस्परिक क्रिया या विरोध की जानकारी।

पौधों की मिट्‌टी से सुलभ होने वाले पोषक तत्वों की मात्रा की जानकारी पौधों के रासायनिक विश्लेषण द्वारा होती है। पौधों में तत्व विशेष की कमी के कारण दिखाई पड़ने वाले विशेष लक्षणों की जानकारी एवं पुष्टि हेतु पौधों का विश्लेषण आवश्यक समझा जाता है। वास्तव में हमारे देश में पौधों के विश्लेषण का कार्य ठीक उसी स्थिति में है जिस स्थिति में मिट्‌टी–परीक्षण का कार्य आज से बीस वर्ष पूर्व था। सही नमूनों को एकत्र करने में कठिनाई, कम समय में परीक्षण की सटीक विधियों का अभाव, पादप–विश्लेषण के फलस्वरूप प्राप्त आंकड़ों के आधार पर तत्व विशेष की कमी के अनुमान में कठिनाई आदि के कारण यह तकनीक अभी तक व्यवहार में न आ सकी।

मृदा उर्वरता मूल्यांकन हेतु पौधों के रासायनिक विश्लेषण के तरीकों

को विशेष प्रभावकारी एवं व्यावहारिक बनाने के लिए निम्नांकित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

सही नमूने

सही रासायनिक विलेषण के लिए यह आवश्यक होगा कि पौधों के नमूने सही ढंग से प्राप्त किए जायं। यह कार्य थोड़ा कठिन परन्तु विशेष महत्वपूर्ण होता है। जैसा कि हम जानते हैं पोषक तत्व पादप–शरीर में समान रूप से वितरित नहीं होते अतएव सम्पूर्ण पौधे का विश्लेषण करके तत्व विशेष की कमी को कुछ हद तक दूर किया जा सकता है। एक हेक्टर क्षेत्रफल से मात्र कुछ पौधे लेकर उनका रासायनिक विश्लेषण किया जाता है। ये परिणाम इस विशाल एवं विषम क्षेत्रफल का सही प्रतिनिधित्व नही कर पाते। इस दोष को दूर करने के लिए नमूने के लिए काफी अधिक संख्या में पौधे प्राप्त करना आवश्यक होता है। इन तमाम पौधों से एक छोटा प्रतिनिधि नमूना विशेष सावधानी से लेना चाहिए। सही प्रतिनिधि नमूने प्राप्त करने के लिए पूरे पौधे से केवल एक विशेष भाग का चुनाव करना चाहिए। ऐसा करने से नमूनों का आकार भी कम हो जाता है और कम समय में अधिक क्षेत्रफल से सही प्रतिनिधि नमूने भी प्राप्त किये जा सकते हैं। विशिष्ट फसल के रासायनिक विश्लेषण के लिए पौधे का कौन सा अंग चुना जाय इसका वर्णन सारणी 3.1 में दिया गया है।

सारणी-3.1: पादप ऊतक विश्लेषण के लिए नमूना लेने की विधियां

फसल	वृद्धि की अवस्था	नमूने के लिए पादप भाग	नमूने के लिए पौधों की संख्या
1. मक्का की फसल	1. प्रौढ़ अवस्था (30 से.मी. से कम) लम्बे पौधे या	सम्पूर्ण पौधा	20–30
	2 नरमंजरी निकलने के पूर्व	पूरी तरह विकसित	15–25
	3 नरमंजरी निकलने से लेकर प्ररोह निकलने और सिल्क निकलने की अवस्था तक	भुट्टे की संधि तक की या नीचे की सभी पत्तियां	15–15

2. धान और मोटे अनाज	1. प्रौढ़ अवस्था (30 से.मी. से छोटे पौधे या	सम्पूर्ण पौधा	50–100
	2. बाली आने से पूर्व की अवस्था	ऊपर की 4 पत्तियां	50–100
3. ज्वार	शीर्ष बाली निकलते समय या बाली निकलने से पूर्व की अवस्था	ऊपर से दूसरी पत्ती	15–25

धान और मोटे अनाज वाली फसलों के पादप विश्लेषण के लिए बाली आने के बाद नमूने नहीं एकत्रित किए जाने चाहिए।

4. सोयाबीन सहित सेम वर्गीय फसलें	1. प्रौढ़ अवस्था 30 से.मी. से छोटे पौधे या	सम्पूर्ण पौधा	20–30
	2. पुष्पन के पूर्व की अवस्था या पुष्पन काल के दौरान	ऊपर से दो या तीन पुरी तरह विकसित पत्तियां	20–30
5. मटर वर्गीय फसलें	पुष्पन काल के पूर्व की अवस्था या प्रारम्भिक पुष्पन काल	ऊपर से तीसरी, पूर्व–सन्धि के पास की पत्तियां	30–60
6. मूंगफली	पुष्पन काल के पूर्व की या पुष्पन काल की अवस्था	वयस्क पत्तियां मुख्य तने से और पिछली शाखा से बीज पत्र	40–50
7. तम्बाकू	पुष्पन के पूर्व की अवस्था	पौधों के सबसे ऊपर की पूरी तरह विकसित पत्तियां	8–12
8. कपास	प्रथम पुष्पन के पूर्व या पुष्पन काल के प्रारंभिक दौर में	मुख्य तने की नयी पूरी वयस्क पत्तियां	30–100

9. आलू	प्रथम पुष्पन के पूर्व की अवस्था अथवा पुष्पन काल की प्रारम्भिक अवस्था	वर्धन सिरे से तीसरी पत्ती से लेकर छठी तक	20–30
10. बंदगोभी और फूलगोभी	फूल निकलने या शीर्ष निकलने के पूर्व की अवस्था	बीच की प्रथम वयस्क पत्तियां	10–20
11. टमाटर	पुष्पन काल के पूर्व की अवस्था या प्रारम्भिक पुष्पन अवस्था	वर्धन सिरे से तीसरी या चौथी पत्ती	20–25
12. जड़ वाली फसलें (गाजर प्याज, चुकंदर आदि।	जड़ या कंद के बढने के पूव	मध्य की वयस्क पत्तियां	20–30
13. पालक या अन्य पत्तियों वाली सब्जियां	वृद्धि का मध्य काल पत्तियां	प्रारम्भिक वयस्क	35–55
14. खरबूजा और तरबूज वर्गीय फसलें।	फल लगने के पूर्व की प्रारम्भिक वृद्धि वाली अपस्थाएं।	पौधे के तुख्य तने के आधार के पास की वयस्क पत्तियां	20–30
15. सेब, खुबानी, बादाम, प्रन आडु, नाशपाती।	मध्य मौसम	पूरी तरह विकसित नई पत्तियाँ	50–75
16. नीबू, कुल के पौधे	मध्य मौसम	पौधे के न फलने वाले सिरों की ओर से परिपक्व या वयस्क पत्तियां	20–30
17. अगूर	पुष्पन काल के बाद	फलों के गुच्छों की पत्तियों के वृंत	60–100

ध्यान रहे फलियां आ जाने के बाद विश्लेषण के लिए पौधे के किसी भाग को विश्लेषण हेतु नमूने के रूप में नहीं चुना जाता है।

(ग) जैविक परीक्षण

उर्वरक एवं खादों के माध्यम से तत्व देने के बाद फसल की अनुक्रिया की जानकारी के आधार पर भी उर्वरता का आंकलन किया जाता है। मृदा–उर्वरता मूल्यांकन हेतु जैविक परीक्षणों का उपयोग इस सदी के प्रारम्भ से ही किया जा रहा है। इससे सम्बन्धित निम्नांकित परीक्षण विशेष महत्वपूर्ण हैं:

1. मित्शर्लिख की गमला–प्रयोग विधि
2. जैनी की गमला–प्रयोग विधि
3. न्युवाउर पौध परीक्षण विधि
4. स्टेंनफोर्ड एवं डेंमेन्ट की विधि
5. बोरान के लिए सूरजमुखी–गमला प्रयोग विधि
6. सेकेट एवं स्टेवार्ट की परीक्षण विधि
7. उपलब्ध पोटैशियम के लिए मेहलिक की तकनीक
8. फास्फोरस के लिए मेहलिक की कनिधां मेला प्लेक तकनीक
9. तांबा और मैग्नीशियम के लिए मुल्डर की ऐस्पर्जिलस नाइजर परीक्षण विधि
10. 'ए' मान तकनीक।

1. मित्शर्लिख की गमला-प्रयोग विधि

जर्मन वैज्ञानिक मित्शर्लिख द्वारा विकसित इस विधि का प्रयोग विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटैशियम तत्व का अलग–अलग प्रभाव फसल की उपज पर देखने हेतु किया जाता है। इस विधि द्वारा नाइट्रोजन जैसे वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारकों की क्रमशः बढ़ती

हुई मात्रा का विभिन्न मिट्टियों में उगायी गयी फसल की उपज पर प्रभाव भी देखा जाता है।

इस अध्ययन में जई की फसल 20 X 20 से.मी. के गमलों में पकने तक उगाते हैं। गमलों में जल के निकास के लिए नीचे एक छेद भी होता है। इन गमलों में मिट्टी और बालू क्रमशः 1 व 2 के अनुपात में मिलाकर भरी जाती है। इस प्रकार प्रत्येक गमले में 2.7 कि.ग्रा. (6 पौंड) मिट्टी तथा 5.4 कि.ग्रा. (12 पौंड) बालू भरी जाती है। चार उर्वरक उपचारों अर्थात् नाइट्रोजन–फास्फोरस–पोटाश, नाइट्रोजन–पोटैशियम, नाइट्रोजन–फास्फोरस और फास्फोरस–पोटैशियम का प्रभाव देखा जाता है। नाइट्रोजन–फास्फोरस–पोटाश उपचार से प्राप्त उपज को अधिकतम् उपज (100) माना जाता है और अन्य उपचार एक विशेष प्रमुख पोषक तत्व की कमी का संकेत करते हैं। उपचारों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

पूर्ण उपचार, प्राप्त उपज 100 प्रतिशत मानी जाती है।

पूर्ण उपचार–पोटैशियम, प्राप्त उपज की तुलना NPK उपचार से करते हैं।

पूर्ण उपचार–फास्फोरस, प्राप्त उपज की तुलना NPK उपचार से करते हैं।

पूर्ण उपचार–नाइट्रोजन, प्राप्त उपज की तुलना NPK उपचार से करते हैं।

प्रत्येक गमले में पोषक तत्वों की निम्नांकित मात्रा प्रयोग की जाती है:

(1) 1.0 ग्राम नाइट्रोजन अमोनियम नाइट्रेट के रूप में 20 मिली लीटर पानी में।

(2) 1.1 ग्राम फास्फोरस पेन्टा आक्साइड सुपर फास्फेट के रूप में 50 मिली लीटर पानी में।

(3) 1.5 ग्राम पोटैशियम आक्साइड पोटैशियम सल्फेट के रूप में 50 मिली लीटर पानी में।

इस विधि द्वारा मृदा उर्वरता मूल्यांकन कार्य प्रणाली को नीचे दिए गये काल्पनिक उदाहरण द्वारा आसानी से समझा जा सकता है:

उत्तर प्रदेश के वाराणसी जिले से मिट्टी (0–15 से.मी.) एकत्र करके उपरोक्त विधि द्वारा गमलों में भर कर जई की फसल पकने तक उगायी गयी। परीक्षण परिणाम सारणी 3.2 में दिये जा रहे हैं।

सारणी-3.2: मिश्चर्लिक विधि द्वारा उर्वरता की जांच

उपचार	जई की प्रतिशत उपज (द्वारा प्राप्त उपज को 100 प्रतिशत मानने पर)	तत्व विशेष की कमी का संकेत
NPK	100	–
NP	98	मिटटी में पोटैशियम की कमी है।
NK	75	मिट्टी में फास्फोरस की कमी है।
PK	60	मिट्टी में नाइट्रोजन की कमी है।

इससे पता चलता है कि वाराणसी जनपद की मिट्टी में नाइट्रोजन एवं फास्फोरस की कमी है परन्तु पोटैशियम की कमी नहीं है। किसी पोषक तत्व की बढ़ती मात्रा का प्रमाण देखने के लिए ह्रासमान प्रतिफल नियम की सहायता की जाती है।

2. जैनी की गमला-प्रयोग विधि

जेनी द्वारा विकसित इस विधि में सलाद को संकेतक पौधे के रूप में उगाया जाता है। प्रत्येक गमले में 1.81 किलोग्राम (4 पौंड) मिट्टी भरी जाती है और निम्नांकित 5 उपचारों के साथ पौध को लगभग 8 सप्ताह शीतकाल में और लगभग 6 सप्ताह गर्मी के मौसम में उगाया जाता है।

जेनी ने अनुमानित प्रतिशत मानों को तीन श्रेणियों (1) निश्चित रूप से कमी (2) सम्भावित कमी और (3) अनिश्चित कमी में विभाजित किया (सारणी 3.3)।

सारणी-3.3 जेनी द्वारा अनुमानित मान

परीक्षण किए गए पोषक तत्व	निश्चित कमी	सम्भावित कमी	अनिश्चित कमी
नाइट्रोजन	20	20–50	51–70
फास्फोरस	20	20–50	51–65
पोटैशियम	70	70–75	76–80
गंधक	66	66–76	77–83
कैल्शियम	55	55–73	74–80

(3) न्यूबाउर की पौद विधि

मिट्टी में फास्फोरस और पोटैशियम की कमी का अनुमान लगाने हेतु न्यूबाउर और श्लाइडर ने इस विधि का विकास किया। इस परीक्षण हेतु 100 ग्राम मिट्टी तथा 50 ग्राम बालू में राई या जई की 100 पौद 11 x 7 से.मी. आकार वाली कांच की तश्तरी में आदर्श दशाओं (20 से.ग्रे.) में 17 दिन तक उगायी जाती है और इसमें बिना मिट्टी के भी एक उपचार रखा जाता है। इसके बाद रासायनिक विश्लेषण द्वारा फास्फोरस और पोटैशियम की अवशोषित मात्रा की जानकारी की जाती है। इसमें बिना मिट्टी में उगाये गये पौधे द्वारा पोषक तत्वों की अवशोषित मात्रा घटा दी जाती है। घटाने के बाद प्राप्त मात्रा पौधों के लिए सुलभ अर्थात् जल विलेय मानी जाती है। इन संख्याओं को "न्यू बार नम्बर" के नाम से जाना जाता है। इसे मि.ग्रा. प्रति 100 ग्रा. शुष्क मिट्टी के रूप में रिपोर्ट किया जाता है। पोषक तत्वों की कमी की जानकारी हेतु विभिन्न फसलों में न्यू बार नम्बर की सीमायें निर्धारित की गयी हैं जिसे सारणी 3.4 में दिया गया है।

सारणी-3.4 नयूबाउर नम्बर की सीमा

पोषक तत्व	न्यूबाउर नम्बर का सीमांक (मि.ग्रा./100 ग्रा. शुष्क मिट्टी)						
	जौ	जई	राई	गेहूं	टर्निप	आलू	चुकन्दर
फास्फोरस पेन्टा आक्साइड	6	6	5	5	7	6	6
पोटैशियम पेन्टा आक्साइड	24	21	27	20	39	37	25

इस तकनीक का प्रयोग गंधक, मैंगनीज, जिंक और तांबे के लिए भी किया जा रहा है।

(4) स्टेनफोर्ड एवं डेमेन्ट की तकनीक

यह एक प्रकार से न्यूबाउर विधि का सुधरा रूप है जिसमें लगभग 340 ग्राम क्षमता वाले गोल तथा मोम लगे हुए कार्ड बोर्ड के डिब्बे पेदी हटाने के बाद प्रयोग में लाये जाते हैं। इन डिब्वों को इसी आकार के दूसरे बर्तन में जिसमें 680 ग्राम बालू भरी रहती है, रख दिया जाता है। अब इसमें 1.25 से.मी. की गहराई पर बीजों की बुआई की जाती है। पौद वाले डिब्वों को दो–तीन सप्ताह बाद एक दूसरे डिब्वे जिसमें 200 ग्राम मिट्टी या मिट्टी के साथ ही उर्वरक रखकर दोनों को जाल बनाकर एक कर दिया जाता है। पौद की जड़े पहले वाले डिब्बों को पार करके मिट्टी वाले डिब्बों में आ जाती हैं। इस डिब्बों में जड़ों के प्रवेश करने के 5 दिनों बाद इसे अलग करके रासायनिक विश्लेषण कर लिया जाता है। इस तकनीक में पौद की संख्या मक्के के लिए 4 तथा गेहूं व जई के लिए 30 रखी जाती है। इस तकनीक में प्रयोग किए जाने वाले दोनों डिब्बों को रेखाचित्र में दिखाया गया है।

(5) बोरॉन के लिए सूरजमुखी गमला प्रयोग विधि

इस तकनीक द्वारा बोरान की कमी की जांच की जाती है। इस विधि में 500 ग्राम मिट्टी में सूरजमुखी की 5 पौद उगायी जाती है। मिट्टी में बोरॉन के अलावा सभी तत्व डाले जाते हैं। सूरजमुखी द्वारा बोरॉन का काफी मात्रा में निष्कर्षण कर लिया जाता है। बोरॉन की कमी की जांच निम्नानुसार की जाती है:

सारणी-3.5 बोरॉन की जांच

कमी का विवरण	दिन जितने बाद बोरन की कमी प्रकट होती है
स्पष्ट कमी	28 से कम
मध्यम कमी	28 से 36
कम या कोई कमी नहीं	36 से अधिक

भारत में घोष इत्यादि (1964) ने इस विधि द्वारा दिल्ली की मिट्टियों में बोरॉन की कमी का पता लगाया।

(6) सेकेट एवं स्टेवार्ट परीक्षण तकनीक

इस परीक्षण में मिट्टी का एक ऐसा संवर्ध (कल्चर) तैयार किया जाता है जिसके एक भाग में फास्फोरस, दूसरे भाग में पोटैशियम तथा अन्य भाग में इन दोनों तत्वों का प्रयोग किया जाता है। इसके बाद इन संवर्धों में एजोटोवैक्टर का टीका लगाया जाता है और इसका 72 घंटे तक उद्भवन किया जाता है। इसके बाद एजोटोवैक्टर की कालोनी की गणना करके मिट्टी की उर्वरता की जानकारी, जैसा कि नीचे दिया गया है, की जाती है:

वर्ग–1	अधिक कमी	उर्वरक प्रयोग की गयी प्लेक पर कालोनियों का सर्वथा अभाव या पिन बिन्दु के आकार की छोटी–छोटी कालोनियां
वर्ग–2	मध्यम कमी	उर्वरक प्रयोग की गयी प्लेक पर कई छोटी एवं कमजोर कालोनियां जो प्रायः रंगहीन अथवा बहुत हल्के रंग की होती हैं दिखाई पड़ती हैं।
वर्ग–3	हल्की कमी	बिना उर्वरक वाली प्लेक पर कालोनियों की संख्या और आकार लगभग समान होता है।
वर्ग–4	कमी नहीं	उर्वरक प्रयोग की गयी तथा बिना उर्वरक वाली प्लेक की कालोनियों की संख्या एवं आकार में समानता पाई जाती है।

(7) उपलब्ध पोटैशियम के लिए मेहलिक की तकनीक

इस विधि से मिट्टी में पोटैशियम की कमी की जांच की जाती है। थोड़ी सी मिट्टी लेकर उसमें उचित पोषक विलयनों को डालकर 5 दिन तक उद्भवन करने के बाद कवक जाल के वजन और उसमें उपस्थित पोटैशियम की मात्रा के आधार पर मिट्टी की पोटैशियम उर्वरता की जानकारी की जाती है। "ऐस्पर्जिलस नाइजर" विधि पर आधारित उपलब्ध पोटैशियम के लिए निर्धारित क्रान्तिक सीमाएं सारणी 3.6 में दी गयी है।

सारणी-3.6 ऐस्पर्जिलस नाइजर विधि पर आधारित पोटैशियम उर्वरता स्तर की क्रान्तिक सीमायें

4 कवक जाल भार (ग्राम)	एस्पर्जिलस नाइजर द्वारा अवशोषित पोटैशियम की मात्रा (मि.ग्रा./100 ग्राम मिट्टी)	पोटैशियम की कमी सीमा
1.4 से कम	15 से कम	अधिक कमी
1.4 से 2.0	15 से 20	सामान्य या हल्की कमी
2.0 से अधिक	20 से अधिक	कोइ कमी नहीं

(8) फास्फोरस के लिए मेहलिक की कनिन्घामेला प्लेक तकनीक

कनिन्घामेला नामक कवक फास्फोरस के अभाव के प्रति बड़ा ही संवेदनशील सिद्ध हुआ है। फास्फोरस–उर्वरता मूल्यांकन की यह तकनीक इसी सिद्धान्त पर आधारित है। मिट्टी में पोषक तत्वों का विलयन मिलाकर एक गाढ़ी लेई तैयार करके इसे विशेष प्रकार की मृतिका तस्तरी में समान रूप से फैला दिया जाता है। इसके बाद डिस के मध्य भाग में कवक का टीका लगाकर इसे उचित ताप पर 4–5 दिन तक रख दिया जाता है। कवक की कालोनी के व्यास के आधार पर मिट्टी में फास्फोरस की उपलब्धता का अनुमान सारणी 3.7 में दिए गये मापदंडानुसार लगाते हैं:

सारणी-3.7 कवक जाल की वृद्धि एवं फास्फोरस की कमी का आपसी सम्बन्ध

कालोनी का व्यास (मि.मी.)	फास्फोरस की कमी की सीमा
10 से कम	अधिक कमी
10–15	मध्यम कमी
16–21	हल्की कमी
22 से अधिक	कोई कमी नहीं।

चुनही मिट्टियों में कनिन्घामेला ब्लेकेस्लिआना का प्रयोग किया जाता है और कालोनी का व्यास 22 मि.मी. के बजाय 16 मि.मी. तक का पर्याप्त

समझा जाता है अर्थात् इतनी वृद्धि होने पर कोई कमी नहीं होती। अन्य मिट्टियों में कनिन्धामेला ओलिगन्स का प्रयोग किया जाता है।

(9) तांबा और मैग्नीशियम के लिए मुल्डर की ऐस्पर्जिलस नाइजर विधि

तांबा और बोरॉन की कमी की जानकारी कवक जालों तथा बीजाणुओं के रंगों की तुलना करके किया जाता है (सारणी 3.8)। ज्ञात मानकों के रंगों के साथ ऐसी मिट्टियां जिनकी उर्वरता अज्ञात हो, तुलना द्वारा उर्वरता स्तर की जानकारी की जाती है।

सारणी-3.8 मुल्डर परीक्षण के आधार पर तांबा एवं मैग्नीशियम की उपलब्धता की जांच

तांबा की मात्रा (माइक्रोग्राम 1 ग्राम हवा में सुखायी गयी मिट्टी में)	कमी की सीमा	मैग्नीशियम की मात्रा (माइक्रोग्राम 3 ग्राम हवा में सुखायी गयी मिट्टी में)
0.4 से कम	अधिक कमी	50 से कम
1.0 से 1.5	हल्की कमी	50 से 100
2 से अधिक	कोई कमी नहीं	100 से अधिक

इस विधि का प्रयोग मौलिब्डेनम, कोबाल्ट और मैगनीज की कमी का अनुमान लगाने के लिए भी किया जाने लगा है। इस विधि का प्रयोग मिट्टी में उपलब्ध गंधक की जानकारी के लिए नायक और दास (1964), मौलिब्डेनम के लिए वर्मा (1964) और उपलब्ध जिंक की मात्रा की जानकारी के लिए मूर्ति एवं मेहता (1968) एवं ईश्वरप्पा इत्यादि (1969) ने किया।

(10) "ए" मान तकनीक

फ्राइड और डीन (1952) द्वारा विकसित इस तकनीक का प्रयोग मिट्टी में सुलभ फास्फोरस की मात्रा ज्ञात करने के लिए किया। फ्राइड एवं डीन (1952) के अनुसार "ए" मान द्वारा मिट्टी में पोषक तत्वों की उस मात्रा का बोध होता है जिसका आचरण अर्थात् पौधों को सुलभता उर्वरक के रूप में

प्रयोग की गयी पोषक तत्वों की मात्रा के समान हो। इसकी गणना निम्नलिखित सूत्र द्वारा की जाती है:

$$A = \frac{B\,(1-y)}{y}$$

इस सूत्र में,

A = मिट्टी में उपलब्ध तत्व की मात्रा

B = उर्वरक द्वारा प्रयोग की गयी पोषक तत्व की मात्रा

Y = पौधे में पोषक तत्व का वह अंश जो कि प्रयोग किए गए उर्वरक से प्राप्त हुआ।

(घ) मिट्टी की जांच द्वारा उर्वरता-मूल्यांकन

मनुष्य की भांति पेड़ पौधों को भी अपनी वृद्धि एवं विकास हेतु विभिन्न पोषक तत्वों की उपयुक्त मात्रा में आवश्यकता होती है। इन पोषक तत्वों की कमी या अधिकता का फसल उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः मृदा परीक्षण के आधार पर संतुलित मात्रा में इन पोषक तत्वों को उपलब्ध कराना चाहिये। इस कार्य हेतु मृदा की जांच कराना उसी प्रकार आवश्यक होता है जैसे मनुष्य के इलाज से पहले रक्त, मल, मूत्र इत्यादि की जांच करना। मृदा की जांच के कई लाभ हैं:

मिट्टी की जांच के लाभ

1. मृदा की जांच से यह मालूम होता है कि उसमें आवश्यक पोषक तत्वों की कितनी मात्रा है।
2. भूमि में जिस फसल की खेती करने जा रहे हैं उसके लिये उपयुक्त है या नहीं।
3. जो फसल बोने जा रहे हैं उसमें कौन सी खाद कितनी और कब प्रयोग करनी चाहिये।
4. भूमि के लिये किसी भूमि सुधारक की आवश्यकता है या नहीं, यदि है तो किस भूमि सुधारक की और कितनी मात्रा में।

मिट्टी का नमूना लेने का समय तथा विधि

1. जांच के लिये मिट्टी का नमूना बुआई से लगभग 25–30 दिन पहले भेज दें जिससे जांच की रिपोर्ट बुआई से पहले आप तक पहुंच जाए।

2. मिट्टी का नमूना जहां तक हो सके खाली खेत से ही लेना चाहिए।

3. यदि किसी खास कारण से खाली खेत से नूमना लेना संभव न हो तो पिछली फसल की कटाई से पूर्व फसल की कतारों के बीच से नमूना लें।

4. खेत को मिट्टी की बनावट, रंग और उत्पादकता के आधार पर बांट लें।

5. जिस खेत या खेत के भाग का नमूना लेना हो उसमें 10 से 15 स्थानों पर चिन्ह लगा लें। यदि खड़ी फसल में नमूना लेना हो तो फसल की कतारों के बीच से नमूना लेने के लिये चिन्ह लगा लें।

6. चिन्ह लगाये गए स्थानों से घास, कंकड़, पत्थर, कूड़ा आदि साफ कर लें।

7. निर्धारित स्थानों पर खुरपी से त्रिकोण (वी) आकार का 15 से.मी. (6 इंच) गहरा गड्डा बना लें और उसमें से मिट्टी निकाल कर साफ कर लें।

8. खुरपी से इस गड्ढे की दीवारों से लगभग 2.5 से.मी. मोटी ऊपर से नीचे तक समान मोटाई की परत खुरच लें।

9. इस मिट्टी को एक साफ और सूखे हुये तसले या किसी साफ कपड़े पर इकट्ठा कर लें और इसे अच्छी तरह मिला दें।

10. इस प्रकार अन्य निर्धारित स्थानों से भी मिट्टी लें और सभी स्थानों से ली गई मिट्टी को आपस में अच्छी तरह मिला दें।

11. इस मिट्टी को निम्नलिखित चित्र के अनुसार चार बराबर भागों में बांट लें। इसमें से आमने–सामने के दो भाग लेकर शेष दो भागों को फेंक दें।

12. बचे हुये दो भागों को आपस में अच्छी तरह से मिला लें और पहले की भांति चार बारवर भागों में बांट कर दो भाग फेंक दें।

13. इस प्रक्रिया को तब तक जारी रखें तब तक आपके पास मात्र आधा कि.ग्रा. मिट्‌टी बचे।

14. इस मिट्‌टी को साफ कपड़े की थैली या पालीथीन (प्लास्टिक) की थैली में रखकर अच्छी तरह बांध दें।

15. अब थैली में नमूना पत्र बांध दें, जिसमें पूर्ण सूचना दी हो।

16. यदि किसी वजह से थैली और नमूना पत्र न प्राप्त कर सके तो साफ पतले कपड़े की थैली और नमूना पत्र खुद बना सकते हैं।

17. अब इस तैयार नमूने को अपने निकटतम मृदा परीक्षण प्रयोगशाला को भेज दें।

नमूना लेते समय सावधानियां

1. असामान्य क्षेत्रों से नमूना नहीं लेना चाहिए।

2. ऐसे खेतों से नमूने न लिये जायं जहां हाल ही में खाद या उर्वरक डाले गये हों।

3. पुरानी मेड़, पेड़, कम्पोस्ट के गड्‌ढे आदि जगहों के नमूने न लिए जायं।

4. जहां कतार में फसल उगायी गयी हो वहां कतारों के बीच की जगह से नमूना लेना चाहिए।

5. मिट्‌टी का नमूना लेने के लिये उपयुक्त औजार का इस्तेमाल करना चाहिए। खुरपी या फसली, बरमा, मिट्‌टी निकालने की नली आदि का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

6. हर नमूने के साथ सूचना–पत्र प्रयोगशाला अवश्य भेजा जाय।

7. यदि मिट्‌टी बहुत गीली हो तो उस समय नमूना नहीं लेना चाहिए। यदि गीली मिट्‌टी का नमूना लेना आवश्यक हो तो नमूने को हवा में सुखा

लिया जाय। यह ध्यान अवश्य रहे कि नमूने कभी भी गर्म करके न सुखाये जायं। नमूनों को सुखाने के लिये उर्वरकों या अन्य रासायनिक पदार्थों वाले खाली बोरों का प्रयोग न किया जाय।

8. नमूनों को खाद के बोरों, ट्रैक्टर की बैटरी, राख व गोबर आदि से दूर रखा जाय।

9. कपड़े की थैली कम से कम इतनी बड़ी अवश्य हो कि उसमें 1 किलो मिट्टी रखी जा सके।

विभिन्न पोषक तत्वों की उपलब्ध मात्रा के अनुमान हेतु मृदा-परीक्षण

भारत में मृदा–परीक्षण का कार्य वर्ष 1955–56 में अमेरिका के सहयोग से प्रारंभ किया गया। इस योजना के अन्तर्गत देश के विभिन्न भागों में 24 मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाएं खोली गयीं। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग की देखरेख में इस समस्त प्रयोगशालाओं में मिट्टी परीक्षण का कार्य एक समान ढंग से चलता रहा। जिसके आधार पर भारतीय मिट्टियों की उर्वरता के विषय में जानकारी प्राप्त करने में विशेष मदद मिली।

ग्रीन हाउस में विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाई गयी फसलों का विभिन्न तत्वों के लिये अनुक्रिया के आधार पर मिट्टी परीक्षण विधियों का मूल्यांकन किया गया इसके लिये कुछ क्षेत्र परीक्षण भी किये गये। इन अध्ययनों के लिये किसानों के खोजों के लिये गये साधारण उर्वरक प्रयोगों से प्राप्त परिणामों को उपयोग में लाया गया। चूंकि उस समय किसानों का कृषि–प्रबंध स्तर अत्यन्त निम्न कोटि का था अतः मिट्टी परीक्षण और सस्य अनुक्रिया का पारस्परिक सह–संबंध भी असन्तोषजनक रहा। सिंचाई एवं अन्य प्रबंध साधनों में सुधार होते ही इन परीक्षणों की उपयोगिता बढ़ी। मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओं में अपनायी जाने वाली विधियों का उल्लेख यहां किया जा रहा है।

प्रमुख पोषक तत्वों का परीक्षण

(क) नाइट्रोजन

पौधों को उपलब्ध रूप में पोषक तत्वों की पूर्ति मिट्टी तथा उर्वरकों

के माध्यम से होती है। मिट्टी में उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा की सही जानकारी के लिये अभी तक किसी ऐसी सटीक विधि का विकास नहीं हो पाया है जो सभी प्रकार की मिट्टियों के लिये उपयुक्त हो। आमतौर पर फसल द्वारा उपयोग की गई नाइट्रोजन की मात्रा के आधार पर नाइट्रोजन उर्वरकों की अनुसंशा की जाती है। फसल द्वारा पोषक तत्वों का उपयोग उसकी उत्पादन क्षमता, खेत की स्थिति, जलवायु आदि पर निर्भर करता है।

मिट्टी में नाइट्रोजन की उपलब्ध मात्रा ज्ञात करने के लिये निष्कर्षण और उद्भवन विधि इस्तेमाल की जाती है परन्तु इन दोनों ही विधियों से केवल जैव नाइट्रोजन की जानकारी हो पाती है। इनका संक्षिप्त वर्णन नीचे किया जा रहा है।

निष्कर्षण विधियां

(क) सुगमता से आक्सीकृत होने योग्य जैव पदार्थ की मात्रा की जानकारी

वाल्कले एवं ब्लैक द्वारा विकसित विधि से आक्सीकृत होने वाले जैव पदार्थ की जानकारी की जाती है। इस प्रकार अनुमानित जैव पदार्थ की मात्रा एवं सस्य अनुक्रिया (विशेषतः उपज) में पारस्परिक सार्थक संबंध पाया गया है। दिल्ली की मिट्टियों में गेहूं की फसल पर किये गये अध्ययनों के आधार पर कालाबन्दे (1964) ने नाइट्रोजन परीक्षण की इस विधि को सर्वोत्तम बताया। सुव्याह व कालाबन्दे (1964) ने बताया कि जिन मिट्टियों में जैव पदार्थ की मात्रा अधिक है उनमें नाइट्रोजनधारी उर्वरकों का प्रयोग करने पर फसल की उपज में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि हुई। यह निष्कर्ष सुव्याह एवं बजाज (1968) के मत से मेल नहीं खाता।

(ख) क्षारीय पोटैशियम परमेंगनेट विधि

इस विधि का विकास ट्रग द्वारा किया गया। भारत में सुव्याह एवं असिजा (1956) ने थोड़ा परिवर्तन करके परीक्षण किया। इन परीक्षणों के आधार पर मृदा में उपलब्ध नाइट्रोजन की सीमा का निर्धारण इस प्रकार किया गयाः

निम्न : 250 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर से कम

मध्यम : 250 से 500 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर

उच्च : 500 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर से अधिक

बजाज और सहयोगियों (1968 ने इस विधि का परीक्षण करके इसकी उपयोगिता की पुष्टि की। धान और गेहूं की फसल की नाइट्रोजन आवश्यकता का अनुमान लगाने के लिये रामामूर्ति एवं सहयोगियों (1967, 1971) ने इस विधि का प्रयोग किया। इनके अनुसार 1 क्विंटल गेहूं और धान के लिये क्रमशः 2.50 और 1.78 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर नाइट्रोजन की आवश्यकता पड़ती है। क्षारीय पौटेशियम परमेंगनेट विधि द्वारा अनुमानित उपलब्ध नाइट्रोजन का केवल क्रमशः 34 व 25.9 प्रतिशत ही पौधा उपयोग कर पाता है। उर्वरक के माध्यम से दिये गये नाइट्रोजन का क्रमशः 36.0 और 65.6 प्रतिशत फसल द्वारा उपयोग किया गया। चूंकि अधिकांश भारतीय मृदाओं की तरह इस परीक्षण में भी नाइट्रोजन की कमी (190–220 कि.ग्रा. तक) थी, अतः इस अध्ययन के आंकड़े काफी हद तक अन्य परिस्थितियों में भी लागू हो सकते हैं। इन अध्ययनों के आधार पर गेहूं के लिये 125 कि.ग्रा. नाइट्रोजन और धान के लिये 118 कि.ग्रा. नाइट्रोजन का अनुमान लगाया। परन्तु कम उपज स्तर पर मृदा से जैव नाइट्रोजन की पूर्ति उर्वरक नाइट्रोजन के बराबर या उससे अधिक होने के कारण उपरोक्त अनुमान से थोड़ा अन्तर आने की संभावना रहती है।

अतः स्पष्ट है कि मृदा में नाइट्रोजन की उपलब्धता से सही जानकारी के लिये कोई सार्वभौम विधि नहीं है जो समस्त दशाओं के लिये उपयुक्त हो। मृदा में उपस्थित नाइट्रोजन की उपलब्ध मात्रा पर आर्द्रता, तापमान, पीएच–मान, कार्बन नाइट्रोजन अनुपात, जेव पदार्थ की मात्रा, वातन आदि दशाओं का प्रभाव पड़ता है। ये सभी कारक मृदा में नाइट्रोजन के खनिजीकरण को प्रभावित करते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में नाइट्रोजन का खनिजीकरण अधिक होता है जिससे उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है। इसके विपरीत दशा में उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा कम हो जाती है। इसलिये नाइट्रोजन का सही परीक्षण प्रायः कठिन रहता है। मृदा में नाइट्रोजन का सुलभ रूप प्रायः नाइट्रेट नाइट्रोजन होता है जो कि अत्यन्त विलेय एवं गतिशील रूप में विद्यमान रहता है। अतः निक्षालन एवं विनाइट्रीकरण क्रिया द्वारा इसके हानि की संभावना रहती है।

उद्भवन विधियां

(क) इस विधि में मृदा को जलमग्न दशा में दो सप्ताह के लिये उदभवन किया जाता है। इसके बाद अमोनियम तथा नाइट्रेट की मात्र ज्ञात करके नाइट्रोजन उर्वरता स्तर का अनुमान लगाया जाता है। निचली भूमि में धान

की फसल के लिये नाइट्रोजन उपलब्धता का अनुमान लगाने के लिए अमोनियम रूप में मौजूद नाइट्रोजन की मात्रा की जानकारी हेतु अनुशंसा की जाती है। ओल्ड ने धान अनुसंधान प्रयोगशाला, आस्ट्रेलिया में किये गये शोध के आधार पर मृदा में अमोनियम नाइट्रोजन की मात्रा के अनुसार वर्गीकरण किया है।

ओल्ड के अनुसार यह विधि उन मृदाओं की उर्वरता की जानकारी के लिये विशेष अच्छी रहती है जहां उर्वरकों का उपयोग न किया गया हो। चूंकि नाइट्रोजन धारी उर्वरकों का प्रयोग करने पर नाइट्रोजन की कुछ मात्रा की हानि उत्पातन आदि द्वारा हो जाया करती है अतः तत्व की सही मात्रा का अनुमान नहीं लग पाता।

आमतौर पर मृदा में नाइट्रोजन की उपलब्ध मात्रा की जानकारी हेतु सारणी 3.9 में दी गई विधियां उपयोग में लायी जाती हैं।

सारणी-3.9 मिट्टी में नाइट्रोजन की उपलब्धता के अनुमान हेतु रासायनिक विधियां

क्र.सं.	विधि	संदर्भ
1.	कुल नाइट्रोजन	कालाबन्दे (1964) और बजाज इत्यादि (1968)
2.	जैव कार्बन	वाल्कले एवं ब्लैक (19)
3.	क्षारीय पोटैशियम परमेंगनेट (0.32 प्रतिशत पोटैशियम परमेंगनेट + 2.5 प्रतिशत सोडियम हाइड्राक्साइड)	सुव्याह एवं असिजा (1956)
4.	आयोवा नाइट्रीकरण	स्टैनफोर्ड एवं हानवे (1955)
5.	उबलता पानी	लीवेन्स (1959)
6.	1 नार्मल सोडियम हाइड्राक्साइड	कार्नफील्ड (1960)
7.	कैल्शियम हाइड्राक्साइड	प्रसाद (1965)
8.	0.1 नार्मल बेरियम हाइड्रोक्साइड	कीती एवं ब्रेम्नर (1966)
9.	0.25 नार्मल गंधकाम्ल जल मग्न दशाओं के लिये	रिचार्ड इत्यादि (1960)
10.	अमोनियम–नाइट्रोजन	सुव्याह और बजाज (1962)

जैब कार्बन तथा क्षारीय परमेंगनेट विधि द्वारा अनुमानित उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा के अनुसार उर्वरता का वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है (सारणी 3.10)।

सारणी-3.10 नाइट्रोजन उर्वरता स्तर का निर्धारण

उर्वरता–स्तर	जैव कार्बन की प्रतिशत मात्रा	उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा (कि.ग्रा./है.)
निम्न	0.5 से कम	280 से कम
मध्यम	0.5 से 0.75	280 से 560
उच्च	0.75 से अधिक	560 से अधिक

(स) फास्फोरस

अन्य तत्वों की अपेक्षा फास्फोरस के लिये मृदा परीक्षण विधियों के विकास पर बहुत अधिक अध्ययन हुआ है। भारत में मृदाओं की फास्फोरस–उर्वरता के अनुमान के लिये निम्नांकित विधियां चलन में हैं।

1. सोडियम बाई कार्बोनेट द्वारा फास्फोरस का निष्कर्षण
2. हाइड्रोक्लोरिक अम्ल + अमोनियम फ्लोराइड द्वारा फास्फोरस का निष्कर्षण।

इस संदर्भ में उपरोक्त विधियों के अलावा रामामूर्ति एवं सुब्रमनियम की साम्य फास्फेट बिभव (equilibrium phosphate potential) तथा सक्सेना की प्रवणता तकनीक (Gradient elution technique) का उल्लेख करना भी आवश्यक है।

1. सोडियम बाई कार्बोनेट द्वारा फास्फोरस का निष्कर्षण

ओल्सन इत्यादि (1954) द्वारा विकसित इस विधि द्वारा फास्फोरस की

मात्रा की जानकारी हेतु मृदा की एक निश्चित मात्रा को 0.5 मोलर सोडियम बाई कार्बोनेट (पी–एच 8.5) के निष्कर्षण विलयन के साथ क्रमशः 1:20 के अनुपात में मिलाकर आधा घंटा तक हिलाते हैं। मिट्टी में उपस्थित फास्फेट घुलकर निष्कर्ष विलयन में आ जाता है। इस विधि द्वारा निष्कर्षित फास्फेट की मात्रा और उर्वरक फास्फेट के प्रयोग द्वारा फसल की उपज में वृद्धि में पारस्परिक सहसंबंध पाया गया है। सर्वप्रथम दत्ता एवं कामथ (1959) के अध्ययनों द्वारा इस विधि की उपयोगिता की पुष्टि हुई। बाद में अनेकों वैज्ञानिकों ने इसका समर्थन किया। उदासीन से लेकर क्षारीय के साथ ही निचले हिस्सों की धान वाली मृदाओं के लिये भी यह विधि विशेष उपयुक्त पायी गयी है।

2. हाइड्रोक्लोरिक अम्ल + अमोनियम फ्लोराइड द्वारा फास्फोरस का निष्कर्षण

ब्रे एवं कुर्ज (1945) द्वारा विकसित इस विधि में फास्फोरस का निष्कर्षण 0.03 नार्मल अमोनियम फ्लोराइड के 0.025 नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में तैयार निष्कर्षण घोल द्वारा किया जाता है। यह विधि अम्लीय एवं चूना विहीन मिट्टियों के लिये विशेष उपयुक्त रहती है।

3. साम्य फास्फेट विभव विधि

रामामूर्ति और सुब्रमनियम (1960) ने पूर्व प्रचलित स्कोफील्ड फास्फेट विभव विधि में सुधार के बाद इस विधि का विकास किया। उन्होंने छः विभिन्न खनिज संघटन वाली मृदाओं में उगायी गयी धान की फसल से प्राप्त उपज आंकड़ों का पारस्परिक सह संबंध इस विधि द्वारा अनुमानित फास्फोरस की मात्रा से किया और इसे अन्य प्रचलित विधियों की तुलना में विशेष उपयोगी बताया। परन्तु यह विधि अधिक कठिन होने तथा अधिक समय लगने के कारण विशेष लोकप्रिय न हो सकी।

मृदा में उपलब्ध फास्फोरस की मात्रा ज्ञात करने के लिये उपयोग में लायी जाने वाली विधियों का उल्लेख सारणी 3.11 में किया गया है।

सारणी-3.11 उपलब्ध फास्फोरस के लिये मृदा–परीक्षण विधियां

उपलब्ध फास्फोरसं के लिये मृदा परीक्षण की विधियां	उपयुक्तता
ओल्सन 0.5 मोलर सोडियम बाई कार्बोनेट, पी.एच. 8.5	उदासीन, क्षारीय, चुनायुक्त मृदायें
ब्रे एवं कुर्ज पी–1 0.03 नार्मल अमोनियम फ्लोराइड + 0.025 नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल	अम्लीय तथा कम अम्लीय मृदाएं
ब्रे एवं कर्ज पी–2 0.03 नार्मल अमोनियम फलोराइड + 0.01 नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल	चाय, काफी, पर्वतीय धान मृदाएं
नेल्सन 0.05 नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल + 0.025 नार्मल गंधक का अम्ल	मूंगफली (पसरीचा और राना, 1985)
फास्फोरस अवशोषण समतापी वक्र पी–डिसार्प्सन आइसोथर्म)	धान* (विडप्पा और सर्कूनन, 1982
इलेक्ट्रो अल्ट्रा फिल्ट्रेशन	चाय* (नाटेसन इत्यादि 1985)
जल विलेय फास्फोरस	सोमानी (1980)*

* इनकी उपयोगिता की पुष्टि भविष्य में की जानी चाहिये।

ओल्सन विधि द्वारा अनुमानित फास्फोरस की मात्रा के अनुसार मृदा उर्वरता का निर्धारण इस प्रकार किया जाता है (सारणी 3.12)।

सारणी-3.12 फास्फोरस–उर्वरता निर्धारण

फास्फोरस की मात्रा (कि.ग्रा./हे.)	फास्फोरस उर्वरता–स्तर
10 से कम	निम्न
10–25	मध्यम
25 से अधिक	उच्च

(ग) पौटेशियम

गत लगभग तीस वर्षों से मिट्टी में उपलब्ध पोटेशियम की मात्रा का अनुमान 1 नार्मल अमोनियम एसीटेट, पीएच 7.0 द्वारा निष्कर्षण करके किया जाता है। इस विधि का विकास हानवे एवं हेडल (1952) द्वारा किया गया। भारत में इस विधि का अधिक प्रचलन है। पोटैशियम परीक्षण की इस विधि द्वारा अनुमानित विनिमेय पोटैशियम को उपलब्ध पोटैशियम के समान माना जाता है। इसके अलावा अन्य विधियों का मूल्यांकन भी किया गया परन्तु अन्य कोई विधि इतनी लोकप्रिय न हो सकी। ताम्हणें इत्यादि (1958), जोमेन एवं ईश्वरन (1962) और दत्ता एवं कालाबन्दे (1967) ने पौटेशियम परीक्षण की विभिन्न विधियों का मूल्यांकन किया परन्तु कोई एक विधि सभी परिस्थितियों के लिये उपयोगी सिद्ध न हो सकी। पौटेशियम परीक्षण हेतु सारणी 3.13 में दी गयी विधियां उपयोग में लायी जाती हैं।

सारणी-3.13 उपलब्ध पौटेशियम के लिये मृदा परीक्षण विधियां

क्र.सं.	विधि	हिलाने का समय
1.	जल विलेय (1:2)	2 घंटे
2.	मार्गन अभिकर्मक (1:2)	1 मिनट
3.	विनिमेय 1 नार्मल आमोनियम एसिटेट, पीएच 7 (1:5)	रात भर
4.	1.38 नार्मल गंधक के अम्ल में विलेय (1:2.5)	15 मिनट
5.	1 नार्मल नाइट्रिक अम्ल में विलेय (1:10)	10 मिनट
6.	विनिमेय + जल विलेय (1:5)	5 मिनट

अमोनियम एसिटेट द्वारा अनुमानित पोटैशियम की मात्रा के आधार पर उर्वरता का निर्धारण निम्नानुसार किया जाता है।

पोटैशियम की मात्रा (कि.ग्रा./हेक्टर)	पोटैशियम उर्वरता स्तर
110 से कम	निम्न
110–280	मध्यम
280 से अधिक	उच्च

गौण तत्व

भारत में अभी तक गौण तत्वों की परीक्षण–विधियों पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है क्योंकि अप्रत्यक्ष रूप से इन तत्वों की आंशिक पूर्ति विभिन्न उर्वरकों तथा सिंचाई जल के प्रयोग से स्वतः हो जाती थी। सिंचाई जल में कैल्शियम और मैग्नीशियम और गंधक (सल्फेट) की औसत मात्रा क्रमशः 25, 50 और 5 पीपीएम होती है। इस जल द्वारा प्रति मैट्रिक एकड़ फुट सिंचाई करने पर 75 पौंड सल्फेट, 150 पौंड कैल्सियम और 10 पौंड मैग्नीशियम प्रति एकड़ की दर से स्वतः मिल जाता है। परन्तु असिंचित दशा में फसल उगाने पर उनकी पूर्ति नहीं हो पाती। इसके अलावा आजकल गंधक विहीन उर्वरकों का प्रयोग करने पर भी गंधक की आपूर्ति नहीं हो पा रही है। अतः आधुनिक सघन कृषि कार्यक्रम के फलस्वरूप गौण तत्वों विशेष कर गंधक की बढ़ती हुई कमी को देखते हुये अब इस तत्व के विश्लेषण और उपयोग की ओर ध्यान आकर्षित हुआ है। विभिन्न गौण तत्वों की परीक्षण विधियों का संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

कैल्शियम तथा मैग्नीशियम

इन दोनों ही तत्वों की उपलब्धता का अनुमान मृत्तिका सम्मिश्र (clay complex) पद उनकी संतृप्तता के आधार पर दिया जाता है। कृष्णामूर्ति (1955) के अनुसार पौधों के विकास के लिये कैल्शियम संतृप्ति प्रतिशत 40–50 होना चाहिए। कैल्सियम संतृप्ति प्रतिशत 70 तक बढ़ाने पर उपज में उत्तरोत्तर बृद्धि देखी गई। प्रिन्स इत्यादि (1947) ने बताया कि कुल धनायन विनियम क्षमता का 10 प्रतिशत मैग्नीशियम द्वारा संतृप्त होने पर इस तत्व के अभाव की संभावना नहीं रहती।

भारतीय मिट्टियों के संदर्भ में कैल्शियम और मैग्नीशियम के परीक्षण संबंधी अध्ययनों की कमी है। हल्के गठन वाली बलुई मिट्टियों में जहां अंगूर की सघन खेती की जाती है, मैग्नीशियम की कमी की संभावना रहती है। अम्लीय एवं क्षारीय मिट्टियों में कैल्शियम का प्रायः अभाव होता है। अम्लीय मिट्टियों के पीएच मान और उनकी चूने की आवश्यकता संबंधी परीक्षणों से कैल्सियम और मैग्नीशियम की सुलभता या कमी का अनुमान लगाया जा सकता है।

गंधक

तोड़कर नये ढंग से विकसित की गई भूमि या हल्के गठन वाली बलुई मृदा जहां निक्षालन द्वारा पोषक तत्वों की हानि हो जाया करती है, गंधक की विशेष कमी पाई जाती है। इस तत्व के परीक्षण हेतु जल, एसीटेट, फास्फेट विलयन, लीथियम क्लोराइड, कैल्सियम क्लोराइड, सोडियम बाईकार्बोनेट आदि निष्कर्षण घोल के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

चोपड़ा और कंवर (1966) ने 0.1 नार्मल कैल्सियम क्लोराइड का प्रयोग निष्कर्षक विलयन के रूप में किया और 100 डिग्री सें.ग्रे. तक मिट्टी को गर्म करके गंधक का निष्कर्षण किया। उनके अनुसार गंधक परीक्षण के लिये यह विधि विशेष उपयुक्त रही। वेंकटेश्वर्लू एवं सुब्याह (1969) ने 0.5 मोलर सोडियम बाई कार्बोनेट विलयन की मदद से गंधक का निष्कर्षण उपयोगी बताया। अरोड़ा एवं सेखों (1977) ने क्रमशः सोडियम बाईकार्बोनेट (0.5 मोलर, पी–एच 8.5), 1 प्रतिशत सांद्रता वाले सोडियम क्लोराइड घोल को गरम करने पर घुलनशील गंधक तथा अमोनियम एसीटेट + एसिटिक अम्ल द्वारा निष्कर्षित गंधक को विशेष उपयोगी बताया। उनके अनुसार इन तीनों निष्कर्षकों द्वारा अनुमानित गंधक की क्रमशः 22.0, 11.0 और 10.5 पीपीएम मात्रा को क्रान्तिक स्तर माना गया। तिवारी और सहयोगियों (1985) ने विभिन्न निष्कर्षक विलयनों की उपयुक्तता संबंधी अध्ययन किये हैं जिनमें सोडियम बाईकार्बोनेट, अमोनियम एसीटेट आदि विशेष उपयोगी सिद्ध हुये हैं।

सूक्ष्म पोषक तत्व

कृषि में सूक्ष्म पोषक तत्वों के महत्व से हम भलीभांति परिचित हैं। भारत में सन् 1965 के बाद अधिक उपज देने वाली जातियों के प्रचलन के फलस्वरूप सूक्ष्म पोषक तत्वों विशेषकर जस्ता की कमी की रिपोर्ट पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, गुजरात, आंध्र प्रदेश और बिहार से मिली। सूक्ष्म पोषक तत्वों के परीक्षण की विधियों का मूल्यांकन अधिकांशतः गमलों में किये गये अध्ययनों में पौधों द्वारा तत्व विशेष की उपयोग की गयी मात्रा के आधार पर किया गया। हाल में तत्व विशेष के प्रयोग द्वारा उपज में वृद्धि के आधार पर इन तत्वों की परीक्षण विधियों के मूल्यांकन संबंधी अध्ययन किये गये। इसके पूर्व अधिकांश प्रयोगशालाओं में पश्चिमी देशों के अनुभवों के आधार पर मिट्टी परीक्षण विधियों का चुनाव किया गया था और इन्हीं आंकड़ों के आधार पर

विभिन्न उर्वरता–स्तर का निर्धारण भी किया गया था। कुछ वर्षों पूर्व किये गये अध्ययनों के आधार पर सूक्ष्म पोषक तत्वों के परीक्षण हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने जिन विधियों की अनुसंशा की है, उनका विवरण सारणी 3.14 में दिया गया है।

सारणी-3.14 सूक्ष्म पोषक तत्वों के अनुमान हेतु निर्धारित विधियां

निष्कर्षक	मृदा (ग्राम) और निष्कर्षक विलयन (मि.ली.) का अनुपात	हिलाने का का समय (मिनट)	क्रान्तिक सीमा (पीपीएम)
	जस्ता		
0.1 नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल	2:20	5	1.00
0.1% डाइथायोजोन (कार्बन टेट्रा क्लोराइड+ 1 नार्मल अमोनियम ऐसीटेट पीएच 7.0 में)	2.5:50 (प्रत्येक अभिकर्मक का 25 मिली.)	60	0.50
डीटीपीए (0.005 मोलर डाई इथाइलीन ट्राई अमीन पेन्टा ऐसिटिक अम्ल+0.1 मोलर ट्राई इथेनाल अमीन + 0.01 मोलर कैल्सियम क्लोराइड, पीएच 7.3)	10:20	120	0.60
	लोहा		
1 नार्मल अमोनियम एसीटेट (पीएच 4.8)	2.5:50	30	2.00
डीटीपीए	10:20	120	4.50
	मैंगनीज		
1 नार्मल अमोनियम एसीटेट (पीएच 7.0)	10:100	30	3.50

0.2% हाइड्रोक्विनोन + 1 नार्मल अमोनियम एसिटेट (पीएच 7.0)	10:100	30 मिनट + 80 मिनट (एक अंतर पर)	20–65
0.1 नार्मल फास्फोरिक अम्ल	10:100	60	15–20
डीटीपीए (जस्ता की तरह)	10:20	120	4.50
	तांबा		
1 नार्मल अमोनियम एसिटेट (पीएच 4.8)	50:100	60	0.20
डीटीपीए (जस्ता की तरह)	10:20	120	0.20
सिट्रेट–इडीटीए (200 ग्राम अमोनियम साइट्रेट+50 ग्राम डाई सोडियम डाई नाइट्रेलोटेट्रा एसीटेट (पीएच 8.5 को घोलकर 1 लीटर विलयन तैयार किया जाता है)	5:50	60	50.00 (विषालुता)
	बोरॉन		
उबलता पानी	5:10	5	0.50
	मौलिब्डेनम		
अमोनियम आक्जलेट (पीएच 3.3) (24.9 ग्राम अमोनियम आक्जलेट + 12.6 आक्जैलिक अम्ल को घोल कर पीएच 3.3 का 1 लीटर घोल तैयार किया जाता है)	25:250	600	0.20

स्रोतः कत्याल एवं रन्धावा (1983)

(च) प्रक्षेत्र प्रयोग द्वारा उर्वरता की जानकारी

साधारणतया फसल की उपज तथा उसके द्वारा अवशोषित पोषक तत्वों की मात्रा में सीधा सार्थक सम्बन्ध पाया जाता है अर्थात् एक निश्चित उपज के लिये तत्व विशेष की एक निश्चित मात्रा का उपयोग पौधों द्वारा किया जाएगा। पोषक तत्वों की प्रति इकाई अवशोषित मात्रा द्वारा दाने की उपज में होने वाली वृद्धि भी एक निश्चित मात्रा के बाद लगभग स्थिर सी हो जाती है। इस लक्ष्य से भी निश्चित उपज के लिये निश्चित मात्रा में पोषक तत्वों की आवश्यकता की पुष्टि हो जाती है। एक क्विंटल दाने की उपज के लिये आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा की जानकारी के बाद मिट्टी तथा उर्वरकों से होने वाली पोषक तत्वों की पूर्ति के प्रतिशत मानों के आधार पर फसल की उर्वरक आवश्यकता की जानकारी कर ली जाती है। सारणी में विभिन्न फसलों के लिये पोषक तत्वों का आवश्यक मात्रा और मिट्टी व उर्वरकों से पोषक तत्वों की प्रतिशत पूर्ति सम्बंधी आंकड़े दिये जा रहे हैं।

इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि फसल के अनुसार पोषक तत्वों की आवश्यकता में विभिन्नता पायी जाती है। यही नहीं, मिट्टी तथा उर्वरक से उनकी पोषक तत्व ग्रहण करने की क्षमता में भी बहुत अन्तर पाया जाता है। सरसों की नाइट्रोजन आवश्यकता सर्वाधिक (5.48 कि.ग्रा.) परन्तु पोटैशियम आवश्यकता धान को छोड़कर सबसे कम (3.0) है। अतः स्पष्ट है कि इस फसल की पोटैशियम अवशोषण क्षमता अन्य फसलों की अपेक्षा कम है। सूरजमुखी की फास्फोरस व पोटैशियम आवश्यकता सर्वाधिक पायी गयी। जहां तक नाइट्रोजन आवश्यकता का प्रश्न है इस फसल का धान के बाद अर्थात दूसरा स्थान है। अनाज वाली फसलों में गेहूं की फसल द्वारा नाइट्रोजन और पौटेशियम का उपयोग सर्वाधिक कुशलता से किया जाता है। सरसों और धान की तुलना में फास्फोरस का उपयोग करने में यह अपेक्षाकृत कम कुशल सिद्ध हुई है। पोटैशियम तत्व का सर्वाधिक कुशल उपयोग बाजरा (पुराना ए.पी. –3) की फसल द्वारा किया जाता है। इस बाजरा द्वारा फास्फोरस का उपयोग सुरजमुखी एवं धान के बराबर किया जाता है। मक्के की तुलना में बाजरे की फसल द्वारा मिट्टी एवं उर्वरक फास्फोरस का प्रयोग अधिक किया जाता है तथा बाजरे की नाइट्रोजन फास्फोरस और पोटैशियम आवश्यकता भी मक्के की तुलना में अधिक ही है।

विभिन्न फसलों की पोषक तत्वीय आवश्यकता में अन्तरों को देखते हुये ये नितान्त आवश्यक है कि उर्वरकों की अनुसंशा मिट्टी की विशेषताओं एवं उर्वरकों से तत्वों की सुलगता को दृष्टि में रखते हुये की जाय।

फसल द्वारा पोषक तत्वों की अवशोषित मात्रा और मिट्टी की जांच के फलस्वरूप प्राप्त मानों का उपयोग करके निर्धारित लक्ष्य के अनुसार उपज प्राप्त करने के लिये उर्वरकों की मात्रा का निर्धारण निम्नलिखित सूत्रों की सहायता से किया जाता है।

(i) एक क्विंटल दाने की उपज के लिये पोषक तत्व की आवश्यक मात्रा (NR)

$$= \frac{\text{फसल द्वारा अवशोषित तत्व की कुल मात्रा (कि.ग्रा./हे.)}}{\text{दाने की उपज (क्विं./हे.)}}$$

(ii) फसल द्वारा अवशोषित तत्व की कुल मात्रा (कि.ग्रा./हे.)

$$= \frac{\text{दानें में तत्व की प्रतिशत मात्रा}}{100} \times \text{दाने की उपज (कि.ग्रा./हे.)}$$

$$\frac{\text{भूसे में तत्व की प्रतिशत मात्रा}}{100} \times \text{भूसे की उपज (कि.ग्रा./हे.)}$$

(iii) मिट्टी से प्रतिशत पूर्ति (CS) (केवल नियंत्रित उपखण्ड से)

$$\frac{\text{फसल द्वारा अवशोषित तत्व की कुल मात्रा (नियत्रित उपख्रण्ड से (कि.ग्रा./है.)}}{\text{मिट्टी, परीक्षण मान (कि.ग्रा./हे.) (नियंत्रित उपखण्ड से)}} \times 100$$

(iv) उर्वरक से पूर्ति (CF)

$$= \text{फसल द्वारा अवशोषित तत्व की कुल मात्रा (उपचारित उपखण्ड से} - \text{मिट्टी परीक्षण मान उपचारित उपखण्ड से} \times \frac{CS}{100}$$

(v) उर्वरक से प्रतिशत पूर्ति=

$$\frac{\text{कि.ग्रा./हे.}}{\text{उर्वरक मी मात्रा कि.ग्रा./हे.}} \times 100$$

उपरोक्त गणनाओं के बाद एक निश्चित उपज के लिये उर्वरकों की मात्रा की गणना नीचे दिये गये सूत्र के अनुसार की जाती है।

$$\text{उर्वरक की मात्रा} = \left(T \times \frac{NR}{CF}\right) - \left(\frac{CS}{CF} \times S\right)$$
(कि.ग्रा./हे.)

जहां,

T = लक्ष्य के अनुसार निर्धारित उपज

NR = एक कुन्तल दाने की उपज के लिये आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा

CF = उर्वरक द्वारा पूर्ति

CS = मिट्टी से पूर्ति

S = मिट्टी परीक्षण मान (कि.ग्रा./हे.)

इस विधि द्वारा उर्वरक अनुसंशा सम्बन्धी अध्ययन अनेक मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओं द्वारा किया जा रहा है। गुरूदासपुर (पंजाब) और दिल्ली क्षेत्र की मृदा, जलवायु की दशाओं में क्रमशः धान (देव इत्यादि 1978) और गेहूं (सिंह एवं शर्मा 1978) की अनुमानित उपज लक्ष्यों के अनुसार उर्वरकों की अनुसंशाएं सारणी 3.14, 3.15 व 3.16 में दी गयी हैं।

उल्लेखनीय है कि उर्वरकों की मात्रा के निर्धारण की यह विधि ऐसे अनुसंधानों पर आधारित है, जिनमें एक विशिष्ट मृदा जलवायु की दशा में फसल विशेष की एक निश्चित किस्म के लिये मिट्टी परीक्षण एवं पादप विश्लेषण के आधार पर पोषक तत्वों की मात्रा ज्ञात की जाती है। चूँकि यह अनुमान एक विशेष परिस्थिति में उगायी गयी फसल की जाति विशेष पर आधारित होता है अतः फसल प्रबंध एवं साधनों की सुलभता में अन्तर के अनुसार उर्वरकों की आवश्यक मात्रा में थोड़ा बहुत अन्तर पाया जाना स्वाभाविक होता है। अभी विभिन्न मृदा जलवायु वाले क्षेत्रों में विभिन्न फसलों की विभिन्न जातियों पर ऐसे परीक्षणों की नितान्त आवश्यकता है ताकि इन सभी परिस्थितियों के लिये उर्वरक अनुसंशाएं तैयार की जा सकें।

सारणी-3.14 उपज लक्ष्य के अनुसार उर्वरक प्रयोग के लिये आधारभूत आंकड़े

क्र. सं.	फसल/जाति	एक क्विं. दाने की उपज के लिये पोषक तत्व की आवश्यकता (कि.ग्रा./हे.)			मिट्टी से पूर्ति (उपलब्ध) मात्रा से प्रतिकूल पूर्ति)			उर्वरक से पूर्ति (प्रयोग किये गये तत्वों से प्रतिशत पूर्ति)		
		ना.	फा.	पो.	ना.	फा.	पो.	ना.	फा.	पो.
1.	धान (साबरमती)	1.94	0.74	1.87	27.22	75.75	18.88	50.5	22.18	116.10
2.	मक्का (गंगा–5)	2.82	1.47	3.23	16.87	34.17	23.92	33.00	16.39	70.30
3.	बाजरा (पुराना एचबी–3)	3.84	1.465	5.061	16.30	58.30	25.20	43.60	21.60	133.70
4.	बाजरा (नया/एचबी–3)	3.31	2.038	4.229	12.78	52.68	17.67	33.15	20.20	79.20
5.	गेहूं (एचडी–009)	2.73	0.732	4.807	60.10	73.20	88.30	34.50	12.20	13.00
6.	गेहूं (एचडी 2122)	2.76	0.872	3.204	49.70	61.20	64.00	37.50	13.4	79.77
7.	गेहूं (एचडी 1981)	3.08	0.847	3.988	53.60	66.40	54.80	45.12	18.30	77.20
8.	गेहूं (एचडी 1982)	2.86	0.872	2.88	46.90	64.30	49.10	41.80	13.5	42.80
9.	सरसों (पूसा कल्यानी)	5.48	1.845	3.00	27.26	76.85	13.43	20.02	12.96	57.81
10.	सूरजमुखी (इसी 68414)	4.36	2.061	7.434	16.50	60.90	22.80	46.30	23.50	70.40

स्रोतः सिंह, के.डी. एवं शर्मा बी.एम. (1978) फर्टिलाइजर न्यूज 23 (10) पृष्ठ सं. 40

सारणी-3.15 गुरुदासपुर (पंजाब) में धान आइ–आर–8 के विभिन्न उपज लक्ष्यों के लिए मिट्टी परीक्षण के अनुसार उर्वरक अनुसंशा

उपलब्ध तत्व का मिट्टी परीक्षण मान (कि.ग्रा./हे.)	विभिन्न उपज लक्ष्यों के लिए उर्वरक की मात्रा (कि.ग्रा./हे.)				
	50	60	70	80	100
			नाइट्रोजन		
50	98.5	123.5	149.5	174.5	225.5
100	70.0	95.0	123.0	146.0	197.0
150	41.5	66.5	92.5	117.5	168.5
200	13.0	38.5	64.0	89.0	140.0
250	–	9.5	35.5	60.5	111.5
300	–	–	7.0	32.0	83.5
			फास्फोरस		
5	98.5	121.2	143.9	166.6	212.0
10	83.5	1062	128.9	151.6	197.0
20	53.0	76.2	98.8	121.6	167.0
40	23.0	46.2	68.9	91.6	137.0
60	–	16.2	38.9	61.6	107.0
80	–	7	8.9	31.6	77.0
			पोटैशियम		
25	99.0	125.4	151.4	178.2	231.0
50	66.0	92.4	118.8	145.2	198.0
75	33.0	69.4	85.8	112.2	165.0
100	–	36.4	52.8	79.2	132.0
125	–	3.4	19.8	46.2	99.0
150	–	–	–	13.2	66.0

नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटैशियम मिट्टी परीक्षण क्रमशः क्षारीय पौटेशियम परमेंगनेट द्वारा आक्सीकृत रूप, ओल्सन तथा अमोनियम एसिटेट द्वारा निष्कर्षित मानों का बोध कराता है।

स्रोतः देव, जी ब्रारजे.एस. एव ढिल्लों, एन.एस. (1978) फर्टिलाइजर न्यूज 23 (11) पृष्ठ 35–37

सारणी-3.16 दिल्ली क्षेत्र में गेहूं (एचडीन 2009) के विभिन्न वांछित उपज लक्ष्यों के लिये मिट्टी परीक्षण मानों के अनुसार उर्वरक अनुशंसा

उपलब्ध तत्व का* मिट्टी परीक्षण मान (कि.ग्रा./हे.)	विभिन्न उपज लक्ष्यों के लिये उर्वरकों की मात्रा (कि.ग्रा./हे.) (उपज क्विं./हे.)							
	35	40	45	50	55	60	65	70
				नाइट्रोजन				
150 से कम	16	55	95	134	184	214	253	293
150–175	–	12	51	91	138	170	208	249
175–200	–	–	8	47	87	126	165	205
200–225	–	–	–	4	43	83	122	162
225–250	–	–	–	–	–	–	35	75
250–300	–	–	–	–	–	–	–	31
				फास्फोरस				
5 से कम	141	171	201	231	261	291	321	351
5–10	73	103	133	163	193	223	253	253
				94	124	154	184	
10–15	4	34	64	124	134	184	214	214
15–20	–	–	–	25	55	85	115	145
20–25	–	–	–	–	–	16	46	76
25–30	–	–	–	–	–	–	–	8
				पोटैशियम				
100 से कम	55	76	97	118	140	161	182	203
100–150	31	52	74	95	116	137	159	180
150	8	29	50	71	93	114	135	159
175	–	5	23	48	69	90	112	133
200	–	–	3	24	48	67	88	109
225	–	–	–	–	22	43	65	86
250	–	–	–	–	–	20	41	62
275	–	–	–	–	–	–	18	39
300	–	–	–	–	–	–	–	15

नाइट्रोजन फास्फोरस एवं पोटेशियम के परीक्षण मान क्रमशः क्षारीय पोटेशियम परमेंगनेट ओल्सन व अमोनियम एसिटेट निष्कर्षण विधि पर आधारित हैं।

*स्रोतः सिंह केडी. एवं शर्मा, बी.एम. (1978) फर्टिलाइजर न्यूज 23 (90) पृ. 38–42

संदर्भ साहित्य

Bajaj, J.C. et al. 1968. *J. Indian Soc. Soil Sci.* **15** : 29.

Bhardwaj, R.B.L. 1978. New Agronomic Practices in Wheat Research in India, ICAR, 79-98.

Bidoppa, C.C. and Sarkunan, V. 1982. A new approach for evaluating the prequirement of rice. *J. Indian Soc. Soil Sci.* **30** : 227-229.

Bray, R.H. and Kurtz, L.t. 1945. Soil Sci. **59** : 39.

Chopra, S.L. and Kanwar, J.S. 1966. *J. Indian Soc. Soil Sci.* **14** : 69.

Cornfield, A.H. (1960). Nature London **187** : 260.

Datta, N.P. and Kalabande, A.R. 1967. *J. Indian Soc. Soil Sci.* **15** : 1.

Fried, M. and Dean, L.A. 1952. Soil Sci. **73** : 263.

Hanway, J. and Heidal, H.S. 1952. Iowa Agric. **3** : 1.

Kalbande, A.R. (1964). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **12** : 63.

Keeney, D.R. & Bremner, J.M. (1966a). Proc. Soil Sci. Soc. Am. **30** : 583.

Krishnamoorthy, Ch. 1955. Lectures delivere at the international soil fertility training held in Hyderabad.

Natesan, S. et at. 1985. EUF analysis of tea soils of southern India and tea productivity. *Plant & Soil,* **83** : 191-198.

Olsen, S.R. et al. 1954. Cire. USDA, 937.

Oommen, P.K. and Iswaran, V. 1962. *Soil Sci.* **94** : 44.

Prasad, R. (1965) Pl. Soil 23, 261.

Pasricha, N.S. and Rana, D.S. 1985. Fertilizer use in arid lands for increasing the productiong of oilseeds. Proc. FAI (NRC) Seminar 134-146.

Ramamoorthy, B. and Subramanian, T.R. 1960. Trans. 7th Int. *Congr. Soil Sci.* **3** : 590.

Ramamoorthy, B. et. al. 1967. *Indian Fmg* **16** : 1.

Ramamoorthy, B. et. al. 1971a. *Indian Fmg* **20** : 29.

Somani, L.L. 1980. Non-equilibrium water-extractable P as an index of P availability. Anales de Edafologia y Agrobiologia, **39** : 1665-1671.

Subbiarh, B.V. and Bajaj. J.C. 1968. *Curr. Sci.* **31** : 196.

Stanford, G.R. Hanway, J.J. (1955). *Proc. Soil Sci. Soc. Am.* **19** : 74.

Tamhane, R.V. et. al. 1958. Proc. 12th Meet. Crops and Soils Wing, ICAR.

Tandon, H.L.S. 1980. Soil fertility and fetiliser use research on wheat in India—a review, FN, 25 (10), 45-78.

Venkateswarlu, J. and Subbiah, B.V. 1969. *J. Indian Soc. soil Sci.* **97** : 155.

अध्याय-4

नाइट्रोजन

पौधों के लिए आवश्यक विभिन्न पोषक तत्वों में नाइट्रोजन सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। भूमि में मौजूद नाइट्रोजन की मात्रा का फसल की उत्पादकता पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इसलिए मृदा–उर्वरता और मृदा–नाइट्रोजन, एक दूसरे के पर्याय समझे जाते हैं। कृषि में नाइट्रोजन का विशेष महत्व इसलिये बढ़ जाता है कि आमतौर पर मृदा में नाइट्रोजन कम मात्रा में पाया जाता है परन्तु इसके विपरीत वायुमंडल में यह पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। पौधों को इस तत्व की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है।

मृदा में नाइट्रोजन की उत्पत्ति

हविन्सन (1944, 1954), रैली (1939) और अन्य वैज्ञानिकों के भू–रासायनिक अध्ययनों में नाइट्रोजन के वितरण का उल्लेख मिलता है जो निम्न प्रकार है:

उपस्थिति	कुल भार टन में	कुल नाइट्रोजन की प्रतिशत मात्रा
मूल शैल	1930×10^{14}	97.82
वायुमण्डल	39×10^{14}	1.96
अवसादीय शैल	40×10^{14}	0.20
भू–ह्यूमस	0.0082×10^{14}	नगण्य
समुद्र–तलीय जैविक यौगिक	0.0045×10^{14}	नगण्य

ऊपर दिये गये अनुमान से स्पष्ट है कि पूरे मृदा–मण्डल में उपस्थित कुल नाइट्रोजन का मात्र नगण्य अंश भू–ह्यूमस में पाया जाता है। अधिकांश नाइट्रोजन मूल शैल जो कि खनिजों के संरचना–अंश स्वरूप है, उनमें पाया

जाता है। ज्ञातव्य है यह नाइट्रोजन पौधों और सूक्ष्म जीवों को आसानी से सुलभ होने की दशा में नहीं रहता।

मिट्टी में संयुक्त नाइट्रोजन का निर्माण अनेक घटना चक्रों के फलस्वरूप होता है। प्रथम चरण में नाइट्रोजन बहुल वायुमण्डल (78.09 प्रतिशत) का निर्माण होता है। यह नाइट्रोजन मूल शैल के नाइट्रोजन छोड़ने की प्रक्रिया तथा अवकृतरूप में उपस्थित नाइट्रोजन के तत्व रूप में परिवर्तित होने से प्राप्त होती है। दूसरे चरण में जैविक अणुओं जैसे अमीनों अम्लों, प्यूरीन और पाइरीमिडीन के क्षार, कार्बनिक अम्लों और अन्य पदार्थों का निर्माण अजैविक प्रक्रिया द्वारा होता है। अंतिम चरण में मृदा–नाइट्रोजन का विकास इस तत्व के जैव–रासायनिक रूपान्तरण के फलस्वरूप होता है। इस प्रक्रिया में क्रियाशील जीवों का जन्म होता है जो कि बाद में अमोनियम, नाइट्राइट, नाइट्रेट आयनों और गैसीय नाइट्रोजन का उपयोग करके अपना विकास करते हैं। अनुमानतः ऐसा एक अरब वर्ष पूर्व हुआ। स्टेवेन्सन (1965) ने इन सम्पूर्ण घटनाक्रमों का विस्तृत वर्णन किया है।

मृदा में नाइट्रोजन की पूर्ति

मृदा में नाइट्रोजन की पूर्ति वायुमण्डल से विभिन्न प्राकृतिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप होती है, वे इस प्रकार हैं:

1. नाइट्रोजन का जैविक स्थिरीकरण: इसके अन्तर्गत नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कई प्रकार से होता है:

    (क) नील हरित शैवाल द्वारा

    (ख) स्वतन्त्र रहने वाले जीवाणुओं द्वारा

    (ग) दलहनी तथा अदलहनी पौधों के साथ सहजीवन यापन करने वाले जीवाणुओं द्वारा

2. नाइट्रोजन का अजैविक स्थिरीकरण

3. वायुमण्डलीय–नाइट्रोजन का वर्षा के साथ अधोपतन

4. यौगिकीकृत नाइट्रोजन का वायुमण्डल से अवशोषण

स्वपोषी नीलहरित शैवाल की सौ से भी अधिक प्रजातियां हैं जो कि नम दशाओं में वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने में सक्षम होती हैं। साधारणतया इस प्रक्रिया द्वारा 14 से 40 कि.ग्रा./हेक्टर की दर से नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है। वेंकटरमन (1975, 79) और अन्य वैज्ञानिकों ने धान में नीलहरित शैवाल की उपयोगिता का दावा किया है।

स्वतन्त्र रहने वाली जीवाणुओं जैसे क्लास्ट्रीडियम, एजोटोवैक्टर, वेजेरेन्क्रिया, डेरेक्सिया, एजोस्पेरिलम आदि द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण केवल प्राकृतिक दशाओं तक सीमित है क्योंकि इनके लिए सुलभ ऊर्जा स्रोत का होना आवश्यक होता है। यद्यपि इन जीवाणुओं द्वारा 20–50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टर स्थिरीकरण करने की रिपोर्ट मिली है परन्तु कुछ अध्ययनों से ऐसा प्रतीत होता है कि यह मात्रा अधिक है। बोडे एवं डोबेरिनर (1982) ने अनाज वाली फसलों के नाइट्रोजन पोषण में एजोस्पेरिलम–पादप जड़ सह सम्बन्ध के महत्व पर प्रकाश डाला। अध्ययनों से पता चला है कि सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण द्वारा दलहनी फसलों को 50–100 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हे./वर्ष मिल जाता है।

धर (1960, 61) और सहयोगियों ने दावा किया कि मृदा में प्रकाश–रासायनिक प्रक्रिया द्वारा काफी मात्रा में वायुमण्डलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण होता है। वायुमण्डल में उपस्थित नाइट्रोजन वर्षा–जल के साथ नीचे आ जाती है परन्तु यह मात्रा साधारणतया कम होती है। आचार्या इत्यादि (1978) ने वर्षा–जल के विश्लेषण के आधार पर यह मात्रा 13.4 मि.ग्रा. नाइट्रेट प्रति हे वर्ष बताई है। बादलों के गर्जन के साथ हुई वर्षा में नाइट्रेट की मात्रा अधिक पाई गई।

मालो एवं पर्विस (1964) के अनुसार 18–73 पौड़ प्रति एकड़ प्रति वर्ष की दर से अमोनिया का अवशोषण होता है। इन्घम (1950) इस मत के प्रबल समर्थक रहे हैं कि वायुमण्डल की यौगिकीकृत नाइट्रोजन विशेषकर अमोनिया का अवशोषण मृदा द्वारा किया जाता है परन्तु भारतीय दशाओं में इस प्रक्रिया द्वारा नाइट्रोजन की पूर्ति सम्बन्धी सूचनाओं का अभाव है।

मृदा में कुल नाइट्रोजन

मृदा–नाइट्रोजन तन्त्र गतिशील होने के कारण वातावरण की विभिन्नता के अनुसार इसकी मात्रा में अन्तर पाया जाता है। उष्ण जलवायु के कारण

भारतीय मिट्टी में नाइट्रोजन की कमी पाई जाती है। कंवर (1976) ने भारत के प्रमुख मृदा समूहों में नाइट्रोजन की औसत मात्रा का उल्लेख किया है जो कि इस प्रकार है:

मृदा–समूह	नाइट्रोजन की प्रतिशत मात्रा
सिन्ध की जलोढ़ मृदाएं	0.05
गंगा की जलोढ़ मृदाएं	0.04
काली कपास मृदाएं	
मध्यम	0.05
गहरी	0.06
लाल मृदाएं	0.03
लैटेराइट मृदाएं	0.04

कार्बन : नाइट्रोजन अनुपात

भारतीय मिट्टियों के कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात में काफी विभिन्नता पाई जाती है। बिहार की मिट्टियों में यह अनुपात 6.0 से 26.7, गुजरात की मृदाओं में 6.1 से 7.8, हिमाचल प्रदेश की पहाड़ी मृदाओं में 4 से 21 तथा नीलगिरी–मृदाओं में 9.2 से 35.3 तक पाया गया है (प्रसाद एवं थामस, 1982) तापक्रम में वृद्धि के साथ कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात संकुचित होता पाया गया। वन मृदाओं की अपेक्षा कृषिगत मृदाओं में यह क्रम विशेष रूप से देखा गया है। अधिक ऊंचाई पर स्थित पर्वतीय मृदाओं का कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात कम ऊंचाई पर स्थित मृदाओं की तुलना में अधिक पाया गया।

परिच्छेदिकाओं में वितरण

अधिकांश मृदाओं में कुल नाइट्रोजन की मात्रा ऊपरी सतह में अधिक होती है, केरल की पीट मृदायें तथा कुछ काली मृदायें इसका अपवाद है।

मृदा में कुल नाइट्रोजन की मात्रा को प्रभावित करने वाले कारण

जैनी एवं राय चौधरी (1960) के अनुसार मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा वहां की जलवायु पर निर्भर करती है। हिमाचल प्रदेश में ऊंचाई के अनुसार

जैविक कार्बन, कुल नाइट्रोजन, उपलब्ध अमोनियम और नाइट्रेट नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि देखी गई (मिन्हास एवं बोरा, 1982)। भारत के शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में जैविक कार्बन और नाइट्रोजन की मात्रा सम्बन्धी अध्ययनों से पता चला कि वार्षिक वर्षा और एन.एस. भागफल के साथ इनकी मात्रा में भी वृद्धि हुई। इसके विपरीत तापक्रम में वृद्धि के साथ इनकी मात्रा घटी। तमिलनाडु के पहाड़ी क्षेत्रों की मृदाओं में ऊंचाई और वर्षा में वृद्धि के साथ कुल नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि पायी गयी।

मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा पर मृदा–गठन, मृतिका (क्ले) खनिज, फसल प्रणाली और खाद एवं उर्वरकों के प्रयोग का सीधा प्रभाव पड़ता है। बसिक गठन वाली मृदाओं में नाइट्रोजन की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। मान्टमोरिलोनाइट मृतिका वाली मृदाओं की कार्बनिक अणुओं के अधिशोषण की क्षमता अधिक होने के कारण नाइट्रोजन युक्त जैविक यौगिकों पर सूक्ष्म जीवों का आक्रमण आसानी से नहीं हो पाता। अतः ऐसी मृदाओं में नाइट्रोजन की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है।

वनों की कटाई तथा लगातार खेती होते रहने से नाइट्रोजन की मात्रा में कमी हो जाती है। गोबर की खाद, कम्पोस्ट तथा अन्य जैविक खादों के अनवरत प्रयोग के फलस्वरूप मृदा के कुल नाइट्रोजन में थोड़ी वृद्धि का उल्लेख कई वैज्ञानिकों ने किया है। फसल प्रणालियों का भी मृदा नाइट्रोजन पर प्रभाव पड़ता है। दलहनी फसलें उगाने से कुछ नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि होती है। दलहनी फसलों में फास्फोरस के प्रयोगोपरान्त नाइट्रोजन की मात्रा में होने वाली वृद्धि की दर बढ़ जाती है। राव और शर्मा (1978) के अध्ययनों से पता चला है कि मक्का–गेहूं फसल चक्र के बाद मृदा नाइट्रोजन की मात्रा में 53 कि.ग्रा. प्रति हे. की कमी हुई जबकि इसके विपरीत मक्का–आलू–मूंग फसल चक्र के बाद नाइट्रोजन की मात्रा में औसतन 81 कि. ग्रा. हे. की वृद्धि हुई

मृदा में अकार्बनिक नाइट्रोजन

इस वर्ग में अमोनियम, नाइट्राइट और नाइट्रेट रूप में पाये जाने वाले नाइट्रोजन आते हैं। अमोनियम नाइट्रोजन विनिमय योग्य या स्थिर रूप में पाया जाता है। सेन इत्यादि (1957) ने देश के विभिन्न भागों की मृदाओं के विस्तृत अध्ययन के आधार पर बताया है कि मृदा की ऊपरी सतह (10–20

से.मी.) में विनिमयशील अमोनियम की मात्रा 10–50 पी.पी.एम होती है। राजस्थान की कुछ मृदाओं में यह मात्रा 260 पी पी एम तक पाई गई है। मृदा पीएच–मान और मृदा में अमोनियम नाइट्रोजन की मात्रा में ऋणात्मक सम्बन्ध पाया गया है। मिट्टी में क्ले की मात्रा, उसी धनायन विनिमय क्षमता और जलधारण शक्ति में वृद्धि होने से विनिमय अमोनियम की मात्रा बढ़ जाती है। अन्य फसलों की तुलना में दलहनी फसलों के अन्तर्गत मृदाओं में अमोनियम नाइट्रोजन की मात्रा अधिक पाई जाती है। भारतीय मृदाओं में मूल स्थिर अमोनियम की मात्रा 0.5 से 5.97 मि.ई. 100 ग्राम मृदा आंकी गई जो कि कुल मृदा–नाइट्रोजन का 21.8 प्रतिशत थी। स्थिर अमोनियम का केवल कुछ भाग ही पौधों को उपलब्ध हो पाता है।

भारत की जलोढ़ मृदाओं में नाइट्रेट नाइट्रोजन की मात्रा 11.2 से 36. 2 मि.ग्रा./कि.ग्रा., काली मृदाओं में 3.3 से 7 मि.ग्रा./कि.ग्रा. और लाल मृदाओं में 1.2 से 28.7 मि.ग्रा./कि.ग्रा. पाई गई। पर्वतीय और बन मृदाओं में यह मात्रा लगभग 13.5 पी.पी.एम. थी (शुक्ला एवं सिंह, 1961)। सिंह एवं सिंह (1969)। के अनुसार घासाच्छादित मृदाओं में नाइट्रेट नाइट्रोजन की मात्रा 4.2 से 7. 2 मि.ग्रा./कि.ग्रा., अदलहनी फसलों के अन्तर्गत मृदाओं में 8.2 से 12.2 मि. ग्रा./कि.ग्रा. और दलहनी फसलों के अन्तर्गत मृदाओं में 10.0–13.4 मि.ग्रा./कि. ग्रा. तक पाई गई। सिंह और शेखों (1976) के अनुसार मृदा परिच्छेदिका में 2.1 मी., गहराई के बाद मौजूद नाइट्रेट की मात्रा में आपसी घनात्मक सम्बन्ध पाया गया जिससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि मृदा में उपस्थित नाइट्रेट नाइट्रोजन वर्षाकाल में निक्षालन द्वारा भूगर्भ–जल की तह में पहुंच जाता है। नाइट्राइट नाइट्रोजन की मात्रा केवल प्रयोगशाला में किये गये उद्भवन (Incubation) अध्ययनों में आंकी जा सकी है।

मृदा में कार्बनिक नाइट्रोजन

अधिकांश मृदाओं में ऊपरी सतह में पाये जाने वाले कुल नाइट्रोजन का लगभग 18–30 प्रतिशत बन्धित अमीनों अम्लों के रूप में, 3–7 प्रतिशत अमीनों शर्कराओ के रूप में, और 18–43 प्रतिशत जल अपघटन अयोग्य कार्बनिक नाइट्रोजन के रूप में पाया जाता है। इस प्रकार कुल नाइट्रोजन का 39–80 प्रतिशत कार्बनिक रूप में पाया जाता है। ह्यूमिक फल्विक अंशों में लाइसिन, सिरीन, ग्लुहैमिक अम्ल, एलेनिन और ल्यूसिन पाया जाता है। अमीनों शर्करा

के रूप में ग्लुकोशामिन और गैलेक्टोसामिन की पहचान की गई है। दलहनी फसल वाले फसल चक्रों में जलअपघटन योग्य कार्बनिक नाइट्रोजन की मात्रा अनाज वाली फसल के फसल चक्रों की तुलना में अधिक पाई गई है।

मृदा में नाइट्रोजन का रूपान्तरण

मृदा में उर्वरक नाइट्रोजन का इस्तेमाल करते ही अनेक प्रकार की अणुजैविक एवं रासायनिक क्रियायें प्रारम्भ हो जाती हैं। इसके साथ ही मृदा में अनेक प्रकार की प्रतिक्रियायें होने लगती हैं जिनका क्रमबार उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

1. अमोनियम अधिशोषण (विनिमेय)

अमोनियम युक्त नाइट्रोजनधारी उर्वरकों का प्रतिधारण अनेक कारकों पर निर्भर करता है। इनमें मिट्टी की धनायन विनिमय क्षमता, मिट्टी में मृत्तिका की मात्रा और जलाशय क्षमता विशेष महत्वपूर्ण है। विभिन्न अमोनियम–नाइट्रोजन युक्त उर्वरकों की प्रतिधारण क्षमता की भिन्न–भिन्न होती है। क्ले के गुणों का भी अमोनियम प्रतिधारण पर प्रभाव पड़ता है।

2. अमोनियम स्थिरीकरण (अविनिमेय)

अमोनियम नाइट्रोजन वाले उर्वरक जब मिट्टी में डाले जाते हैं तो उनका रूपान्तरण अविनिमेय रूप में हो जाता है। इस प्रक्रिया को अमोनियम स्थिरीकरण के नाम से जाना जाता है। पाठक और श्रीवास्तव (1963) ने उत्तर प्रदेश के कानपुर जनपद की सामान्य जलोढ़ तथा लवणीय मिट्टियों में अमोनियम स्थिरीकरण संबंधी अध्ययन द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि इन मिट्टियों में अमोनियम का स्थिरीकरण 5मि.इ./100 ग्राम तक हुआ। मृत्तिका कणों का अमोनियम स्थिरीकरण में सर्वाधिक योगदान रहा। ऊपरी सतह की अपेक्षा अधो सतह की मिट्टी की अमोनियम स्थिरीकरण क्षमता अधिक पाई गई। मिट्टी में क्षार तथा चूने की मात्रा बढ़ने से अमोनियम स्थिरीकरण की मात्रा भी बढ़ जाती है। जीवांश पदार्थ तथा अमोनियम स्थिरीकरण की मात्रा में सार्थक संबंध पाया गया है।

3. यूरिया-अधिशोषण

मिट्टी में पाये जाने वाले बेन्टोनाइट और केओलिनाइट जैसे मृत्तिका

खनिज तथा एल्यूमिनियम व लोहे के आक्साइडों द्वारा यूरिया का अधिशोषण होता है। मिट्‌टी में "यूरिया–ह्यूमिक अम्ल" जैसा एक जटिल यौगिक बनता है: जिससे मिट्‌टी में जहां मृत्तिका तथा जीवांश पदार्थ की मात्रा अधिक हो, उनमें यूरिया का अधिशोषण भौतिक तथा "यूरिया–जैविक पदार्थ" जैसे जटिल यौगिक बन जाने के कारण होता है।

4. यूरिया का जलांशन

मिट्‌टी में यूरिया का प्रयोग करने पर इसका जलांशन होता है। इस प्रक्रिया को यूरिएज नामक एंजाइम उत्प्रेरित करता है जिसे निम्नांकित समीकरण द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

$$\underset{\text{यूरिया}}{(NH_2)_2\,CO + 2H_2O} \xrightarrow{\text{यूरिएज}} \underset{\text{अमोनियम कार्बोनेट (अस्थिर)}}{(NH_4)_2\,CO_3}$$

$$\underset{\text{अमोनिया}}{NH_3} + \underset{\text{कार्बन डाईआक्साइड}}{CO_2}$$
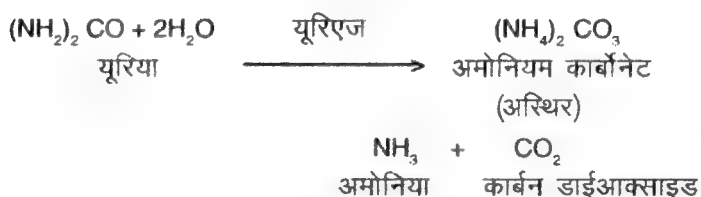
जलॉशन की गति साधारणतया तापक्रम, आर्द्रता स्तर, पीएच–मान तथा मिट्‌टी के प्रकार पर निर्भर करता है।

तापक्रम: आमतौर पर जलांशन 30° सेंटीग्रेड तापक्रम पर अधिक होता है। जलमग्न दशा में इस तापक्रम पर एक दिन के अन्दर 60–70 प्रतिशत यूरिया अमोनियम रूप में परिवर्तित हो जाती है। सम्पूर्ण यूरिया का अमोनियम रूप में परिवर्तन दो–तीन दिन के अन्दर हो जाता है।

आर्द्रता स्तर

यद्यपि यूरिया जलांशन की प्रक्रिया शुष्क से लेकर जलमग्न दशा तक होती ही रहती है परन्तु मिट्‌टी की जलधारण क्षमता के बराबर आर्द्रता जलांशन के लिए विशेष उपयुक्त रहती है। शुष्क मृदा में यूरिया जलांशन की गति घट जाती है।

पीएच-मान

क्षारीय तथा चुनही मिट्टियों में यूरिया का जलांशन बहुत धीरे–धीरे होता

है। यूरिएज एन्जाइम की क्रियाशीलता के लिये 6.5 से 7.5 तक के बीच का पीएच विशेष उपयुक्त माना जाता है। यूरिया के जलांशन के ठीक बाद अमोनिया का उत्पादन होने लगता है। क्षारीय मृदाओं का पीएच–मान अधिक होने के कारण यूरिया का जलांशन बहुत ही धीमी गति से हो पाता है। सामान्य मृदा में जलांशन क्रिया लवणीय तथा क्षारीय मृदा की तुलना में तेजी से होती है।

मिट्टी का प्रकार

मिट्टी के गुणों का यूरिएज एन्जाइम की क्रियाशीलता एवं यूरिया के जलांशन पर प्रभाव पड़ता है। आमतौर पर बलुई मिट्टी में जिसमें जीवांश पदार्थ की मात्रा कम होने के कारण वन मृदाओं की तुलना में जलांशन की गति धीमी रहती है। बंगलौर की अम्लीय लैटेराइट मिट्टियों में काली मृदाओं की तुलना में यूरिएज इंजाइम की क्रियाशीलता 20 प्रतिशत अधिक रही।

उपरोक्त विवेचना से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यूरिया का जलांशन बलुई मिट्टियों की तुलना में, चिकनी मिट्टियों में, अम्लीय तथा क्षारीय मिट्टियों की तुलना में उदासीन मिट्टियों में, अनुर्वर मिट्टियों की तुलना में उर्वर मिट्टियों में, कम तापक्रम की तुलना में अधिक तापक्रम की दशा में तथा शुष्क दशाओं की तुलना में आर्द्र दशाओं में अधिक तेजी से होता है।

5. नाइट्रीकरण

जैसा बताया गया है कि यूरिया के जलांशन के बाद एमाइड नाइट्रोजन अमोनियम रूप में परिवर्तित हो जाता है। यूरिया उर्वरक का यह अमोनियम नाइट्रोजन अथवा अमोनियम नाइट्रोजन युक्त अन्य उर्वरकों का नाइट्रोजन, आक्सीजन की उचित पूर्ति की दशा में नाइट्रेट रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस परिवर्तन को "नाइट्रीकरण" कहा जाता है। इस प्रक्रिया में अमोनियम नाइट्रोजन पहले नाइट्राइट और फिर नाइट्रेट रूप में परिवर्तित हो जाता है। रासायनिक प्रक्रिया को इस प्रकार प्रदर्शित किया जाता है:

$$2NH^{+}_{4} + 3O_2 \xrightarrow{\text{नाइट्रोसोमोनास}} 2NO_2 + 2H_2O + 4H^{+}$$

$$2NH^{-}_{2} + O_2 \xrightarrow{\text{नाइट्रोबैक्टर}} 2NO_2$$
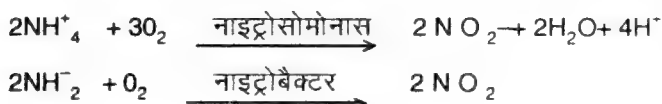
नाइट्रीकरण, स्वपोषी जीवाणुओं द्वारा सम्पन्न होने वाली एक अणु जीवाण्विक प्रक्रिया है। जैसा कि ऊपर बताया गया है अमोनियम नाइट्रोजन का नाइट्राइट रूप में परिवर्तन नाइट्रोसोमोनास समूह के जीवाणु द्वारा सम्पन्न होता है जबकि नाइट्राइट का नाइट्रेट रूप में परिवर्तन नाइट्रोवैक्टर की मदद से होता है। प्रथम प्रक्रिया की अपेक्षा दूसरी प्रक्रिया तीव्र गति से होती है जो कि वांछित है क्योंकि नाइट्राइट का संचयन फसल के लिए हानिकारक होता है। मृदा में नाइट्रीकरण की क्रिया पर पीएच–मान, तापक्रम, मृदा वातन, मृदा आर्द्रता तथा मृदा के प्रकार आदि का विशेष प्रभाव पड़ता है।

मृदा-पीएच-मान

वैसे तो नाइट्रोजन की क्रिया एक लम्बे पीएच परास (5.5 से 10.0) के मध्य होती रहती है परन्तु इस प्रक्रिया हेतु 7.5 से 9.0 पीएच–परास विशेष उपयुक्त माना जाता है। आमतौर पर स्वपोषी जीवाणुओं की संख्या भी उदासीन और क्षारीय मिट्टियों में अधिक पाई जाती है। अतः इन मृदाओं में अन्य मृदाओं की तुलना में नाइट्रीकरण–क्रिया की गति तेज रहती है।

तापक्रम

नाइट्रीकरण प्रक्रिया हेतु 30^0 सेंटीग्रेड के आसपास का तापक्रम विशेष उपयुक्त माना जाता है।

मृदा-वातन

मृदा में आक्सीजन की उपलब्धता का नाइट्रीकरण की गति पर प्रभाव पड़ता है। क्योंकि नाइट्रीकरण की प्रक्रिया वायुवीय जीवाणुओं द्वारा सम्पन्न होती है। 20 प्रतिशत आक्सीजन की उपस्थिति में मृदा में नाइट्रेट का संचयन सर्वाधिक होता है।

मृदा-आर्द्रता

नाइट्रीकरण में भाग लेने वाले जीवाणु अत्यधिक मृदा शुष्कता की तुलना में अत्यधिक मृदा आर्द्रता के प्रति विशेष संवेदनशील होते हैं। अतः अत्यधिक आर्द्रता की दशा में नाइट्रीकरण की क्रिया मंद पड़ जाती है। कुल जलधारण–क्षमता का 60 प्रतिशत के बराबर आर्द्रता नाइट्रीकरण के लिए विशेष उपयुक्त रहती है। उपरोक्त कारकों के अलावा मृदा के गुणों प्रयोग

किये जाने वाले उर्वरकों की प्रकृति तथा अन्य कारकों का नाइट्रीकरण की प्रक्रिया पर प्रभाव पड़ता है।

भारतीय मिट्टियों में नाइट्रीकरण पर कृषि रसायनों का प्रभाव

भारतीय मिट्टियों में नाइट्रोजन के रूपान्तरण पर विभिन्न यौगिकों के प्रभाव का अध्ययन किया गया। अनेक वैज्ञानिकों का मत है कि आमतौर पर गैमेक्सीन, टेलोड्रिन, थिमेट, हाइसिस्टान तथा निमेटोड के नियंत्रण हेतु धूम्रकरण द्वारा अस्थायी रूप से नाइट्रीकरण की क्रिया को नियंत्रित किया जा सकता है। पाठक इत्यादि (1961) ने कानपुर जलपद की मिट्टी में विभिन्न कृषि रसायनों (डी.डी.टी., क्लोर्डेन, गैमेक्सीन और एल्ड्रीन) का नाइट्रीकरण एवं सूक्ष्म जीवों की संख्या पर प्रभाव सम्बंधी अध्ययन किया और देखा कि परीक्षित चारों रसायनों में से किसी भी रसायन का प्रयोग नाइट्रीकरण की क्रिया को प्रभावित न कर सका। साथ ही इन रसायनों का जीवाणुओं तथा फफूंदी की कुल संख्या पर भी विषैला प्रभाव नहीं पड़ा। रेड्डी और वैक्टैश्वर्लू (1970) के अनुसार थिमेट के प्रयोग से नाइट्रीकरण क्रिया में कमी हुई। जिसके फलस्वरूप नाइट्रोजन का ह्रास कम हुआ और इस प्रकार नाइट्रोजन की मात्रा में लगभग 100 प्रतिशत की वृद्धि हुई। सेट्टी इत्यादि (1970) ने अट्राजीन के प्रयोगोपरान्त नाइट्रीकरण क्रिया में वृद्धि देखी। अट्राजीन की प्रयोग की गई मात्रा और नाइट्रीकरण की गति में धनात्मक अन्तर्क्रिया का आभास मिला। केन्द्रीय धान अनुसंधान संस्थान, कटक (1972) में किये प्रयोगों द्वारा विभिन्न जीवनाशकों के अवशेष प्रभाव का अनुमान, नाइट्रोजन रूपान्तरण की गति के माध्यम से किया गया और यह देखा गया है कि 0.2 प्रतिशत सांद्रता वाले सिमेजिन के घाले के प्रयोग से नाइट्रीकरण में वृद्धि हुई, जबकि डाइथेन–एम–45 की 0.2 प्रतिशत सांद्रता वाले घोल के प्रयोग से नाइट्रीकरण क्रिया में अवरोध उत्पन्न हुआ।

नाइट्रोजन-हानि

मिट्टी में प्रयोग किए गए नाइट्रोजन की हानियां कई प्रकार से सम्भावित हैं:

(1) निक्षालन द्वारा

(2) अमोनिया उत्पातन द्वारा

(3) विनाइट्रीकरण द्वारा

(4) नाइट्राइट विघटन द्वारा

इनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है:

(1) निक्षालन द्वारा नाइट्रोजन-हानि

हल्के गठन वाली बलुई मिट्टी में इस प्रक्रिया द्वारा नाइट्रेट–नाइट्रोजन की हानि हो जाती है। यदि यूरिया के प्रयोग के तुरन्त बाद तेज वर्षा हो जाय या सिंचाई जल अत्यधिक मात्रा में प्रयोग कर दिया जाय तो यूरिया नाइट्रोजन की हानि निक्षालन द्वारा हो सकती है।

भारतीय मिटि्टयों में विभिन्न नाइट्रोजनधारी उर्वरकों के प्रयोग के फलस्वरूप निःसारण द्वारा होने वाली नाइट्रोजन की हानियों का अनुमान लगाया गया है। बंगाल की चिंसुरा, हालीगुज और बर्दवान की मिट्टियों में निकासित जल में 10–47 प्रतिशत तक नाइट्रोजन–हानि का अनुमान लगाया गया।

जलमग्नता की स्थिति में नाइट्रोजन की नीक्षालन द्वारा हानि अधिक होती है। नाइट्रोजन के विभाजित प्रयोग से इस हानि को कम किया जा सकता है। बलुई मृदाओं में मटियार मृदाओं की अपेक्षा अधिक हानि होती है।

वर्षा ऋतु में निक्षालन द्वारा नाइट्रोजन–हानि की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं। आधुनिक कृषि में सिंचाई–जल के बढ़ते हुए प्रयोग के साथ ही निक्षालन द्वारा इस तत्व की विशेष हानि हो सकती है। अतः जल प्रबन्ध को विभिन्न दशाओं में निःसारण द्वारा होने वाली नाइट्रोजन–हानि का सही अनुमान लगाया जाना चाहिए। आमतौर पर हमारे देश में कुल वर्षा जल का 50 प्रतिशत जून से लेकर सितम्बर तक प्राप्त हो जाता है। यही खरीफ के फसलों के उगाने का समय होता है। अतः खरीफ की फसल में निक्षालन द्वारा होने वाली नाइट्रोजन हानि का महत्व रबी की फसलों की तुलना में कहीं बहुत अधिक है।

(2) अमोनिया-उत्पादन द्वारा नाइट्रोजन हानि

जब मृदा की ऊपरी सतह पर अमाइड या अमोनियम नाइट्रोजनधारी

उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है तो उस दशा में उर्वरकों का जलाशंन अतिशीघ्र हो जाता है। जलाशंन के फलस्वरूप अमोनियम कार्बोनेट बनता है। अमोनियम कार्बोनेट के बनते ही नाइट्रोजन का उत्पातन अमोनिया गैस के रूप में हो जाता है। अनाज वाली फसलों की अधिक उपज देने वाली जातियों के प्रचलन के बाद नाइट्रोजनधारी उर्वरकों के प्रयोग में वृद्धि होने के साथ ही अमोनिया उत्पातन द्वारा नाइट्रोजन हानि को विशेष महत्व दिया गया।

उत्पातन द्वारा होने वाली नाइट्रोजन हानि निम्नांकित कारकों द्वारा प्रभावित होती है:

(1) मृदा–प्रतिक्रिया तथा लवण–सान्द्रता

(2) मृदा–आर्द्रता

(3) मृदा–गठन

(4) मृदा की धनायन विनिमय क्षमता

(5) उर्वरकों का प्रकार

(6) उर्वरक प्रयोग की विधि

इनका क्रमवार उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

मृदा-प्रतिक्रिया एवं लवण-सान्द्रता

मिट्टी की ऊपरी सतह पर प्रयोग किए गए नाइट्रोजनधारी उर्वरकों की नाइट्रोजन हानि की सम्भानाएं अधिक पीएच मान की दशा में बढ़ जाती हैं। इस तथ्य पर आम सहमति है। मृदा पीएच मान 7.2 से अधिक हो जाने पर अमोनिया गैस के रूप में हाने वाली नाइट्रोजन की हानि उत्तरोत्तर बढती जाती है।

गांधी और पालीवाल (1976) ने मिट्टी के पीएच मान और लवण की मात्रा का सह सम्बन्ध अमोनिया गेस के रूप में होने वाली नाइट्रोजन–हानि से स्थापित किया। इस अध्ययन से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट होता है कि सभी मिट्टियों में लवण–सान्द्रता बढ़ने के साथ ही गैस रूप में होने वाली नाइट्रोजन–हानि में भी वृद्धि पायी गयी। उच्चतम् लवणता स्तर पर गैस रूप

में नाइट्रोजन की हानि नियंत्रित लवणता स्तर की तुलना में तीन गुना अधिक हुई। यह हानि कुल प्रयोग किये नाइट्रोजन की लगभग 35 प्रतिशत मात्रा के बराबर पायी गयी।

मृदा-आर्द्रता

मृदा आर्द्रता और गैस रूप में होने वाली नाइट्रोजन हानि में विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। सरकार एवं सिंह–वर्मा (1973) ने हरियाणा राज्य के हिसार जनपद की एक मिट्टी जिसका पीएच मान 8.2, जलधारण क्षमता 32.1 तथा धनायन विनिमय क्षमता 9.2 मि.इ./100 ग्राम था मृदा के जलधारण क्षमता के 15 प्रतिशत आर्द्रता स्तर पर गैस रूप में नाइट्रोजन हानि का प्रतिशत 44.7 प्रतिशत आंका जबकि 75 प्रतिशत आर्द्रता स्तर पर हानि केवल 9.2 प्रतिशत ही रही।

उपरोक्त तथ्य के विपरीत बालीगर और पाटिल (1968) ने मृदा की प्रारम्भिक आर्द्रता में वृद्धि के साथ ही गैस रूप में होने वाली नाइट्रोजन हानि में सीधा सम्बन्ध पाया। उन्होंने देखा कि क्षारीय और काली मृदाओं में 100 प्रतिशत आर्द्रता स्तर तक नाइट्रोजन हानि में वृद्धि होती रही। बलुई मृदाओं में यह हानि 75 प्रतिशत आर्द्रता तक बढ़ते क्रम में पायी गयी। उन्होंने इसका कारण अधिक मृदा–आर्द्रता स्तर पर उर्वरक का अपेक्षाकृत अधिक जलांशन तथा बाद में गैस रूप में नाइट्रोजन के उत्पातन के स्थान पर जल का ही वाष्पीकरण होना बताया।

मृदा-गठन

हल्की गठन वाली बलुई मिट्टियां जिनमें मृत्तिका अपेक्षाकृत कम मात्रा में हो और धनायन विनिमय एवं जलधारण क्षमता कम हो, उनकी अमोनियम प्रति धारण–क्षमता भी कम होती है। अतः हल्के गठन वाली बलुई मिट्टियों में नाइट्रोजन की हानि भारी मृदाओं की अपेक्षा अधिक होती है।

धनायन-विनिमय क्षमता

ऐसा देखा गया है कि मृदा की धनायन विनिमय क्षमता 10 मि.ई./100 ग्राम से कम होने पर गैस रूप में नाइट्रोजन–हानि की सम्भावना बढ़ जाती है। एण्डर्सन (1962) और मैसर (1962) ने उल्लेख किया है कि मृदा की

धनायन–विनिमय क्षमता 10 मि.ई./100 ग्राम होने पर अधिकतम् नाइट्रोजन हानि 20 प्रतिशत तक हुई जबकि 20 मि.ई./100 ग्राम धनायन–विनिमय–क्षमता वाली मृदा में हानि की दर केवल 10 प्रतिशत तक ही पायी गयी।

उर्वरकों का प्रकार

उर्वरक–गुणों का भी गैस रूप में होने वाली नाइट्रोजन–हानि पर प्रभाव पड़ता है। गांधी और पालीवाल (1976) के अनुसार अमोनियम सल्फेट की तुलना में यूरिया का प्रयोग करने पर नाइट्रोजन की हानि अधिक हुई।

सरकार और आजाद (1970) ने हिसार की मिट्टी में विभिन्न नाइट्रोजन धारी उर्वरकों के प्रयोगोपरान्त होने वाली नाइट्रोजन हानि का अध्ययन करते हुए यह पाया कि गैस रूप में हानि की दृष्टि से यूरिया, अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट और कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट जेसे उर्वरक लगभग एक समान पाए गये।

उर्वरक-प्रयोग की विधि

प्रयोगों के परिणाम इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि यदि यूरिया का प्रयोग करने के बाद इसे तुरन्त भलीभांति मिट्टी में मिला दिया जाय अथवा इसका प्रयोग ऊपरी सतह के बजाय अधोसतह में किया जाय तो गैस रूप में होने वाली नाइट्रोजन हानि को पर्याप्त कम किया जा सकता है। अधिक पीएच मान वाली बलुई मिट्टी में गर्म मौसम में ऊपरी सतह पर उर्वरकों का प्रयोग करने पर नाइट्रोजन–हानि की सम्भावना अधिक रहती है।

विनाइट्रीकरण

जलमग्न दशा में नाइट्रेट ओर नाइट्राइट का अवायुवीय विघटन होता है जिसके फलस्वरूप नाइट्रोजन और नाइट्रस आक्साइड गैस का निर्माण होता है। यह क्रिया विनाइट्रीकरण के नाम से जानी जाती है। रासायनिक क्रिया को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है:

(नाइट्रिक अम्ल) (नाइट्रस अम्ल) (हाइपोनाइट्स अम्ल) (नाइट्रस आक्साइड)

विनाइट्रीकरण प्रक्रिया कुछ अणुजीवों की सहायता से सम्पन्न होती है, जो स्यूडोमोनास, माइक्रोकोकस, एक्रोमोबैक्टर और बैसिलस गण के अन्तर्गत आते हैं। इसके अलावा कई स्वपोषी अणुजीव नाइट्रेट का अवकरण करते हैं, इनमें थायोवैसिलस डिनाइट्रीफिकन्स ओर थायोवैसिलस थायोपैरस प्रमुख हैं।

जलमग्न दशा में नाइट्रोजन उर्वरक की क्षमता को प्रभावित करने में विनाइट्रीकरण प्रक्रिया का विशेष महत्व है। इस प्रक्रिया द्वारा होने वाली नाइट्रोजन हानि का अनुमान अनेक वैज्ञानिकों द्वारा लगाया गया। मण्डल (1971) के अनुसार जलमग्न दशा में धान के खेत में जिनका पीएच मान 6. 8 था, 80 प्रतिशत नाइट्रोजन गैस के रूप में विद्यमान थी। दत्ता इत्यादि (1971) ने 24.1 से लेकर 53.7 प्रतिशत तक नाइट्रोजन–हानि विनाइट्रीकरण द्वारा बतायी है। पलानीअप्पन और राज (1973) ने दक्षिणी भारत की 12 मृदाओं में अवायुवीय दशा में विनाइट्रीकरण द्वारा 3–99 प्रतिशत तक नाइट्रोजन हानि का अनुमान लगाया है।

विनाइट्रीकरण क्रिया पर निम्नांकित कारकों का प्रभार पड़ता है:

मृदा-पीएच मान

विजलर और डालविक (1954) ने प्रयोगशाला में किये गये अध्ययन के आधार पर व्यक्त किया है कि 4.9 से लेकर 5.6 तक पीएच मान रहने पर अधिकांश नाइट्रोजन की हानि नाइट्रस आक्साइड के रूप में होती है। ब्रेमनर और शा (1958) के अनुसार 4.0 पीएच मान होने पर विनाइट्रीकरण द्वारा नाइट्रोजन की हानि कम परन्तु 8 से 8.6 पीएच मान पर बहुत तेज रही। नाभिक (1956) के अनुसार विनाइट्रीकरण के लिए उपयुक्त पीएच मान 7 से लेकर 8 के बीच पाया गया।

मृदा-आर्द्रता

जलमग्न दशा में विनाइट्रीकरण द्वारा नाइट्रोजन की हानि अधिक मात्रा में होती है। तस्नीन और पैत्रिक (1971) ने बताया कि जलधारण–क्षमता की 25 प्रतिशत आर्द्रता और पुनः क्रमिक आर्द्रता ओर शुष्कता की दशा में विनाइट्रीकरण द्वारा नाइट्रोजन हानि नहीं होती। प्रसाद और रजले (1972) ने देखा कि क्षेत्रीय जलक्षमता के समतुल्य आर्द्रता स्तर या लगातार जलमग्नता

की दशा में यूरिया नाइट्रोजन का खनिजीकरण एवं संरक्षण भलीभांति हुआ परन्तु क्रमिक जलमग्नता और शुष्कता की दशा में नाइट्रोजन हानि अधिक हुई।

जीवांश पदार्थ की मात्रा

जैविक खादों जैसे कार्बनयुक्त पदार्थों के प्रयोग से नाइट्रोजन हानि की सम्भावना बढ़ जाती है। किम्बल इत्यादि (1972) ने बताया कि जीवांश खाद प्रयोग किये गये उपखण्डों में अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में नाइट्रोजन की हानि हुई।

उर्वरता-स्तर

भारतीय मिट्टियों में नाइट्रोजन की व्यापक कमी है। इसी कमी को देखते हुए सिंचाई जल के बाद नाइट्रोजन का ही महत्व प्रतीत होता है। वैसे जम्मू कश्मीर के शीतोष्ण क्षेत्र, हिमाचल प्रदेश की गहरी–भूरी पोड़साल, भू–वन प्रदेशीय और मिडो मिट्टियों वाले क्षेत्र, गुजरात की कुछ लैटेराइट मिट्टियों वाले क्षेत्रों में नाइट्रोजन की प्रत्यक्ष कमी नहीं दिखाई देती परन्तु जीवांश पदार्थ के विघटन की गति धीमी होने के कारण यहां की मिट्टियों में भी उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा कम होती है। घोष एवं हसन (1980) ने दस वर्षों में 250 मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओं द्वारा 92 लाख नमूनों के परीक्षण पर आधारित आंकड़े एकत्रित कर भारतीय मिट्टियों की नाइट्रोजन उर्वरता सम्बन्धी अध्ययन किया। सारणी 4.1 में दिए गये आंकड़ों से स्पष्ट है कि 365 जिलों में से 228 जिलों की मिट्टियों में नाइट्रोजन की कमी पायी गयी शेष जिलों में से 119 जिलों की मिट्टियों का नाइट्रोजन स्तर मध्यम और 18 जिलों की मिट्टियों का स्तर उच्च पाया गया। इस आधार पर देश के 62.5 प्रतिशत जिलों में नाइट्रोजन की कमी है जबकि क्रमशः 32.6 एवं 4.9 प्रतिशत जिलों का नाइट्रोजन स्तर मध्यम एवं उच्च है। आमतौर पर भारत के उत्तरी पूर्वी भाग के आर्द्र एवं पर्वतीय क्षेत्रों तथा हिमालय पर्वत मात्रा के ऊंचे हिस्सों में स्थित अरुणांचल प्रदेश, नागालैण्ड, मेघालय, मिजोरम और हिमाचल प्रदेश की मिट्टियों में नाइट्रोजन की अधिकता पायी गयी। वन वृक्षों की वनस्पति तथा अधिक वर्षा व कम तापक्रम के कारण इन क्षेत्रों की मिट्टियों में जीवांश पदार्थ का संचय अधिक होता है। परिणाम स्वरूप इन मिट्टियों में उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होती है। भारतीय मिट्टियों में नाइट्रोजनधारी उर्वरकों और जैविक खादों के प्रयोग से उपज में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

सारणी-4.1 भारत के विभिन्न प्रान्तों के विभिन्न जनपदों की मिट्टियों का नाइट्रोजन उर्वरता स्तर

राज्य/संघ	नाइट्रोजन उर्वरता स्तर						
	निम्न	मध्यम	उच्च	निम्न	मध्यम	उच्च	कुल
	जपदों की संख्या			प्रतिशत कमी			जनपद
आंध्र प्रदेश	13	8	–	62	38	–	21
अरुणांचल प्रदेश	–	–	5	–	–	100	5
आसाम	–	9	–	–	100	–	9
बिहार	20	6	–	77	23	–	26
चण्डीगढ़	1	–	–	100	–	–	1
दादर और नगरहवेली	–	1	–	–	100	–	1
दिल्ली	1	–	–	199	–	–	1
गोवा	–	1	–	–	100	–	1
गुजरात	7	12	–	37	63	–	19
हरियाणा	11	–	–	100	–	–	11
हिमाचल प्रदेश	–	9	3	–	75	25	12
जम्मू–कश्मीर	–	10	–	–	100	–	10
कर्नाटक	9	10	–	47	53	–	19
केरल	3	7	–	30	70	–	10
मध्य प्रदेश	37	8	–	82	18	–	45
महाराष्ट्र	16	9	–	64.0	36.0	–	25
मणिपुर	–	1	–	–	100	–	1
मेघालय	–	1	–	–	100	–	1
मिजोरम	7	7	1	–	7	100	1
नागालैंड	7	–	6	–	–	100	6
उड़ीसा	4	9	–	31	69	–	–
पाण्डिचेरी	1	–	–	100	–	–	1
पंजाब	12	–	–	100	–	–	12

राजस्थान	25	1	–	96	4	7	26
तमिलनाडु	12	1	–	92	8	–	13
त्रिपुरा	–	3	–	–	100	–	3
उत्तर प्रदेश	47	9	–	84	16	7	56
पश्चिम बंगाल	9	4	2	60	27	13	15
कुल योग	228	119	18	62	33	5	365

स्रोतः घोष और हसन (1980)

पादप पोषण में नाइट्रोजन का महत्व

कार्बन और जल के बाद पौधों में पर्याप्त मात्रा में पाया जाने वाला तत्व नाइट्रोजन ही है। पादप–प्रोटीन में लगभग 18% नाइट्रोजन होता है। इसके कार्य इस प्रकार हैं:

(1) यह एमिनों–अम्ल, न्युक्लियोटाइड और कोएन्जाइम का संघटक है। नाइट्रोजन की कमी का प्रोटीन संश्लेषण और पादप वृद्धि पर कुप्रभाव पड़ता है। नाइट्रेट–रूप में पौधों द्वारा ग्रहण किये जाने के बाद अवकरण के फलस्वरूप यह तमाम जैविक यौगिकों का अवयव बन जाता है। पौधों में नाइट्रेट के अवकरण को निम्नवत् दर्शाया जा सकता है।

HNO_3 नाइट्रेट	+	TPN – 2H—> ट्राइफास्फोपायरेडिन न्युक्लियोटाइड	HNO_2+TPN+H_2O नाइट्राइट
HNO_2 नाइट्राइट	+	DPN – 2H—> डाइफास्पोपायरेडिन न्युक्लियोटाइड	HNO+DPN हाइपोनाइट्राइट
HNO हाइपोनाइट्राइट	+	DPN – 2H—> डाइफास्फोपायरेडिन न्युक्लियोटाइड	NH_3+DPN+H_2O हाइड्राक्सिल अमीन
HN_2OH हाइड्राक्सिल अमीन	+	DPN – 2H—> डाइफास्फोपायरेडिन न्युक्लियोटाइड	NH_3+DPN+H_2O अमोनिया

नाइट्रोजन नाइट्रेट–रिडक्टेज एन्जाइम के संश्लेषण में मदद करता है। इसी प्रकार अमोनिया आयन कुछ एन्जाइम की क्रियाशीलता को बढ़ा देते हैं।

(2) नाइट्रोजन क्लोरोफिल के संश्लेषण में भाग लेता है। यही कारण है कि नाइट्रोजन के अभाव में पौधों की पत्तियां पीली पड़ जाती हैं।

(3) नाइट्रोजन की कमी के कारण प्रकाश संश्लेषण की क्रिया प्रभावित होती है। इस प्रकार नाइट्रोजन के अभाव में पौधों में न केवल आवश्यक एमिनो–अम्लों की ही कमी हो जाती है वरन् आवश्यक कार्बोहाइड्रेट व कार्बन–तंत्र के संश्लेषण से सम्बन्धित क्रियायें भी शिथिल पड़ जाती हैं। अमोनियम–आयन की विषालुता की स्थिति में क्लोरोप्लास्ट की संरचना भी प्रभावित होती है। प्लास्टिड की आन्तरिक रचना में अत्यधिक परिवर्तन हो जाता है।

कमी के लक्षण

पौधों में नाइट्रोजन की कमी के लक्षण इस प्रकार हैः–

(1) पत्तियों का पीला पड़ना, पौधों की वृद्धि में कमी, पौधों का तकुआकार **(spindly)** होना, नाइट्रोजन की कमी के प्रमुख लक्षण हैं। फलों का रंग नाइट्रोजन की कमी के बावजूद भी सामान्य रहता है।

(2) एक गतिशील तत्व होने के कारण नाइट्रोजन पुरानी पत्तियों से नयी पत्तियों को स्थानान्तरित हो जाता है। नाइट्रोजन की कमी के लक्षण सर्वप्रथम पुरानी पत्तियों पर प्रकट होते हैं। इसी कारण यह पीलापन आमतौर पर मध्यशिरा से प्रारम्भ होकर पत्तियों के निचले भाग की ओर क्रमशः बढ़ता जाता है।

(3) उग्र–कमी की स्थिति में पीली पत्तियां भूरे रंग की हो जाती हैं जो कि अन्त में सूख कर गिर जाती हैं।

भारत में नाइट्रोजन के प्रयोग का फसलोत्पादन पर प्रभाव

पौधों के लिये आवश्यक अनेक तत्वों में नाइट्रोजन सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। हमारे देश की मिट्टियों में इस तत्व की कमी सर्वव्यापी है। अतः नाइट्रोजनधारी उर्वरकों के प्रयोग से अन्य तत्वों की तुलना में सर्वाधिक वृद्धि होती है।

नाइट्रोजन का प्रभाव फसल पर प्रत्यक्ष रूप से दिखायी देता है फिर भी प्रयुक्त नाइट्रोजनधारी उर्वरकों की क्षमता मिट्टी के प्रकार और उनके प्रबन्ध पर बहुत हद तक निर्भर करती है। एक अनुमान के अनुसार प्रयुक्त नाइट्रोजन का केवल 23 से 45 प्रतिशत भाग ही धान की फसल द्वारा उपयोग में लाया गया जबकि अन्य फसलों में नाइट्रोजन उपयोग का प्रतिशत 50 से 60 के बीच रहा। अतः फसलों द्वारा प्रयुक्त नाइट्रोजन की उपयोग क्षमता बढ़ाना नितान्त आवश्यक है। इससे सम्बन्धित तकनीक का उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

नाइट्रोजन के इस्तेमाल से धान्य फसलों, दलहनी और तिलहनी फसलों, नकदी फसलों आदि की उपज में आशातीत वृद्धि होती है। रेखा चित्र 4 में दिये गये आंकड़ों से स्पष्ट है कि कृषकों की दशाओं में 120 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हैक्टर द्वारा गेहूं और धान की उपज में प्रति किलोग्राम नाइट्रोजन द्वारा औसतन 9.8 और 12.0 किलोग्राम की वृद्धि हुई। ज्वार, मक्का और बाजरे में 50 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से नाइट्रोजन इस्तेमाल करने पर प्रति किलोग्राम नाइट्रोजन द्वारा क्रमशः 6.2, 9.7 ओर 11.1 किलोग्राम की वृद्धि हुई। 60 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से नाइट्रोजन उपयोग करने पर सरसों, सूरजमुखी ओर कुसुम की उपज में क्रमशः 4.9, 4.1 और 3.2 कि.ग्रा. की वृद्धि हुई। परीक्षणों से पता चला है कि प्रति किलोग्राम नाइट्रोजन द्वारा आलू की उपज में 50 से 80 किलोग्राम की वृद्धि होती है। चने में 20 किलोग्राम की दर से नाइट्रोजन इस्तेमाल करने पर दाने की उपज में 5.4 से लेकर 26.8 किलोग्राम की वृद्धि हुई। उन्नत विधियों द्वारा नाइट्रोजन की क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है।

प्रयोगों के परिणामों से इस तथ्य की भी पुष्टि हो चुकी है कि अनाज की अधिक उपज देनी वाली बौनी जातियों की उत्पादन क्षमता देशी जातियों की तुलना में कई गुना अधिक है। यही नहीं, अधिक उपज देने वाली बौनी जातियां देशी जातियों की तुलना में लगभग 2–3 गुनी अधिक मात्रा में पोषक तत्वों का उपयोग करती हैं और बौनी प्रकृति के कारण पौधों को गिरने का भी खतरा नहीं रहता। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की धान और गेहूं पर आधारित समन्वित योजना अन्तर्गत तथा कृषकों के खेतों पर किए गए प्रयोगों से प्राप्त परिणामों से इसकी पुष्टि हो चुकी है।

नाइट्रोजन-उपयोग-क्षमता

शस्य विज्ञान की अखिल भारतीय समन्वित योजनान्तर्गत कृषि अनुसंधान केन्द्रों एवं कृषकों के खेतों में किये गये हजारों उर्वरक परीक्षणों के आंकड़े विभिन्न फसलों की उपज वृद्धि में नाइट्रोजन के महत्वपूर्ण योगदान की पुष्टि करते हैं। यद्यपि फसलों की उपज में नाइट्रोजन के प्रयोग से सार्थक वृद्धि हुई है फिर भी प्रचलित उर्वरकों के माध्यम से प्रयुक्त नाइट्रोजन की उपयोग क्षमता काफी कम है। प्रसाद एवं थामस (1982) द्वारा संकलित शोध परिणामों से पता चला है कि धान के लिये यह क्षमता 10 से 50 प्रतिशत, गेहूं के लिये 40–91 प्रतिशत, मक्के के लिये 25 से 88 प्रतिशत, ज्वार के लिये 25–32 प्रतिशत, गन्ने के लिये 59 प्रतिशत और जूट के लिये 22–44 प्रतिशत आंकी गई। अधिकांश परीक्षणों में उपचारित और अनोपचारित (control) प्लाटों में फसल द्वारा नाइट्रोजन की अवशोषित मात्रा का अन्तर निकाल कर नाइट्रोजन उपयोग की गणना की गई। आधुनिक परीक्षणों में नाइट्रोजन के प्रयोग के आधार पर आंकलित नाइट्रोजन–उपयोग–क्षमता पहले वाली विधि की तुलना में कम आयी।

नाइट्रोजन उपयोग क्षमता को प्रभावित करने वाले कारक एवं उपयोग क्षमता बढ़ाने के उपाय

नाइट्रोजन उपयोग क्षमता पर न केवल उर्वरकों की किस्म, प्रयोग की गई मात्रा, समय एवं विधि का प्रभाव पड़ता है बल्कि यह मृदा और फसल–प्रबन्ध सम्बन्धी अनेक कारकों जैसे खेत की तैयारी, फसल की प्रजाति, बुआई एवं रोपाई का समय, पौधों की संख्या, खरपतवार नियंत्रण, जल–प्रबन्ध, फसल–सुरक्षा तथा फसल की कटाई के पहले और बाद की तकनीक का विशेष प्रभाव पड़ता है। नाइट्रोजनधारी उर्वरकों के प्रयोग से अधिकतम लाभ पाने के लिये यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि सभी आवश्यक पोषक तत्व (प्रमुख, गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्व) एक संतुलित अनुपात में फसल को सुलभ होते रहें। भारत में नाइट्रोजन और ऊपर बताये गये अनेक कारकों की आपसी अन्योन्यक्रिया से सम्बन्धित परीक्षणों के परिणाम उपलब्ध हैं जिनकी संस्तुति नाइट्रोजन–उपयोग–क्षमता बढ़ाने में की जा सकती है।

विभिन्न उर्वरकों की आपेक्षिक क्षमता

सामान्य भूमि में धान के अलावा अन्य फसलों में सभी प्रचलित नाइट्रोजनधारी उर्वरकों की क्षमता एक जैसी पाई गई है। जबकि धान में अमोनियम युक्त उर्वरक नाइट्रेटधारी उर्वरकों की तुलना में विशेष प्रभावी सिद्ध हुए हैं (प्रसाद इत्यादि, 1980)। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में धान पर किये गये परीक्षण में नाइट्रेट नाइट्रोजनधारी उर्वरक की उपयोग क्षमता 21.7 प्रतिशत और अमोनियम सल्फेट द्वारा किये गये नाइट्रोजन की उपयोग क्षमता 55.4 प्रतिशत आंकी गयी। देश के विभिन्न भागों में किये गये परीक्षणों में धान की फसल में कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट की तुलना में अमोनियम सल्फेट और यूरिया विशेष प्रभावी सिद्ध हुए। धान में नाइट्रोजन की उपयोग क्षमता में कमी उर्वरक नाइट्रोजन की अमोनिया के रूप में उत्पातन (volatilization) द्वारा हानि, नाइट्रेट के निक्षालन, जलमग्नता की दशाओं में विनाइट्रीकरण द्वारा हानि, वर्षा जल द्वारा मृदा–जल अपवाह द्वारा हानि, अविनिमेय रूप में अमोनियम का स्थिरीकरण तथा मृदा अणुजीवों द्वारा खनिज नाइट्रोजन का कार्बनिक नाइट्रोजन के रूप में परिवर्तन के कारण होती है। यूरिया और अमोनियम सल्फेट सामान्य मिट्टी में लगभग एक जैसा प्रभाव दिखाते हैं। क्षारीय भूमि में अमोनियम सल्फेट का प्रभाव यूरिया की तुलना में भी अच्छा पाया गया है। परन्तु कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट पुनः कम प्रभावकारी सिद्ध हुआ है। इस तथ्य की पुष्टि कानपुर, करनाल और अन्य मृदा लवणता अनुसंधान केन्द्रों पर किये गये प्रयोगों से प्राप्त परिणामों द्वारा हो चुकी है। क्षारीय भूमि में यूरिया उर्वरक की क्षमता में वृद्धि पर्णीय छिड़काव द्वारा की जा सकती है।

विभाजित प्रयोग

निक्षालन द्वारा नाइट्रोजन की हानि को रोकने के लिये नाइट्रोजन की सम्पूर्ण मात्रा को एक बार में देने के बजाय दो–तीन बार में देना विशेष लाभदायक सिद्ध होता है। उर्वरक देने के समय और उस अवधि में फसल की नाइट्रोजन आवश्यकता में तालमेल होना आवश्यक होता है। धान की फसल में मध्यम तथा मध्यम–दीर्घ कालीन जातियों में नाइट्रोजन का प्रयोग तीन बार में अर्थात् रोपाई के समय, किल्ले बनते समय और बालियां निकलते समय करने की संस्तुति की जाती है। दीर्घकालीन जातियों में नाइट्रोजन का प्रयोग

चार बार में और अल्पकालीन प्रजातियों में दो बार में करना चाहिये। मृदा गठन के अनुसार नाइट्रोजन के विभाजित प्रयोगों की संख्या निर्धारित की जाती है। बलुई तथा अन्य हल्की मिट्टियों में तीन बार में और भारी मिट्टियां में दो बार में नाइट्रोजन डालना विशेष उपयुक्त रहता है। जहां तक नाइट्रोजन–धारी उर्वरकों के देने के समय का प्रश्न है, उर्वरकों की प्रयोग की जाने वाली मात्रा एवं मिट्टी के गठन के अनुसार निश्चित किया जाना चाहिये। यदि उर्वरक कम मात्रा में अर्थात प्रति हैक्टर 40 किलोग्राम के लगभग प्रयोग करना है तो इसे एक ही बार में किया जा सकता है। बारानी खेती में नाइट्रोजन की पूरी मात्रा का बोआई के समय कुड़ों में इस्तेमाल विशेष कारगर होता है (सारणी 4.2)।

सारणी-4.2 अंसिंचित दशा में नाइट्रोजन प्रयोग करने की विधियों का गेहूं की 'के–227 जाति की उपज पर प्रभाव (ड्राई लैण्ड, रिसर्व स्टेशन होशियारपुर

(दो वर्ष का औसत)

प्रयोग की विधि	उपज (क्विं./है.)	
	मटियार दामेट मिट्टी	दोमट बलुई मिट्टी
बखेरकर	36.5	31.3
कूंड़ में	41.2	34.4
1/2 कूंड़ में + 1/2 पर्णीय छिड़काव	36.5	31.4
3/4 कूंड़ में + 1/4 पर्णीय छिड़काव	40.7	32.4

क्षारीय मिट्टियों में यूरिया के पर्णीय छिड़काव से लाभ होता है। करनाल में किए गये परीक्षण से प्राप्त परिणाम सारणी 4.3 में दिए गए हैं।

धान की फसल में नाइट्रोजन उपयोग क्षमता बढ़ाने के उपाय

पानी भरे धान के खेत में यूरिया या अमोनियम सल्फेट का प्रयोग सतह से 5 से.मी. गहरा पर करना चाहिये। इससे अमोनियाई नाइट्रोजन अपेक्षाक त कम आक्सीजन मिलने के कारण उतनी शीघ्रता से नाइट्रेट रूप में परिवर्तित नहीं हो पाती। अन्तर्राष्ट्रीय धान अनुसंधान संस्थान फिलीपाइन में किए गये परीक्षणों में देखा गया कि अमोनियाई नाइट्रोजन को मिट्टी की ऊपरी सतह

सारणी-4.3 क्षारीय भूमि में नाइट्रोजन देने की विधि का कल्यानसोना गेहूं की उपज पर प्रभाव

उपचार	कुल नाइट्रोजन (कि.ग्रा./है.)	उपज (क्विं./है.)
निंयत्रित	80	19.5
20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हे. भूमि में	100	25.2
40 कि.ग्रा. " "	120	36.5
60 कि.ग्रा. " "	140	45.3
20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हे. पर्णीय छिड़काव	100	42.4
40 कि.ग्रा. " " "	120	45.2
क्रान्तिक अन्तर 5 प्रतिशत		4.52

सभी उपचारों में 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टर की दर से प्रयोग किया गया।

स्रोत: ए डिकेड आफ रिसर्च, केन्द्रीय मृदा–लवणता अनुसंधन संस्थान, करनाल 1979 पृ. 73।

पर बखेर कर हैरो द्वारा थोड़ी गहराई तक मिट्टी में मिलाने से केवल 28 प्रतिशत नाइट्रोजन का उपयोग हुआ। उल्लेखनीय है कि 8–10 से.मी. गहराई तक मिलाने पर कुल नाइट्रोजन का 68 प्रतिशत फसल द्वारा उपयोग किया गया।

उल्लेखनीय है कि कुल नाइट्रोजन की लगभग 75 प्रतिशत पूर्ति केवल यूरिया द्वारा होती है। यूरया को मिट्टी में मिलाने पर जल के संयोग से अमोनियमकार्बोनेट बनता है। यह एक अस्थिर यौगिक होने के कारण पुनः आमेनियम और कार्बन डाईआक्साइड में विभाजित हो जाता है। अमोनियम नाइट्रोजन मिट्टी के श्लेषाभ (कोलाइड) पर अधिशोषित हो जाता है। इसके बाद नाइट्रीकरण क्रिया के फलस्वरूप यह नाइट्रेट रूप में परिवर्तित हो जाता है। पानी भरे खेत में नाइट्रेट–नाइट्रोजन का छीजन जल–सारण द्वारा हो जाता है। इसके बाद नाइट्रीकरण क्रिया के फलस्वरूप यह नाइट्रेट रूप में परिवर्तित

हो जाता है। पानी भरे खेत में नाइट्रेट–नाइट्रेट, नाइट्रोजन और नाइट्स आक्साइड गैस के रूप में परिवर्तित हो कर नष्ट हो जाता है।

धान की फसल में यूरिया का प्रयोग करने के पहले यदि उर्वरक की मात्रा की चार–पांच गुनी मिट्टी मिलाकर 48–72 घंटे छाया में रख दिया जाए तो यूरिया का अमाइड नाइट्रोजन अमोनियाई रूप में बदल जाएगा। फलतः इसका मिट्टी के कालाइडों पर अधिशेषण ठीक अमोनियम सल्फेट की तरह हो जाएगा।

पानी भरे धान के खेत में नाइट्रोजन हानि का विवरण रेखा चित्र 4.1 में प्रस्तुत किया गया है।

मिट्टी में निचली सतह में उर्वरक गई सुधरे तरीकों से पहुचाये जा सकते हैं। एक तो पलेवा के समय अथवा अन्तिम जुताई के समय उर्वरकों को याहं ही खेत में बखेर कर मिट्ठी में मिला दिया जाता है। इसके अलावा मडबाल, पैलेट रूप में यूरिया ब्रिकेट और यूरिया को कागज की पुड़िया के रूप में बार पौधों के बीच निश्चित गहराई में दबाकर प्रयोग किया जाता है। इन विधियों द्वारा श्रम और समय की अधिक आवश्यकता पड़ती है किन्तु नाइट्रोजन दक्षता में वृद्धि अवश्य होती है। इन विधियों द्वारा नाइट्रोजन की पूरी मात्रा का इस्तेमाल पौध की रोपाई के समय अथवा रोपाई के बाद, जब पौधे मिट्टी में पूर्ण रूप से स्थिर हो जाय, उस समय की जाती है।

(क) मडबाल का प्रयोग

इस विधि में पहले मिट्टी की गोलियां तैयार कर ली जाती है। ये गोलियां हाथ से अच्छी प्रकार रौंदी हुयी मटियार मिट्टी से बनायी जाती है। इसके बाद गोलियों के मध्य में अंगूठे की सहायता से दबाकर गड्ढानुमना स्थान बना लिया जाता है। जहां यूरिया या अमोनियम सल्फेट निर्धारित मात्रा डालकर फिर उनकी गोलियां बना दी जाती हैं जैसा कि रेखाचित्र 4 से स्पष्ट है। गोलियों की कुल संख्या की गणना कतारों और पौधों की संख्या के हिसाब से की जा सकती है। उर्वरक की इस्तेमाल की जाने वाली मात्रा के अनुसार प्रतिगोली में उर्वरक की मात्रा की जानकारी की जा सकती है।

इस विधि द्वारा प्रयुक्त उर्वरक नाइट्रोजन गोली के मध्य में बन्द पड़ा रहता है जो कि धीरे–धीरे मिट्टी में होने वाली अभिक्रिया के फलस्वरूप पौधों
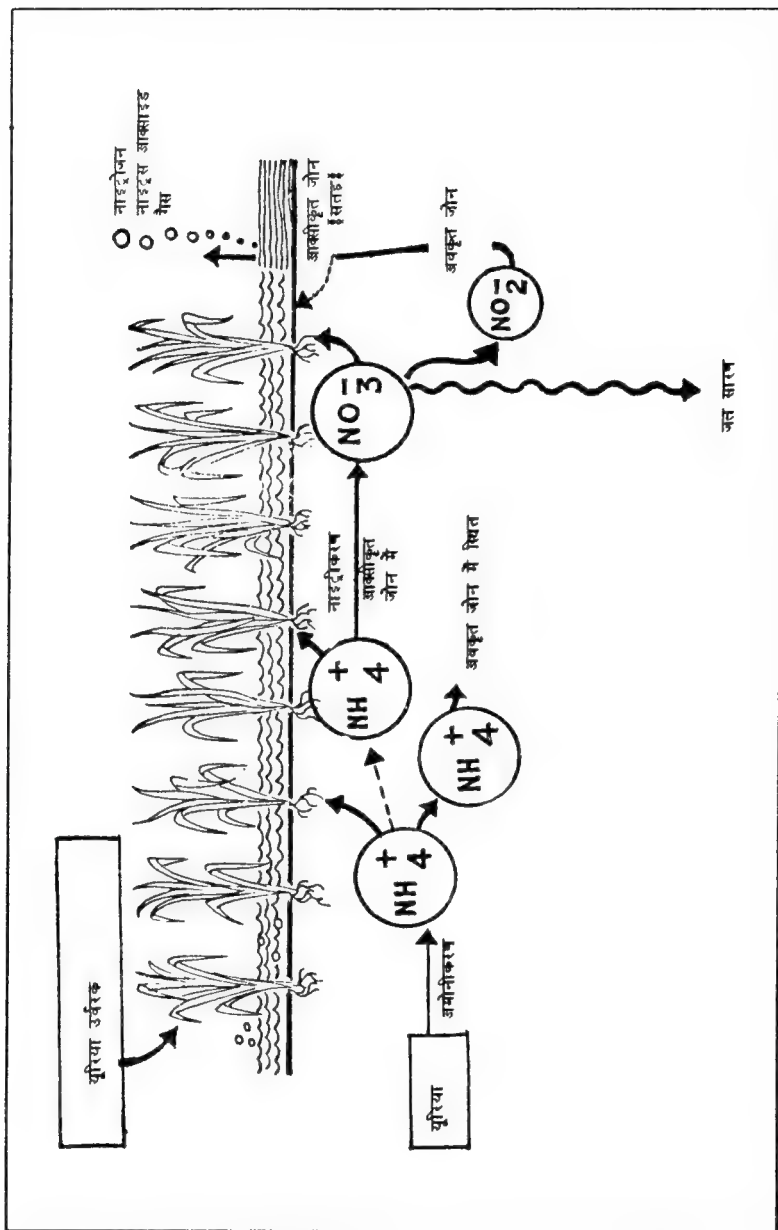
रेखाचित्र-4.1 पनी भरे धान के खेत में विनाइट्रीकरण द्वारा नाइट्रोजन की हानि

को उपलब्ध होता रहता है। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि प्रयोग करने के पूर्व गोलियों छाया में अच्छी तरह सुखा ली जाय। गोलियों को पौधों के बीच प्रति गोली के हिसाब से मिट्टी में एक निश्चित गहराई पर अंगूठे और अुगुलियों की सहायता से दबा दिया जाता है।

(ख) पैलेट रूप में प्रयोग

इस विधि में मडबाल की तरह गोलियां बनायी जाती हैं। अन्तर केवल इतना होता है कि नाइट्रोजनधारी उर्वरक रौंदी हुयी मिट्टी से तैयार गोलियों के बीच में भरने के बजाय पहले से ही अच्छी तरह तैयार मिट्टी में उर्वरक मिलाकर गोलियां बनाई जाती हैं। इस प्रकार इसमें गड्ढानुमा स्थान बनाकर उसमें उर्वरक डालने की आवश्यकता नहीं पड़ती। पैलेट बनाते समय बारीक धान की भूसी अथवा पुआल और सुपर फास्फेट की थोड़ीन मात्रा मिट्टीन में डालकर अच्छी प्रकार मिला लेते हैं। इसमें 12:1 कार्बन और नाइट्रोजन पर 240 किलोग्राम कार्बन की मात्रा होनी चाहिये। ज्ञातव्य है कि पुआल में 40 प्रतिशत कार्बन की मात्रा होनी चाहिए। सुपर फास्फेट मिला देने से यूरिया नाइट्रोजन की अमोनिया गैस के रूप में उत्पादन द्वारा हानि कम होती है। मिट्टी की मात्रा 4–5 गुनी रखी जाती है। ध्यान रहे कि मडबाल की तरह ये गोलियां भी छाये में ही सुखायी जाय। धूप में सुखाने पर अमोनिया गैस के रूप में नाइट्रोजन की हानि हो जाती है।

(ग) यूरिया ब्रिकेट का प्रयोग

यूरिया ब्रिकेट के इस्तेमाल से नाइट्रोजन की क्षमता में वृद्धि के संकेत मिले हैं। मिट्टी में ब्रिकेट का प्रयोग 8–10 से.मी. की गहराई तक किया जाता है। इस क्षेत्र में मौजूद पौधों की जड़ों द्वारा नाइट्रोजन का अवशोषण धीरे–धीरे होता रहता है।

(घ) कागज की पुड़िया के रूप में यूरिया का प्रयोग

कुछ वैज्ञानिक यूरिया की आवश्यक मात्रा को कागज में लपेटकर उसकी पुड़िया बनाकर यूरिया ब्रिकेट की भांति प्रयोग करने का परीक्षण किए हैं। इस विधि से यूरिया प्रयोग का एक ही सिद्धान्त है कि इसमें नाइट्रोजन का निस्तार मन्द गति से होता है। फलतः नाइट्रोजन की क्षमता में वृद्धि हो जाती है।

नाइट्रीकरण प्रतिरोधी उर्वरक

जैसा कि बताया जा चुका है कि धान की फसल द्वारा नाइट्रोजन का उपयोग बहुत की कम हो पाता है। ज्ञातव्य है कि नाइट्रोजन की हानि गैस रूप में नाइट्रोजन के परिवर्तन (उत्पादन), नाइट्रेट के जलसारण और विनाइट्रीकरण द्वारा हो जाती है। हाल में नाइट्रीकरण प्रतिरोधी उर्वरकों के विकास के फलस्वरूप नाइट्रोजन की क्षमता में आशातीत बढोत्तरी पायी गयी है। वैसे तो नाइट्रीकरण प्रतिरोधी उर्वरकों का मूल्य बहुत अधिक होने के कारण इनका उपयोग भारत जैसे विकासशील देश में अभी लोकप्रिय नहीं हो पाया परन्तु कुछ देशज पदार्थों जैसे नीम, करंज, महुआ आदि की खलियों का प्रयोग सुलता पूर्वक किया जा सकता है। इन खलियों का यूरिया पर लेप कर देने से नाइट्रोजन की क्षमता से आशाजनक वृद्धि देखी गयी है। संबंधित आंकड़े रेखा चित्र 4.2 में प्रदर्शित किये गये हैं।

यूरिया सुपरग्रेन्युल की क्षमता

परीक्षणों से पता चला है कि सामान्य यूरिया की तुलना में यूरिया सुपरग्रेन्युल विशेष कारगर सिद्ध होता है। जैसा कि बताया गया है कि यूरिया का इस्तेमाल 5 से.मी. की गहराई में करने पर नाइट्रोजन–उपयोग क्षमता में वृद्धि हो जाती है, परन्तु सामान्यतया यूरिया के दाने बहुत छोटे होने के कारण इसका गहराई में निवेशन कठिन होता है। यूरिया सुपरग्रेन्युल का गहराई में निवेशन सुगमता से किया जा सकता है। इसके फलस्वरूप नाइट्रोजन का छीजन गैस रूप में उत्पातन द्वारा, नाइट्रेट रूप में जलसारण द्वारा और गैस रूप में विनाइट्रीकरण द्वारा कम होता है। परिणामः नाइट्रोजन–उपयोग क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि हो जाती है। रेखा चित्र 4.3 में दिये गये आंकडों से इस कथन की पुष्टि को जाती है। यूरिया सुपरग्रेन्युल का रोपाई के एक सप्ताह के अन्दर 8–10 से.मी. की गहराई में निवेशन विशेष उपयुक्त पाया गया।

मृदा-संघनीकरण

हल्के गठन वाली मिट्टियों का संघनीकरण कर देने से मिट्टी के आभासी घनत्व में वृद्धि हो जाती है। पटनायक इत्यादि (1971) ने बताया है कि सामान्य संघनीकरण के फलस्वरूप मिट्टी का आभासी घनत्व 1.6 ग्राम प्रति घन से.मी. हो गया और 50 और 100 कि.ग्रा. प्रति है. की दर से नाइट्रोजन देने पर धान की क्रमशः 5 तथा 9 क्विं. प्रति है. अतिरिक्त उपज मिली।

नाइट्रोजन का समाकलित प्रबन्ध

गोबर की खाद और अन्य आदानों की उपज वृद्धि में भूमिका

उर्वरकों की कमी की स्थिति में गोबर की खाद और अन्य आदानों का नाइट्रोजनधारी उर्वरकों के पूरक के रूप में समुचित उपयोग नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है। भारत में किये गये स्थायी उर्वरक परीक्षणों से जैविक खादों के अकेले तथा नाइट्रोजन के साथ उपयोग करने पर लाभदायी परिणामों की पुष्टि हुयी है। जिनका उल्लेख अग्रवाल औरप बेक्टेश्वर्लू (1989) नाम्बियार एवं अब्राल (1988), पण्डा एवं साहू (1989) तथा सरकार एवं सहयोगियों (1989) ने किया है। शर्मा और मित्रा (1990) ने खड़कपुर में गोबर की खाद (1.83–0.23–2.04 प्रतिशत N, P, K), जलकुम्भी की खाद (1.99–0.39–2. 57 प्रतिशत N,P,K) तथा धान के पुआल (0.54–0.10–1.36 प्रतिशत N, P, K) का प्रभाव 30 किलोग्राम नाइट्रोजन के साथ देखा। गोबर की खाद और जलकुम्भी की खाद का प्रयोग 10 टन प्रति हैक्टर और धन के पुआल का प्रयोग 2.5 टन प्रति हेक्टर की दर से किया गया। धान के पुआल, गोबर की खाद और जलकुम्भी की खाद के साथ 30 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रयोग करने पर प्राप्त उपज 90 किलोग्राम नाइट्रोजन के बराबर रही। सम्बन्धित आंकड़े सारणी 4.4 में दिये गये हैं।

जिन उपचारों में जैविक खादों का प्रयोग किया गया उनसे अनुगामी गेहूं की फसल भी लाभान्वित हुयी जबकि उर्वरक उपचारों में ऐसा नहीं पाया गया।

बायोगैस संयंत्र से प्राप्त खाद की उपयोगिता

भारत में इस समय बायोगैस के एक लाख से अधिक संयत्र लगे हुये हैं। गोबर–गैस संयंत्र एक सामान्य मशीन है, जिसमें हवा की अनुपस्थिति में जैव सामग्रियों, खासकर साग–सब्जियों की रेशोदार छीजनों, गो–पशुओं का गोबर, मुर्गियो की बीटें, रसोई घर की छीजन और अनेक वानस्पितिक पदार्थों से खमीर बनाकर गैस तैयार की जाती है। गोबर गैस में मेथेन, कार्बन डाई ऑक्साइड, कुछ हाइड्रोजन सल्फाइड और अन्य गैसे हैं। बची–खुची सामग्री हलके काले रंग की तरल गन्धरहित और नाइट्रोजन बाहूल्य ह्यूमस होती है, जो खाद के रूप में इस्तेमाल की जाती है। प्राप्त गैस ज्वलनशील होती है, जो ईंधन के रूप में इस्तेमाल की जाती है।

सारणी-4.4 कार्बनिक सामग्री और नाइट्रोजन की विभिन्न मात्राओं का धान की उपन पर प्रभाव

उपचार (नाइट्रोजन कि.ग्रा./है.)	दान की उपज (क्विं/है.)
0	27.31
30	33.40
60	38.15
90	41.26
120	42.49
धान का पुआल 10 टन/हे.+30 कि.ग्रा. ना./हे.	34.65
गोबर की खाद 10 टन/हे.+30 कि.ग्रा. ना./हे.	37.52
जलकुम्भी की खाद+30 कि.ग्रा. ना./हे.	38.07
धान का पुआल+गोबर की खाद+जलकुम्भी की खाद+30 कि.ग्रा. ना./हे.	40.90
क्रान्तिक अन्तर	3.34

स्रोतः शर्मा एवं मित्रा (1990)

गोबर–गैस संयंत्र से निकलने वाले गोबर (खाद) में 1.5 प्रतिशत नाइट्रोजन होती है, जबकि कम्पोस्ट विधि द्वारा तैयार खाद में केवल 0.5 प्रतिशत नाइट्रोजन होती है। ज्ञातव्य है कि कच्चे गोबर में भी नाइट्रोजन 0. 75 प्रतिशत ही पायी जाती है। इसके अलावा गोबर–गैस संयंत्र से निकले गोबर में जीवांश पदार्थ की मात्रा अधिक होती है। इन लाभों के अलावा गोबर–गैस से तैयार खाद से वे सारे ही लाभ मिलते हैं, जोकि गोबर की खाद या कम्पोस्ट से प्राप्त होते हैं देखे सारणी 4.5।

हरी खाद का प्रभाव

हमारे देश में हरी खाद का प्रयोग प्राचीन काल से होता आ रहा है। हां, बहुफसली कृषि प्रणाली के प्रवलन के बाद हरी खाद का महत्व कम हो गया क्योंकि पहले खरीफ के मौसम में उगायी जाने वाली हरी खाद की फसलों

सारणी-4.5 साधारण कम्पोस्ट की तुलना में बायोगैस संयंत्र से प्राप्त तरल खाद के इस्तेमाल का फसलों की उपज पर प्रभाव

फसल	उपज (कि.ग्रा. प्रति है.)	
	कम्पोस्ट	गोबर गैस संयंत्र की तरल खाद
धान	5139	5473
मक्का	4389	4780
गेहूं	3358	3870
कपास	1148	1329
सरसों	2009	2222

स्रोतः हेसे, पी.आर. और मिश्रा, ओ.पी., इम्प्रूविंग स्वायल फर्टिलिटी थ्रो आर्गनिक रिसाइक्लिंग, प्रोजेक्ट फील्ड डाकुमेंट नं 14, एफ.ए.ओ.।

का स्थान अनाज वाली फसलों ने ले लिया। उर्वरकों के मूल्य में वृद्धि तथा उत्तर भारत में धान–गेहूं फसल चक्र में दिनोदिन मृदा–उर्वरता ह्रास को देखते हुये हरी खाद का महत्व कुछ वर्ष पूर्व पुनः बढ़ा है। उत्तर प्रदेश (तिवारी इत्यादि 1980) तथा पंजाब (मीलू तथा मौरिश 1983, रेखी तथा मीलू 1980) में किये गये परीक्षणों से पर्याप्त आंकड़े उपलब्ध हैं जिनसे स्पष्ट हो गया है कि गर्मी के मौसम (मई–जून) में ढैंचा की हरी खाद तैयार करके धान की फसल लेने पर 60 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की बचत की जा सकती है। इन परीक्षणों में 60 किलोग्राम नाइट्रोजन + ढैंचा की हरी खाद के अर्न्तगत प्राप्त उपज 120 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टर के बराबर रही। कानपुर में किए गए परीक्षणों के परिणाम रेखाचित्र 4.2 में दिए गये हैं।

गोस्वामी एवं सहयोगियों (1988) ने धान में हरी खाद के प्रभाव सम्बन्धी परिणामों का उल्लेख किया है जिसमें 120 किलोग्राम नाइट्रोजन द्वारा प्राप्त उपज 60 किलोग्राम नाइट्रोजन + हरीखाद की तुलना में कम पायी गयी। सम्बन्धित आंकड़े सारणी 4.6 में दिये गये हैं। इन आंकड़ों से यह भी स्पष्ट है कि 60 किलोग्राम नाइट्रोजन के साथ हरी खाद देने पर केवल धान की

फसल ही लाभान्वित नहीं होती बल्कि अनुगामी गेहूं की फसल पर भी इनका अनुकूल प्रभाव पड़ता है। धान–गेहूं फसल चक्र में अधिकतम उपज तथा मृदा–उर्वरता अनुरक्षण के लिये हरी खाद का प्रयोग बरदान सिद्ध हो रहा है।

सारणी-4.6 गर्मी में खाली खेत और हरी खाद का धान और अनुगामी गेहूं की उपज पर प्रभाव

धान में नाइट्रोजन प्रयोग की दर कि.ग्रा./हे.	धान की उपज (क्विं./है.)		गेहूं की उपज (क्विं/हे.)	
	गर्मी में खाली खेत	हरी खाद	गर्मी में खाली खेत	हरी खाद
0	47	55	40	40
60	57	61	40	43
120	59	65	43	45

क्रान्तिक अन्तरः हरीखाद x नाइट्रोजन

1.8 1.3

स्रोतः गोस्वामी इत्यादि (1988)

दलहनी फसलों एवं उनके अवशेषों का प्रभाव

दलहनी फसलों के अवशेषों को मिट्टी में मिला देने से अनुगामी अनाज वाली फसलों की उपज में वृद्धि हो जाती है। जान एवं सहयोगियों द्वारा प्राप्त आंकड़ों का उल्लेख प्रसाद (1990) ने किया है जो कि सारणी 4.7 में दिया गया है। इस परीक्षण में लोबिया की फलियां तोड़ने के बाद पौधों को खेत में जोतकर मिला देने से धान की फसल को प्रति हेक्टर 44 से 50 किलोग्राम नाइट्रोजन मिल गया जिससे इसकी उपज और फसल द्वारा नाइट्रोजन अवशोषण में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। लोबिया की हरी खाद से नाइट्रोजन की 34 से 54 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर पूर्ति हुई।
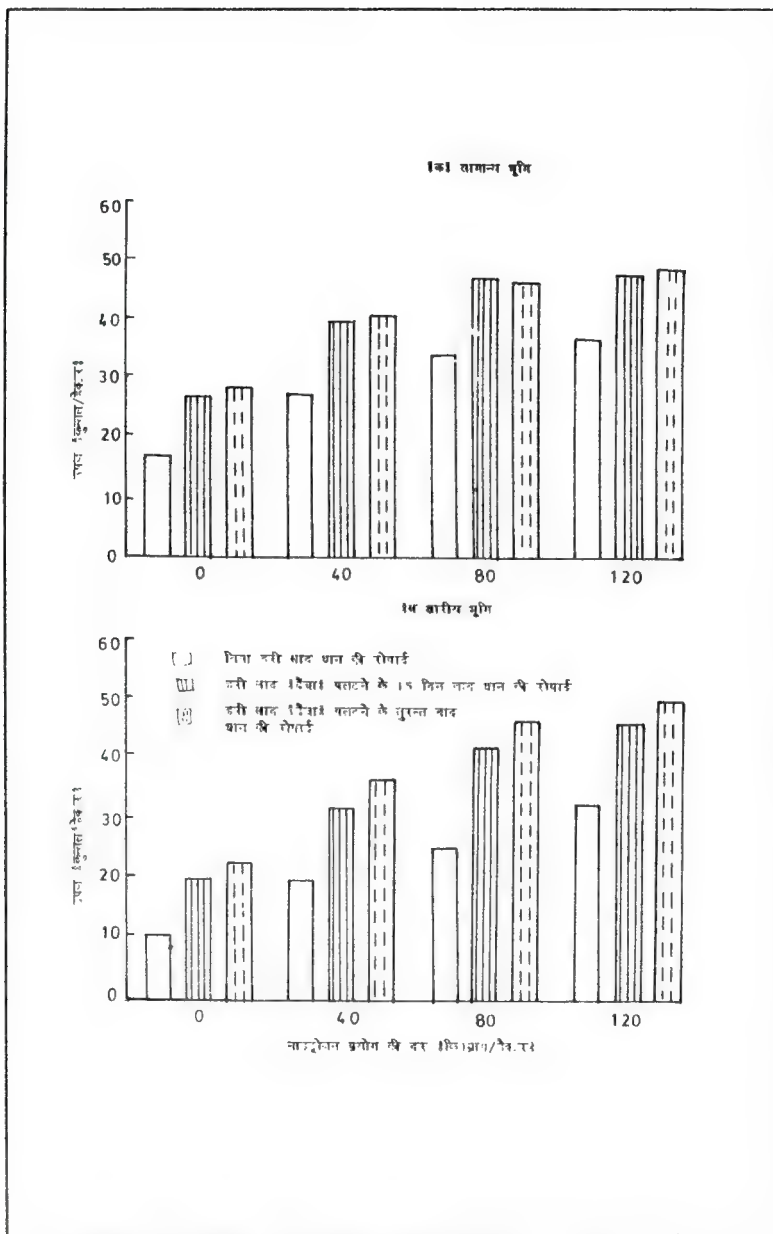
रेखाचित्र-4.2 नाइट्रोजन तथा हरीखाद का धान की उपज पर प्रभाव

सारणी-4.7 लोबिया की हरी खाद या अवशेष का धान की उपज पर प्रभाव

उपचार	दाने की उपज क्विं/हे.		नाइट्रोजन अवशोषण (कि.ग्रा./हे.)	
	1986	1987	1986	1987
1. पलिहर	4.8	4.5	78.9	76.5
2. लोबिया का अवशेष हटाने पर	4.9	4.5	78.7	79.2
3. लोबिया का अवशेष खेत में मिला देने पर	5.5	5.2	99.6	95.2
4. लोगिया की हरी खाद	5.7	5.4	100.6	99.9
क्रान्तिक अन्तर	0.6	0.3	10.9	5.7

लुधियाना में किये गये परीक्षणों में मूंग की फसल से पकी फलियां तोड़ लेने के बाद पौधों को पलट कर मिट्‌टी में मिला देने की उपरान्त ली गयी धान की उपज में प्रति हैक्टर 10 क्विंटल की बढ़ोत्तरी हुयी। देखे रेखा चित्र 4.3।

जैव उर्वरकों का योगदान

नीलहरित शैवाल और एजोला द्वारा उपज वृद्धि

नील हरित शैवाल और एजोला के इस्तेमाल से धान की उपज में उल्लेखनीय वृद्धि होती है और नाइट्रोजन की मात्रा में कटौती की जा सकती है। भारत में किये गये परीक्षणों से पता चला है कि नीलहरित शैवाल से अनुमान प्रति हैक्टर 10 से 40 किलोग्राम (औसत 30 कि.ग्रा.) नाइट्रोजन का यौगिकीकरण होता है। नाइट्रोजन यौगिकीकरण के अलावा नीलहरित शैवाल द्वारा अनेक विटामिनों और वृद्धि–पदार्थों, आक्जीन्स (एस्कार्बिक अम्ल) का संश्लेषण और उत्सर्जन होता है, जिसका पौधों की वृद्धि पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। कानपुर में नीलहरित शैवाल के इस्तेमाल से धान की उपज में होने वाली वृद्धि का अनुमान रेखाचित्र 4 में दिये गये आंकड़ों से लगाया जा सकता है।
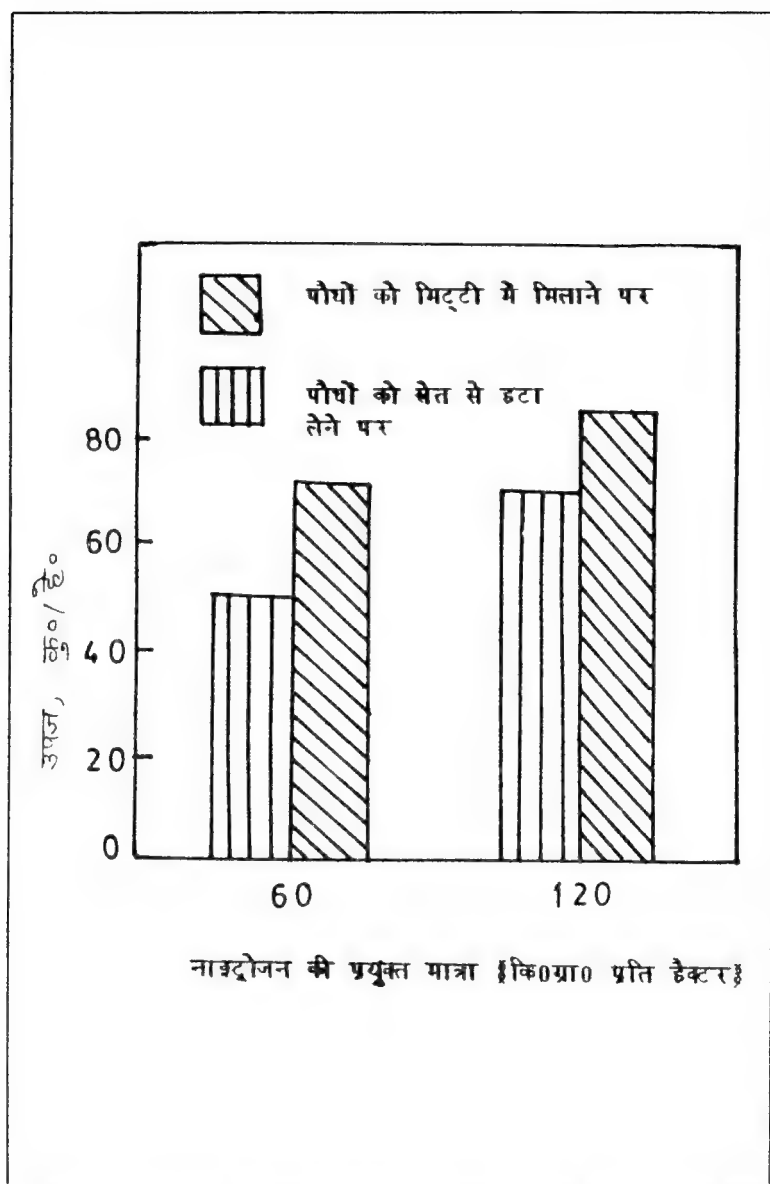
रेखाचित्र-4.3 मूंग के पौधों को मिट्टी में मिला देने और हटा लेने पर धान की उपज पर प्रभाव
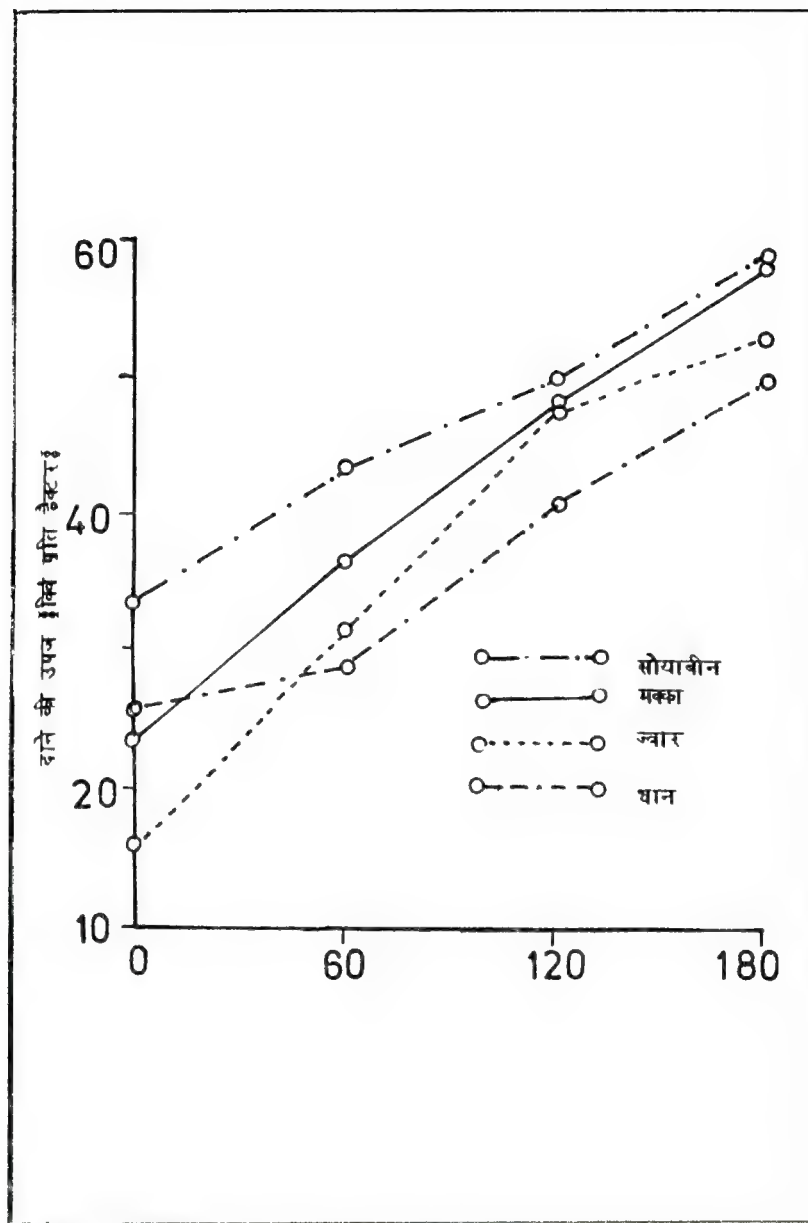
रेखाचित्र-4.4 खरीफ फसलों में प्रयुक्त नाइट्रोजन का गेहूं की उपज पर प्रभाव

एजोला एक जलीय फर्न है। यह "एनाबीना एजोली" नामक नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले नीलहरित शैवाल को पृठीय पत्तियों के खोहों में पाया जाता है। नीलहरित शैवाल ओर ऐजाला के पारस्परिक सहजीवन के फलस्वरूप वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण होता है। केन्द्रीय धान अनुसंधान संस्थान कटक में किये गये परीक्षणों से धान की उपज बढ़ाने में एजोला के लाभकारी प्रभाव की पुष्टि हुई है। खेत में एजोला का 0.1 से 0. 4 किलोग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से निवेशन करने पर इसका विकास इतनी तेजी से होता है। कि 8 से 20 दिन के अन्दर एक हैक्टर से 8 से 15 टन हरा पदार्थ प्राप्त हो जाता है और साल भर में 347 टन हरा पदार्थ प्राप्त होता है, जिसमें 868.5 किलोग्राम नाइट्रोजन होती है। उल्लेखनीय है कि हरे पदार्थ में 0.2 से 0.3 प्रतिशत नाइट्रोजन और शुष्क पदार्थ में 4 से 5 प्रतिशत नाइट्रोजन पायी जाती है। एजोला के पौधों में नाइट्रोजन के अलावा शुष्क पदार्थ में 0. 5 से 0.9 प्रतिशत फास्फोरस, 2 से 45 प्रतिशत पोटैशियम, 0.4 से 1 प्रतिशत मैग्नीशियम, 0.11 से 0.16 प्रतिशत मैंगनीज और 0.06 से 0.26 प्रतिशत लोहा पाया जाता है। अतः स्पष्ट है कि एजोला से नाइट्रोजन के साथ ही अन्य आवश्यक पोषकतत्वों की पूर्ति होती है। एजोला के इस्तेमाल से धान की उपज में प्रति हैक्टर औसतन 0.5 से 2 टन की वृद्धि होती है।

फास्फोरस और पोटैशियम के संतुलित उपयोग का प्रभाव

भारत में किये गये परीक्षणों से इस तथ्य की भलीभांति पुष्टि हो चुकी है कि फास्फोरस और पोटैशियम के संतुलित प्रयोग से नाइट्रोजन की उपयोगक्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। कृषकों के खेतो में किये गये हजारों परीक्षणों से प्राप्त आंकड़े सारणी 4.8 में दिये गये हैं। जिनसे उपरोक्त कथन की पुष्टि हो जाती हैं

गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की पर्याप्त पूर्ति

भारत में गंधक और जिंक की व्यापक कमी के प्रमाण मिले हैं। कुछ क्षेत्रों में तांबा, मैंगनीज, लोहा और बोरॉन की भी कमी देखी गयी है। इसका विस्तृत विवरण अध्याय 8 में दिया गया है। यदि खेत में किसी गौण या सूक्ष्मपोषक तत्व की कमी हो तो ऐसी दशा में इस तत्व की कमी को दूर किए बिना उर्वरक–नाइट्रोजन की उपयोग–क्षमता काफी कम हो जाती है। विश्वास

सारणी-4.8 फास्फोरस और पोटेशियम की अनुपस्थिति एवं उपस्थिति में नाइट्रोजन के प्रति गेहूं की अनुक्रिया

नाइट्रोजन/फास्फोरस/पोटेशियम किलोग्राम प्रति हैक्टर	प्रति किलोग्राम नाइट्रोजन द्वारा उपज में वृद्धि (किलोग्राम)
(क) सिंचित (6869 परीक्षणों का औसत)	
120+0+0	8.6
120+60+0	14.0
120+60+60	16.3
(ख) असिंचित (954 परीक्षणों का औसत)	
50+0+0	9.6
50+25+0	15.8
50+25+25	17.4

स्रोतः टण्डन (1980)

एवं सहयोगियों (1985 ने कुछ फसलों में कैल्शियम और मैग्नीशियम की आवश्यकता के बारे में भी प्रकाश डाला है।

समय पर बुआई/रोपाई

फसलों की समय पर बुआई करना अधिक उपज तथा उर्वरक उपयोग क्षमता के लिए महत्वपूर्णकारक माना जाता है। भारत में किये गये परीक्षणों से प्राप्त परिणामों से इस कथन की पुष्टि हो चुकी है। ब्रार तथा वेला (1969) ने व्यक्त किया है कि मध्य नवम्बर के बाद से मध्य दिसम्बर तक एक दिन का गेहूं की बुआई में विलम्ब हो जाने पर आधार क्विंटल प्रति हे प्रति दिन की दर से दाने की उपज में कमी हो जाती है। इसी प्रकार संकर ज्वार की उपज में सिंह एवं सहयोगियों (1981) ने विलम्ब से बुआई की दशा में 3 क्विंटल प्रति हे प्रति दिन की दर से कमी आंकी।

जल प्रबन्ध

भारत में यद्यपि सिंचित क्षेत्र में काफी वृद्धि हुयी है। परन्तु सिंचाई जल का उपयोग कुशलता पूर्वक नहीं हो पा रहा है। जहां एक ओर लाखों हेक्टरप क्षेत्रफल असिंचित है वहीं दूसरी ओर शेष क्षेत्रों में जल का दुरूपयोग हो रहा है। उर्वरकों से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिये उचित नमी का होना आवश्यक होता है। ऐसा न होने पर उर्वरक–उपयोग क्षमता घट जाती है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में किये गये परीक्षणों से प्राप्त परिणाम सारणी 4.9 में दिये गये हैं। जिनसे स्पष्ट है कि 50 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टर तथा एक सिंचाई करने पर प्राप्त उपज, बिना नाइट्रोजन 4 सिंचाई करने के बराबर रही। इसी प्रकार 100 किलोग्राम नाइट्रोजन के साथ दो सिंचाई करने पर प्राप्त उपज 50 किलोग्राम नाइट्रोजन तथा 4 सिंचाइयों के बराबर पायी गयी।

सारणी-4.9 नाइट्रोजन और सिंचाई अन्योन्य क्रिया का गेहूं की उपज पर प्रभाव

नाइट्रोजन प्रयोग की दर	सिंचाईयों की संख्या			
(कि.ग्रा. प्रति हे.)	0	1	2	4
0	25.7	39.1	39.2	43.6
50	28.9	43.0	44.8	49.0
100	29.9	43.3	49.4	53.1
क्रांतिक अन्तर 5%				

स्रोतः लाल (1986)

खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार काफी मात्रा में पोषक तत्वों का उपयोग कर लेते हैं। इस प्रकार ये उर्वरक उपयोग क्षमता को दो प्रकार से प्रभावित करते हैं अर्थात् फसलों की उपज घटाकर और पोषक तत्वों की हानि करके। आलू की फसल में खरपतवारों द्वारा पोषक तत्वों की कमी और आलू द्वारा पोषक तत्वों के उद्ग्रहण–सम्बन्धी आंकड़े सारणी 4.10 में दिये गये हैं।

सारणी-4.10 आलू को फसल में खरपतवारों द्वारा प्रमुख पोषक तत्वों का ह्रास

(कि.ग्रा. प्रति हेक्टर)

उपचार	खरपतवारों द्वारा पोषक तत्वों का ह्रास			आलू द्वारा पोषक तत्वों का उदग्रहण		
	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश
1. खरपतवार नहीं निकाले गये	96.3	16.1	98.5	59.9	4.9	66.2
2. निकाई गुड़ाई द्वारा खरपतवर नियंत्रण	45.1	7.2	40.5	117.4	11.4	135.0
3. 70 दिन बाद पैराकाट 0.36 कि.ग्रा. प्रति हे	27.2	4.7	27.9	126.7	12.2	145.0
क्रान्तिक अन्तर	14.8	3.1	10.1	18.6	1.8	21.4

नोट: सभी प्लाटों में नाइट्रोजन फास्फोरस और पोटेशियम का प्रयोग क्रमश: 95:40 और 120 किलोग्राम प्रति हेक्टर की दर से किया गया।

स्रोत: निम्जे इत्यादि (1987)

भविष्य में नाइट्रोजन के कुशल उपयोग का महत्व और बढ़ेगा। जैसा कि अनुमान है कि वर्ष 2000 तक भारत में पोषक तत्वों (N, P2O5, K2O) की खपत 160 से 220 लाख टन हो जाएगी जिसमें 110 से 150 लाख टन केवल नाइट्रोजन का हिस्सा होगा। अत: नाइट्रोजन उपयोग क्षमता में वृद्धि का महत्व उत्पादन क्षमता में वृद्धि के समान ही समझा जाना चाहिये। सारणी 4.11 में दिये गये आंकड़ों से पता चलता है कि नाइट्रोजन उपयोग क्षमता में 10 प्रतिशत की वृद्धि (50 से 60 प्रतिशत करने पर) हो जाने से वर्तमान खपत स्तर पर नाइट्रोजन की अतिरिक्त उपलब्धि इतनी हो जायेगी कि यह एक बहुत बड़े यूरिया संयंत्र लगाने के समतुल्य होगी। नब्बे के दशक के मध्य में जब नाइट्रोजन की खपत 100 लाख टन के बराबर पहुचेगी तब नाइट्रोजन की उपयोग क्षमता में 10 प्रतिशत की वृद्धि होने पर यूरिया की अतिरिक्त उपलब्धि तीन यूरिया संयंत्रों के समतुल्य हो सकती है।

सारणी-4.11 भारत में 1988–2000 की अवधि में नाइट्रोजन की बढ़ती खपत के अनुसार नाइट्रोजन उपयोग क्षमता में वृद्धि द्वारा नाइट्रोजन की सम्भावित बचत

नाइट्रोजन की वार्षिक खपत (लाख टन में)	क्षमता में वृद्धि (%) (अर्थात 50% से 60% =10)	नाइट्रोजन की सम्भावित बचत	
		नाइट्रोजन लाख टन	फैक्ट्री के समतुल्य (1=334,000 टन नाइट्रोजन प्रतिवर्ष)
60	10	6	1.8
	15	9	2.7
	20	12	3.6
80	10	8	2.4
	15	12	3.6
	20	16	4.8
100	10	10	3.0
	15	15	4.5
	20	20	6.0
120	10	12	3.6
	15	18	5.4
	20	24	7.2
140	10	14	4.2
	15	21	6.3
	20	28	8.4
160	10	16	4.8
	15	24	7.2
	20	32	9.6

स्रोतः टण्डन (1989)

जिनमें से प्रत्येक की वार्षिक क्षमता 334000 टन नाइट्रोजन है।

सन्दर्भ-साहित्य

Acharya, C.M., Sahu, S.R., Mishra, B., Singh, M. & Patrudu (1978). *Indian J. Agric. Sci.* **48** : 103.

Aggarwal, R.K. & Venkateswarlu (1989). *J. Fert. News* **34** (4) : 67-70.

Badigar, V.C. & Patil, S.U. (1968). *Mysore J. Agric. Sci.* **2** : 85.

Biswas, B.C., Yadva, D.S. & Maheshwari, S. (1985). *Fert. Res.* **30** (7) : 15-36.

Brar, H.S. & Chela, K.S. (1969). Ann. Rep. Dept. of Agronomy, 1968-69, Punjab Agric. Univ. Hissar.

Bremner, J.M. & Shaw, K. (1958). *J. Agri. Sci.* (Camb), **51** : 22-32.

Datta, N.P., Banerjee, N.K. & Prasad, Rao, D.M.V. (1971). Int. Symp. Soil Fertility Evaluation, **1** : 631-638.

Dhar, N.R. (1960). Trans. 7th Int. Congr. Soil Sci. **3** : 314.

Dhar, N.R. (1961). Proc. 48th *Indian Sci. Congr.* **1** : 32.

Dandhi, A.P. & Paliwar, K.V. (1976). *Pl. Soil,* **45** : 247.

Ghosh, A.B. & Hasan (1980). *Fertil. News* **25** (11), 19.

Goswami, N.N. Prasad, R., Sarkar, M.C. & Singh, S.J. (1988). *Agric. Sci. Camb.* **111** : 413-417.

Gupta, S.P. (1955). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **3** : 29.

Hutchinson, G.E. (1944). In the Solar System, The earth as a planet, Vol. II (Univ. Chicago Press, Chicago.

Hutchinson, G.E. (1954). The Biochemistry of Terrestrial Atmosphere, The Earth as a planet. Univ. Chicago Press, Chicago.

Ingham, G. (1950. *Soil Sci.* **70** : 250.

Jenny, H. & Raychaudhari, S.P. (1960). Effect of climate and cultivation on nitrogen and organic matter Reserves in Indian Soils ICAR, New Delhi.

Kanwar, J.S. (1976). In Soil Fertility-Theory and Practice, J.S. Kanwar, Ed., Indian Council of Agricultural Research New Delhi.

Kimble, J.M. Bartlett, R., Mc. Ingtosh, J.L. & Varney, K.E. (1972). J. Envornmental Quality **1** : 413-415.

Lal, R.B. (1986). Ann. Rep. Div. of Agronomy, IARI, New Delhi p. 2.

Malo, B.A. and Purvis, E.R. (1964). *Soil Sci.* **97** : 242.

Mandal, S.R. (1971). Ph.D. Thesis, IARI, New Delhi.

Meelu, O.P. & Morris, R.A. (1983). *Fert. News.* **29** (12) : 65-70.

Minhas, R.S. and Bora, N.C. (1982). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **30** : 135.

Nambiar, K.K.M. & Abrol, I.P. (1988). *Fert. News* **34** (4) : 11-26.

Nimje, P.M., Seshachalam, N. and Nalowadmath, S.K. (1987). *Indian J. Agron.* **22** : 397-400.

Nommik, H. (1956). *Acta. Agr. Seand,* **6** : 195-228.

Palaniappan, R. & Raj, D. (1973). *Madrad Agr. J.* **60** (2) : 86-89.

Panda, N. & Sahoo, D. (1989). *Fert. News* **34** (4) : 39-44.

Patnak, A.N. & Srivastava, H.S. (1963). *Agra. Univ. J. Res.* **12** (2) : 99-100.

Pathak, A.N., Shanker, H. & Awasthi, K.S. (1961). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **9** (3) : 197-200.

Prasad, RAjendra (1990). Proc. FAI Seminar "Fertilizer Scene in Nineties". December 6-8, New Delhi.

Prasad, R. & Rajale, G.B. (1972). Soil Biol Biochem **4** : 451-457.

Prasad, R. & Thomas, J. (1982). In Review of Soil Research in India, Part I, *Indian Soc. Soil Sci.,* New Delhi p. 309.

Raom, M.M. & Sharma, K.C. 1978). *J. Indian Soc., Soil Sci.* **26** : 44.

Rayleigh, L. (1939). *Proc. R. Soc. Lond. Sec. A.* **170** : 451.

Reddymk S. & Venkateswarly J. (1970. *Indian Soc. Soil Sci. Bull.* No. 8, 255-258.

Rekhi, R.S. & Meelu, O.P. (1983). *Oryza* **20** : 125-129.

Shankaracharya, N.B. & Mehta, B.V. (1969). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **19** (1) : 93-94.

Sarkar, M.C. & Singh, Verma, R.N. (1973). *Indian J. Agric. Chem.* **6** : 18-22.

Sarmar, A.K., Mathur, B.S. & Singh, K.P. (1989). *Fert. News* 34 (4) : 71-80.

Sen, A., Rewari, R.B. & Pandey, S.L. (1957). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **5** : 109.

Setty, R.A., Baligar, V.C. & Patil, S.V. (1970). Mysore *J. Agr. Sci.* **4** (1) : 111-113.

Sharma, A.R. & Mittra, B.N. (1990). *Fert. News* **35** (2) : 43-51.

Shukla, G.C. & Singh, M. (1968). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **16** : 77.

Singh, B. & Sekhon, G.S. (1976). *Agri. Environ,* **3** : 57.

Singh, R.A. & Singh, B.N. (1969). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **17** : 457.

Singh, S.P., Pal, V.R. Umrani, N.K. & Upadhyay, U.C. (1981). Quarter Century of Agronomic Res., *Indian Soc. Agron.* p. 130-139.

Stevenson, F.J. (1965). In Soil Nitrogen (W.V. Bartholomew & F.E. Clark, Eds) Am. Soc. Agron. Madison, Wisconsin.

Tandon, H.L.S. (1974). *Fertilizer News,* **19** (8) : 14-21.

Tandon, H.L.S. (1980). *Fert. News* **25** (10) : 45-78.

Tandon, H.L.S. (1989). *Fert. News* **34** (12) : 63-71.

Tandon, H.L.S. (1991). *Fert. News* 36.

Tiwari, K.N., Pathak, A.N. & Tiwari, S.P. (1980). *Fert. News.* **25** (3) : 3-20.

Tusneein, M.E. & Patrick, W.H. Jr. (1971). *La. Agr. Exp. Sgn. Bull,* 657.

Venkatraman, G.S. (1975). Nitrogen fixation in free living microorganisms (W.D.P. Stewart, Ed.) Camb. Univ. Press, Cambridge, p. 207.

Venkataraman, G.S. (1979). In nitrogen and Rice, IRRI, Los Banos Laguna, Philippines, p.311.

Wigler, J.N. & Dalwiche, C.C. (1954). Plant Soil, **36** : 159-175.

अध्याय-5

फास्फोरस

"फास्फोरस' नाम दो ग्रीक शब्दों से मिलकर बना है--फास (प्रकाश) + फोर (वहन करना), जिसका अर्थ है "मैं प्रकाश वहन करता हूं"। कुछ लोगों का मत है कि बारहवीं शताब्दी में ही अरब कीमियागार इस तत्व से परिचित थे, किन्तु रसायन के क्षेत्र में इसे परिचित कराने का श्रेय जर्मन वैज्ञानिक बैंड्रट (1669) को है। आधुनिक रसायन के जन्म से सैकड़ों वर्ष पूर्व अस्थियों, गुजानों तथा मछली की खाद का प्रयोग मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए होता रहा है।

सुप्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक जस्ट्न वान लीबिग ने 1840 में खनिज सिद्धान्त **(Mineral Theory)** द्वारा पादप–उपापचय में खनिज पोषण को सर्वाधिक महत्वपूर्ण बताया। यह उन्हीं का सुझाव था कि अस्थियों को अम्ल से उपचारित करके उनके फास्फोरस को अधिक विलेय बनाया जा सकता है। शायद इस अकेली खोज को आधुनिक उद्योग की नींव का सारा श्रेय देना अतिशयोक्ति न होगा। इसी सुझाव पर जॉन बेनेट लाज (एक अंग्रेज कृषक) ने 1842 में सुपर फास्फेट तैयार कराने का पहला पेटेण्ट कराया।

फास्फोरस को "कृषि की कुंजी" कहा गया है। सूक्ष्म जीव, पौधे, पशु तथा मनुष्य, सबको फास्फोरस की आवश्यकता पड़ती है। पौधों के लिए फास्फोरस का जो महत्व है वह अन्य किसी तत्व द्वारा पूरा नहीं हो सकता है। मिट्टियों में जनक शैल के अतिरिक्त फास्फोरस प्राप्ति का कोई दूसरा साधन नहीं है। बाहुल्य के अनुसार आग्नेय चट्टानों में फास्फोरस का स्थान ग्यारहवां, उल्काओं में तेरहवां और सूर्य–मण्डल में चौबीसवां है।

फास्फोरस का बाहुल्य (भार प्रतिशत)	
उल्का में	0.18–0.19
आग्नेय चट्टानों में	0.1

अवसादी चट्टानों में	
बलुहा पत्थर	0.04
लाल मृत्तिका	0.14
शेल	0.08
चूना पत्थर	0.02
पृथ्वी की सतह	0.1–0.12

स्रोत: मिश्र, शिवगोपाल (1974), फास्फेट, उ.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी पृष्ठ सं.–34।

केवल लौह उल्काओं में यह तत्व–रूप में पाया जाता है अन्यथा पृथ्वी की सतह पर यह अर्थोफास्फेट के रूप में पाया जाता है। समुद्र की तुलना में भू–पपड़ी में 40,000 गुना अधिक फास्फोरस होता है।

मिट्टियों में फास्फोरस

मिट्टियों में फास्फोरस कार्बनिक पदार्थ के अवयव के रूप में पाया जाता है। खनिज फास्फोरस मुख्यतः फलोर ऐपेटाइट, हाइड्राक्सीऐपेटाइट या क्लोरएपेटाइट तथा लोह या अल्युमिनियम फास्फेट रूप में पाया जाता है। आग्नेय चट्टानों का अधिकांश फास्फोरस क्रिस्टलीय ऐपेटाइट के रूप में पाया जाता है। प्रकृति में यद्यपि लगभग 200 प्रकार के खनिज पाये जाते हैं किन्तु इनमें ऐपेटाइट खनिजों का प्रमुख स्थान है। इनकी इकाई संरचना M10 (PO)6x2 है) जहां M धातु, प्रधानतयः Ca, X=फ्लोरीन। अतः स्पष्ट है कि प्रकृति में मुख्यतयः कैल्शियम फ्लोर ऐवेटाइट पाया जाता है।

स्थलमण्डल में फास्फोरस की कुल मात्रा 0.28 प्रतिशत P_2O_5 बताई गई है। पृथ्वी में कुल फास्फोरस का अनुमान 10^{19} टन लगाया गया है जिसमें से भू–पपड़ी में इसकी 10^{15} टन मात्रा (औसत 0.12 प्रतिशत P) होती है।

भारतीय मिट्टियों में फास्फोरस का वितरण

कुल मात्रा

भारतीय मिट्टियों में फास्फोरस की मात्रा में काफी अन्तर पाया जाता

है। यह मात्रा साधारणतः पैतृक पदार्थ जलवायु, अपक्षय की मात्रा एवं प्रकृति, वनस्पतियों की किस्म आदि पर निर्भर करती है। अन्य कारक समान होने पर हल्के गठन वाली बलुई मिट्टियों की अपेक्षा भारी गठन वाली मटियार मिट्टियों में इसकी प्रचुरता होती है। भारतीय मिट्टियों में फास्फोरस की कुल मात्रा 0.006 से 0.5 प्रतिशत तक पायी गयी है। खन्ना एवं सहयोगियों (1982) ने भारत के विभिन्न भागों की मिट्टियों में फास्फोरस की मात्रा का विवरण दिया है जिसके अनुसार हिमाचल प्रदेश के आलू वाले क्षेत्र की पर्वतीय भूरी अम्लीय मिट्टियों में फास्फोरस की कुल मात्रा 850 से 1800 मि.ग्रा./कि.ग्रा. (औसत 1175 मि.ग्रा./कि.ग्रा.) एक विशेष प्रकार की उपपर्वतीय मिट्टियों में 180 से 275 मि.ग्रा./कि.ग्रा., पंजाब की मिट्टियों में 475 से 691 मि.ग्रा./कि. ग्रा., राजस्थान के कछारी, मरूस्थलीय और सीरोजम मिट्टियों में क्रमशः 812, 597 और 590 पीपीएम, उत्तर प्रदेश की मिट्टियों में 185 से 1300 पीपीएम (औसत 384 पीपीएम), पश्चिम बंगाल की धान वाली मिट्टियों में 177 से 543 पीपीएम (औसत मात्रा 312 पीपीएम) तथा तमिलनाडु और अन्य दक्षिणी राज्यों की मिट्टियों में यह मात्रा 152 से 1304 पीपीएम तक पायी गयी। लैटेराइट, जलोढ़, काली और लाल मिट्टियों में कुल फास्फोरस की औसत मात्रा क्रमशः 557, 418, 406 तथा 357 पीपीएम थी। उटकमण्ड और कुनूर के विशेष ऊंचाई वाले स्थानों में फास्फोरस की मात्रा सर्वाधिक पायी गयी। उत्तर प्रदेश की जलोढ़, बांगर, तराई और पर्वतीय क्षेत्रों की मिट्टियों में फास्फोरस की मात्रा बुन्देलखण्ड और विन्ध्य क्षेत्रों की मिट्टियों की तुलना में अधिक पायी गयी। राउर और अरावली मिट्टियों में यह मात्रा न्यूनतम थी।

अतः स्पष्ट है कि जलोढ़ मिट्टियों में फास्फोरस अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में पाया जाता है, क्योंकि मिट्टियों के निर्माण के लिये उत्तरदायी मूल पदार्थ में फास्फोरस की प्रचुरता होती है। लैटेराइट मिट्टियों में फास्फोरस की कमी पायी जाती है। पश्चिम बंगाल की लाल मिट्टियों में आध्रं प्रदेश की लाल मिट्टियों की अपेक्षा फास्फेट की कमी पायी गयी क्योंकि अधिक वर्षा के कारण निक्षालन द्वारा फास्फेट की हानि हो जाती है। कपास की काली मिट्टी में फास्फोरस मध्यम मात्रा में पाया जाता है। राजस्थान की मिट्टियों में जलोढ़ मिट्टियों की तुलना में फास्फोरस की मात्रा कम पायी गयी। मृदा परिच्छेदिका में फास्फोरस का वितरण घटते क्रम में देखा गया।

मिट्टियों में फास्फोरस के विभिन्न रूप

मिट्टियों में फास्फोरस साधारणतयः दो रूप में पाया जाता है। कार्बनिक तथा अकार्बनिक। इन दोनों प्रकार के फास्फोरस की प्रतिशत मात्रा के बारे में वैज्ञानिकों के विभिन्न मत हैं। यहां पर भारत की मिट्टियों में इन रूपों में पाये जाने वाले फास्फोरस की मात्रा और इनकी विशेषताओं का उल्लेख किया जा रहा है।

कार्बनिक फास्फोरस

भारतीय मिट्टियों में जीवांश पदार्थ की मात्रा कम होने तथा कार्बन व फास्फोरस अनुपात अधिक (100:1) होने के कारण मिट्टियों में कार्बनिक फास्फोरस के सम्बन्ध में अधिक वैज्ञानिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। भारतीय मिट्टियों में कुल फास्फोरस की मात्रा में कार्बनिक फास्फोरस का योगदान 2.6 से 75 प्रतिशत तक आंका गया है। यह मुख्य रूप से मिट्टी में हयुमस की मात्रा पर निर्भर करता है। उत्तर प्रदेश की जलोढ़ एवं विन्ध्य क्षेत्र की मिट्टियों में कुल फास्फोरस का 13 से 20 प्रतिशत कार्बनिक फास्फोरस के रूप में पाया गया। बिहार की मिट्टियों में कुल फास्फोरस का 30 प्रतिशत कार्बनिक रूप में पाया गया। राजस्थान की मिट्टियों में हयुमस के विभिन्न अंशों में कार्बनिक फास्फोरस की मात्रा इस प्रकार रही: हयुमिक अम्ल में इसे 13 प्रतिशत, फाल्विक अम्ल में 10 से 25 प्रतिशत, हिमैटोमेलानिक अम्ल में 0.16 से 0.55 प्रतिशत, हयुमस में 12 से 24 प्रतिशत और हयुमस विहीन अंश में 30 से 80 प्रतिशत।

मिट्टियों में कार्बनिक फास्फोरस यौगिक रूप में पाया जाता है जिनमें फास्फोलिपिड (0.6 से 0.9 प्रतिशत) फास्फोप्रोटीन, न्युक्लिक अम्ल एवं उनके उपद्रव्य (0.6 से 2.4 प्रतिशत), फास्फोरस युक्त शर्करा एवं फाइटिन तथा आइनोसिटाल फास्फेट आदि समूह प्रमुख हैं। राजस्थान की मिट्टियों में न्युक्लिक अम्ल और आइनोसिटाल फास्फेट की मात्रा क्रमशः 0 से 18 तथा 7 से 140 पीपीएम पायी गयी। पल्नीअप्पन एवं सहियोगियों (1979) के अध्ययनों से पता चला कि कार्बनिक फास्फोरस की कुल मात्रा में 16 प्रतिशत आइनोसिटाल हेक्साफास्फास्फेट और 0.7 प्रतिशत फास्फोलिपिड का योगदान होता है। उत्तर प्रदेश की मिट्टियों में कार्बनिक फास्फोरस में फास्फोलिपिड का 1.9 से 4.7 प्रतिशत, आइनोसिटाल पेन्टा और हेक्साफास्फेट का 10 से

29 प्रतिशत और निम्न आइसोसिटाल फास्फेट का 2 से 9 प्रतिशत योगदान रहा। राजस्थान की कुछ धूसर भूरी मिट्टियों में कार्बनिक फास्फोरस की मात्रा शून्य थी। कुछ अवर्गीकृत जलोढ़ मिट्टियों में यह नगण्य मात्रा (0.3 पीपीएम) में पाया गया।

अतः स्पष्ट है कि भारत जैसे उपोष्ण देशों की मिट्टियों में कार्बनिक फास्फोरस की मात्रा में काफी अन्तर (0 से 395 पीपीएम) पाया जाता है। यह मात्रा शीतोष्ण देशों की मिट्टियों की तुलना में काफी कम है।

अकार्बनिक फास्फोरस

अकार्बनिक फास्फोरस का अधिकांश भाग फ्लोर–एपेटाइट के रूप में पाया जाता है। इसके अलावा लोह, अल्युमिनियम, टिन मैंगनीज और कैल्शियम के फ्लोरो कार्बोनेट और हाइड्राक्सी फास्फेट के रूप में भी फास्फोरस पाये जाते हैं। कैल्शियम एल्युमीनियम और लोह–फास्फेट विशेष महत्वपूर्ण है। अधिकांश मिट्टियों में कैल्शियम फास्फेट अधिक मात्रा में पाया जाता है। यह तीनों रूप सम्पूर्ण अकार्बनिक फास्फोरस का सम्पूर्ण भाग न होकर अल्प भाग ही है। शेष भाग की प्रकृति का अभी समुचित ज्ञान नहीं हो सका है।

एल्युमीनियम फास्फेट

अम्लक्षारण की प्रारम्भिक अवस्था में फास्फोरस लोह (फेरिक) तथा एल्युमीनियम आयनों के साथ संघटित रहता है। जलमग्न दशा में फेरस फास्फेट $Fe_3(PO_4)_2 8H_2O$, जिसे विविएनाइट भी कहते हैं, का बाहुल्य होता है। एल्युमीनियम फास्फेट का रासायनिक संघटन $AlPO_4 . 2H_2O$ होता है। मिट्टियों में यह वेवलाइट $[Al(OH)_3 (PO_4)_2 5H_2O]$ के रूप में भी पाया जाता है। कुछ मिट्टियों के बालू तथा सिल्ट अंश में इस प्रकार के फास्फेट की मात्रा का निश्चय भी किया जा चुका है। मिट्टियों में निम्न पी–एच मान 3.1 की दशा में एल्युमीनियम फास्फेट की अधिकता रहती है। उच्च पी–एच पर यह एल्युमीनियम हाइड्राक्सी फास्फेट में परिणित हो जाता है।

मृदा में पोटैशियम और अमोनियम आयनों की अधिकता में लोहा तथा एल्युमीनियम का क्षारीय फास्फेट ल्यूकोफास्फाइट, टेरानाकाइट और माइन्यूलाइट बनता है। ये यौगिक बाद में स्थायीन वेरीसाइट तथा इस्ट्रेन गाइट शैलों में बदल जाते हैं।

लौह फास्फेट

मृदा में अभी तक लौह फास्फेट, विविएनाइट [$FE_3 (PO_4)_2 8H_2O$] के रूप में पहचाना गया है। कम जल निकासी वाली जलमग्न मृदाओं में यह अधिक मात्रा में पाया जाता है। निम्न पी–एच मान (3.8 से 4.2) पर स्टेगाइट यौगिक भी पाये जाते हैं।

कैल्शियम फास्फेट

अधिकांश भारतीय मिट्टियाँ उदासीन तथा कुछ क्षारीय प्रकृति की होती है। यही कारण है कि इनमें कैल्शियम फास्फेट की मात्रा अधिक पायी जाती है। ऐसा समझा जाता है कि मिट्टियों में आक्टोकैल्शियम फास्फेट [$Ca_4 (HPO_4)_3 3H_2O$] पाया जाता है किन्तु इसे अलग नहीं किया जा सका है। कुछ अम्लीय, उदासीन और क्षारीय मिट्टियों में हाइड्राक्सी एपेटाइट रूप में फास्फोरस पाया जाता है। मृदा में कैल्शियम फास्फेट, फ्लोरएपेंटाइट [$Ca_{10}(PO_4)_6 F_2$], कार्बोनेट एपेटाइट [$Ca_{10} (PO_4)_6 CO_3$], हाइड्राक्सी एपेटाइट [$Ca_{10} (PO_4)_6 (OH)_2$], आक्टोकैल्सियम फास्फेट [$Ca_4 (HPO_4)_3 3H_2O$], डाईकैल्शियम फास्फेट [$Ca HPO_4 2H_2O$, और मोनोकैल्शियम मोनोहाइड्रेट के रूप में या तो पाये जाते हैं अथवा सम्भावित है। हाइड्राक्सीएपेटाइट में कैल्शियम कार्बोनेट भी विद्यमान होता है। यह अशुद्धि का द्योतक है।

अम्लीय मिट्टियों में अधिकांश अकार्बनिक फास्फेट–लौह–अल्युमिनियम फास्फेट के रूप में तथा क्षारीय मिट्टियों में कैल्सियम फास्फेट के रूप में पाया जाता है। चुनही मिट्टियों में भी कैल्शियम फास्फेट का बाहुल्य होता है। इन मिट्टियों में लौह–अल्युमिनियम फास्फेट की मात्रा बहुत कम होती है। भारतीय मिट्टियों में विभिन्न रूपों में पाये जाने वाले फास्फोरस की मात्रा का विवरण सारणी 5.1 में दिया गया है।

भारतीय मिट्टियों का फास्फोरस उर्वरता-स्तर

भारतीय मिट्टियों में उपलब्ध फास्फोरस की मात्रा ज्ञात करने के लिए उदासीन, चुनही तथा क्षारीय मिट्टियों के लिये ओल्सन इत्यादि (1954) की विधि तथा अम्लीय मिट्टियों के लिए ब्रे एवं कुर्ज (1945) की विधियां प्रयोग में लायी जाती है। भारतीय मिट्टी के 80 लाख से भी अधिक नमूनों के रासायनिक विश्लेषण से प्राप्त परिणामों के आधार पर घोष और हसन (1979)

सारणी-5.1 भारतीय मिट्टियों में विभिन्न रूपों में फास्फोरस का वितरण

स्थान	कुल फास्फोरस मि.ग्रा./कि.ग्रा.	मृदा लवण P	Al-P	Fe-P	Ca-P	कार्बनिक फास्फोरस	अनिष्कर्षित फारस्फोरस	फास्फोरस धारण क्षमता
			कुल फास्फोरस का प्रतिशत					
लुधियाना	435	1.26	3.68	4.57	33.77	8.74	47.98	11.20
बंगलौर	322	2.39	10.50	3.29	7.14	60.93	11.67	
राजमुन्दरी	609	0.15	3.78	3.10	45.16	6.90	40.91	70.00
कानपुर	539	0.0	1.52	1.13	37.93	13.54	45.88	60.00
पूसा	583	0.50	0.70	0.31	59.81	21.44	17.24	30.90
अगरतला	299	0	7.19	7.85	3.47	33.11	48.38	47.84

स्रोतः खन्ना,एस.एस, ए.एन. पाठक एवं एस.एन. सक्सेना (1982) रिव्यु आफ स्वायल रिसर्च इन इण्डिया भाग 1, 12 वॉ इण्टरनेशनल कांग्रेस आफ स्वायल सांइस, नई दिल्ली, भारत, पृष्ठ सं. 323–330

ने 46,52 और 2 प्रतिशत मिट्टियों का फास्फोरस स्तर क्रमशः निम्न, मध्यम, उच्च बताया। अभी हाल में टण्डन (1987) ने भारतीय मिट्टियों की फास्फोरस उर्वरता स्तर का उल्लेख किया है। सम्बन्धित आंकड़े सारणी 5.2 में दिये गये हैं।

इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि कुल 372 जिलों में से 17 जिलों अर्थात मध्य प्रदेश के 6, राजस्थान के 3, आसाम, कर्नाटक व केरल प्रत्येक के 2 तथा हिमाचल प्रदेश व उड़ीसा प्रत्येक के एक जिले की मिट्टियों का फास्फोरस उर्वरता स्तर उच्च पाया गया और शेष 180 जिलों की मिट्टियों का उर्वरता स्तर मध्यम तथा 170 जिलों का निम्न रहा। तुलनात्मक दृष्टि से फास्फोरस की कमी मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, सिक्किम, गोवा, अण्डमान एवं निकोबार दीप समूह, आंध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश में विशेष रूप से पायी गयी। इन राज्यों एवं केन्द्र शासित राज्यों में फास्फोरस की कमी 60 प्रतिशत से अधिक नमूनों में पायी गयी। आसाम, बिहार, मध्य प्रदेश, पंजाब, तमिलनाडु और त्रिपुरा के क्रमशः 45, 46, 51, 33, 46 और 33 प्रतिशत नमूनों में फास्फोरस का उर्वरता स्तर निम्न पाया गया। इन राज्यों के अधिकांश जिलों में फास्फोरस का स्तर मध्यम रहा। हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू एवं काश्मीर, कर्नाटक, केरल, राजस्थान और पश्चिमी बंगाल के क्रमशः 83, 84, 91, 79, 75, 85 और 87 प्रतिशत नमूने मध्यम उर्वरता स्तर में थे। चण्डीगढ़, दादरा एवं नगर हवेली तथा दिल्ली का फास्फोरस उर्वरता स्तर मध्यम पाया गया। औसत रूप में 46 प्रतिशत जिले निम्न, 50 प्रतिशत मध्यम और 4 प्रतिशत उच्च उर्वरता स्तर में हैं।

सारणी-5.2 भारत में विभिन्न प्रान्तों के विभिन्न जनपदों की मिट्टियों का फास्फोरस उर्वरता स्तर

राज्य/संघीय	फास्फोरस उर्वरता स्तर						
	निम्न	मध्यम	उच्च	निम्न	मध्यम	उच्च	कुल
	जनपदों की संख्या			प्रतिशत कमी			जनपद
अण्डमान एवं निकोवार द्वीप समूह	7	1	–	88	12	–	8
आन्ध्र प्रदेश	19	3	–	86	14	–	22
आसाम	4	3	2	45	33	22	9
अरुणाचल प्रदेश	–	5	–	–	100	–	5
विहार	12	14	–	46	54	–	26
चण्डीगढ	–	1	–	–	100	–	4
दादर एवं नगर हवेली	–	1	–	–	100	–	1
दिल्ली	–	1	–	–	100	–	1
गोवा	1	–	–	100	–	–	1
गुजरात	12	–	–	63	37	–	19
हरियाणा	2	10	–	17	83	–	12
हिमाचल प्रदेश	1	10	1	8	84	–	12
जम्मू एवं काश्मीर	1	10	–	9	91	–	11
कर्नाटक	2	15	2	10	79	11	19
केरल	1	9	2	8	75	17	12
मध्य प्रदेश	23	16	6	51	35	14	45
महाराष्ट्र	15	10	–	60	40	14	25
मणिपुर	1	–	–	100	–	–	1
मेघालय	2	–	–	100	–	–	2
मिजोरम	1	7	–	100	–	–	1
उड़ीसा	9	3	1	69	23	8	13
पांडिचेरी	1	–	–	100	–	–	1

पंजाब	4	8	0	33	67	–	12
राजस्थान	1	22	3	4	85	11	16
सिक्किम	1	–	–	100	–	–	1
तमिलनाडु	6	–	–	46	54	7	13
त्रिपुरा	1	2	–	33	67	–	3
उ.प्र.	41	14	–	75	25	–	55
पश्चिम बंगाल	2	13	–	13	87	–	15
कुल जनपद	170	184	17	46	50	4	372

स्रोतः टण्डन (1987)

मृदा में उर्वरक फास्फोरस का रूपान्तरण

मृदा में फास्फोरसधारी उर्वरकों का प्रयोग करने पर इसका अधिक से अधिक 20–30 प्रतिशत भाग ही पौधों को उपलब्ध हो पाता है। शेष फास्फेट रासायनिक प्रतिक्रिया द्वारा अघुलनशील रूपों में परिवर्तित हो जाता है। यह पौधों को उपलब्ध होने की स्थिति में नहीं रहता। इस फास्फोरस का अवशिष्ट प्रभाव कई वर्षों तक देखा गया है।

उदाहरणार्थ, भूमि में मानोकैल्शियम फास्फेट युक्त फास्फोरसधारी उर्वरक प्रयोग करने पर इसके कण मृदा के जितने भाग को संतृप्त करते हैं, उसके चारों ओर संतृप्त डाईकैल्शियम फास्फेट बनता है, जो भूमि में उपस्थित अन्य घनायनों से मिलकर अघुलनशील अवक्षेप बनाता है। इस रूप में फास्फोरस पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाता।

अम्लीय मृदा में सुपर फास्फेट का प्रयोग करने पर उर्वरक का जल विलेय फास्फेट मृदा में उपस्थित लोह और अल्युमिनियम आयन के साथ संयोग करके अघुलनशील लौह तथा अल्युमिनियम–फास्फेट के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार फास्फोरस पौधों को उपलब्ध होने की स्थिति में नहीं रह पाता। क्षारीय और चूना–युक्त मिट्टियों में मोनो कैल्शियम फास्फेट का परिवर्तन डाई कैल्शियम फास्फेट के रूप में हो जाता है। यह भी अघुलनशील होने के कारण पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाता है। यही बाद में ट्राई कैल्शियम फास्फेट या एपेटाइट जैसे विशेष अघुलनशील पदार्थ का रूप ग्रहण कर लेता है जिससे फास्फोरस की उपलब्धता सर्वथा शून्य हो जाती है।

ज्ञातव्य है कि कैल्शियम प्रधान मिट्टियों में फास्फोरस की उपलब्धता कम होती है क्योंकि प्रथम स्थिति में डाई कैल्शियम फास्फेट जो अघुलनशील पदार्थ है, पर्याप्त मात्रा में बनता है। फलतः फास्फेट उपलब्धता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

मृदा में फास्फोरस का अघुलनशील रूपों में परिवर्तित हो जाना ही फास्फेट स्थिरीकरण कहलाता है। कोर्डोस (1964) ने मिट्टी में पादप–पोषकों के स्थिरीकरण की परिभाषा इस प्रकार दी है:

"वह प्रक्रम जिसके द्वारा सरलता से उपलब्ध पोषक तत्व मिट्टी के कार्बनिक या अकार्बनिक अंश के साथ अभिक्रिया करके कम उपलब्ध रूप में परिवर्तित होते रहते हैं। इससे मिट्टी में पोषकों की गतिशीलता घटती है और पौधों के लिए उनकी उपलब्धता में कमी आती है।"

मृदा में प्रयुक्त फास्फोरस–उर्वरकों के साथ भी ऐसी ही क्रिया होती है, अतः इसे फास्फेट–स्थिरीकरण या निश्चलीकरण कह सकते हैं।

यद्यपि फास्फोरस स्थिरीकरण की जानकारी कराने वाले पहले वैज्ञानिक वे (1850) माने जाते हैं किन्तु विल्ड (1950) के अनुसार लीविंग (1940) को इस क्रिया का ज्ञान पहले ही था। रसल एवं प्रेस्फाट (1916) ने सर्वप्रथम फास्फेट के उद्ग्रहण एवं विमोचन सम्बन्धी गति–विधियों का अध्ययन किया। इससे प्राप्त परिणामों से स्पष्ट होता है कि अम्लों द्वारा मृदा फास्फेट विलयनीकरण में पहले फास्फेट का घोल बनता है यह बाद में अधिशोषित हो जाता है। विलयन में विद्यमान सभी फास्फेट आयनों का अधिशोषण नहीं हो पाता वल्कि कुछ अंश शेष रह जाता है यह अवक्षेपित हो जाता है। इस प्रकार फास्फेट का अधिशोषण एवं अवक्षेपण साथ–साथ होता है।

मृदा में अधिशोषण सम्बन्धी कार्यों का अध्ययन कठिन होता है। अतः मृत्तिका और अल्युमीनियम आक्साइड का अध्ययन किया जाता है। मृत्तिका के पृष्ठों पर अभिक्रिया स्थल पाये जाते हैं जो मृदा में फास्फेट आयनों की सान्द्रता कम या अधिक होने से ये सक्रिय होकर फास्फेट–आयनों को अधिशोषित कर लेते हैं।

क्षारीय मृदाओं में कैल्शियम फास्फेट की बाहुल्यता होती है। यह विलयन में उपस्थित नहीं रह पाता बल्कि डाई कैल्शियम फास्फेट के रूप में अवक्षेपित

हो जाता है। यही बाद में ट्राई कैल्शियम फास्फेट, आक्टाकैल्शियम फास्फेट तथा हाइड्राक्सी एपेटाइट में परिणित हो जाता है। यह बहुत कम घुलनशील होता है।

फास्फेट–स्थिरीकरण अम्लीय तथा क्षारीय मृदाओं में एक ही प्रकार से न होकर भिन्न–2 प्रतिक्रियाओं द्वारा सम्पन्न होता है। अतः इसका वर्णन पृथक रूपों में निम्न प्रकार किया जा रहा है।

1. अम्लीय मृदाओं में उर्वरक फास्फेट का रूपान्तरण

अम्लीय मृदाओं में फास्फेट स्थिरीकरण निम्नलिखित प्रतिक्रियाओं के एकाकी अथवा सम्मिलित प्रभाव से होता है।

मृदा-विलयन में अवक्षपेण द्वारा फास्फोरस का अघुलनशील रूप में परिवर्तन

अम्लीय मृदाओं में लोहे तथा अल्युमीनियम आयन प्रचुर मात्रा में या तो मृदा–घोल में उपस्थित रहते हैं अथवा वे विनिमेय अवस्था में पाए जाते हैं। फास्फोरस इनसे मिलकर अघुलनशील अवक्षेप बनाता है। फास्फोरस का यह रूप पौधों के लिए बेकार होता है। रासायनिक प्रतिक्रिया इस प्रकार होती है:

$$Al^{3+} + H_2PO_4^- + 2H_2O \quad \quad 2H^+ + Al(OH)_2H_2PO_4$$

(घुलनशील) (अघुलनशील)

अधिकांश अम्लीय मृदाओं में लोहे तथा अल्युमिनियम **आयनों** की सान्द्रता $H_2PO_4^-$ आयनों की तुलना में काफी अधिक होती है। अतः उपरोक्त प्रतिक्रिया दाहिने ओर चलती है जिसके फलस्वरूप अघुलनशील फास्फेट बनता है। ऐसी दशा में $H_2PO_4^-$ आयन की बहुत थोड़ी मात्रा बच पाती है जिसे पौधे अपने उपयोग में लाते हैं।

जलीय लौह-एल्युमीनियम आक्साइडों से प्रतिक्रिया

ज्ञातव्य है कि H_2PO_4- आयन केवल घुलनशील लोहा, अल्युमिनियम और मैगनीज से ही अभिक्रिया नहीं करते बल्कि इन तत्वों के अघुलनशील आक्साइडों जैसे–गिब्बसाइट [$Al_2O_3.3H_2O$] और मोथाइट ($Fe_2O_3.3H_2O$) से

भी इसकी प्रतिक्रिया होती है। इन खनिजों द्वारा होने वाली प्रतिक्रिया के फलस्वरूप स्थिरीकृत फास्फोरस की मात्रा, घुलनशील लोहा, एल्युमिनियम और मैंगनीज के साथ हुई प्रतिक्रिया की तुलना में अधिक होती है जेसा कि रेखाचित्र 5.1 से स्पष्ट है।

ये आक्साइड कलकीय (Colloidal) प्रकृति के होते हैं और इसी कारण फास्फोरस आयन इनकी ओर आकर्षित होकर इन धातु कणों की सतह पर चिपक कर स्थिर लौह अथवा अल्युमीनियम फास्फेट बनाते हैं। इस प्रतिक्रिया की प्रारम्भिक स्थिति स्तरीय प्रतिक्रिया कहलाती है। इस प्रतिक्रिया में बने हुए यौगिक सीधे अवक्षेपण विधि से बने हुए यौगिकों के ही समान होते हैं। यदि अल्युमिनियम के जलीय आक्साइड को अल्युमिनियम हाइड्राक्साइड के रूप में दर्शाया जाय तो रसायनिक प्रतिक्रिया इस प्रकार होती है:

$$Al\begin{cases}OH\\OH\\OH\end{cases} + H_2PO_4 \rightleftharpoons Al\begin{cases}OH\\OH\\H_2PO_4\end{cases} + OH^-$$

(घुलनशील) (अघुलनशील)
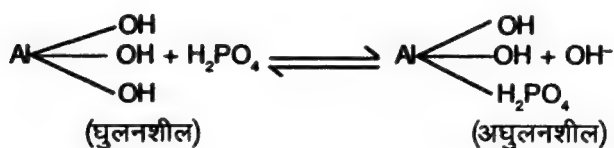
उपरोक्त दोनों समीकरणों से स्पष्ट हो जाता है कि अम्लीय मृदाओं में जो परिस्थितियाँ आयन की उपस्थिति के लिए अनुकूल होती है, वही लोहा, एल्युमिनियम और मैंगनीज के यौगिकों के माध्यम से फास्फोरस के स्थिरीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। रेखाचित्र 5.2 से इस कथन की पुष्टि होती है।

सिलिकेट-क्ले से प्रतिक्रिया

मृदा के मृत्तिका–कण सिलिका और अल्युमिना के मिश्रित रूप होते हैं। ये सम्मिलित रूप से सिलिका और अल्युमिना की परत बनाते हैं। फास्फोरस आयन इन परतों से या तो हाइड्राक्सिल गुण को स्थानान्तरित करके अथवा मृत्तिका कैल्शियम फास्फेट बन्ध बना कर मृत्तिका कणों से जुड़ जाते हैं।

सिलिका और लोहा व अल्युमीनियम आक्साइड के कम अनुपात वाले मृत्तिका कणों में फास्फेट स्थिरीकरण अधिक होता है। क्योंकि इस स्थिति
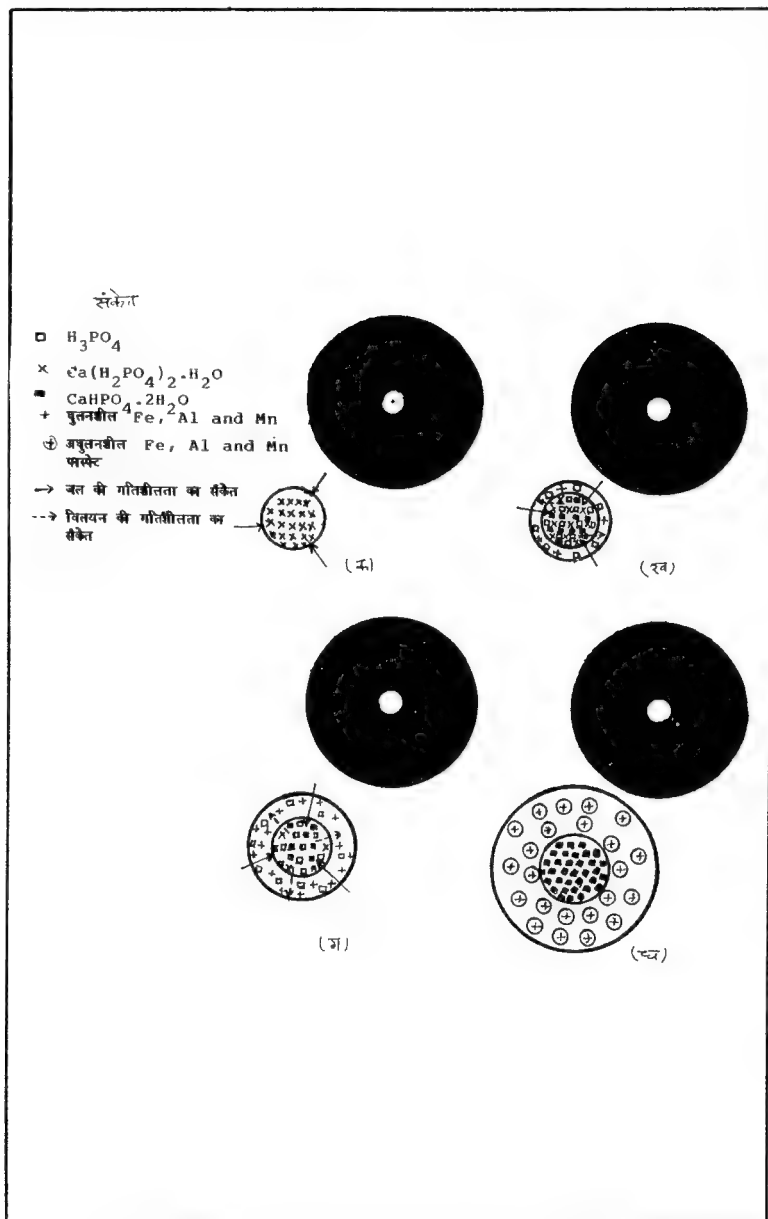
रेखाचित्र-5.1 नम मिट्टी में Ca $(H_2PO_4)_2 \cdot H_2O$ की प्रतिक्रिया

में मुक्त होने योग्य हाइड्राक्सिल समूह अधिक होते हैं। रासायनिक प्रतिक्रिया निम्नानुसार होती है:

$$[Al] + H_2PO_4^- + 2H_2O \longrightarrow 2H + Al(OH)H_2PO_4$$

(सिलिकेट क्रिस्टल में) (घुलनशील) (अघुलनशील)
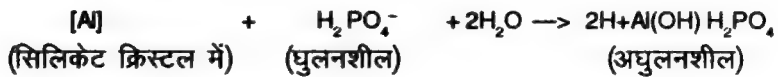
2. क्षारीय मृदाओं में उर्वरक फास्फेट का रूपान्तरण

इन मृदाओं में फास्फोरस–स्थिरीकरण निम्नांकित क्रियाओं के एकांकी अथवा सम्मिलित प्रभाव का प्रतिफल होता है।
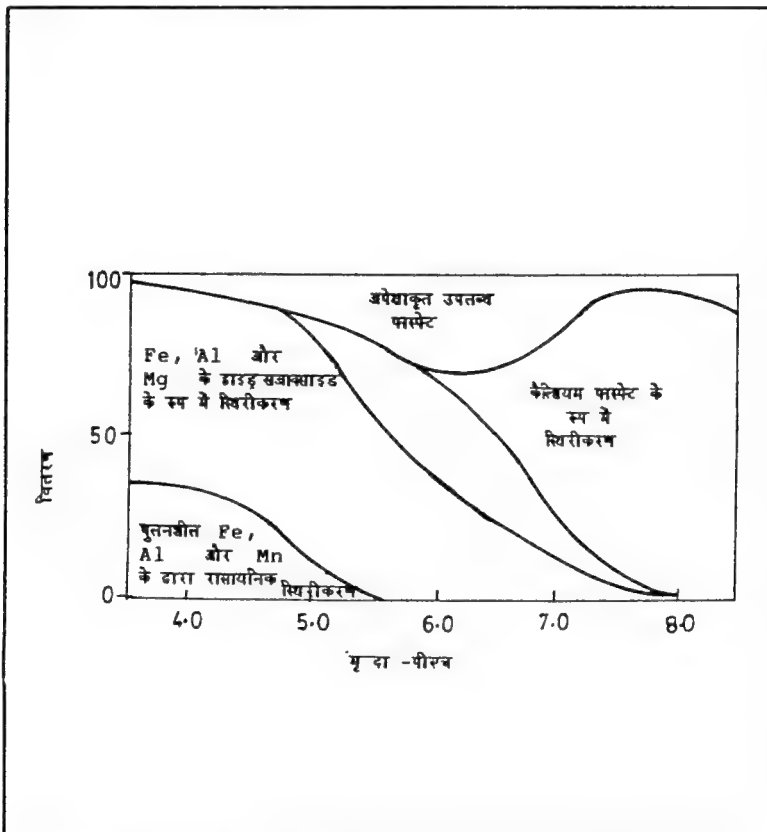
रेखाचित्र-5.2 विभिन्न पीएच मान पर प्रयोग किए गये फास्फेट का स्थिरीकरण

रिवर्सन (Reversion)

क्षारीय मृदाओं में जब मानोकैल्शियम फास्फेट युक्त फास्फोरसधारी उर्वरक डाले जाते हैं तब यह उर्वरक कण मिट्‌टी से जल अपनी तरफ आकर्षित करते हैं जिसके फलस्वरूप निमनांकित परिवर्तन होता है:

$Ca(H_2PO_4)_2.H_2O + H_2O \longrightarrow CaHPO_4.2H_2O + H_3PO_4$

मोनोकैल्शियम फास्फेट (घुलनशील) → डाई कैल्शियम फास्फेट (अघुलनशील)
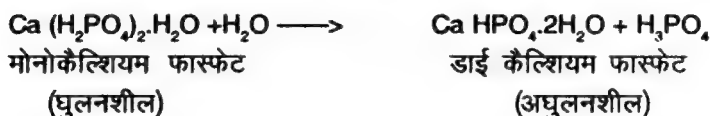
रेखाचित्र 5.3 से स्पष्ट है कि पीएच मान बढ़ने से फास्फोरस डाई और पुनः ट्राई फास्फेट आयनों में परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार मानोकैल्सियम फास्फेट भी कम घुलनशील डाई और ट्राई कैल्शियम फास्फेट बनाता है। क्षारीय मृदाओं में कैल्सियम आयनों बाहुल्यता होती है। इसी कारण इसमें उपरोक्त परिवर्तन द्वारा फास्फोरस का अधिकांश भाग ट्राईकैल्शियम फास्फेट के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यह बाद में स्थायी हाइड्राक्सी एवेटाइट बनाता है, जो पूर्णतया अघुलनशील होता है।

मुक्त कैल्शियम कार्बोनेट से प्रतिक्रिया

क्षारीय मृदाओं में मुक्त कैल्सियम कार्बोनेट अधिक मात्रा में पाया जाता है। यह मात्रा चूना मुक्त क्षारीय मृदाओं में और भी अधिक होती है। यही कारण है कि ऐसी मृदाओं में फास्फेट आयन कार्बोनेट के ठोस भाग के सम्पर्क में आते ही इनकी सतह पर अवक्षेपित हो जाते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में यह क्रिया सतह पर ही होती है। किन्तु बाद में अवक्षेपण द्रव्य अनुपाती क्रिया नियम के अनुसार होता है। इस प्रतिक्रिया में भी अन्ततः ट्राईकैल्शियम फास्फेट और एपेटाइट ही बनता है। रासायनिक प्रतिक्रियाओं को निम्नानुसार दर्शाया जा सकता है:

$Ca(H_2PO_4)_2 + CaCO_3 + H_2) \longrightarrow 2\,CaHPO_4.2H_2O + CO_2$

मोनोकैल्शियम फास्फेट → डाई कैल्शियम फास्फेट डाईहाइड्रेट

$6\,Ca.HPO_4.2H_2O + 2CaCO_3 + H_2O \longrightarrow Ca8(H_2PO_4)_6.5H_2O + 2CO_2$

डाई कैल्शियम फास्फेट डाई हाइड्रेट → आक्टाकैल्शियम फास्फेट

$Ca8(H_2PO_4)_6.5H_2O + CaCO_3 \longrightarrow 3Ca_3(PO_4)_2 + CO_2 + 6H_2O$

आक्टा कैल्शियम फास्फेट → ट्राई कैल्शियम फास्फेट
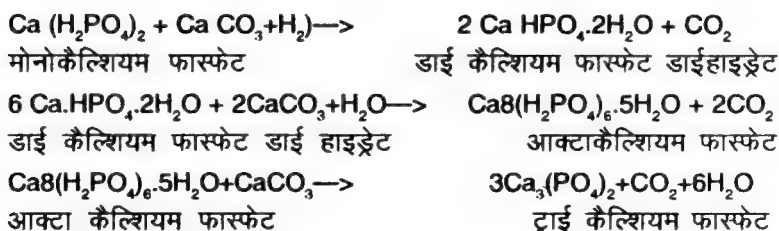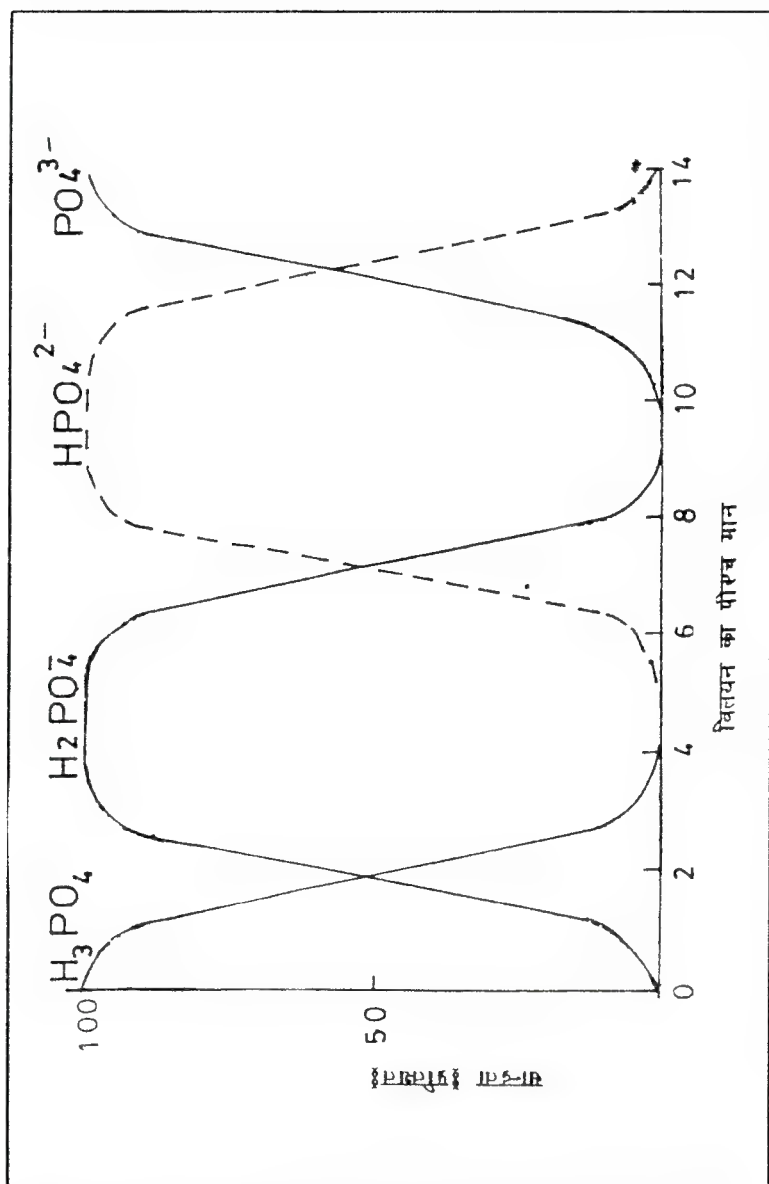
रेखाचित्र-5.3 विलयन के पीएच–मान और तीन विलेय रूपों में फास्फेट की आपेक्षिक सान्द्रताओं का सम्बन्ध

जैसे–जैसे फास्फोरस का परिवर्तन $H_2PO_4^-$ से डाई कैल्शियम फास्फेट डाई हाइड्रेट और अन्त में ट्राई कैल्शियम फास्फेट के रूप में होता जाता है, पौधों को फास्फोरस की उपलब्धता कम होती जाती है।

मृत्तिका-कैल्शियम फास्फेट बन्धन

इस प्रतिक्रिया में चूना प्रधान–क्षारीय मृदाओं में मृत्तिका कैल्शियम फास्फेट बन्ध बनता है। यह प्रतिक्रिया कैल्शियम प्रधान 6.5 पी–एच वाली कुछ मृदाओं में भी पायी गयी है।

इस प्रकार सामान्य रूप से फास्फोरस स्थिरीकरण के लिए निम्नांकित तीन विधियां एकांकी या मिश्रित रूप से उत्तरदायी हैं:

(क) अवक्षेपण

(ख) अधिशोषण

(ग) ऋणात्मक आयनों का विनिमय

(क) अवक्षेपण

यह सबसे पुरानी विचार धारा है जिसके अनुसार फास्फेट आयन मृदा घोल में अवक्षेपित ठोस रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। इस तरह फास्फेट ठोस भाग का अंग बन अम्लीय मृदाओं में लोहा और एल्युमीनियम के रासायनिक अवक्षेपण द्वारा फास्फोरस स्थिरीकरण में सहायक होता है। इस सन्दर्भ में किये कार्यों से इस बात की पुष्टि होती है कि जब समतुल्य मात्रा में लोहा और फास्फोरस का आपसी संयोग होता है तो इनकी उपलब्धता 2 से 3 पी–एच मान पर न्यूनतम हो जाती है। लोहे की अधिकता की दशा में इसकी घुलनशीलता 4 पी–एच मान पर भी न्यून ही रहती है इसी प्रकार मृदा के 4 पी–एच मान पर एल्युमिनियम और फास्फोरस समतुल्य मात्रा में संयोग करके फास्फेट उपलब्धता को कम कर देते हैं जो कि एल्युमिनियम की मात्रा बढ़ने पर 4 से 7 पी–एच मान तक न्यून ही बनी रहती है। यही कारण है कि अम्लीय मृदाओं में लोहे तथा एल्युमिनियम के अवक्षेपित–फास्फेट बनने के कारण फास्फोरस की उपलब्धता घट जाती है।

इसी प्रकार चूना प्रधान तथा क्षारीय मृदाओं में फास्फोरस के प्रयोग से पहले डाई–कैल्शियम फास्फेट बनता है। यही बाद में ट्राई कैल्शियम फास्फेट, आक्टा कैल्शियम फास्फेट और अन्ततः हाइड्राक्सी–एपेटाइट में परिवर्तित हो जाता है। यह पूर्णतया अघुलनशील होता है। भूमि में केवल अंतिम रूप ही स्थायी रूप से पाया जाता है। चूना युक्त मृदाओं में कम घुलनशील योगिक कार्बोनेट फास्फेट होता है। इसके निर्माण में कैल्सियम कार्बोनेट के एक अणु और कैल्सियम फास्फेट के तीन अणुओं की आवश्यकता होती है।

(ख) अधिशोषण

इस विचारधारा के अनुसार मृदा में द्रव तथा ठोस माध्यमों के बीच फास्फोरस का अधिशोषण हो जाता है। इसमें फास्फेट आयन मृदा के द्रव एवं ठोस माध्यमों में घुसकर जलीय शैलों के साथ नये यौगिकों का निर्माण करते हैं जिसे "कलिल बंधित" फास्फोरस कहते हैं। इस क्रिया में फास्फोरस मृत्तिका कणों पर एकदम चिपक जाता है किन्तु विसरण शील वातावरण में संतुलन बनाये रखने के लिये यह धनात्मक आयनों को आकर्षिक करता है। इससे कलिलीय बंधित (Colloidal bound) फास्फेट का निर्माण होता है। इन दोनों प्रकार के बंधनों को श्लेष्मिका बंधन (Miceller binding) कहते हैं। इसके विपरीत अतिरिक्त श्लेष्मिका बंधन फास्फेट आयनों का अवक्षेपण दूसरे आयनों द्वारा होता है।

इसका दूसरा वर्गीकरण रासायनिक एवं भौतिक अधिशोषण के रूप में भी किया जा सकता है। रासायनिक अधिशोषण में प्रयुक्त फास्फोरस आयन मृत्तिका कणों पर एक या अधिक आयनों जैसे–लोहा, एल्युमिनियम और कैल्सियम आयनों से संयोग करके लौह, एल्युमिनियम और कैल्सियम हाइड्राक्सी फास्फेट बनाते हैं। इसके विपरीत फास्फोरस आयनों का बिना किसी रासायनिक प्रतिक्रिया के मृत्तिका कणों पर चिपक जाना भौतिक अधिशोषण कहलाता है।

(ग) ऋणात्मक विनिमय

यह विधि गणित के नियम पर आधारित है। इस प्रतिक्रिया में एक ऋणात्मक आयन का दूसरे ऋणात्मक आयन से विनिमय होता हैं सामान्यतः यह द्रव्य अनुपाती क्रिया नियम' (Law of Mass Action) और तत्व यौगिकी

के नियमों का पालन नहीं करती। इस प्रतिक्रिया में मृदा घोल में उपस्थित आयन मृदा के ठोस भाग से रासायनिक शक्ति द्वारा जुड़े रहते हैं। विनिमय विधि द्वारा फास्फोरस ठोस भाग पर पहुचं जाता है। इस दिशा में विभिन्न वैज्ञानिकों ने भिन्न–भिन्न मत प्रस्तुत किये हैं। जब समान पी–एच के मृत्तिका कण और फास्फोरस के घोल को मिलाया जाता है तो कुछ समय बाद घोल का पी एच बढ़ जाता है। घोल में उपस्थित फास्फोरस के कण मृत्तिका कणों पर पहुंच कर वहां से हाइड्राक्सी (OH-) आयन को विस्थापित करते हैं। इसकी मात्रा गुणात्मक विधि द्वारा ज्ञात की जा सकती है। इस फास्फोरस को सोडियम हाइड्राक्साइड द्वारा पुनः विस्थापित किया जा सकता है। मृत्तिका सतह पर विनिमय द्वारा पहुंचा फास्फोरस लोहे तथा अल्युमिनियम के साथ होने वाली रासायनिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अवक्षेपित हो सकता है। इसे निम्नांकित रासायनिक प्रतिक्रिया द्वारा समझा जा सकता है।

$[>Al\ OH_2^{+}]\ OH + H_2PO_4^{-} \longrightarrow \qquad [>Al\ OH_2^{+}] + OH^{-}$

धन आवेषित कण   धन आवेशित कण

मृदा में फास्फोरस स्थिरीकण को प्रभावित करने वाले कारक

मृदा में फास्फोरस–स्थिरीकरण विभिन्न कारकों में एकाकी अथवा मिश्रित प्रभावों पर आधारित होता है। भारतवर्ष में हुए शोध कार्यों के आधार पर फास्फोरस–स्थिरीकरण के लिए निम्नलिखित कारक उत्तरदायी पाये गये हैं–

मृत्तिका की मात्रा तथा मृत्तिका खनिज की प्रकृति

- मृदा में लौह अल्युमिनियम आक्साइड (सेस्क्युआक्साइड) की मात्रा
- मृदा का पी एच–मान
- विनिमेय धनायन तथा विलेय लवणों की मात्रा
- कार्बनिक पदार्थ
- मृदा में फास्फेट आयनों की सान्द्रता
- कैल्सियम कार्बोनेट की उपस्थिति
- मृदा का फास्फोरस स्तर
- तापक्रम
- मृदा की किस्म

मृत्तिका की मात्रा तथा मृत्तिका खनिज की प्रकृति

मृदा में मृत्तिका की मात्रा का फास्फेट स्थिरीकरण से सीधा सम्बन्ध होता है। मृदा में मृत्तिका की मात्रा में वृद्धि के साथ ही मृदा की फास्फेट स्थिरीकरण क्षमता बढ़ती जाती है।

मृदाओं में मृत्तिका खनिजों की प्रकृति और मात्रा का फास्फेट स्थिरीकरण से गहरा सम्बन्ध पाया गया है। हाइड्रोजन–केओलीनाइट मृत्तिका की फास्फोरस स्थिरीकरण क्षमता अत्यधिक पायी जाती है। यह मृदा में फास्फेट आयनों की सान्द्रता बढ़ने के साथ बढ़ जाती है। निम्न पी–एच मान पर केओलिनाइट मृत्तिका की मान्टमोरिलोनाइअ की अपेक्षा फास्फेट–स्थिरीकरण क्षमता अधिक पायी जाती है। 7–9 पी–एच मान पर विपरीत परिणाम प्राप्त होते हैं। मृत्तिका खनिजों के कणों के आकार के फास्फेट स्थिरीकरण का व्युत्क्रम सम्बन्ध होता है।

भारतवर्ष में मृत्तिका खनिजों के बारम्बार लवण–निक्षालन के बाद एल्युमिनियम तथा लौह आयन–प्राप्त होते हैं। ये फास्फेट–स्थरीकरण के लिए उत्तरदायी होते हैं।

फास्फेट–स्थिरीकरण में ऋणात्मक विनिमय द्वारा हाइड्राक्सिल समूह मुक्त होता है। इससे मृदा घोल में इसकी सान्द्रता बढ़ जाती है। इससे मृदा–विलयन का पी,एच बढ़ जाता है। इस प्रकार मृदा विलयन के पी–एच का बढ़ना फास्फेट स्थिरीकरण का सूचक है।

मृदा में उपस्थित एल्युमिनियम आयन जलयोजित होकर एल्युमिनियम हाइड्राक्साइड बनाता है। मृदा में विलये फास्फेट का प्रयोग करने पर हाइड्राक्सिल आयन के विस्थापन से एल्युमिनियम हाइड्राक्सी फास्फेट का अवक्षेप बनता है।

अम्लीय मृदाओं में फास्फेट स्थिरीकरण के लिए मुक्त सेस्क्युआक्साइड और चूना प्रधान मृदाओं में मुक्त कैल्शियम कार्बोनेट को उत्तरदायी माना गया है।

मृदा-पीएच

मृदा–पीएच एवं मृत्तिका खनिज फास्फेट–स्थिरीकरण के लिए

महत्वपूर्ण कारक माने जाते हैं। विभिन्न पीएच मान फास्फोरस–स्थिरीकरण मुख्यतः अल्युमीनियम और लोहे के मृदा घोल से विलुप्त होकर लोहे तथा एल्युमीनियम फास्फेट के रूप में अवक्षेपित होने के कारण होता है। 4.5–7.5 पी एच पर फास्फेट का स्थिरीकरण मृत्तिका कणों पर फास्फेट आयनों के अधिशोषण द्वारा होता है। 6 से 10 मृदा पी एच पर फास्फेट द्विसंयोजक धनायनों द्वारा अवक्षेपित होकर स्थिर हो जाता है। अम्लीय मृदा में क्षारीय तथा चूना प्रधान मृदाओं की अपेक्षा फास्फेट–स्थिरीकरण अधिक होता है। अम्लीय मृदा की फास्फेट–स्थिरीकरण क्षमता पीएच बढ़ने पर घटती जाती है। पी एच तथा फास्फेट–स्थिरीकरण में विपरीत सह सम्बन्ध होता है। इसके विपरीत क्षारीय और चूना प्रधान मृदाओं में फास्फेट–स्थिरीकरण पी एच बढ़ने से बढ़ता है।

विनिमेय धनायन तथा विलये लवणों की मात्रा

मृदा की कलिलीय जटिल में विद्यमान विनिमेय धनायन की मात्रा तथा प्रकृति फास्फेट स्थिरीकरण के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी होते हैं। अध्ययनों से पता चला है कि भारतीय मृदाओं में विनिमेय धनायनों की वृद्धि से फास्फेट–स्थिरीकरण में ऋणात्मक सह सम्बन्ध पाया गया। अम्लीय मृदाओं में पीएच मान बढ़ने पर फास्फेट–स्थिरीकरण में ऋणात्मक सह सम्बन्ध पाया गया। अम्लीय मृदाओं का पीएच मान बढ़ने पर फास्फेट–स्थिरीकरण कम होने में मुख्यतः दो विधियां कार्य करती हैं।

(1) फास्फेट स्थिरीकरण मृदा घोल में उपस्थित फास्फेट आयनों और मृत्तिका कणों (crystal lattice) पर उपस्थित हाइड्राक्सिल आयनों के मध्य विपरीत विनिमय द्वारा सम्भव होता है। मृदा–विलयन में हाइड्राक्सिल आयनों की सान्द्रता बढ़ने से इस क्रिया में बाधा उत्पन्न होने लगती है। इससे फास्फेट स्थिरीकरण क्रमशः कम होने लगता है।

(2) मृदा विलयन में फास्फेट आयनों का लोहे और एल्युमिनियम आयनों से मिलकर अघुलनशील यौगिकों में अवक्षेपण फास्फेट–स्थिरीकरण के लिए उत्तरदायी क्रियाा है। पी एच बढ़ने से लोहे और अल्युमिनियम की अघुलनशील यौगिक बनाने की क्षमता क्षीण होने लगती है। इससे अन्ततः फास्फेट अधिशोषण कम हो जाता है।

मृदा विलयन में धनायनों की सान्द्रता बढ़ाने से स्थिरीकरण कम होता है। अम्लीय मृदाओं में हाइड्रोजन की सान्द्रता स्थिरीकरण बढ़ाने में सहायक होती है। विनिमयशील धनायनों में कैल्शियम की दक्षता फास्फेट–स्थिरीकरण में सबसे अधिक तथा सोडियम की सबसे कम तथा अविनिमयशील धनायनों में लोहे की सबसे अधिक तथा मैंगनीज की सबसे कम पाई गयी। चोपड़ा इत्यादि (1970) ने पंजाब राज्य की मृदाओं में धनायनों से वृद्धि ज्ञात की। विभिन्न धनायनों की सापेक्ष दक्षता इस प्रकार थी–

H>ca>Mg>K>Na

कैल्सियम कार्बोनेट की उपस्थिति

मृदा विलयन में कैल्सियम आयन, विनिमयशील कैल्सियम तथा मुक्त कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा फास्फेटस्थिरीकरण के लिए उत्तरदायी मानी गयी है। क्षारीय तथा चूना युक्त मृदाओं में इनकी बाहुल्यता होती है।

क्षारीय मृदाओं में उच्च पी एच के कारण घुलनशील मानोकैल्शियम फास्फेट अवक्षेपित होकर डाईकैल्शियम फास्फेट तथा हाइड्राक्सी एपेटाइड या कार्बोनेट एपेटाइट में बदल जाता है। यह द्रव्य अनुपाती क्रिया नियम (**Law of Mass Action**) पर आधारित होती है। मृदा विलयन में कैल्शियम आयन की बाहुल्यता इस क्रिया को तीव्र करती है।

क्षारीय मृदाओं में मुक्त कैल्शियम कार्बोनेट की बाहुल्यता होने के कारण इनकी सतहों (पृष्ठ) पर प्रारम्भ में फास्फेट का अधिशोषण होता है। बाद में सान्द्रता के प्रभाव से कैल्शियम फास्फेट यौगिक प्राप्त होता है। इस प्रकार मृदा में जितना ही मुक्त कैल्शियम कार्बोनेट होगा, फास्फेट स्थिरीकरण उसी गति से तीव्र होगा।

मृदा में फास्फेट आयनों की सान्द्रता

मृदा में फास्फेट आयनों की सान्द्रता का प्रत्यक्ष सह सम्बन्ध फास्फेट स्थिरीकरण से पाया गया है।

मृदा की किस्म

मृदा में मृत्तिका की मात्रा बढ़ने से फास्फेट स्थिरीकरण में वृद्धि होती

है। पाठक इत्यादि (1950) ने माइकायुक्त जलोढ़ मृदाओं में मृत्तिका कणों में फास्फेट अधिशोषण क्षमता अधिक पायी है। इस प्रकार मृदा कणों का आकार घटने पर फास्फेट स्थिरीकरण बढ़ जाता है। इसका कारण यह है कि छोटे कणों वाली मृदाओं की फास्फेट अधिशोषण के लिए निश्चित तह में वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत लैटेराइट पाडजाल मृदा में फास्फेट स्थिरीकरण बड़े कणों वाली मृदाओं में अधिक पाया गया है।

मृदा का फास्फोरस स्तर

सेस्क्युआक्साइड और फास्फोरस अनुपात का फास्फेट स्थिरीकरण से सीधा सम्बन्ध होता है। यह अनुपात अधिक होने पर मृदा में फास्फेट की न्यूनता पाई जाती है जिससे प्रयुक्त फास्फेट का स्थिरीकरण अधिक होता हैं इसके विपरीत फास्फेट संतृप्त मृदा में लोहे, अल्युमिनियम, कैल्शियम और पोटैशियम के फास्फेट डालने पर स्थिरीकरण में कमी हो जाती है। उत्तर प्रदेश की मृदाओं (गंगा ऊपरी, गंगा नव जलोढ़, गंगा समतल, पूर्वी निचली तराई, बुन्देलखण्ड पड़वा तथा बुन्देलखण्ड काबर) के प्रारम्भिक फास्फेट स्तर तथा फास्फेट अधिशोषण में कोई सम्बन्ध नहीं पाया गया।

अभिक्रिया काल

यह निर्विवाद सत्य है कि मृदा विलयन के सम्पर्क में जितना ही अधिक समय तक फास्फेट रहता है, स्थिरीकरण में उसी गति से वृद्धि होती है। किन्तु यह तीव्रता सदैव नहीं बनी रह पाती। एक निश्चित मात्रा के बाद इसमें ह्रास होने लगता है।

तापक्रम

मृदा तापक्रम बढ़ने से फास्फेट अधिशोषण में वृद्धि होती है किन्तु अभी इसकी निश्चित प्रकृति का ज्ञान नहीं है। इतना ज्ञात है कि उष्ण क्षेत्रों की मृदाओं में शीतोष्ण क्षेत्रों की अपेक्षा फास्फेट स्थिरीकरण की क्षमता अधिक पायी जाती है। मृदा तापक्रम 25° से 35° से.ग्रे. बढ़ने पर फास्फेट स्थिरीकरण में न्यून वृद्धि होती है जबकि 100° से.ग्रे. तापक्रम बढ़ने पर इस क्रिया में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है।

तापक्रम में वृद्धि मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों की संख्या को प्रभावित करते हैं जिससे कार्बनिक फास्फोरस का खनिजीकरण अधिक होता है।

भारतीय मृदाओं की फास्फेट-स्थिरीकरण क्षमता

सिंह तथा दास (1945) ने पंजाब की मृदाओं में प्रयुक्त फास्फेट का 7.2 से 63.5 प्रतिशत (औसत 21.66 प्रतिशत) स्थिर अवस्था में प्राप्त किया। पालमपुर की अम्लीय मृदा में फास्फेट–स्थिरीकरण क्षमता सबसे अधिक पाई गयी। चुनही मृदा में भी 30.5 प्रतिशत स्थिरीकरण देखा गया।

पाठक इत्यादि (1950) ने कानपुर की माइकायुक्त जलोढ़ मृदाओं में बालू, सिल्ट तथा मृत्तिका भाग की फास्फेट स्थिरीकरण क्षमता ज्ञात की। इन्होंने उल्लेख किया है कि मृत्तिका भाग में फास्फेट स्थिरीकरण क्षमता सबसे अधिक पायी जाती है। स्थिरीकरण बालू भाग द्वारा 0.0025, सिल्ट द्वारा 0.0937 तथा मृत्तिका द्वारा 0.587 मिलीग्राम फास्फोरस प्रति 100 ग्राम मृदा से प्राप्त होता है।

कंवर तथा ग्रेवाल (1960) ने पंजाब राज्य की मृदाओं की फास्फेट स्थिरीकण क्षमता 3120 से 18500 अंश प्रति दश लक्षांश फास्फोरस पेन्टाआक्साइड ज्ञात की। अम्लीय मृदाओं द्वारा औसत स्थिरीकरण 8890 अंश एवं चूना प्रधान मृदा की 4889 प्रति दश लक्षांश थी गुप्ता (1965) ने उल्लेख किया है कि बिहार की मृदा में प्रयुक्त फास्फेट का 25 से 90 प्रतिशत फास्फेट स्थिर हो जाता है। सिंह तथा पाठक (1973 ब) ने उत्तर प्रदेश की गोरखपुर तथा देवरिया जनपद की मृदाओं तथा मृत्तिका प्रभाज्यों की फास्फेट स्थिरीकरण क्षमता क्रमशः 7845–8871 तथा 16205–31762 अंश प्रतिदश लक्षांश टाइप–1 मृदा में तथा टाइप–2 और टाइप–3 में क्रमशः 5340–7165 तथा 18173–27543 और 4452–5456 तथा 13278–17264 अंश प्रति दश लक्षांश पाई गयी।

मृदा में सेस्क्युआक्साइड की मात्रा

अम्लीय मृदाओं में स्वतन्त्र सेस्क्युआक्साइड की बाहुल्यता होती है। यह फास्फेट स्थिरीकरण का प्रमुख कारक है। एल्युमीनियम और लोहे प्रधान मृदा खनिज तथा मृत्तिका, लोहे और एल्युमीनियम के प्रमुख स्रोत हैं। इनसे मिलकर अघुलनशील यौगिकों का निर्माण विलेयता–गुणांक नियमों के आधार पर होता है। इसके अलावा ये फास्फेट आयनों से मिलकर अवक्षेपित हो जाते हैं। अन्य परिस्थितियों में पहले एल्युमीनियम और लोहे का जलीय–आक्साइड बनाता

है। यह फास्फेट आयनों को उद्ग्राहित करता हैं अन्ततः यह अघुलनशील यौगिक में बदल जाता है। यह दोनों क्रियाएं यद्यपि विभिन्न विधि से सम्पन्न होती हैं किन्तु दोनों के अन्तिम यौगिक समान होते हैं। लोहे तथा एल्युमीनियम द्वारा अम्लीय मृदा में फास्फेट स्थिरीकरण सामान्य रूप से निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

$[M(H_2O)\ x\ AY]^{+2\ to\ 1}$ $+A+H_2PO_4M \longrightarrow$ $[H_2O.AxH_2PO_4]$
$[M_2O_3.M(OH)_3]$
मृत्तिका खनिज — अवक्षेपित अथवा अधिशोषित फास्फेट
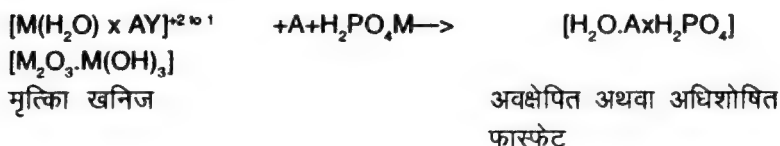
जहां M=लौह तथा एल्युमीनियम धनायन

A=आक्साइड अथवा हाइड्राक्साइड

भारतीय लाल मृदाओं में सेस्क्युआक्साइड की मात्रा अधिक होने के कारण फास्फेट स्थिरीकरण अधिक होता है। अम्लीय मृदा में लोहे तथा एल्युमीनियम की सक्रियता कम कर देने पर फास्फेट स्थिरीकरण में ह्रास होता है। मुकर्जी (1943) ने फास्फेट–स्थिरीकरण के लिए सेस्क्युआक्साइड के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण कारकों को भी समान रूप से उत्तरदायी बताया। उनके अनुसार फास्फेट स्थिरीकरण के लिए निम्नलिखित तीन विधियां उत्तरदायी होती हैं–

(1) मृदा में उपस्थित मुक्त लोहे और अल्युमीनियम के साथ मिलकर कुछ फास्फेट उनके फास्फेटों के रूप में बदल कर निश्चल हो जाता है।

(2) कुल फास्फोरस का कुछ भाग आयन द्विसंयोजक धनायनों से मिलकर कैल्शियम फास्फेट तथा कभी–कभी मैग्नीशियम फास्फेट बनाता है।

(3) फास्फेट का कुछ अंश विनिमय अथवा भौतिक क्रियाओं द्वारा मृत्तिका कणों अथवा खनिजों द्वारा या तो उद्ग्रहित हो जाता है अथवा अधिशोषित हो जाता है।

फसलोत्पादन में फास्फोरस का महत्व

फास्फोरस एक प्रमुख पोषक तत्व है जोकि ऋणायन रूप में पौधों द्वारा

रेखाचित्र-5.4 भूमि की ऊपरी सतह तथा अन्दर फास्फोरस चक्र

अधिक मात्रा में ग्रहण किया जाता है। नाइट्रोजन और गंधक की भांति फास्फेट का पुनः अवकरण पादप कोशिका में नहीं हो पाता। पादप पोषण में इसका महत्व इस प्रकार है:

1. उर्जा–उपायपस में फास्फोरस की प्रमुख भूमिका है। एडिनोसाइन ट्राई फास्फेट का अंग होने के कारण समस्त पादप–प्रजातियों की जीवित कोशिकाओं के उर्जा–कोष का अभिन्न अंश है।

2. फास्फोलिपिड के अलावा यह शुगर फास्फेट, न्युक्लियोटाइड और कोएन्जाइम में पाया जाता है।

3. फाइटिक अम्ल, मियोआइनोसिटाल के हेक्सा फास्फेट (एस्टर और फास्फेरिक–अम्ल के कैल्शियम और मैग्नीशियम लवण (फाइटिन) के रूप में बीजों में भंडारित रहता है।

4. यह तमाम एन्जाइम प्रक्रियाओं को नियंत्रित करता है। एडीपी का एटीपी में फास्फोरीकरण फास्फोरस की मात्रा पर निर्भर करता है। यह तत्व उपापचय तथा जैविक संश्लेषण प्रतिक्रियाओं में महत्वूपर्ण भूमिका निभाता है। यह अनेक फास्फोरस यौगिकों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह अनेक फास्फोरीकृत यौगिकों के संश्लेषण हेतु आवश्यक समझा जाता है। यही कारण है कि फास्फोरस के अभाव में उपापचय और विकास सम्बन्धी गड़बड़ियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

5. फास्फोरस पौधों द्वारा मौलिब्डेट के अवशोषण को प्रोत्साहित करता है ऐसा दो आयनों के बीच अन्योन्य क्रिया के कारण एक आयन की गतिशीलता बढ़ जाती है। फास्फोरस के अभाव में पौधों के क्लोरोप्लास्ट में असामान्यता आ जाती है।

6. पोधों की जड़ों के विकास में फास्फोरस का विशेष महत्व है। यह पार्श्वीय तथा तन्तुमय दोनों ही प्रकार की जड़ों के विकास को प्रोत्साहित करता है जिससे पौधों द्वारा पोषक तत्वों का शोषण अधिक होता है। फास्फोरस की कमी के कारण जड़–तन्त्र का विकास रूक जाता है जिससे उनका पोषण मण्डल भी कट जाता है।

7. फास्फोरस के उचित पोषण की दशा में अनाज वाली फसलों में दौजी **(Tillers)** की संख्या में वृद्धि हो जाती है जिससे बालियों और दानों की संख्या भी बढ़ जाती है और अन्ततः उपज बढ़ जाती है।

8. दानों के निर्माण में फास्फोरस की महत्वपूर्ण भूमिका है। फास्फोरस की कमी के कारण फसलें देर से आती हैं।

9. चारे वाली फसलों के गुणों पर फास्फोरस की कमी का कुप्रभाव पड़ता है।

10. तने को शक्ति प्रदान करके फसलों में अवशयन–प्रतिरोधिता उत्पन्न करता है।

11. पौधों में रोग–प्रतिरोधिता उत्पन्न करने में सहायक होता है। यह अनाज वाली फसलों में दाने–भूसे का आपसी अनुपात बढ़ा देता है।

12. दलहनी फसलों में फास्फोरस की कमी के कारण पौधों की जड़–ग्रंथियों में पाए जाने वाले जीवाणुओं की क्रियाशीलता कम हो जाती है, जिससे नाइट्रोजन–यौगिकीकरण कम होता है और फसल में नाइट्रोजन की कमी हो जाती है।

कमी के लक्षण

पौधों में इसकी कमी के लक्षण इस प्रकार हैं:

1. फास्फोरस की कमी के कारण फसलों की पत्तियां गहरी हरी या नीली–हरी हो जाती हैं। पत्तियों की शिराओं के मध्य का भाग प्रायः लाल, बेंगनी या भूरे रंग का हो जाता है।

2. पौधों के साथ ही जड़ों की भी वृद्धि रूक जाती है।

3. उग्र कमी की स्थिति में पौधा बौना दिखाई देने लगता है।

4. फास्फोरस की कमी के कारण फलों का रंग भूरा–हरा हो जाता है। फल अधिक मुलायम और गूदेदार हो जाता है। स्वाद खट्टा हो जाता है और इन्हें अधिक समय तक रखा नहीं जा सकता।

न्यूनता रोग

सिकिल लीफ

फास्फोरस की कमी के कारण पत्तियों की मुख्य शिरा को छोड़कर शेष भाग में पर्णहरित (क्लोरोफिल) कम हो जाता है तथा पत्तियां हंसिया या दराती की तरह बेडौल हो जाती हैं। पत्तियों का ऐसा परिवर्तन "सिकिल लीफ" कहा जाता है।

भारत में फास्फोरस के प्रयोग का फसलोत्पादन पर प्रभाव

पौधों के लिए आवश्यक तीन प्रमुख पोषक तत्वों में फास्फोरस का विशेष स्थान है इसलिए फास्फोरस को कृषि की कुन्जी कहा गया है। भारतीय मिट्टियों में अधिक उपज देने वाली जातियों के प्रचलन के बाद फास्फोरस की कमी बढ़ी। प्रारम्भ में केवल नाइट्रोजन धारी उर्वरकों का इस्तेमाल होने के कारण नाइट्रोजन तथा फास्फोरस असन्तुलन बढ़ता गया। भारतीय मिट्टियों के फास्फोरस उर्वरता स्तर के बारे में इसके पहले बताया जा चुका है। हमारे देश में 1989—90 में प्रति हेक्टर तत्वरूप में 17.43 किलोग्राम फास्फोरस का प्रयोग हुआ जबकि इसकी तुलना में नाइट्रोजन की औसत खपत 42.72 किलोग्राम प्रति हेक्टर रही। आवश्यकता के अनुरूप फास्फोरस का इस्तेमाल न होने पर निकट भविष्य में मिट्टी में फास्फोरस की कमी बढ़ सकती है।

भारत में कृषकों के खेतों में किये गये परीक्षणों में फास्फोरस के प्रयोग द्वारा विभिन्न फसलों की उपज में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है जो कि सारणी 5.3 में दिये गये आंकड़ों से स्पष्ट है।

गेहूं की अधिक उपज देने वाली जातियों में प्रारम्भ के एक—दो वर्षों तक केवल नाइट्रोजन के प्रयोग से अधिकतम उपज मिल सकी, परन्तु इसके बाद फास्फोरस का प्रयोग न करने पर गेहूं की उपज काफी घट गयी। पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में किये गये परीक्षणों से इस कथन की पुष्टि हुई। भारत में किये गये 10 हजार परीक्षणों के परिणाम इस बात का संकेत करते हैं कि 60 कि.ग्रा. प्रति हे. की दर से फास्फोरस का इस्तेमाल करने से गेहूं की उपज में होने वाली औसत वृद्धि 570 किलोग्राम प्रति हे. थी। इसके पहले 6900 परीक्षणों के परिणामों के आधार पर भारद्वाज (1978) और टण्डन

3261 HRD/2000—13

सारणी-5.3 कृषकों के खेतों में किये गये परीक्षणें में फास्फोरस के प्रयोग द्वारा विभिन्न फसलों की उपज में वृद्धि (1969–1984)

फसल	मौसम	प्रयोगों का औसत	बिना उर्वरक द्वारा उपज वृद्धि (कि.ग्रा./हे.)	प्रयुक्त फास्फोरस कि.ग्रा. प्रति हे.	उपज वृद्धि	
					कि.ग्रा. प्रति हे.	कि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. फास्फोरस
धान	खरीफ–सिंचित	9,634	2,960	60	620	10.3
धान	खरीफ–असिंचित	2,728	2,360	60	480	8.0
धान	रबी–सिंचित	5,686	3,200	60	740	12.3
धान	जायद–सिंचित	306	3,230	40	940	23.5
गेहूं	रबी–सिंचित	10,133	1,550	60	570	9.5
ज्वार	खरीफ–असिंचित	288	1,270	60	320	5.3
मक्का	खरीफ–सिंचित	354	1,670	60	620	10.3
मक्का	रबी–सिंचित	179	1,600	60	660	11.0
बाजरा	खरीफ–सिंचित	146	1,140	60	320	5.3
बाजरा	खरीफ–असिंचित	207	500	60	280	4.7
रागी	खरीफ–असिंचित	120	1,250	60	630	10.5
रागी	रबी–सिंचित	172	1,460	60	460	7.7
मूंगफली	रबी–सिंचित	266	1,620	60	450	9.0
कपास	सिंचित	250	870	60	230	3.8

स्रोत: टण्डन (1987)

(1980) इस निष्कर्ष पर पहुचे कि नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश के संयुक्त प्रयोग से गेहूं की उपज में होने वाली कुल वृद्धि में 35 प्रतिशत योगदान फास्फोरस का रहा।

अभी कुछ वर्ष पहले यह अनुभव किया जा रहा है कि गेहूं की उपज गत वर्षों के समान या उससे अच्छे प्रबन्ध स्तर के बावजूद गिर रही है। कृषकों के खेतों में 1967–1982 की अवधि में किये गये परीक्षणों के परिणाम जोकि सारणी 5.4 में दिये गये हैं, से स्पष्ट है कि कालान्तर में फास्फोरस के प्रयोग द्वारा गेहूं की उपज में वृद्धि में कमी आयी है।

सारणी-5.4 भारत में कृषकों के खेतों में किये गये परीक्षणों में फास्फोरस के प्रयोग द्वारा गेहूं की उपज में वृद्धि का विभिन्न वर्षा में क्रम

समय	प्रयोगों की संख्या औसत	उपज (कि.ग्रा./हे.)		६० कि.ग्रा. फास्फोरस प्रयोग से उपज वृद्धि	
		बिना उर्वरक	उर्वरक 120–60–60	कि.ग्रा./हे.	कि.ग्रा./कि.ग्रा.
1967–71	2235	1988	4023	673	11.3
1974–77	2530	1823	3821	630	10.5
1977–82	3768	1450	3400	490	8.2

स्रोत: टण्डन (1987)

1967–71 की तुलना में 1977–82 में गेहूं की उपज में 15 प्रतिशत की कमी आयी जबकि इस अवधि में गेहूं की फास्फोरस के प्रति अनुक्रिया में 27 प्रतिशत की कमी हो गई। भविष्य में इससे सम्बन्धित कारणों की जानकारी करना आवश्यक होगा। फसल की जातियों, मिट्टियों में गौण एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी, फसल प्रबन्ध, फसल, सुरक्षा खरपतवार नियंत्रण, जल प्रबन्ध आदि कारकों का इस घटती अनुक्रिया पर प्रभाव पड़ सकता है।

फास्फोरस उपयोग क्षमता को प्रभावित करने वाले कारक

फास्फोरस उपयोग क्षमता को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारणों का उल्लेख यहां किया जा रहा है।

फास्फोरस उर्वरता स्तर

फास्फोरस के उपयोग से फसलों की उपज में होने वाली वृद्धि मिट्टी में उपलब्ध फास्फोरस की मात्रा पर विशेष रूप से निर्भर करती है। अतः उर्वरक फास्फोरस प्रबन्ध के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि फसलों की फास्फोरस आवश्यकता का निर्धारण मिट्टी परीक्षण के आधार पर करके फास्फेट का प्रयोग किया जाय। भारत में किये गये परीक्षणों से इस तत्य की पुष्टि हुई है कि मिट्टी परीक्षण के आधार पर फास्फेट का प्रयोग करने पर प्रति कि. ग्रा. फास्फोरस द्वारा दाने की उपज में अधिक वृद्धि होती है। सारणी 5.5 में दिये गये आंकड़ों से इस कथन की पुष्टि होती है।

सारणी-5.5 मिट्टी–परीक्षण पर आधारित तथा सामान्य संस्तुति के आधार पर किये गये उर्वरक प्रयोग का आपेक्षिक महत्व

फसल	प्रयोगों की सं.	आधार	प्रति कि.ग्रा. पोषक तत्व द्वारा दाने की उपज में वृद्धि (कि.ग्रा.)
धान	10	मिट्टी परीक्षण	25.6
		सामान्य संस्तुति	12.3
गेहूं	21	मिट्टी परीक्षण	12.6
		सामान्य संस्तुति	7.8
ज्वार	12	मिट्टी परीक्षण	15.0
		सामान्य संस्तुति	9.2
मूंग	2	मिट्टी परीक्षण	5.5
		सामान्य संस्तुति	4.0
मूंगफली	5	मिट्टी परीक्षण	37.0
		सामान्य संस्तुति	11.8
कपास	5	मिट्टी परीक्षण	3.6
		सामान्य संस्तुति	3.2

स्रोतः रंधावा, एन.एस. एवं वेलायुथम, एम. (1982)

लीलावती एवं सहयोगियों (1986) ने कृषकों के खेतों में धान की फास्फोरस के प्रति अनुक्रिया सम्बन्धी परिणामों का फास्फोरस उर्वरता स्तर के अनुसार विवरण दिया है जिसे सारणी 5.6 तथा रेखा चित्र 5.5 में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी-5.6 मृदा फास्फेट स्तर के अनुसार धान की फास्फोरस के प्रति अनुक्रिया

उर्वरता स्तर	प्रयोगों की संख्या	प्रति कि.ग्रा. फास्फोरस द्वारा धान की उपज में वृद्धि (कि.ग्रा.)	
		40 कि.ग्रा. P2O5 प्रति हे.	60 कि.गा. प्रति हे.
खरीफ			
निम्न	3079	12.3	9.8
मध्यम	2181	11.4	8.9
रबी			
निम्न	1592	16.5	12.7
मध्यम	1639	11.3	9.3

स्रोतः लीलावती, सी.आर., बापत, एस.आर. एवं नारायण, पी. (1986)

सारणी में दिये गये आंकड़ों से स्पष्ट है कि निम्न फास्फोरस उर्वरता स्तर पर मध्यम उर्वरता स्तर की तुलना में फास्फोरस के प्रयोग से धान के उपज में अधिक वृद्धि हुयी। रबी के मौसम में प्रति हेक्टर 40 कि.ग्रा. फास्फोरस देने पर मध्यम उर्वरता स्तर की तुलना में निम्न उर्वरता स्तर पर प्रति कि.ग्रा. फास्फोरस से 5.2 कि.ग्रा. तथा 80 कि.ग्रा. पर 3.4 कि.ग्रा. दाने की अतिरिक्त उपज मिली।

मिट्टी की फास्फेट स्थिरीकरण क्षमता

ऐसी मिट्टियां जिनकी फास्फोरस स्थिरीकरण क्षमता कम है वहां उर्वरक फास्फोरस की कम मात्रा से अपेक्षित लाभ मिल जाता है। इसके विपरीत वे मिट्टियां जिनकी फास्फोरस स्थिरीकरण क्षमता अधिक है वहां उर्वरक फास्फोरस के इस्तेमाल से वांछित लाभ पाने के लिये अधिक मात्रा

में फास्फोरस का प्रयोग आवश्यक होता है। रेखाचित्र 5.5 में दिये गये आंकड़ों से इस कथन की पुष्टि हो जाती है।

फसल प्रजातियां

'फसलों की विभिन्न प्रजातियों की फास्फोरस अवशोषण क्षमता में अंतर पाया जाता है। रेखा चित्र 5.5 में दिये गये परिणामों से यह विदित होता है कि छोटी लरमा की तुलना में गेहूं की कल्याण सोना जाति फास्फोरस के उपायोग से विशेष लाभान्वित होती है।

नाइट्रोजन फास्फोरस संतुलन

फास्फोरस के प्रयोग से अपेक्षित लाभ पाने के लिये नाइट्रोजन की आवश्यक पूर्ति सुनिश्चित होनी चाहिये। नाइट्रोजन की विभिन्न मात्राओं पर गेहूं की फास्फोरस के प्रति अनुक्रिया का विवरण रेखा चित्र 5.4 (घ) में मिलता है। स्पष्ट है कि नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि के साथ ही उर्वरक फास्फोरस की क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।

फास्फोरसधारी उर्वरकों की आपेक्षिक क्षमता

फास्फोरस की विलेयता के अनुसार फास्फोरसधारी उर्वरकों को तीन वर्गों में बांटा गया है, अर्थात (1) सिंगल सुपर फास्फेट, ट्राई सुपर फास्फेट, डाई अमोनियम फास्फेट जैसे जल विलेय घुलनशील फास्फोरस वाले उर्वरक (2) डाई कैल्शियम फास्फेट, बेसिक स्लैग जैसे साइट्रिक अम्ल में विलेय फास्फोरस वाले उर्वरक (3) राक फास्फेट जैसे जल तथा साइट्रिक अम्ल अविलेय फास्फोरस वाले उर्वरक।

जल विलेय फास्फोरस का उपयोग पौधे आसानी कर लेते हैं। विभिन्न फास्फोरसधारी उर्वरकों की क्षमता उसमें उपस्थित जल विलेय फास्फोरस की मात्रा तथा मृदा अविक्रया पर निर्भर करती है। उदासीन और क्षारीय अभिक्रिया वाली मिट्टियों में जल विलेय फास्फोरस वाले उर्वरक विशेष प्रभावी होते हैं। इसके विपरीत अम्लीय मिट्टियों में साइट्रिक अम्ल विलेय तथा जल एवं साइट्रिक अम्ल अविलेय फास्फोरस वाले उर्वरकों की क्षमता एक जैसी देखी जाती है। कम अवधि वाली फसलों तथा ऐसी फसलों जिनका जड़ तंत्र उथला रहता है, वहां अम्लीय मिट्टियों में भी जल विलेय फास्फोरस वाले उर्वरक
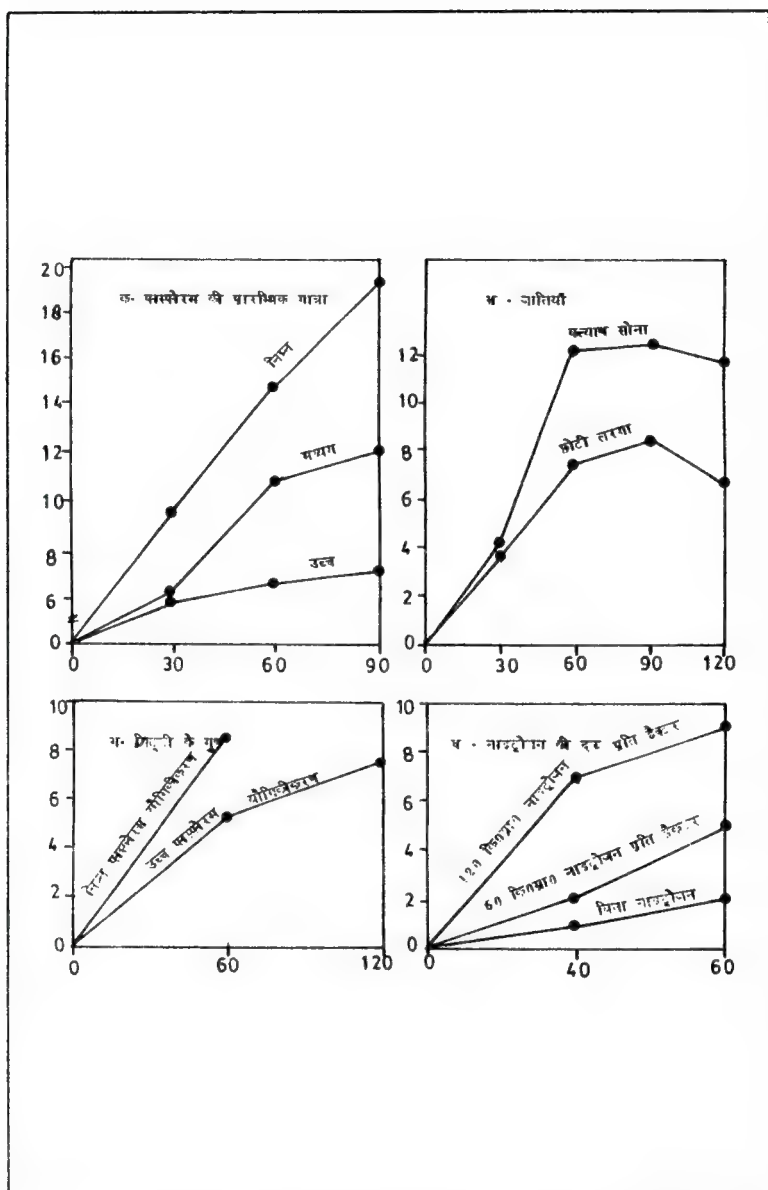
रेखाचित्र-5.5: विभिन्न कारकों का फास्फोरस के इस्तेमाल से गेहूं की उपज–वृद्धि पर प्रभाव
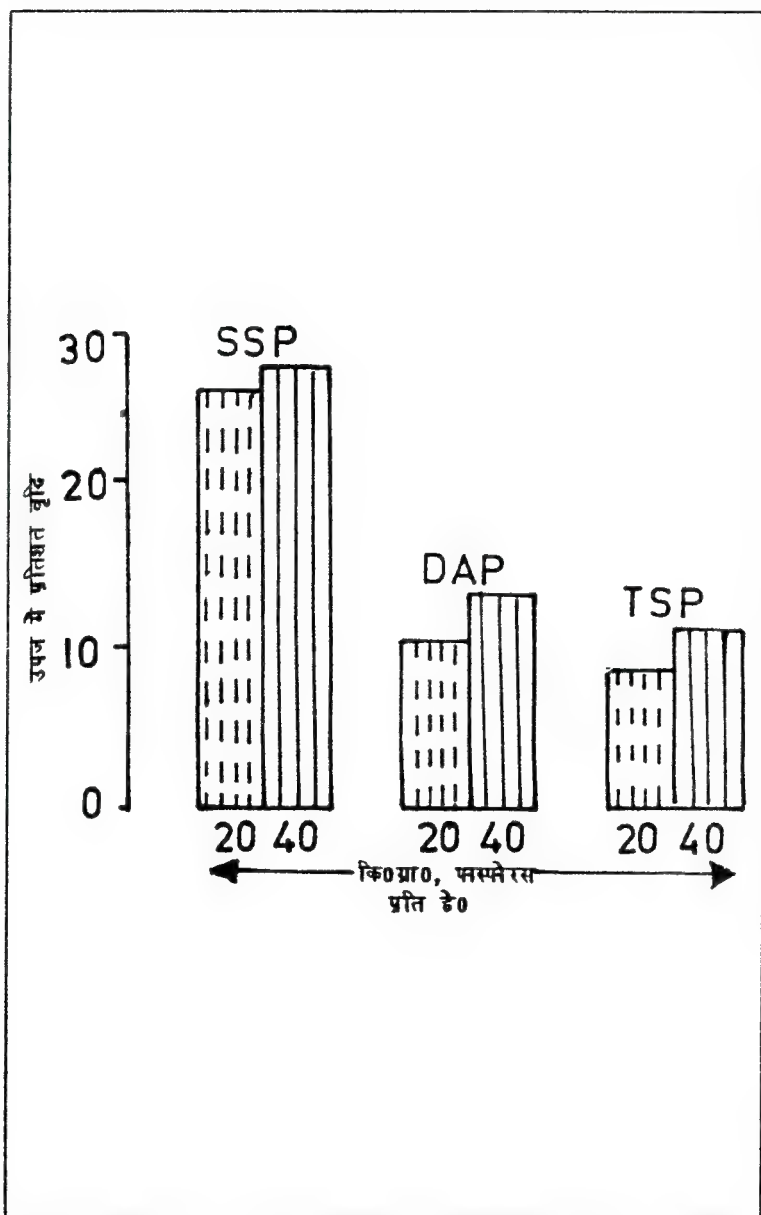
रेखाचित्र-5.6 विभिन्न फास्फोरसधारी उर्वरकों का मूंगफली की उपज पर प्रभाव

भारत में नाइट्रो फास्फेट की उपयोगिता से सम्बन्धित काफी अध्ययन हुए हैं। जिनसे पता चला है कि नाइट्रोफास्फेट के कुल फास्फोरस का 50% जल विलेय रूप में होना चाहिये।

कुछ स्थानों पर पालीफास्फेट के मूल्यांकन के सम्बन्धित अध्ययन प्रारम्भ किये गये हैं किन्तु अभी तक इन अध्ययनों से प्राप्त परिणाम इतने स्पष्ट नहीं हैं कि किसानों को इनके उपयोग के बारे में सुझाव दिया जा सके।

उर्वरक प्रयोग की विधि

उर्वरकों के प्रयोग-विधि का फास्फोरस-उपयोग-क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। फसल, उर्वरकों की प्रकृति और मिट्टी के गुणों के अनुसार उर्वरक-प्रयोग-विधि में अन्तर पाया जाता है। जब जल विलेय फास्फोरस वाले उर्वरक मिट्टी में डाले जाते हैं तो उनका जल विलेय अंश बड़ी आसानी से कम घुलनशीलरूप में परिवर्तित हो जाता है ऐसा डाले गये फास्फोरस के मिट्टी में स्थिरीकृत हो जाने के कारण होता है। अतः ऐसे उर्वरकों को बीज के नीचे निवेसन या पौधों की कतार के समीप बैंड निवेशन विशेष उपयुक्त होता है। इस प्रकार निवेसित फास्फोरस जड़तंत्र की पहुंच में रहता है जिसका पौधे सफलतापूर्वक उपयोग करते रहते हैं। सारणी 5.8 में दिये गये आंकड़ों से इस तथ्य की पुष्टि होती है।

सारणी-5.8 फास्फोरस के निवेशन का गेहूं की उपज पर प्रभाव

उर्वरक उपचार (कि.ग्रा. प्रति हे.)		फास्फोरस प्रयोग की विधि	दाने की उपज (कु. प्रति हे.)
N	P2O5		
120	0	–	32.2
120	20	छिटकवां	35.6
120	20	बीज से 5 से.मी. नीचे निवेशन	41.6
120	40	छिटकवां	38.3
120	40	बीज से 5 से.मी. निवेशन	45.3

स्रोतः रंधावा एन.एस. एवं भाटिया, पी.सी. (1980)

अम्लीय मिट्टियों में जल अविलेय फास्फोरस वाले उर्वरक विशेष उपयुक्त रहते हैं। वांछित उपयोग क्षमता के लिये यह ध्यान देना आवश्यक होता है कि इनका प्रयोग ऐसे ढंग से किया जाय ताकि उर्वरक पूरी तरह मिट्टी के सम्पर्क में रहे। ऐसा होने पर मिट्टी के अम्लीय प्रभाव से उर्वरक का अविलेय फास्फोरस विलेय बन जाता है। अतः अम्लीय मिट्टियों में राक फास्फेट, बेसिक स्लैग जैसे उर्वरकों का प्रयोग छिटकवां विधि से करने के बाद अच्छी तरह मिट्टी में मिला देना चाहिए।

कत्याल (1978) ने धान के पौध की जड़ों को सिंगिल सुपरफास्फेट के गारे में (10–30 कि. ग्रा. फास्फोरस प्रति हेक्टर की दर से) उपचारित करके फास्फोरस की मात्रा में 50 प्रतिशत की बचत का दावा किया है। राजू तथा कामथ (1983) ने डाई अमोनियम फास्फेट के स्लरी में धान के पौध की जड़ों को डुबोने से मिट्टी में उर्वरक–फास्फेट का प्रयोग करने की तुलना में फसल द्वारा फास्फोरस अवशोषण में सार्थक वृद्धि पायी। गोवर गैस संयंत्र की स्लरी में उर्वरक–फास्फोरस को मिलाकर धान के पोध की जड़ों को डुबोकर रोपाई करने पर धान की उपज में सार्थक वृद्धि हुई जो कि सारणी 5.9 में दिये गये आंकड़ों से स्पष्ट है।

सारणी-5.9 फास्फोरस देने की विधियों का धान की उपज और प्रभावित करने वाले गुणों पर प्रभाव

विवरण	60 कि.ग्रा. फास्फोरस का उपज पर प्रभाव	
	प्रचलित विधि	30 कि.ग्रा. प्रचलित विधि द्वारा + 30 कि.ग्रा. गोबर गैस की स्लरी के साथ
1. दाने की उपज (कु. प्रति हे.)	45.1	50.3
2 प्रति स्थान किलो की औसत संख्या	6.66	7.29
3. प्रति स्थान बालियों की औसत संख्या	6.66	7.29
4. भरे हुये दानों की औसत संख्या (प्रतिशत)	91.0	94.2
5. प्रति हजार दानों का औसत वजंन (ग्राम)	27.04	27.35

स्रोतः त्रिपाठी, एस.के. (1986) पी.एच.डी. थेसिस, कानपुर विश्वविद्यालय

फास्फेट प्रयोग का समय

फास्फोरस की उपयोग क्षमता बढ़ाने के लिए केवल यही आवश्यक नहीं है कि मिट्टी की जांच के बाद सही मात्रा में अन्य पोषक तत्वों की उचित मात्रा के साथ फास्फेट का प्रयोग किया जाय बल्कि इसका ऐसे समय पर प्रयोग नितान्त आवश्यक होता है ताकि यह पौधों को उनके वृद्धि–काल में आवश्यक मात्रा में उपलब्ध होता रहे। राय एवं सहयोगियों (1977) ने भारत में किए गये परीक्षणों से प्राप्त परिणामों की समीक्षा की है। साधारणतया फॉस्फोरस की पूरी मात्रा बुआई या रोपाई के समय मूल खाद के रूप में देने की संस्तुति की जाती है।

अभी हाल में फास्फोरस के विलम्ब से प्रयोग की आवश्यकता को महत्त्व दिया जाने लगा है। यह दो परिस्थितियों में आवश्यक होता है। एक तो बुआई के समय फास्फेट उर्वरक उपलब्ध न हो तथा दूसरे किसान आर्थिक तंगी के कारण उस समय पूरी मात्रा में फास्फोरस का प्रयोग न कर पाए हों। कत्याल (1978) ने बताया है कि धान में विलम्ब से फास्फोरस का प्रयोग करने से खरीफ और रबी धान की उपज में मूल खाद की तुलना में काफी कमी आयी। रबी धान की उपज में होने वाली कमी खरीफ की अपेक्षा अधिक रहीं। गोस्वामी तथा कामथ (1984) ने डाई अमोनियम फास्फेट द्वारा प्रति हैक्टर 60 किलोग्राम फास्फोरस के विभाजित प्रयोग से मूल खाद के रूप में इसके प्रयोग की तुलना में अधिक उपज पाई।

इन सभी परीक्षणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उच्च भूमि की फसलों में फास्फोरस की सम्पूर्ण मात्रा बुआई के समय देना विशेष लाभप्रद रहता है।

विभिन्न दैहिकीय अध्ययनों के अन्तर्गत फसलों के विभिन्न वृद्धि काल की अवधि में पौधों में फास्फोरस की सान्द्रता ज्ञात की गई। ऐसा देखा गया है कि गेहूं की फसल द्वारा फूल आने तक 65% फास्फोरस का उपयोग कर लेती है। हाल में की गई खोजों से पता चला है कि अनाज वाली फसलों की अधिक उपज देने वाली प्रजातियां फास्फोरस का अवशोषण बाद की अवधि तक करती हैं। 70% से 80% फास्फोरस का अवशोषण बालियां निकलने की अवस्था तक हो जाता है। वानस्पतिक वृद्धिकाल में फास्फोरस का अवशोषण सर्वाधिक होता है। फसल को जिस समय फास्फोरस की अधिकतम
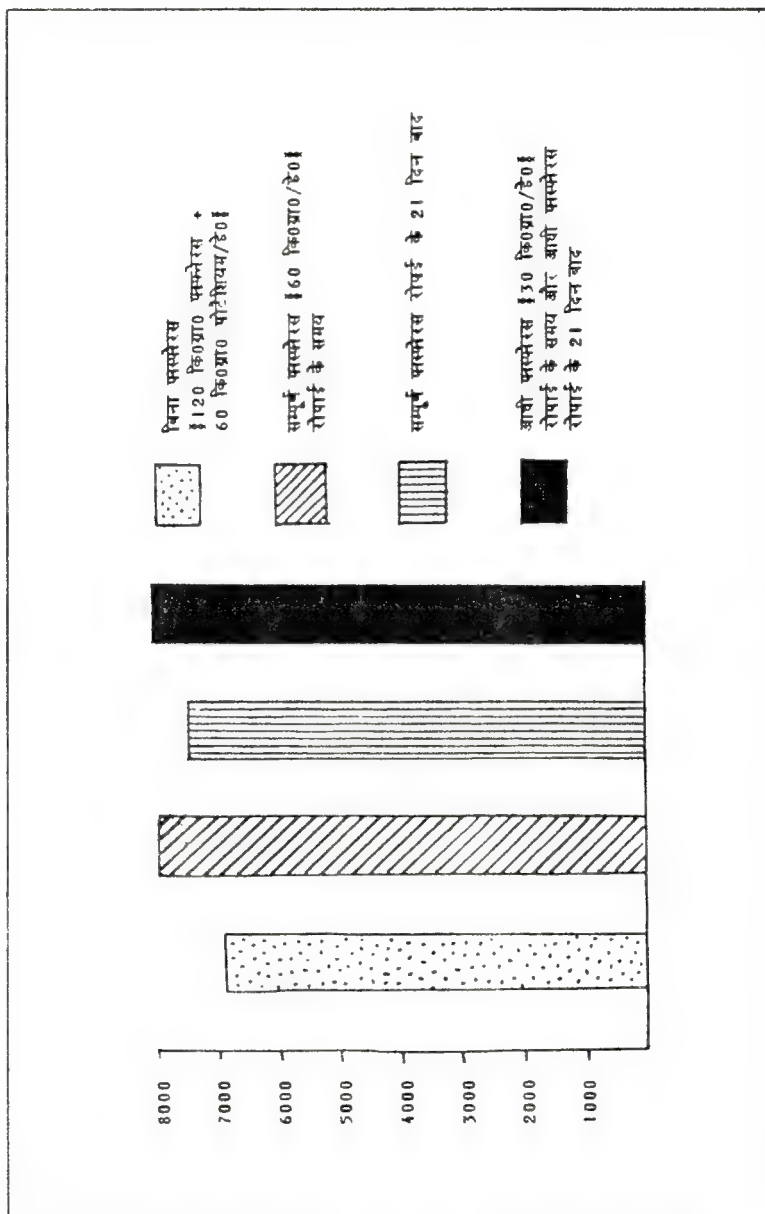
रेखाचित्र-5.7 फास्फोरस देने के समय का धान की उपज पर प्रभाव

सारणी-5.10 बुआई की तिथियों का गेहूं की उपज और फास्फोरस की अनुक्रिया पर प्रभाव

उपचार, फास्फोरस कि.ग्रा. प्रति हे.	दिसम्बर 20		दिसम्बर 30		जनवरी 10	
	उपज क्विं. प्रति हे.	प्रति कि.ग्रा. फा. द्वारा दाने की उपज में वृद्धि (कि.ग्रा.)	उपज, क्विं.प्रति हे.	प्रति कि.ग्रा. फास्फोरस द्वारा दाने की उपज में वृद्धि (कि.ग्रा.)	उपज क्विं. प्रति हे.	प्रति कि.ग्रा. फास्फोरस द्वारा दाने की उपज में वृद्धि (कि.ग्रा.)
0	34.9	–	28.6	–	21.1	–
19	36.0	5.8	30.8	11.6	20.6	2.6
38	38.0	8.1	31.6	7.9	21.1	0.0
क्रान्तिक अन्तर	1.4	–	1.4	–	एन.एस.	–

आवश्यकता हो उस समय मिट्टी में फास्फोरस की उपलब्धता कम होने पर फसल की उपज मारी जाती है। इन अध्ययनों के आधार पर फसलों में फास्फोरस प्रयोग के समय में आवश्यक परिवर्तन किया जा सकता है। भविष्य में इस विषय पर सुव्यवस्थित अध्ययन की आवश्यकता होगी।

समय पर बुआई

अधिकतम फास्फोरस उपयोग क्षमता के लिये समय पर बुआई का विशेष महत्व होता है। ऐसा देखा गया है कि 30 दिसम्बर के बाद गेहूं की बुआई करने पर फास्फोरस उपयोग क्षमता काफी घट जाती है। सारणी 5.10 में लाल तथा अरोकिमानाथन (1980) द्वारा किये गये परीक्षणों से प्राप्त परिणामों से इस कथन की पुष्टि हो जाती है।

पौधों की संख्या

अधिक उर्वरक उपयोग क्षमता के लिये यह आवश्यक होता है कि खेत में पौधों की संख्या पर्याप्त हो। आहलावत तथा सर्राफ (1983) द्वारा प्राप्त आंकड़ों से पता चला है कि पौधें की संख्या की वृद्धि के साथ ही अरहर की फसल के द्वारा प्रयुक्त फास्फोरस का अधिकतम उपयोग किया गया। सम्बन्धित आंकड़े 5.11 में दिये गये हैं।

सारणी-5.11 अरहर की पौध सघनता का उर्वरक फास्फेट के उद्ग्रहण पर प्रभाव

पौध–सघनता	फास्फोरस प्रयोग की दर कि.ग्रा. प्रति हेक्टर	
	17	34
	फास्फोरस उद्गहण (प्रतिशत)	
50×10^3	15.8	9.2
100×10^3	25.3	14.1
150×10^3	29.7	15.7

खरपतवार नियन्त्रण

अधिक उत्पादकता के लिए खरपतवार मुक्त स्वच्छ फसल क्षेत्र होना आवश्यक होता है। ऐसा अनुमान है कि भारत में खरपतवारों के कारण 18 से 41 प्रतिशत तक उपज कम हो जाती है। यह मुख्यतया पोषक तत्वों के उदग्रहण के लिए खरपतवारों की फसल से होने वाली प्रतिस्पर्धा के कारण होता है। राष्ट्रीय कृषि आयोग की एक रिपोर्ट में ऐसा उल्लेख है कि भारत में पोषक तत्वों की प्रयोग की गयी कुल मात्रा का 30–40 प्रतिशत खरपतवारों द्वारा हड़प लिया जाता है। मनी (1975) ने विभिन्न फसलों में खरपतवारों द्वारा पोषक तत्वों के निष्कासन सम्बन्धी आंकड़े दिए हैं जिन्हें सारणी 5.12 में दिया गया है। खोजों से पता चला है खरपतवार–नियंत्रण बिना उर्वरक उपयोग क्षमता काफी घट जाती है। अतः उच्च उर्वरक उपयोग–क्षमता के लिए खरपतवार नियन्त्रण पर विशेष बल देना होगा।

सारणी-5.12 विभिन्न फसलों में खरपतवारों द्वारा पोषक तत्वों का निष्कासन

फसल	पोषक तत्वों का निष्कासन (कि.ग्रा./हे.)		
	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटैशियम
धान	22.0	11.8	22.0
गन्ना	77.7	34.5	188.4
ज्वार	37.8	13.3	32.8
सोयाबीन	46.7	9.0	72.9
मक्का	39.2	5.2	32.6
मटर	28.1	5.4	–
आलू	62.7	11.3	88.6

जैविक खादों का प्रभाव

हमारे देश में फास्फोरसधारी उर्वरकों का उत्पादन उनकी खपत से कहीं कम है। इस कमी की पूर्ति के लिये आवश्यकता इस बात की है कि देश में फास्फोरसधारी उर्वरकों के साथ ही जैविक खादों, कृषि और औद्योगिकी उपजातों का प्रभावशाली उपयोग किया जाय। शर्मा एवं सहयोगियों ने आलू

की फसल में **44** कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से फास्फोरस की पूर्ति गोबर की खाद और सुपर फास्फेट से किया। दोनों ही स्रोतों से उपज में होने वाली वृद्धि बराबर रही।

गोबर की खाद से न केवल फास्फोरस की पूर्ति होती है, बल्कि अन्य पोषक तत्व भी पौधों को सुलभ हो जाते हैं। अतः गोबर की खाद या कम्पोस्ट के इस्तेमाल से फसलों की उपज में सार्थक वृद्धि सुनिश्चित हो जाती है।

गोबर की खाद के इस्तेमाल से मिट्टी के उपलब्ध फास्फोरस स्तर पर अनुकूल प्रभाव की पुष्टि सारणी 5.13 में दिये गये आंकड़ों से हो जाती है। केवल नाइट्रोजन के लगातार प्रयोग से मिट्टी के उपलब्ध फास्फोरस स्तर में प्रारम्भ की तुलना में काफी गिरावट हुई। इसके विपरीत नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश के संयुक्त प्रयोग की दशा में मिट्टी के उपलब्ध फास्फोरस स्तर में प्रारम्भ की तुलना में काफी वृद्धि हुई। इसके साथ ही गोबर की खाद इस्तेमाल करने पर फास्फोरस स्तर में पुनः सार्थक वृद्धि हुई। इन परिणामों से इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि उर्वरता और कृषि उत्पादकता कायम रखने के लिए जैविक खादों का उपयोग आवश्यक होगा।

सारणी-5.13 उर्वरकों और खादों के लगातार इस्तेमाल का मिट्टी के फास्फोरस स्तर पर प्रभाव

उपचार	उपलब्ध फास्फोरस स्तर (कि.ग्रा. प्रति हेक्टर	
	प्रारम्भ में	फसल चक्र का दो चक्र पूरा होने पर
नियंत्रित	8.8	2.1
कुल नाइट्रोजन की आवश्यकता का 100%	7.0	2.8
कुल नाइट्रोजन और फास्फोरस की आवश्यकता का 100%	7.0	29.5
कुल नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश आवश्यकता का 100%	8.6	28.4
कुल नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश आवश्कता का 100% + गोबर की खाद	8.0	42.2

स्रोतः विश्वास, सी.आर. इत्यादि (1977) जर्नल आफ दि इण्डियन सोसाइटी आफ स्वायल सांइस 25, 23।

नाइट्रोजन-फास्फोरस और जिंक फास्फोरस अन्तःक्रिया का उर्वरक फास्फोरस की क्षमता पर प्रभाव

पोषक–तत्वों के बीच आपसी सह–सम्बन्ध होता है। एक तत्व दूसरे की उपलब्धता को प्रभावित करता है। प्रयोगों के परिणामों से यह स्पष्ट हो गया है कि नाइट्रोजन और फास्फोरस का संयुक्त उपयोग करने पर एक–दूसरे की क्षमता बढ़ जाती है। सारणी **5.14** में दिये आंकड़ों से स्पष्ट है कि गेहूं में नाइट्रोजन के इस्तेमाल से फास्फोरस द्वारा उपज–वृद्धि बिना नाइट्रोजन की तुलना में चार गुना अधिक रही। इस प्रकार सारणी 5.15 में दिये गये आंकड़ों से फास्फोरस की क्षमता बढ़ाने में जिंक के अनुकूल प्रभाव की पुष्टि हो जाती है।

सारणी-514 फास्फोरस की क्षमता बढ़ाने में नाइट्रोजन का योगदान (दो वर्ष का औसत)

नाइट्रोजन की मात्रा (कि.ग्रा. प्रति हे.)	बिना फास्फोरस उपज (कि.ग्रा. प्रति हे.)	फास्फोरस की विभिन्न मात्राओं द्वारा उपज वृद्धि		
		30	60	90
0	1560	128	180	172
प्रति किलोग्राम फास्फोरस द्वारा उपज वृद्धि		4.3	3.0	1.0
60	2087	385	412	473
प्रति किलोग्राम फास्फोरस द्वारा उपज वृद्धि		12.8	6.9	5.3
120	2320	510	745	892
प्रति किलोग्राम फास्फोरस द्वारा उपज वृद्धि		17.0	10.8	9.9
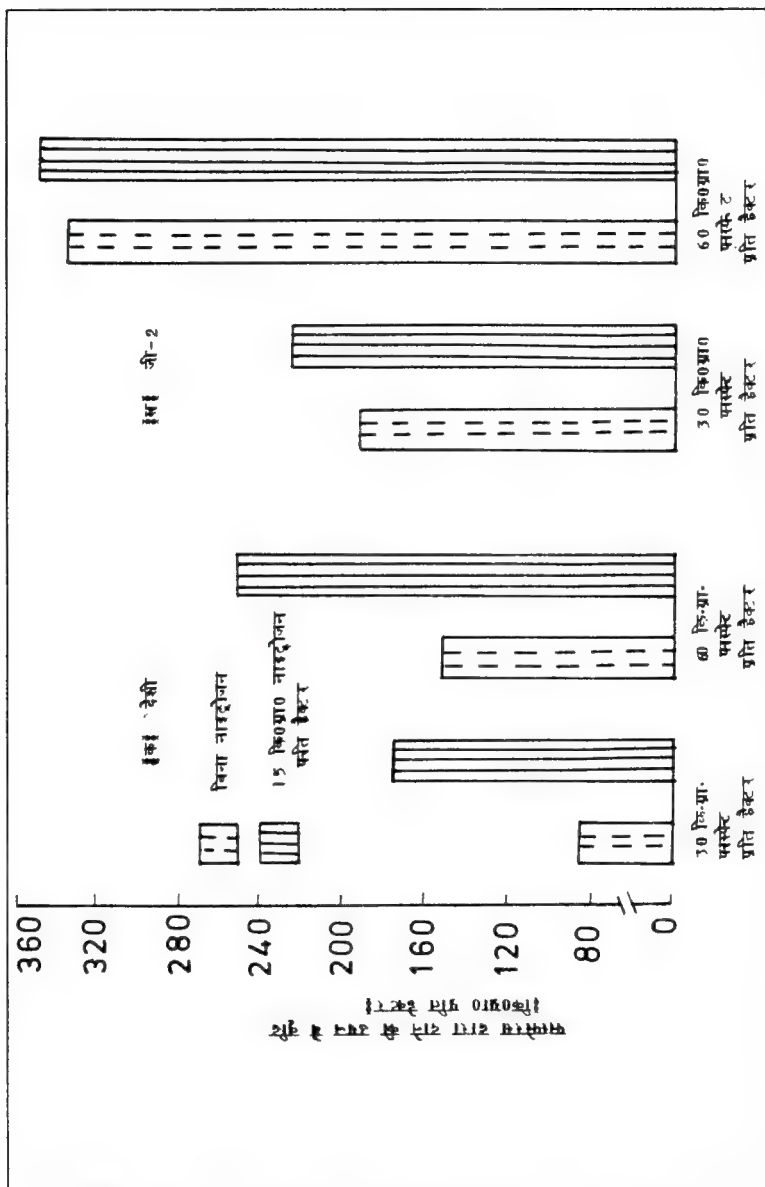
रेखाचित्र-5.8 चने की फसल में फास्फोरस की क्षमता बढ़ाने में नाइट्रोजन का योगदान

सारणी-5.15 फास्फोरस की क्षमता बढ़ाने में जिंक का योगदान (दो वर्ष का औसत)

नाइट्रोजन की मात्रा (कि.ग्रा. प्रति हे.)	बिना फास्फोरस उपज (कि.ग्रा. प्रति हे.)	फास्फोरस की विभिन्न मात्राओं द्वारा उपज वृद्धि (कि.ग्रा. प्रति हे.)		
		30	60	90
0	2762	145	16	−242
प्रति किलोग्राम फास्फोरस द्वारा उपज वृद्धि		4.8	0.3	−2.7
3.3	2915	378	580	672
प्रति किलोग्राम फास्फोरस द्वारा उपज वृद्धि		12.8	9.7	7.5
6.6	2912	504	745	978
प्रति किलोग्राम फास्फोरस द्वारा उपज वृद्धि		16.8	12.4	10.9

अम्लीय मिट्टियों में चूने का प्रयोग

अम्लीय मिट्टियों में चूना डालने पर मृदा–अम्लता कम हो जाती है जिससे लौह और एल्युमिनियम आयनों की सक्रियता घट जाती है। अतः इस रूप में फास्फेट का स्थिरीकरण कम हो जाता है। चूना डालने पर लोह तथा एल्युमिनियम फास्फेट का जलांशन होता है जिसके फलस्वरूप इसके हाइड्राक्साइड बनते हैं और फास्फेट मुक्त हो जाता है। इसके प्रयोग से कार्बनिक फास्फेट का खनिजीकरण होता है जिससे फास्फेट की उपलब्धता बढ़ जाती है। मण्डल (1964) ने अम्लीय मिट्टियों में फास्फेट–उपलब्धता बढ़ाने हेतु चूना तथा जीवांश पदार्थ डालने की संस्तुति की है। इससे पोषक तत्वों (NPK) की उपयोग–क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि हो जाती है। रांची (बिहार) के दीर्घकालीन परीक्षणों से इस कथन की पुष्टि होती है। भारत में कुल कृषिगत क्षेत्र का 30 प्रतिशत अम्लीय मिट्टियों के अन्तर्गत है। अतः इन क्षेत्रों की उच्च भूमि में अनाज तथा दलहनी फसलों की उत्पादकता बढ़ाने में चूना का प्रयोग लाभकारी सिद्ध होगा।

सारणी-5.16 भारत में कृषकों के खेतों में असिंचित दशा में किये गये परीक्षणों में विभिन्न फसलों की फास्फोरस के प्रति अनुक्रिया

फसल	मौसम	प्रयोगों की सं.	बिना उर्वरक उपज (कि.ग्रा. प्रति हे.)	फास्फोरस प्रयोग की दर (कि.ग्रा. प्रति हे.)	90 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा 120 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हे. के ऊपर फास्फोरस द्वारा वृद्धि •	
					कि.ग्रा. प्रति हे	प्रति कि.ग्रा. फास्फोरस द्वारा दाने की उपज में वृद्धि (कि.ग्रा.)
1	2	3	4	5	6	7
धान	खरीफ	538	1030	60	580	9.7
गेहूं	रबी	1211	930	60	430	7.2
मक्का	खरीफ	173	1100	60	400	6.7
ज्वार	खरीफ	774	1250	60	410	6.8
ज्वार	रबी	554	490	60	250	4.2
बाजरा	खरीफ	238	400	60	190	3.2
रागी	खरीफ	247	1130	60	640	10.7

1	2	3	4	5	6	7
रागी	रबी	62	1040	60	400	6.7
चना	रबी	2181	770	40	310	7.8
उर्द	खरीफ	10007	420	40	210	5.3
उर्द	रबी	285	400	40	240	6.0
मूंग	खरीफ	601	260	40	150	3.8
मूंग	रबी	200	320	40	210	5.3
कुल्थी	खरीफ	188	300	40	240	6.0
कुल्थी	रबी	63	210	40	260	6.5
अरहर	खरीफ	530	480	40	310	7.8
मूंगफली	खरीफ	1307	860	60	290	4.8
मूंगफली	रबी	847	1620	60	400	6.7
सरसों	रबी	837	591	40	234	5.9
अलसी	रबी	467	314	40	123	3.1

बारानी कृषि में फास्फेट-प्रबन्ध

भारत के कुल कृषिगत क्षेत्र के 70 प्रतिशत भाग में खेती वर्षा पर आश्रित है। ऐसे क्षेत्रों में उर्वरकों का प्रयोग इस भयवश नहीं किया जाता कि सूखे दशा में इनका शायद प्रतिकूल प्रभाव पड़े। टण्डन (1988) ने भारत में किये गये परीक्षणों के परिणामों का संकलन किया है जो कि सारणी–5.16 में प्रस्तुत है। इन आंकड़ों से पता चलता है कि असिंचित दशा में प्रति कि.ग्रा. फास्फोरस द्वारा अनाज वाली फसलों की उपज में 3–11 कि.ग्रा., दलहनी फसलों की उपज में 4–8 कि.ग्रा. तथा तिलहनी फसलों की उपज में 3–7 कि.ग्रा. वृद्धि हुई।

शुष्क कृषि की अखिल भारतीय समन्वित योजनान्तर्गत किये गये अध्ययनों से पता चला है कि जड़–क्षेत्र में फास्फोरस के निवेशन से उर्वरक उपयोग क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। सम्बन्धित आंकड़े सारणी 5.17 में दिये गये हैं।

सारणी-5.17 बारानी खेती में उर्वरकों के निवेशन द्वारा प्राप्त गेहूं की उपज तथा पोषक तत्वों का उद्ग्रहण

उर्वरक निवेशन की गहराई (से.मी.)	दाने की उपज .(कु./हे.)	पोषक तत्वों का उद्ग्रहण (कि.ग्रा./हे.)		
		नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटैशियम
0	33.9	82.8	14.3	66.0
12	36.2	90.4	16.0	72.8
18	38.0	99.8	17.4	75.6

देव, जी. (1990) प्रो. एफ.ए.आई. ऐनुअल सेमिनार पृष्ठ सं. SVi-3/9

फसल प्रणाली में फास्फोरस-प्रबन्ध

मिट्टियों में डाले गये उर्वरक फास्फोरस का अधिकतम 20 प्रतिशत भाग ही फसलें सुगमता से उपयोग कर पाती हैं। शेष फास्फोरस का मिट्टी में होने वाली रासायनिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप स्थिरीकरण हो जाता है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि यह फास्फोरस पौधों के लिए सदा के लिए

सारणी 5.18 विभिन्न उपज स्तरों पर विभिन्न फसलों द्वारा फास्फोरस का निष्कासन (कि.ग्रा./हे.)

मक्का		गेहू		धान				लोबिया	
				खरीफ		रबी			
उपज	फास्फोरस निष्कासन	उपज	फास्फोरस निष्कासन	उपज	फास्फोरस निष्कासन	उपज	फास्फोरस निष्कासन	उपज	फास्फोरस निष्कासन
1401	4.9	2718	8.4	2344	8.1	2415	7.2	1602	4.3
1892	9.2	4010	14.7	2405	11.8	2824	13.0	2171	8.4
2482	13.3	4751	17.8	2899	14.2	3069	13.9	2627	9.8

बेकार हो जाता है। इस अवशेष फास्फोरस का उपयोग अनुगामी फसलें सफलतापूर्वक करती हैं क्योंकि विभिन्न रासायनिक एवं अणुजैविक क्रियाओं के फलस्वरूप अविलेय फास्फोरस विलेय रूप में परिवर्तित हो जाता है। बहुफसली कृषि प्रणाली में फास्फोरस का प्रयोग 60–220 कि.ग्रा. प्रति हे. प्रति वर्ष की दर से किया जाता है जिसके अर्न्तगत वर्ष में 2 से 4 फसलें ली जाती है परन्तु फास्फोरस की पूरी मात्रा का उपयोग नहीं हो पाता (सारणी 5.18)।

सारणी में दिए गये आंकड़ों से स्पष्ट है कि पोधों की विभिन्न प्रजातियों की भूमि में उपस्थित फास्फोरस और उर्वरकों के रूप में प्रयुक्त एक फसल के बजाय पूरे फसल चक्र के लिए उर्वरक फास्फोरस की उचित मात्रा का निर्धारण किया जाना चाहिए। फास्फोरस की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि मिट्टी में इसका छीजन नहीं होता। अतः उर्वरक के अवशिष्ट प्रभाव से अनुगामी फसल लाभान्वित होती है।

फसल प्रणाली का प्रभाव

देश के विभिन्न भागों में विभिन्न फसल चक्रों के लिए फास्फोरस की आवश्यक मात्रा की जानकारी हेतु अध्ययन किये गये हैं। कानपुर में किये गये परीक्षणों से पता चला है कि धान–चना फसल चक्र में धान की तुलना में चने में फास्फोरस का उपयोग विशेष लाभकर रहता है। सम्बन्धित आंकड़े सारणी–5.19 में दिये गये हैं।

सारणी-5.19 धान–चना फसल–चक्र में फास्फोरस के उपयोग के दोनों फसलों की उपज में कुल वृद्धि (क्विं प्रति हे.)

फास्फोरस (कि.ग्रा./हे.)	केवल चने में फास्फोरस का उपयोग	केवल धान में फास्फोरस का उपयोग
28	3.21	3.26
56	5.60	4.10
84	8.17	5.65

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की आदर्श शस्य परीक्षण योजनान्तर्गत किये गये परीक्षणों से प्राप्त परिणामों का विवेचन गोस्वामी और सिंह (1976) ने किया है, जिनसे पता चला है कि मक्का–गेहूं, ज्वार–गेहूं और बाजरा–गेहूं

फसल चक्र मे फास्फोरस का उपयोग केवल गेहूं की फसल में किया जा सकता है, बशर्ते फास्फोरस की यह मात्रा 60 कि.ग्रा. प्रति हे. से कम न हो। कुछ केन्द्रों पर धान–गेहूं फसल चक्र में फास्फोरस का गेहूं में उपयोग पुनः लाभदायक सिद्ध हुआ। धान–धान फसल चक्र में अनिश्चितता की स्थिति बनी रही। सम्बन्धित आंकड़े सारणी 5.20 में दिये गये हैं।

सारणी-5.20 विभिन्न द्विफसली फसल–चक्रों में प्रति हेक्टर 60 किलोग्राम की दर से फास्फोरस का उपयोग करने पर उपज में कुल वृद्धि (प्रति किलोग्राम फास्फोरस द्वारा दाने की उपज में वृद्धि कि ग्रा. में)

केन्द्र	फसल चक्र व मिट्टी का प्रकार	केवल खरीफ में फास्फोरस का उपयोग	केवल रबी में फास्फोरस का उपयोग
	धान–गेहूं		
मसौधा	जलोढ़	11.9	17.3
	मक्का–गेहूं		
पालमपुर**	उपपर्वतीय	36.2	42.5
जम्मू	जलोढ़	4.6	5.5
लुधियाना	चेस्टनट धूसर	14.2	20.0
	बाजरा–गेहूं		
हिसार	सीरोजेम	12.7	13.5

**प्रति हेक्टर 120 कि.ग्रा. फास्फोरस की अनुक्रिया

इन परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि फास्फोरस का उपयोग द्विफसली फसल चक्र में दोनों फसलों में बराबर–बराबर करने के बजाय विशिष्ट फसल, जिसमें फास्फोरस से प्रत्यक्ष और अवशिष्ट लाभ अपेक्षाकृत अधिक होता है, उसमें फास्फोरस का उपयोग प्राथमिकता के आधार पर किया जाय। ऊपर वर्णित फसल चक्रों में गेहूं की फसल में फास्फोरस का उपयोग विशेष श्रेयस्कर सिद्ध होगा।

भारत में किये गये परीक्षणों से यह भी पता चला है कि मिट्टी में विभिन्न रूपों में मौजूद फास्फोरस का उपयोग विभिन्न फसलों द्वारा अलग–अलग ढंग से किया जाता है। गेहूं की फसल अवशिष्ट लौह–फास्फेट का उपयोग नहीं कर सकती। इसके विपरीत धान की फसल अवशिष्ट लौह और एल्युमीनियम फास्फेट का उपयोग बखूबी कर लेती है।

सुव्याह और दास (1974) के अनुसार कुल इस्तेमाल किये गये उर्वरक फास्फोरस की 79.2 प्रतिशत मात्रा गेहूं की फसल द्वारा उपयोग में लायी गयी। मक्का और बाजरे द्वारा क्रमशः 73.8 और 33.5 प्रतिशत मात्रा का उपयोग किया गया। विभिन्न फसलों की फास्फोरस उपयोग क्षमता में अन्तर मुख्य रूप से जड़ों की संरचना और मिट्टी की विभिन्न सतहों से तत्व अवशोषण करने की क्षमता पर निर्भर करता है। साधारणतया मन्द गति से बढ़ने वाली गहरी जड़ वाली फसलें उर्वरक फास्फोरस के उपयोग में उन फसलों की तुलना में, जिनकी जड़ें छिछली हों और उनकी वृद्धि–दर अपेक्षाकृत अधिक हो, कम लाभान्वित होती हैं।

मिट्टी में उपलब्ध फास्फोरस की क्रान्तिक सीमा

भारत में किये गये स्थायी खाद–परीक्षणों और शस्य अनुक्रिया सह–सम्बन्ध नामक योजनान्तर्गत किये गये परीक्षणों से पता चला है कि फास्फोरस के इस्तेमाल से विभिन्न फसलों से अधिक उपज प्राप्त करने के लिए मिट्टी में उपलब्ध फास्फोरस की क्रान्तिक सीमा फसल विशेष के अनुसार अलग–अलग होती है। गेहूं–मक्का और धान की तुलना में आलू के लिए उपलब्ध फास्फोरस की क्रान्तिक सीमा अधिक पायी गयी है। बहुफसली कृषि प्रणाली में उर्वरकों के सक्षम उपयोग हेतु मिट्टी और जलवायु की विभिन्नता के अनुसार विभिन्न फसलों के लिए मिट्टी में फास्फोरस की क्रान्तिक सीमा निर्धारित की जानी चाहिए।

मिश्रित-शस्यन का प्रभाव

दिल्ली में किये गये परीक्षणों से पता चला है कि गेहूं और चने के मिश्रित शस्यन की दशा में गेहूं द्वारा फास्फोरस का अवशोषण केवल गेहूं उगाने की तुलना में अधिक हुआ। इसके विपरीत चने द्वारा फास्फोरस का अवशोषण अन्तरा फसल की दशा में केवल चना उगाने की तुलना में कम हुआ। सम्बन्धित आंकड़े सारणी–5.21 में दिये गये हैं।

सारणी-5.21 मिश्रित शस्यन क अन्तर्गत मिट्टी की विभिन्न सतहों से उर्वरक–फास्फोरस का अवशोषण (ग्रीन हॉउस परीक्षण

उपचार	सूखे पदार्थ की उपज (ग्राम)	फास्फोरस की कुल अवशोषित मात्रा (मि.ग्रा.)	पौधों द्वारा मिट्टी की विभिन्न गहराइयों से फास्फोरस की अवशोषित मात्रा (मि.ग्रा.)			
			0–10 सें.मी.	10–20 सें.मी.	20–30 सें.मी.0	योग
(क) केवल गेहूं	2.95	8.67	29.18	14.66	1 41	45 25
(ख) केवल चना	1.13	3.45	22.06	3.14	0 35	25 55
(ग) मिश्रित फसल में गेहूं	3.36	10.39	36.19	12.73	1 33	50 25
(घ) मिश्रित फसल में चना	1.07	3.05	15.08	8.14	0 45	18 67

आंकड़ों से स्पष्ट है कि चने के साथ गेहूं उगाने पर गेहूं की उपज में वृद्धि हुई और इसका चने की उपज पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ा। उल्लेखनीय है कि मिश्रित शस्यन की दशा में गेहूं द्वारा फास्फोरस का अधिकांश अवशोषण मिट्टी में 0 से 10 से.मी. की सतह से किया गया, जबकि चने द्वारा फास्फोरस की अधिकांश मात्रा का अवशोषण मिट्टी में 10 से 20 से.मी. की सतह से किया गया। दोनों फसलों के इन अन्तर को दृष्टि में रखते हुए कहा जा सकता है कि मिश्रित शस्यन प्रणाली उर्वरक क्षमता बढ़ाने में विशेष कारगर सिद्ध होगी।

सन्दर्भ-साहित्य

Ahlawat, I.P.S. & Saraf, C.S., Acker, Z. and Pflanzonbe (1983). *J. agron. Crop Sci.* **152** : 270-78.

Aslyng, H.C. (1954). Roy Vet. Agr. College Copenhagen Year Book, 1-50.

Bhardwaj, R.B.L. (1978). New Agronomic Practices in wheat Research in India, ICAR, 79-98.

Biswas, C.R. et al. (1977). Accumulation and decline of available P and K in a soil under multiple cropping, *J. Indian Soc. Soil Sci.*, **25** : 23-27.

Chopra, S.L, Das, Niranjan and Das, Bhagwan (1970). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **18** : 437-446.

Cole, C.B. & Jackson, M.L. (1951). Soil Sci. Soc. Amer. Proc. **15** : 84-89.

Coleman, R. (1944). *Soil Sci.* **58** : 71-77.

Dean, L.A. & Rubins, E.J. (1947). *Soil Sci.* **63** : 377-407.

Deb, D.L. & Datta, N.P. (1971). Technology **8** : 272-76.

Dev. G. (1990). Proc. FAI Seminar, pp. S-VI-3/9.

Ghosh, A.B. & Hassan, R. (1979). *Bull. Indian Soc. Soil Sci.* **12** : 1.

Goswami, N.N. & Kamath, M.B. (1984). *Fertil. News.* **29** (2) : 22-24.

Goswami, N.N. & Singh, M. (1976). Management of fertilizer phosphorus in cropping systems. *Fertil. News* **21** (9), 56-59, 63.

Gupta, A.P. (1965). Agra Univ. *J. Res.* **14** : 191-94.

Haysman, J.F. et al. (1950). *Soil Sci.* **70** : 257-71.

Jaggi, T.N. (1980). Proc. FAI, Seminar Agr. 11-3(iii) 1.

Kanwar, J.S. & Grewal, J.S. (1960). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **8** : 211-218.

Katyal, J.C. (1978). Management of P in lowland rice. Phosphorus In Agric. **73** : 21-34.

Khanna, S.S., Pathak, A.N. & Saxena, S.N. (1982). Review of Soil Research in Indian Part I. 12th International Cong. Soil Sci. New Delhi pp. 323-330.

Lal, R.B. & Arokianathan (1980). Annual Report. Division of Agronomy Indian Agricultural Research Institute, New Delhi.

Leelavathi, C.R., Bapat, S.R. & and Narain, P. (1986). Revised yardsticks of additional production of rice due to improvement measures. Indian Agricultural Statistics Research Institute, New Delhi.

Liebig, Justus von (1840). Chemistry in its application to Agriculture and Physiology.

Mandal, L.N. (1964). *Soil Sci.* **97** : 127.

Mani, V.S. (1975). *Fert. News* **20** (2) 1-9.

Misra, B. et al. (1983). *Indian J. of Agril. Chem.* **15** (3), 109-116.

Misra, S.G. (1974). Phosphate, U.P. Hindi Granth Akadami pp. 34.

Mukherjee, M.K. (1943). *Indian Soc. Soil Sci. Bull.* **5** : 17-26.

Palaniappan, R., Krishnamoorthy, K.K. and Ramanathan, S. (1979). *Bull. Indian. Soc. Soil Sci.* **12** : 236.

Patel, D.K. & Vishwanath, D. (1946). *Indian J. Agri. Sci.* **16** : 428-34.

Pathak, A.N. & Shukla, U.C. (1963). Allahabad Farmer **37** (3) : 1-5.

Pathak, A.N. et al (1950). *Curr. Sci.* **19** : 290-91.

Raju, A.S. & Kamath, M.B. (1983). *Fert. News* **28** (3) 30-32.

Randhawa, N.S. & Bhatia, P.C. (1980). FAI Seminar II-2 (i); 1-29.

Randhawa, N.S. & Velayutham, M. (1982). *Fert. News* **27** (9) : 35-64.

Roy, R.N. Seetharaman, S. & Singh, R.N. (1977). *Fert. News* **22** (9) : 3-18.

Sharma, B.M. & Yadav, J.S.P. (1976). Availability of P to gram as influenced by P fertilization and irrigation regime, IJAS, **46** : 205-210.

Sharma, R.C., Sud, K.C. & Swaminathan, K. (1979). *Bull. Indian Soc. soil Sci.* **12** : 259.

Singh, D. & Das, B. (1945). *Indian J. Agric. Sci.* **15** : 201-208.

Singh, R.S. & Pathak., A.N. (1973). *Indian J. Agric. Res.* **7** (2) : 115-117.

Stout, P.R. & Hogland, D.R. (1939). *Am. J. Botany* **26** : 320-324.

Tandon, H.L.S. (1980). Soil fertility and fertiliser use research on wheat in India-A review. FN, **25** (10), 45-78.

Tandon, H.L.S. (1987). Phosphorus Research and Agricultural Production in Indian. Fertilizer Development and Consultation Organisation, New Delhi.

Tripatm, S.K. (1980). Ph.D. Thesis, CSAUAT, Kanpur.

Way, J.T. (1850). *J. Res. Agric. Sci.* **11** : 312-79.

Wild, A. (1950). *J. Soil Sci.* **1** : 221-38.

अध्याय-6

पोटैशियम

पौधों के लिए आवश्यक विभिन्न पोषक तत्वों में पोटैशियम का महत्वपूर्ण स्थान है। विभिन्न फसलों के रासायनिक विश्लेषण से यह भलीभांति स्पष्ट हो गया है कि कुछ फसलें पोटैशियम तत्व का अवशोषण नाइट्रोजन से भी अधिक मात्रा में करती हैं। मृदा–पादप तंत्र में इस तत्व का आचरण बड़ा ही विलक्षण है। यह सर्वाधिक विलेय तत्व है। पौधों में इसका संचलन तीव्र गति होता है। मृदा में यह तत्व कई रूपों में पाया जाता है।

अहरेन्स (1965) के अनुसार सम्पूर्ण स्थल मण्डल के भार का लगभग 2.3 प्रतिशत पोटैशियम से बना है। मृदा में पोटैशियम की मात्रा 0.9 से 3.0 प्रतिशत अथवा इससे भी अधिक पाई जाती है। पोटैशियम की मात्रा में विभिन्नता पैतृक–पदार्थ, जिससे मृदा विशेष का निर्माण हुआ है, उसकी प्रकृति की विभिन्नता के कारण होती है।

खनिज मृदाओं में पोटेशियम की पूर्ति पोटैशियम युक्त खनिजों से होती है। पोटैशियम युक्त प्राथमिक खनिजों में पोटैशियम–फेल्सपार (Kalsi3O8) मस्कोवाइट $H_2Kal_3(SiO_4)$ बायोटाइट $H,K)_2$ (MgFe) Al_2SiO_4 इत्यादि उल्लेखनीय हैं। गौण मृदा खनिजों से भी पोटैशियम की पूर्ति होती है जिसमें इलाइट या सजल अभ्रक, अपक्षरित माइका, वर्मिकुलाइट, समेक्टाइट आदि प्रमुख हैं।

मृदा–खनिजों से पौधों को पोटैशियम का अल्प मात्रा ही सुलभ हो पाती है। विभिन्न खनिजों से पौधों को सुलभ होने वाले पोटैशियम की मात्रा में भी विभिन्नता पाई जाती है। खनिजों की अपक्षय दर और पौधों को पोटैशियम की प्राप्यता–सम्बन्धी अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि अन्य खनिजों की तुलना में माइका द्वारा पौधों को पोटैशियम की पूर्ति अधिक होती है। चूंकि भू–पर्पटी में माइका की अपेक्षा फेल्सपार अधिक मात्रा में पाया जाता है, अतः कालान्तर तक पोटैशियम की आपूर्ति को ध्यान में रखते हुए यही कहना उचित होगा कि पोटैशियम की पूर्ति हेतु माइका और फेल्सपार का महत्व एक समान है।

पोटैशियमधारी विभिन्न खनिजों से पोटैशियम की आपूर्ति

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि विभिन्न पोटैशियम खनिजों की पोटैशियम आपूर्ति दर भिन्न–भिन्न होती है। कुल खनिज शीघ्र ही अपक्षयति हो जाते हैं जबकि अन्य अपक्षरण–प्रक्रिया के प्रति अवरोधी सिद्ध हुए हैं। जिन खनिजों का अपक्षय शीघ्र हो जाता है उनसे पोटैशियम की आपूर्ति सुगमतापूर्वक होती है। विभिन्न खनिजों की अपक्षय सुगमता और उनसे पौधों को पोटैशियम की उपलब्धता को निम्नलिखित क्रम में दर्शाया जा सकता है:

बायोटाइट $[(H,K)_2 (MgFe)_2 Al_2 (SiO_4)_3]$>
मस्कोवाइट $[(H_2 KAl_3 SiO_4)_3$> फेल्सपार $[(KaI Si_3O_8)]$

फेल्सपार

ऊपर प्रदर्शित अनुक्रम से यह स्पष्ट हो जाता है कि फेल्सपार से पोटैशियम की सुलभता न्यूनतम् होती है। इसी कारण कुल प्राप्य मृदा पोटैशियम में इसका योगदान भी बहुत ही कम हो पाता है।

फेल्सपार से पोटैशियम की सुलभता सम्बन्धी अध्ययन अर्नोल्ड (1960), कारेन्स (1961), गैरेल्स तथा हावर्ड (1959), मार्शल (1964), नैश तथा मार्शल (1957) द्वारा किया गया। रास्मुस्सेन (1972) ने तापक्रम और हाइड्रोजन आयन सान्द्रता का प्रभाव फेल्सपार के अपक्षय पर देखा। उनके अनुसार तापक्रम और हाइड्रोजन आयन की सान्द्रता में वृद्धि के साथ ही फेल्सपार के अपक्षय में भी वृद्धि हुई।

बार्थ (1969) ने व्यक्त किया है कि फेल्सपार के अपक्षय में अवरोध इसकी विशेष संरचना के कारण ही उत्पन्न होता है। अनेक शोध कर्त्ताओं का मत है कि फेल्सपार के अपक्षय के समय मणिभीय सिलिका और अल्युमिनियम आक्साइडो का निर्माण होता है। ये आक्साइड फेल्सपार के चारों तरफ रक्षक आवरण के रूप में लग जाते हैं और अपक्षय में बाधक सिद्ध होते हैं।

माइका

विभिन्न प्रकार के माइका (मस्कोवाइट और बायोटाइट) का अपक्षय फेल्सपार की तुलना में विशेष सुगमता से होता है। फलतः इस प्रकार के खनिज

3261 HRD/2000—15

से पौधों को पोटैशियम अपेक्षाकृत अधिक सुलभ हो पाता है। यह 2:1 प्रकार का सिलिकेट होता है। इनमें दो सिलिका टेट्राहेड्रा पर्त के बीच एक पर्त अल्युमिनियम आक्टाहेड्रा की होती है। मस्कोवाइट में (डाईआक्टाहेड्रल)में तीन आक्टाहेड्रल धनायनों का स्थान त्रि–संयोजी एल्युमिनियम (Al^{+++}) जैसे दो धनायनों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। जबकि बायोटाइट (ट्राई आक्टाहेड्रल) में तीनों आक्टाहेड्रल स्थान द्वि–संयोजी मैग्नीशियम (Mg^{++}) तथा लौह (Fe^{++}) आयनों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। पोटैशियम आयन (K^+) सिलिकेट पर्त के बीच में रहता है। जैक्सन और शर्मन (1953) ने मस्कोवाइट और बायोटाइट के अपक्षय की गति सम्बन्धी सूचना प्रस्तुत की है। उनके अनुसार मस्कोवाइट की अपेक्षा बायोटाइट का अपक्षरण तीव्र गति से होता है। यह विभिन्नता उनके डाई आक्टाहेड्रल और ट्राई आक्टाहेड्रल स्वभाव के कारण ही पाई जाती है। डाई आक्टाहेड्रल माइका में पोटैशियम के चारों तरफ आक्सीजन की संपदीकरण संख्या 12 से घटकर 6 हो जाती है जो कि एक उपयुक्त संख्या मानी जाती है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप पोटैशियम–आक्सीजन वन्ध (K-O Bond छोटा और मजबूत हो जाता है। परिणामतः टाई आक्टाहेडल विन्यास की अपेक्षा डाई आक्टाहेल विन्यास की दशा में पोटैशियम–बन्धन विशेष सशक्त हो जाता है। ऐसा उल्लेख रिच (1969, 1972) ने किया है।

बैसेट(1960) ने इस स्थिरता में विभिन्नता का एक दूसरा कारण बताया है। उनके अनुसार यह अन्तर बायोटाइट में पाए जाने वाले आक्टाहेड्रा पर्त में हाइड्राक्सिल समूह (OH) के कारण होता है। यह समूह आधार के लम्बवत् एक समान वितरित होते हैं। यह आन्तरिक पर्त में उपस्थित पोटैशियम आयन (K^+) को हटाने की शक्ति प्रदान करते हैं। अतः बायोटाइट में उपस्थित पोटैशियम आयन (K^+) मस्कोवाइट की अपेक्षा कम मजबूती से बंधा रहता है।

माइका के अपक्षय के समय अन्तः पर्तों के पोटैशियम आयन का मृदा विलयन में उपस्थित अन्य विरोधी आयनों द्वारा विस्थापन हो जाता है। आयन–विनिमय की यह प्रक्रिया मुख्यतया माइका के कणों के आकार, संरचना, स्वभाव, आवेश–विभिन्नता, विनिमय–क्षमता, किनारों से माइका पर्त के विस्तार की सीमा आदि पर निर्भर करता है। सार्मा (1976) ने इस विषय पर विस्तृत सूचना प्रस्तुत की है। स्क्रोदर (1972) ने योजनाबद्ध क्रम में माइका के अपक्षय तथा मृतिका खनिजों में उनके रूपान्तरण को निम्नवत् दर्शाया है।
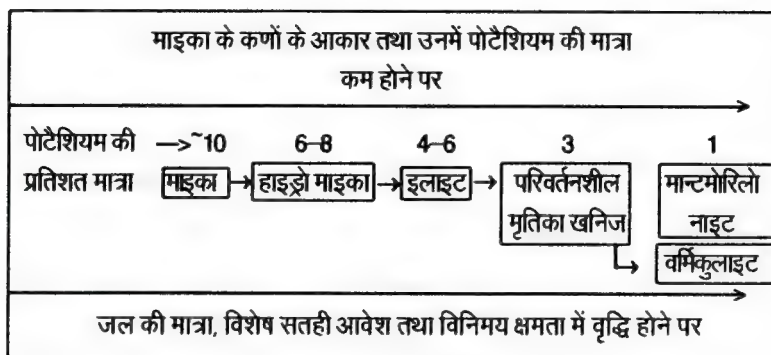
यद्यपि पौधों के लिए पोटैशियम की पूर्ति के सन्दर्भ में माइका का विशेष महत्व है फिर भी यह सत्य है कि सघन कृषि कार्यक्रम अपनाने पर मात्र इसी स्रोत से पोटैशियम की पूर्ति नहीं हो पाती। अतः उर्वरकों के माध्यम से पोटैशियम की पूर्ति करना आवश्यक हो जाता है।

मृतिका-खनिज

मृदा में पोटैशियम का स्थिरीकरण मुख्य रूप से मृतिका–खनिजों द्वारा नियंत्रित होता है। मृतिका–खनिजों की मात्रा तथा उनकी प्रकृति का मृदा विलयन में उपस्थित पोटैशियम की मात्रा पर प्रभाव पड़ता है। स्थिरीकरण–प्रक्रिया में भाग लेने वाले खनिजों में इलाइट, क्षयित माइका, वर्मिकुलाइट, स्मेक्टाइट और अन्तः स्तरित (Inter stratified) खनिज विशेष उल्लेखनीय हैं। साधारणतया 1:1 प्रकार के मृदा–खनिजों जैसे केओलिनाइट युक्त मृदाओं में पोटैशियम का स्थिरीकरण बहुत कम मात्रा में हो पाता है। इसके विपरीत 2:1 प्रकार के मृदा खनिज पोटैशियम–स्थिरीकरण में विशेष भूमिका निभाते हैं।

खनिजों की ऊपरी सतह तथा किनारों पर अधिशोषित पोटैशियम विनिमयशील होता है परन्तु जो पोटैशियम 2:1 प्रकार के रवा प्रजाल (Crystal lattice) में फंस जाता है, वह स्थिर हो जाता है। पोटैशियम आयन ऐसे आकार के होते हैं कि 2:1 प्रकार की मृत्तिकाओं में संलग्न रवा इकाइयों की सम्बन्धित सिलिका पट्टिकाओं के बीच पाई जाने वाली गुहिकाओं में अच्छी तरह फिट हो जाते हैं और रवा संरचना का एक भाग बन जाते हैं। पोटैशियम के इस

तरह फंस जाने के कारण रवा प्रजाल का प्रसरण भी नहीं हो पाता फलतः मृत्तिका की धनायन विनियम क्षमता घट जाती है। इसके विपरीत H^+, Na^+ और Ca^{++} आयन K^+ की अपेक्षा आकार में छोटे होने के कारण आन्तरिक अधिशोषण पृष्ठ के अन्दर और बाहर आसानी से आ जा सकते हैं। कहने का तात्पर्य है कि ये तीनों आयन विनिमेय दशा में रहते हैं। अमोनियम आयन का आकार भी पोटेशियम आयन के समान होता है अतः पोटैशियम की ही भांति अमोनियम आयन भी रवा प्रजाल में फंस कर स्थिर हो जाता है। यहां पर बता देना आवश्यक है कि स्थिरीकरण की यह प्रक्रिया अस्थायी होती है। उल्लेखनीय है कि वर्मिकुलाइट और इलाइट में आयनों के स्थिरीकरण की क्षमता मान्टमोरिलोनाइट से भी अधिक है।

मिट्टियों में पोटैशियम

उष्ण क्षेत्र की अधिकांश अम्लीय मिट्टियों में पोटैशियम की कुल एवं उपलब्ध मात्रा काफी कम होती है। मृदा वैज्ञानिकों का अनुमान है कि वर्तमान उत्पादकता स्तर पर भी उष्ण तथा उप–उष्ण क्षेत्रों की एक तिहाई मिट्टियों में पोटैशियम की कमी है। आधुनिक कृषि में नाइट्रोजनधारी उर्वरकों के बढ़ते उपयोग तथा फसलों द्वारा सभी पोषक तत्वों का अधिक मात्रा में अवशोषण होने के कारण मिट्टियों में उपलब्ध पोटैशियम की कमी हो जाना स्वाभाविक है। इससे फसल उत्पादन की समस्या को बढ़ावा मिल रहा है।

आधुनिक कृषि तकनीक अपनाने के फलस्वरूप उत्पादन में आशातीत बढ़ोत्तरी होती है। ऐसी दशा में भूमि में पोटैशियम का अवशोषण अधिक मात्रा में होने के कारण इस तत्व की भूमि में कमी हो जाने की संभावना बढ़ जाती है। पोटाश की मिट्टी और पौधों में कमियों की सही जानकारी न होने के कारण फसलों की उपज और गुणवत्ता में काफी कमी आ जाती है। भविष्य में इस प्रकार की कमियों को और बढ़ावा मिलेगा क्योंकि मिट्टी में पोटैशियम के संचित भण्डार का समय–समय पर छीजन होता जायेगा।

मिट्टी में पोटैशियम की उपस्थिति और उसके स्वभाव का वर्णन नीचे किया जा रहा है।

मिट्टी में पोटैशियम के विभिन्न रूप और उनकी मात्रा

मिट्टी में पोटैशियम चार रूपों में पाया जाता हैः–

(क) प्रारम्भिक खनिजों जैसे–माइका एवं पोटैशियम युक्त फेल्सपार के संरचना संघटकों के रूप में जो कि इन खनिजों के अपक्षय के फलस्वरूप ही उपलब्ध हो पाता है।

(ख) इलाइट तथा मोंटमारिलोनाइट जैसे फैलने वाले लैटिस क्ले की पर्तों के बीच में अस्थाई रूप से बंधित पोटैशियम।

(ग) ऋण आबेशित मृत्तिका कोलाइडों पर विनिमेय पोटैशियम के रूप में जो कि अमोनियम एसीटेट जैसे उदासीन लवणों के उपचार से विस्थापित और निष्कर्षित होते हैं।

(घ) मृदा विलयन में अल्प मात्रा में उपस्थित घुलनशील पोटाश।

रेखाचित्र 6.1 में पोटैशियम के इन रूपों का चित्रण किया गया है।

विनिमेय तथा मृदा–विलयन में विलेय पोटैशियम पौधों को आसानी से सुलभ होने की दशा में पाया जाता है। अधिकांश मिट्टी परीक्षण प्रयोगशालाओं में इसका निष्कर्षण और अनुमान "उपलब्ध पोटैशियम" के रूप में किया जाता है। अधिक अपक्षयित मिट्टियों में उगाई जाने वाली फसलों के लिए इन दोनों रूपों में मौजूद पोटैशियम का विशेष महत्व होता है। इन रूपों में मौजूद पोटैशियम फैलावदार मृत्तिका खनिजों में प्रायः कम मात्रा में पाया जाता है। इनमें प्रारम्भिक खनिज जिनका पुनः अपक्षय हो सके, काफी सीमित मात्रा में पाये जाते हैं, अतः मिट्टी में पोटाशयुक्त खनिजों के अभाव के कारण पोटाश की उपलब्धता कम हो जाती है।

उपलब्ध (विलेय+विनिमेय) पोटैशियम

पोटैशियम पौधों की जड़ों के माध्यम से चलकर मृदा–विलयन में पहुंचता है और मृदा–विलयन में इसकी सान्द्रता यह संकेत करती है कि एक निश्चित समय में पोटैशियम की कितनी मात्रा जड़ों तक पहुंच रही है। उल्लेखनीय है कि मृदा–विलयन में घुलनशील पोटैशियम की मात्रा केवल क्षणिक उपलब्धता का बोध कराती है। सफल कृषि–उत्पादन के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है कि मृदा–विलयन में पोटैशियम की सांद्रता पूरे फसल–काल तक संतोषप्रद स्तर की बनी रहे।

जलोढ़ सामग्री से निर्मित नई मिट्टियों को छोड़कर उष्ण क्षेत्रों की अधिकांश ऊपरी मिट्टियों की धनायन विनिमय क्षमता काफी कम होती है। फलतः मिट्टी की पोटैशियम जैसे घुलनशील क्षारीय धनायनों को आकर्षित करने और उन्हें धारण किए रहने की क्षमता काफी सीमित रहती है। उष्ण तथा उप–उष्ण क्षेत्रों की कतिपय अम्लीय मिट्टियों की प्रभावी धनायन विनिमय क्षमता 5 मि. इक्वीवैलेंट प्रति 100 ग्राम से भी कम हो सकती है। ऐसा उनमें जैविक कोलाइडों की बाहुल्यता के कारण ही होता है। शीतोष्ण क्षेत्रों में नीक्षालन द्वारा पोटैशियम की हानि रोकने के लिए मिट्टी की धनायन विनिमय क्षमता 4 से 8 मि.इ./100 ग्राम तक होना आवश्यक हो जाता है।

संचित या धीमी गति से उपलब्ध पोटैशियम

उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में मृदा–अपक्षय बहुत सघन रूप में होता है। अतः ठंडे या शीतोष्ण क्षेत्रों की तुलना में उष्ण क्षेत्रों में धीमी गति से उपलब्ध होने वाले "संचित" पोटैशियम की मात्रा और उसके खनिज रूपों का विशेष महत्व होता है। इसी कारण उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में "संचित" या धीमी गति से उपलब्ध होने वाले पोटैशियम का अनुमान लगाना विशेष उपुयक्त सिद्ध होता है। इस रूप में मौजूद पोटैशियम की मात्रा की जानकारी नार्मल नाइट्रिक अम्ल विधि द्वारा किया जाता है। इस प्रकार ज्ञात की गई पोटैशियम की मात्रा 8–15 फसलों द्वारा अवशोषित पोटैशियम की कुल मात्रा के बराबर होती है। चीन के मृदा वैज्ञानिक प्रायः इस प्रकार के पोटैशियम की मात्रा की जानकारी करते हैं। इस प्रकार के पोटैशियम तथा विनिमेय पोटैशियम में आपसी सम्बन्ध पाया जाता है।

कुछ अनुसंधान कर्ता इस मत के हैं कि यदि पौधे अपनी पोटाश की आवश्यकता की पूर्ति के लिए बहुत हद तक धीमी गति से उपलब्ध होने वाले या अविनिमेय पोटैशियम की मात्रा पर निर्भर रहते हों, तो पोटैशियम की कमी से फसलों की उपज कम होने की संभावना रहती है।

पोटैशियम की गतिक संतुलन

उल्लेखनीय है कि मृदा–विलयन में उपस्थित पोटैशियम तथा विनिमेय पोटैशियम एक गतिक संतुलन (Dynamic equilibrium) में रहते हैं। पोधों द्वारा जब मृदा–विलयन में उपस्थित पोटैशियम का उपयोग कर लिया जाता है तो अस्थायी रूप से पोटैशियम के दोनों रूपों का आपसी संतुलन टूट जाता है।

परन्तु शीघ्र ही विनिमेय पोटैशियम का कुछ भाग मृदा–विलयन में आ जाता है जिससे इन दोनों रूपों में पुनः संतुलन स्थापित हो जाता है। मृदा–विलयन के पोटैशियम के अलावा पौधे कोलाइडी पृष्ठों से भी इस तत्व का अवशोषण कर लेते हैं (रेखाचित्र 6.11)।

जब जल विलेय पोटैशियमधारी उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है तो मृदा–विलयन में पोटैशियम की सान्द्रता एकाएक बढ़ जाती है। इस दशा में भी पोटैशियम के दोनों रूपों के बीच अस्थायी असंतुलन उत्पन्न हो जाता है। पुनः संतुलन स्थापित होने के लिए ऊपर वर्णित समायोजन के बिल्कुल विपरीत प्रक्रिया सम्पादित होती है।

मृदा के कुल पोटैशियम का 1 से 10 प्रतिशत भाग अविनिमेय या यौगिकीकृत रूप में पाया जाता है। इसकी गणना मन्द गति से सुलभ पोटैशियम की श्रेणी में की जाती है। वर्मीकुलाइट, इलाइट और अन्य 2:1 प्रकार के खनिजों की उपस्थिति में उर्वरक पोटैशियम का अधिशोषण (Adsorption) तथा अन्ततः मृदा कोलाइडों द्वारा यौगिकीकरण (Fixation) भी हो जाता है। इन मृत्तिकाओं के फैलने वाले रवा प्रजाल (Crystal lattice) के बीच पोटैशियम और साथ ही अमोनियम आयन फिट होकर उक्त रवा (Crystal) के बीच आपसी संतुलन पाया जाता है। अतः स्पष्ट है कि अविनिमेय पोटैशियम मंद गति से सुलभ होने वाले पोटैशियम के लिए एक भंडार का काम करता है।

पोटैशियम के उपरोक्त तीनों रूपों अर्थात् उपलब्ध, अनुपलब्ध तथा मंदगति से उपलब्ध होने वाले पोटैशियम के बीच जो संबंध पाया जाता है, उसे नीचे दर्शाया जा रहा है:

सापेक्ष रूप से असुलभ पोटैशियम, फेल्सपार, अभ्रक आदि, कुल पोटैशिम का 90 से 98%

↓ ↓

मन्द गति से सुलभ पोटैशियम अविनिमेय पोटैशियम (यौगिकीकृत), कुल पोटैशियम का 9–10%

तत्परता से सुलभ पोटैशियम विनिमेय पोटैशियम तथा मृदा–विलयन में पोटैशियम, कुल पोटैशियम का 1–2%
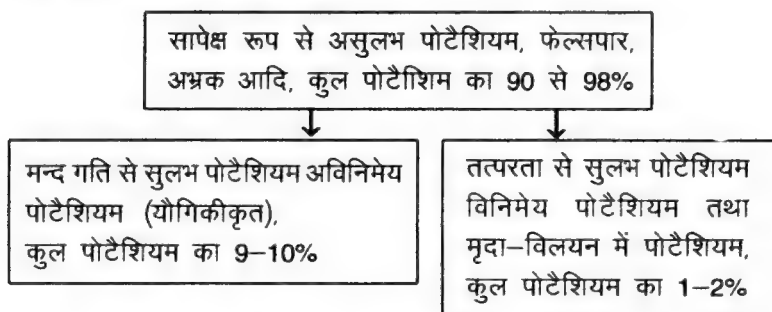
मिट्टी में पोटैशियम के विभिन्न रूपों के गतिक संतुलन को रेखाचित्र 6.1 में प्रदर्शित किया गया है।
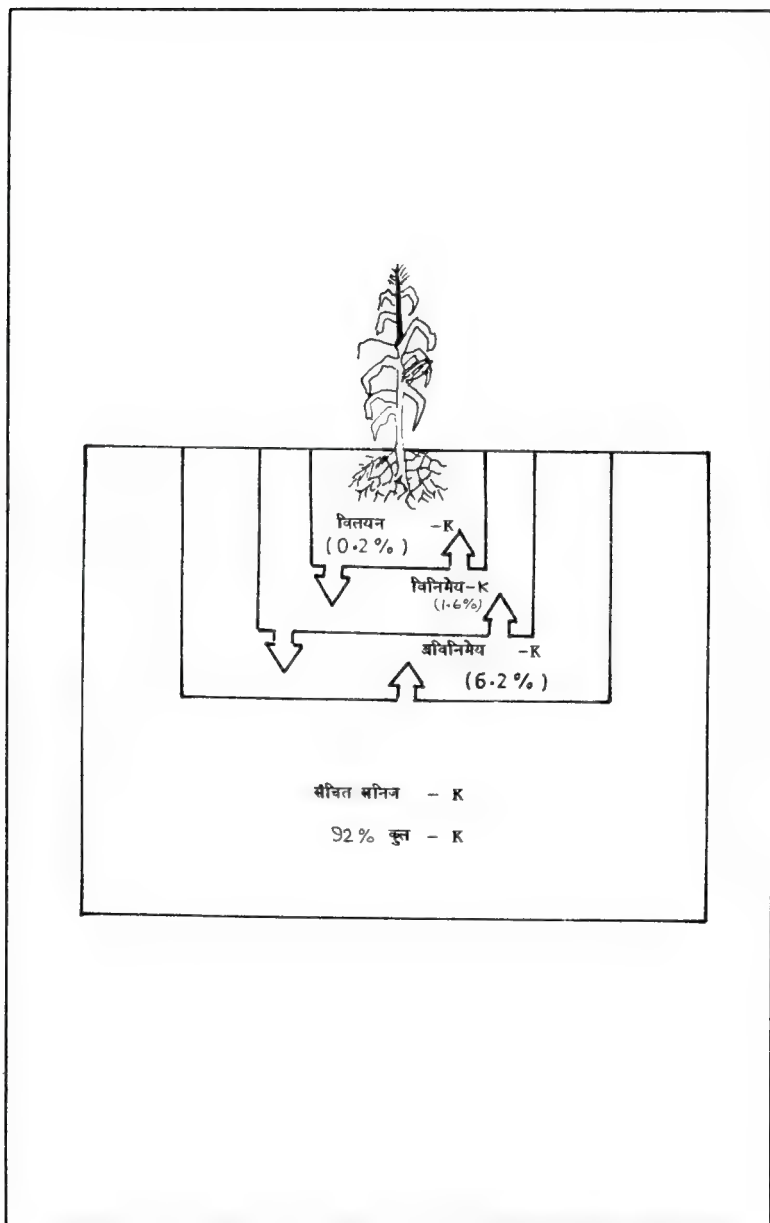
रेखाचित्र-6.1 मिट्टी में विभिन्न रूपों में पोटैशियम का गतिक संतुलन

अविनिमेय, विनिमेय तथा मृदा विलयन में उपस्थित पोटैशियम के अपासी संतुलन को निम्नांकित रूप से प्रदर्शित किया जा सकता है:

अविनिमेय पोटैशियम ⇌ विनिमेय पोटैशियम ⇌ मृदा–विलयन में उपस्थित पोटैशियम

उपर्युक्त संतुलन मृदा–विलयन में उपस्थित पोटैशियम या विनिमेय पोटैशियम का पौधों द्वारा अवशोषण तथा अपक्षय या वियौगिकीकरण के फलस्वरूप होने वाली पोटैशियम की पूर्ति पर निर्भर करता है।

भारतीय मिट्टियों में पोटैशियम का वितरण

भारतीय मिट्टियों में पोटैशियम की मात्रा का विवरण अनेक शोध कर्ताओं द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इन शोध कार्यों के आधार पर राय तथा सहयोगियों (1978) ने भारतीय मिट्टियों में पोटैशियम के विभिन्न रूपों की मात्रा का विवरण दिया है।

भारतीय मिट्टियों में पोटैशियम के विभिन्न रूप उसके गुणों के अनुसार विभिन्न मात्रा में पाए जाते हैं। मिट्टी में इस तत्व की उपलब्धता को प्रभावित करने वाले अनेक कारकों में पैतृक पदार्थ, मृत्तिका खनिज. अपक्षय की दशाएं आदि प्रमुख हैं।

घोष और हसन (1976) ने भारत वर्ष की मिट्टियों के पोटैशियम उर्वरता स्तर का मानचित्र तैयार किया। उनके अनुसार जलोढ़ क्षेत्र के 20 प्रतिशत जिलों की मिट्टियों का पोटैशियम स्तर निम्न, 42 प्रतिशत जिलों का मध्यम और 38 प्रतिशत जिलों का स्तर उच्च पाया गया।

काली तथा लाल मिट्टियों वाले तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और महाराष्ट्र की 28.5 से 48 प्रतिशत जिलों की मिट्टियों का पोटैशियम स्तर उच्च पाया गया। मध्य प्रदेश और गुजरात के क्रमशः 71 और 100 प्रतिशत जिले उच्च उर्वरता के अन्तर्गत पाए गए। अतः यह स्पष्ट है कि गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश के कुछ जिलों का पोटैशियम स्तर उच्च और तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश के कुछ जिलों को पोटैशियम स्तर मध्यम है।

लेटेराइट मृदा वाले राज्यों--उड़ीसा, बंगाल और कुछ भाग बिहार और मध्य प्रदेश के अधिकांश जिले मध्यम पोटैशियम उर्वरता स्तर के अन्तर्गत पाए गए। घोष तथा हसन (1976) द्वारा भारतीय मिट्टियों में पोटैशियम की उपलब्धता सम्बन्धी प्रस्तुत की गई सूचना का संक्षिप्त विवरण सारणी सं. 6.2 में दिया जा रहा है।

कुछ शोधकर्ताओं ने उपलब्ध पोटैशियम स्तर और मृदा पीएच मान के बीच सम्बन्ध ज्ञात किया (राजाकून इत्यादि, 1970)। इनके अनुसार उपलब्ध पोटैशियम का पीएच मान के साथ धनात्मक सह सम्बन्ध पाया गया। वर्मा और बर्मा (1968) के अनुसार कैल्शियम कार्बोनेट, जीवांश पदार्थ तथा मृदा पीएच मान का उपलब्ध पोटैशियम के साथ धनात्मक सम्बन्ध रहा।

उपलब्ध पोटैशियम की भांति पोटैशियम के अन्य रूपों में भी स्थान के अनुसार विभिन्नता पाई जाती है।

पंजाब की मिट्टियों में 1.4 से2.7 प्रतिशत पोटैशियम पाया जाता है। इस मात्रा का 30 प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल विलेय तथा 6.1 प्रतिशत नार्मल नाइट्रिक अम्ल विलेय (यौगिकीकृत) रूप में पाई गई। जल विलेय पोटैशियम की मात्र 12.8 पीपीएम थी (ग्रेवाल तथा कनवर 1966)।

मिश्रा और शंकर (1970), मिश्रा इत्यादि (1970) तथा मेहरोत्रा इत्यादि (1973) ने उत्तर प्रदेश की मिट्टियों में पोटैशियम के विभिन्न रूपों की मात्रा का अध्ययन किया। इन अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि इस प्रदेश की जलोढ़ मिट्टियों में जल विलेय तथा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल विलेय पोटैशियम की पर्याप्त मात्रा पाई जाती है।

जेन्डे (1978) ने उल्लेख किया है कि भारत वर्ष की काली मिट्टियों में अधिकांश पोटैशियम हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में विलेय तथा अनुपलब्ध रूप में पाया जाता है। जल विलेय पोटैशियम अत्यल्प मात्रा में पाया जाता है। विनिमेय पोटैशियम 0.06 से लेकर 4.65 सहस्त्र तुल्यांक प्रति 100 ग्राम पाया जाता है। साधारणतया आंध्र प्रदेश (नागरमा मूर्ति इत्यादि 1976), वेंकटासुब्याह, 1976), गुजरात (मेहता 1976, मेहता तथा शाह 1956, जोशी इत्यादि, 1960, कर्नाटक (गोडसे तथा गोपाल कृष्णप्पा 1976) और महाराष्ट्र (कद्रेकर 1976, कद्रेकर और किबे 1972, जेन्डे और चिंचोरकर 1963) राज्य

की काली मिट्टियों में विनिमेय पोटैशियम की मात्रा काफी अधिक पाई जाती है।

गुजरात, कर्नाटक, महाराष्ट्र और राजस्थान (भटनागर इत्यादि 1973, परीक इत्यादि 1972, लोधा और सेठ 1970, धवन इत्यादि 1969) राज्यों की मिट्टियों में 1 नार्मल नाइट्रिक अम्ल विलेय पोटैशियम पर्याप्त मात्रा में पाया गया है। इस रूप में पोटैशियम की न्यूनतम् मात्रा (1.03 एम.ई./100 ग्राम) महाराष्ट्र की मिट्टियों में तथा अधिकतम् मात्रा 43 एम.ई/100 ग्राम) कर्नाटक की मिट्टियों में पायी गयी।

मिट्टी में पोटैशियम की कुल मात्रा उसमें मौजूद बालू, साद तथा मृत्तिका के अनुपात पर आधारित होती है। काली मिट्टियों में पाई जाने वाली कुल मात्रा में मृत्तिका का विशेष योगदान होता है जबकि मध्य प्रदेश की जलोढ़ मिट्टियों में बालू और साद प्रभावो का पोटैशियम की कुल मात्रा पर विशेष प्रभाव देखा गया है। घोष तथा घोष (1976) के कार्यों में यह उल्लेख मिलता है कि जलोढ़ मिट्टियों में पोटैशियम युक्त खनिज अपेक्षा मोटे प्रभाजों (Coarser fraction) में अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। इस तथ्य से सम्बन्धित कुछ परिणामों का उल्लेख सारणी 6.1 और 6.2 में किया जा रहा है।

सारणी-6.1 विभिन्न कणाकार प्रभाजों में पोटैशियम के विभिन्न रूपों की प्रतिशत मात्रा

कणाकारप्रभाज		कुल पोटैशियम	हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में घुलनशील पोटैशियम	1 नार्मल नाइट्रिक अम्ल में घुलनशील पोटैशियम (यौगिकीकृत)
मृत्तिका	(अ)	3.03	1.45	0.43
	(ब)	3.72	2.10	0.36
	(स)	4.13	2.17	0.53
साद	(अ)	1.78	0.54	0.09
	(ब)	2.14	0.76	0.20
	(स)	2.77	1.24	0.30

बारीक	(अ)	1.00	0.17	0.02
बालू	(ब)	1.40	0.40	0.31
	(स)	1.93	0.21	0.04

(अ) कनवर तथा ग्रेवाल (1966)
(ब) लोधा तथा सेठ (1970)
(स) मेहरोत्रा इत्यादि (1973)

सारणी-6.2 विभिन्न आकार के मृदा–कणों का पोटैशियम के विभिन्न रूपों की मात्रा में प्रतिशत योगदान

मृदा कण का प्रकार		कुल पोटैशियम	हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में घुलनशील पोटैशियम	1 नार्मल नाइट्रिक अम्ल में घुलनशील पोटैशियम
मृत्तिका	(अ)	25.8	57.1	41.3
	(ब)	26.8	44.1	62.3
साद	(अ	17.6	26.4	28.2
	(ब)	12.2	11.4	20.1
बारीक	(अ)	56.5	16.5	20.5
बालू	(ब)	46.5	36.5	13.0

(अ) मेहरोत्रा इत्यादि (1973)
(ब) लोधा और सेठ (1970)

मृदा-परिच्छेदिका में पोटैशियम का वितरण

चन्दुनी और पारीक (1976) के अनुसार राजस्थान की जलोढ़ मिट्टियों में विनिमेय तथा जल विलेय पोटैशियम की मात्रा अधो सतह की अपेक्षा ऊपरी सतह में अधिक पाई गई। कृष्णामूर्ति इत्यादि (1976) में तमिलनाडु की जलोढ़ मिट्टियों में गहराई के साथ कुल पोटैशियम की मात्रा में कमी पाई। सिंह और सेखों (1977) के अनुसार पंजाब की दोमट बलुई मिट्टी में गर्मी के मौसम में पोटैशियम की संतृप्ति 0.30 से.मी. की सतह में सर्वाधिक और 180–225

से.मी. की सतह में न्यूनतम् पायी गयी। यद्यपि अक्तूबर के महीने में बाद वाली सतह में पोटैशियम की संतृप्ति सर्वाधिक आंकी गई। उनके अनुसार बरसात के मौसम में इलाइट प्रकार के पोटैशियम की मुक्ति होती है और बाद में 180 से.मी. से अधिक गहराई वाली सतहों में एकत्रित हो जाता है। इस अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ है कि गहराई बढ़ने के साथ ही पोटैशियम–संतृप्ति की प्रतिशत मात्रा में कमी होती गई। मिट्टी में मौजूद मृत्तिका की मात्रा अथवा उसके धनायन–विनिमय–क्षमता का पोटैशियम–संतृप्ति पर कोई खास प्रभाव नहीं देखा गया।

इकाम्बरम् (1973) ने लाल मिट्टियों की परिच्छेदिकाओं में गहराई बढ़ने के साथ ही कुल पोटैशियम की मात्रा में वृद्धि देखी। इसके विपरीत जल–विलेय पोटैशियम की मात्रा ऊपरी सतह की मिट्टियों में अधिक पाई गई और गहराई में वृद्धि के साथ ही इस प्रकार के पोटैशियम की मात्रा कम होती गई। इनके अनुसार ऊपरी सतह में कुल पोटैशियम की कम मात्रा इस सतह से पौधों द्वारा पोटैशियम के उपयोग कलिल प्रभाजों (Colloidal fraction) के ऊपरी सतह से अधो सतह में पहुंच जाने तथा आंशिक रूप से अपक्षयति फेल्सपार तथा अन्य पोटैशियमधारी खनिजों की उपस्थिति के कारण होता है।

भारतीय मिट्टियों में पोटैशियम का खनिज अध्ययन

मिट्टी में पाया जाने वाला अधिकांश पोटैशियम, पोटैशियम युक्त प्राथमिक खनिजों में पाया जाता है। भू–पपड़ी का 16 प्रतिशत पोटैशियम आर्थोक्लेज तथा इसके अन्य रूपों में पाया जाता है। पोटैशियम आपूर्ति में बायोटाइट और उससे सम्बन्धित माइका का योगदान 3.8 प्रतिशत और मस्कोवाइट का 1.4 प्रतिशत होता है।

माइका सिलिकेटों का एक समूह है। एक सिलिकेट इकाई में सिलिका की दो पर्तों के बीच में एल्युमिना की एक पर्त पायी जाती है। इन दोनों पर्तों के बीच में धनायनों का विनिमय होता रहता है। इकाई संस्तरों के बीच सूक्ष्म स्थान में पोटैशियम पाया जाता है। कुछ माइका में धनायनों के तीन स्थानों में से दो स्थान पोटैशियम आयनों द्वारा ले लिया जाता है जबकि अन्य में तीनों स्थान पोटैशियम का होता है।

इलाइट में माइका और मान्टमारिलोनाइट मिश्रित संस्तर होते हैं जोकि बेड़े या खड़े दिशा में हो सकते हैं। माइका के अंश में सामान्य पोटैशियम के स्थान पर हाइड्रोनियन आयन (H_3O) पाया जाता है। बर्मिकुलाइट और स्मेक्टाइट समूह के खनिजों में फैलावदार संस्तर पाये जाते हैं। इनमें आन्तरिक विनिमय के लिए काफी स्थान रहता है। अतः पोटैशियम का विनिमय यद्यपि कुछ कम होता है परन्तु बर्मिकुलाइट का आवेश घनत्व स्मेक्टाइट की तुलना में अधिक होता है .

केओलिनाइट और हेलोसाइट में एक सिलिका पर्त के ऊपर एलूमिना की एक पर्त पायी जाती है। केओलिनाइट में 1:1 संस्तर वाले खनिज समानान्तर क्रम में पाए जाते हैं। इनके अन्तःस्तर में स्थान खाली रहता है। हैलोसाइट में इकाई संस्तरों के बीच जल पाया जाता है। ऐसी दशा में धनायनों का विनिमय केवल मृत्तिका खनिज की बाहरी सतह पर होता है।

भारत की जलोढ़, काली, लाल और लेटेराइट मिट्टियों के खनिज संगठन का विवरण टन्डन और सेखों (1988) ने दिया है। बिहार, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान और उत्तर प्रदेश की जलोढ़ मिट्टियों के मृत्तिका अंग में इलाइट खनिज का बाहुल्य पाया जाता है तथा बमर्रकुलाइट, क्लोराइट, क्वार्ट्ज, फेल्सपार और केओलिनाइट सह–खनिज के रूप में पाये जाते हैं। पश्चिमी बंगाल के बर्दवान जिले के हैंरग्राम सिरीज में इलाइट के साथ ही स्मेक्टाइट का बाहुल्य है। जबकि पश्चिमी बंगाल के बीरभूम जिले की खर्गोना तथा उड़ीसा के पुरी जिले की बालीशाही सिरीज में केओलिनाइट का बाहुल्य है तथा इलाइट, स्मेक्टाइट क्वार्ट्ज और फेल्सपार सह–खनिजों के रूप में पाये जाते हैं।

गुजरात, आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु की काली मिट्टियों में स्मेक्टाइट खनिज की प्रधानता होने के साथ ही इलाइट, केओलिनाइट और फेल्सार भी पाये जाते हैं। कर्नाटक की लाल तथा केरल की लेटेराइट मिट्टियों में केओलिनाइट की प्रधानता है। इलाइट, वर्मीकुलाइट, क्वार्ट्ज और फेल्सपार सह–खनिजों के रूप में पाये जाते हैं। अण्डमान और निकोवार द्वीप समूह की मिट्टियों में इलाइट, स्मेक्टाइट और केओलिनाइट सभी मौजूद हैं। मध्यम अच्छे जल निकास वाली मिट्टियों में वर्मिकुलाइट भी पाया जाता है। जल–निकास में सुधार होने पर स्मेक्टाइट की प्रधानता कम हो जाती है और

बर्मिकुलाइट की मात्रा बढ़ जाती है। कर्नाटक के पूर्वी क्षेत्रों के लाल और लेटैराइट मिट्टियों में केओलिनाइट पाया जाता है जो कि साधारणतया फेल्सपार के अपघटन का प्रतिफल है। केरल की अम्ल सल्फेट मिट्टियों के मृत्तिका अंग में यद्यपि केओलिनाइट की बाहुल्यता है किन्तु इनमें स्मेक्टाइट भी अच्छी–खासी मात्रा में पाया जाता है और कुछ नमूनों में केओलिनाइट और स्मेक्टाइट बराबर मात्रा में पाए जाते हैं। भारत की चार प्रतिनिधि मिट्टियों में मृत्तिका खनिजों की बाहुल्यता के अनुसार विभिन्न कणाकार अंगों में फेल्सपार–पोटैशियम और माइका–पोटैशियम का आपेक्षिक वितरण रेखाचित्र 6.2 में दर्शाया गया है। जलोढ़ मिट्टियों और फेल्सपार प्रधान काली मिट्टियों में जहां पोटैशियम का मुख्य स्रोत माइका है वहां सिल्ट अंश में पोटैशियम की मात्रा में काफी अन्तर पाया जाता है। लाल और लेटेराइट मिट्टियों में फेल्सपार–पोटैशियम और माइका–पोटैशियम की मात्रा लगभग बराबर पायी जाती है।

भारतीय मिट्टियों में पोटैशियम का यौगिकीकरण और सुलभता

मृदा में पोटैशियम के विभिन्न रूपों का वर्णन करते समय यौगिकीकृत पोटैशियम के विषय में भी थोड़ा प्रकाश डाला गया है। मृदा में पोटैशियम के यौगिकीकरण से तात्पर्य है विनिमेय तथा जल विलेय रूप में उपस्थित पोटैशियम का मंदगति से उपलब्ध अविनिमेय रूप में परिवर्तित हो जाना। डा. आर.आर. अग्रवाल (1960) ने पोटैशियम यौगिकीकरण की समीक्षा की है। भारतीय मिट्टियों की पोटैशियम यौगिकीकरण–क्षमता के विषय में अनेक वैज्ञानिकों ने सूचना दी है। मित्रा आदि (1948) ने भारत वर्ष की लगभग सभी मिट्टियों की पोटैशियम–स्थिरीकरण क्षमता सम्बन्धी जानकारी दी है।

मृदा में पोटैशियम–यौगिकीकरण सम्बन्धी किए गए अध्ययनों से यह भलीभांति ज्ञात हो चुका है कि मिट्टी के गुणों में पाई जाने वाली विभिन्नता के कारण यौगिकीकृत पोटैशियम की मात्रा में विभिन्नता पाई जाती है। कभी–कभी तो एक ही मृदा–समूह की कई मिट्टियों की पोटैशियम–यौगिकीकरण क्षमता भिन्न–भिन्न पाई जाती है। यह मृदा में पाए जाने वाले खनिजों की संरचना में विभिन्नता के कारण होता है। उदाहरणार्थ–भारत वर्ष के शुष्क तथा अर्द्धशुष्क क्षेत्र में पाई जाने वाली लाल तथा जलोढ़ मिट्टियों की पोटैशियम यौगिकीकरण क्षमता में अत्यधिक अन्तर उनमें मौजूद खनिजों
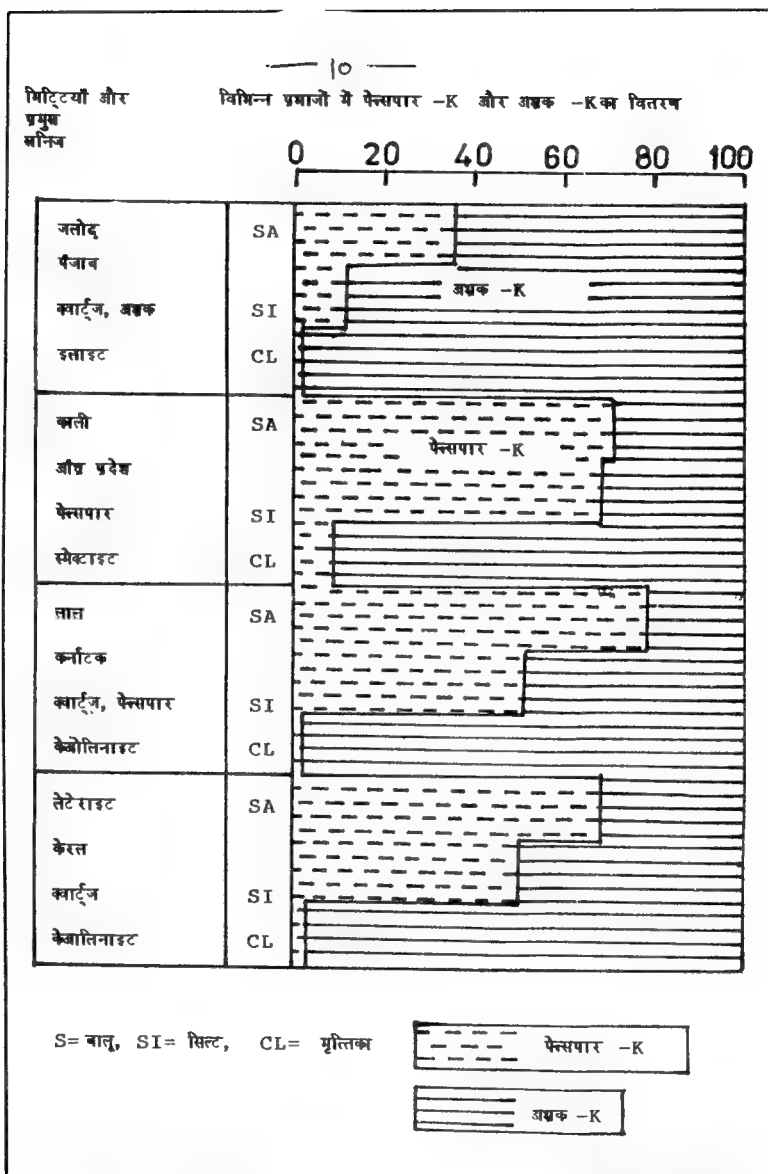
रेखाचित्र-6.2 विभिन्न मिट्टियों में फेल्सपार और अभ्रक का आपेक्षिक वितरण और इनका प्रमुख मृत्तिका खनिजों से सह सम्बन्ध

विशेषकर इलाइट तथा मुक्त आक्साइड की अधिक मात्रा के कारण ही होता है। इस प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक अनेक हैं। इनमें से निम्न कारक विशेष उल्लेखनीय हैं:

(1) मृदा–प्रतिक्रिया

(2) मृत्तिका–खनिज

(3) प्रयोग किए गए पोटैशियम की सान्द्रता

(4) मृदा–आर्द्रता, शुष्कता तथा तापमान

मृदा-अभिक्रिया

मृदा–अभिक्रिया का पोटैशियम यौगिकीकरण पर निश्चित प्रभाव पड़ता है। अम्लीय दशाओं में पोटैशियम के चुनने योग्य बन्धन स्थान (Selective binding sites) अल्युमिनियम तथा अल्युमिनियम हाइड्राक्साइड धनायनों और उनके (Polymer) ले लेते हैं। यह प्रक्रिया किस हद तक सम्पन्न होती है, यह मिट्टी के पीएच–मान पर निर्भर करता है। अधिक विसरित मृत्तिकाओं द्वारा अल्युमिनियम अन्तपर्त का निर्माण संभावित रहता है जिससे मृदा की पोटैशियम यौगिकीकरण क्षमता कम हो जाती है (रिच, 1968)। कंसल और सेखों (1974) के कार्यों में भी यह उल्लेख मिलता है कि मृदा–पीएच–मान का पोटैशियम यौगिकीकरण पर प्रभाव पड़ता है। अन्य खोजों के अनुसार पोटैशियम का यौगिकीकरण पीएच–मान में वृद्धि के साथ बढ़ता गया।

मृत्तिका-खनिज

मृत्तिका–खनिज की प्रकृति तथा पोटैशियम–यौगिकीकरण के विषय में पहले चर्चा की गई है जिससे यह भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि 2:1 प्रकार के मृत्तिका–खनिजों जैसे इलाइट, बर्मिकुलाइट और मान्टमोंरिलोनाइट वाली मिट्टियों की पोटैशियम–यौगिकीकरण क्षमता केओनिलाइट जैसे 1:1 प्रकार के मृत्तिका–खनिजों वाली मिट्टियों की तुलना में अधिक होती है।

कंसल और सेखों ने पुनः स्पष्ट किया है कि मिट्टी में मौजूद मृत्तिका और बारीक साद का विनिमेय तथा अविनिमेय पोटैशियम की मात्रा पर सीधा प्रभाव पड़ता है। उनके अनुसार मिट्टी में मृत्तिका तथा बारीक साद की मात्रा

3261 HRD/2000—16

में वृद्धि होने के साथ ही विनिमेय और अविनिमेय पोटैशियम की मात्रा में वृद्धि हुई। बालासुन्दरम् तथा कृष्णामूर्ति (1974) ने लाल मिट्टी की अपेक्षा काली मिट्टी की पोटैशियम यौगिकीकरण क्षमता अधिक बताया। इस काली मिट्टी में मान्टमोरिलोनाइट मृत्तिका खनिज की प्रधानता थी जबकि लाल मिट्टी में मान्टमोरिलोनाइट और केओलिनाइट दोनों की मात्रा एक समान थी।

प्रयोग किए गए पोटैशियम की सान्द्रता

मृदा–विलयन में पोटैशियम की सान्द्रता बढ़ाते ही पोटैशियम यौगिकीकरण में वृद्धि हो जाती है।

मृदा-आर्द्रता तथा शुष्कता

दत्ता और कलबन्दे (1963) ने मृदा में नमी की मात्रा तथा तापमान का पोटैशियम की सुलभता पर प्रभाव देखा। उनके अनुसार पोटैशियम की अधिकतम सुलभता 35 सें.ग्रे. तापमान पर कुल जलधारण क्षमता का 50 प्रतिशत आर्द्रता रखने पर देखी गई। सम्बन्धित आंकड़े सारणी 6.3 में दिए जा रहे हैं।

सारणी-6.3 नमी तथा तापक्रम की विभिन्नता के अनुसार मिट्टी में पोटैशियम की सुलभता

नमी की मात्रा	तापमान	
	35 सें.ग्रे.	45 सें.ग्रे.
	(पोटैशियम सुलभता कि.ग्रा./हेक्टर)	
जलधारण क्षमता के समतुल्य	418	403
1/2 जलधारण क्षमता के समतुल्य	454	429
शुष्क	402	391

एक विशेष अन्तर पर आर्द्रता तथा शुष्कता के उपचार का प्रभाव पोटैशियम यौगिकीकरण पर पड़ता है। पाटिल इत्यादि (1976) ने व्यक्त किया है कि क्रमशः आर्द्रता और शुष्कता के कारण प्रथम 30 दिनों पोटैशियम का यौगिकीकरण अधिक हुआ। इसके बाद की अवधि में यौगिकीकृत पोटैशियम की मात्रा में बहुत थोड़ी वृद्धि हुई। इसके विपरीत सिंह और राम (1976) ने

लगातार 90 दिन तक जलमग्न दशा अथवा 30 दिन के अन्तर पर क्रमशः जलमग्नता और शुष्कता की दशा में धान के खेतों में विनिमेय पोटैशियम की सुलभता बताई है।

भारतीय मिट्टियों का पोटैशियम उर्वरता-स्तर

भारतीय मिट्टियों की पोटैशियम उर्वरता स्तर सम्बन्धी उल्लेख टन्डन एवं शेखों (1988) ने किया है। सम्बन्धित आंकड़े सारणी 6.4 में दिए गये हैं, जिससे स्पष्ट है कि कुल 361 जिलों में से 47 जिलों का पोटैशियम उर्वरता स्तर निम्न, 192 जिलों का मध्यम और 122 जिलों का उच्च पाया गया। तुलनात्मक दृष्टि से पोटैशियम की सर्वाधिक कमी उड़ीसा, आसाम और उत्तर प्रदेश में देखी गयी। हिमाचल प्रदेश, केरल, राजस्थान, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल के अधिकांश जिलों का पोटैशियम उर्वरता स्तर मध्यम पाया गया। जहां क्रमशः 80, 83, 96, 71 और 80 प्रतिशत नमूने मध्यम उर्वरता स्तर में पाये गये। अतः इन राज्यों के अधिकांश जिलों में पोटैशियम का प्रयोग करना आवश्यक समझा जाता है। औसत रूप में 13 प्रतिशत जिले निम्न, 53 प्रतिशत मध्यम और 34 प्रतिशत उच्च उर्वरता स्तर में है।

सारणी-6.4 भारत में विभिन्न प्रान्तों के विभिन्न जनपदों की मिट्टियों का पाटैशियम उर्वरता स्तर

राज्य/संघ	निम्न	मध्यम	उच्च	निम्न	मध्यम	उच्च	कुल
	जनपदों की संख्या			प्रतिशत कमी			जनपद
अण्डमान निकोवार द्वीप समूह	1	6	1	12.5	75.0	12.5	8
आंध्र प्रदेश	0	10	13	0	43	57	23
अरूणांचल प्रदेश	1	2	2	20	40	40	5
आसाम	4	2	0	67	33	0	6
बिहार	2	12	3	12	70	18	17
चण्डीगढ़	0	1	0	0	100	0	1
दिल्ली	0	1	0	0	100	0	1
गोवा	0	0	1	0	0	100	1

गुजरात	0	6	13	0	32	68	19
हरियाणा	0	6	6	0	50	50	12
हिमाचल प्रदेश	2	8	0	20	80	0	10
जम्मू एवं कश्मीर	0	0	4	0	0	100	4
कर्नाटक	1	9	10	5	45	50	20
केरल	1	10	10	8	83	90	12
मध्य प्रदेश	0	20	25	0	44	56	45
महाराष्ट्र	0	5	25	0	17	83	30
मणिपुर	0	1	0	0	100	0	1
मेघालय	0	2	0	0	100	0	2
मिजोरम	0	1	0	0	100	0	2
नागालैंड	2	0	0	100	0	0	2
उड़ीसा	11	2	0	85	15	0	13
पांडिचेरी	0	1	0	0	100	0	1
पंजाब	0	7	5	0	58	42	12
राजस्थान	0	23	1	0	96	4	24
सिक्किम	0	0	4	0	0	100	4
तमिलनाडू	4	10	0	29	71	0	14
त्रिपुरा	2	1	0	67	33	0	3
उत्तर प्रदेश	16	34	5	29	61	91	55
पश्चिम बंगाल	0	12	3	0	80	20	15
कुल जनपद	47	192	122	13	53	34	361

स्रोतः टण्डन एवं सेखो (1988)

उष्ण क्षेत्रों में कृषि के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि विनिमेय पोटैशियम की वास्तविक न्यूनतम मात्रा 0.10 मि.तु./100 ग्राम के करीब हो परन्तु मिट्टी और फसल की विभिन्नता के अनुसार यह मात्रा 0.07 मि.तु./100 ग्राम से लेकर 0.20 मि.तु./100 ग्राम के बीच हो सकती है। आमतौर पर सामान्य वृद्धि के लिए विनिमेय पोटैशियम की मात्रा 0.15 मि.तु./100 ग्राम (58.5 कि ग्रा./कि.ग्रा.) से कम होने पर पोटैशियम–उपलब्धि अपर्याप्त समझी जाती है।

दो प्रमुख मृदा इकाइयों तथा विभिन्न गठन वाली मिट्टियों में पोटैशियम की उपलब्ध मात्रा को दृष्टि में रखते हुए पोटैशियम–उर्वरता का वर्गीकरण किया गया है जिसका विवरण सारणी 6.5 में प्रस्तुत है। पोटैशियम–उर्वरता के वर्गीकरण के लिए निर्धारित सीमाओं तथा सारणी 6.6 में आक्सीसाल्स मृदाओं के लिए निधार्रित सीमाओं जो कि मिट्टी में सिल्ट और क्ले की मात्रा पर आधारित है, उनके बीच एक अच्छा सामंजस्य पाया गया है।

सारणी-6.5 नार्मल अमोनियम एसीटेट द्वारा निष्कर्षित पोटैशियम की मात्रा के अनुसार आक्सीसाल्स और अल्टीसाल्स मिट्टियों में पोटैशियम की सम्भावित क्रान्तिक सीमाएं

पोटैशियम स्तर	बालू या साद युक्त बालू	मृदा–गठन दोमट बलुई से लेकर बलुई दोमट	मटियार–दोमट
		मि.तु. पोटैशियम/100 ग्राम	
कमी	0.08 से कम	0.08–0.15	<0.15
निम्न	0.08–0.15	0.16–0.25	<0.25
पर्याप्त	0.16–0.25	0.26–0.35	>0.35
अधिक	>0.25	>0.35	>0.50

स्रोतः तिवारी एवं देव (1992)

विभिन्न पोटैशियम स्तरों का अर्थ

कमी — पोटैशियम के प्रयोग से उपज वृद्धि की निश्चित संभावना।

निम्न — पोटैशियम के प्रयोग से उपज वृद्धि की संभावना, उपज वृद्धि के साथ पोटैशियम की आवश्यकता में वृद्धि।

पर्याप्त — केवल मृदा–उर्वरता बनाये रखने के लिये पोटैशियम का प्रयोग आवश्यक।

अधिक — कुछ वर्षों तक पोटैशियम देने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

सारणी-6.6 आक्सीसाल मिट्टियों में विनिमयशील पोटैशियम का मूल्यांकन

मृदा गठन	अधिक से अत्यधिक कमी	कम से मध्यम कमी	कम कमी या बिना कमी
बलुई मिट्टियाँ (क्ले + सिल्ट) 50%	0.05–0.07	0.07–0.14	0.14
मध्यम गठन वाली मिट्टियां (क्ले+सिल्ट) 15–45%	0.10	0.10–0.20	0.20
भारी गठन वाली मिट्टियां (क्ले+सिल्ट 45%)	0.20	0.20–0.40	0.40

स्रोतः तिवारी एवं देव (1992)

विश्व के विभिन्न उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों की मिट्टियों में पोटैशियम उपलब्धता सम्बन्धी तुलनात्मक आंकड़े जिनका निर्धारण या तो विनिमेय पोटैशियम या धीमी गति से उपलब्ध पोटैशियम की मात्रा के आधार पर किया गया है, सारणी 6.7 में दिये गये हैं। विभिन्न देशों में पोटैशियम के स्तर के वर्गीकरण के लिए प्रयोग में लाई गई मात्राओं में काफी सामन्जस्य प्रतीत होता है।

पौधों के पोषण में पोटैशियम का महत्व

वैसे पोटैशियम पौधों के अन्दर पाए जाने वाले किसी भी जैविक–यौगिक की संरचना में भाग नहीं लेता है फिर भी यह अन्य पोषक तत्वों के अवशोषण तथा पौधों में उनके संचालन के लिए आवश्यक होता है। कोशिका–रस (Cell sap) में उपस्थित पोटैशियम–आयन कोशिका को सुदृढ़ बनाए रखने हेतु आवश्यक परासरणी सांद्रता (Osmotic concentration) बनाए रहता है। यह पौधें में अन्य पोषक तत्वों की गतिशीलता को भी प्रभावित करता है। इसके

सारणी-6.7 भारत, दक्षिण पूर्वी एशिया और चीन जैसे उष्ण क्षेत्रों की मिट्टियों में मिट्टी की जांच के आधार पर पोटैशियम–उर्वरता स्तर का निर्धारण

उपलब्ध पोटैशियम का स्तर	भारत (नार्मल अमोनियम एसिटेट कि.ग्रा. पोटैशियम/हे. =मि.ग्रा. पोटैशिय/ 100 ग्राम मृदा)		दक्षिण पूर्वी एशिया (नार्मल अमोनियम एसिटेट (मि.तु./100 ग्रा.=मि.ग्रा. पोटैशियम/100 ग्रा. मृदा)		चीन (नार्मल अमोनियम एसिटेट) (मि.ग्रा. पोटैशियम आक्साइड/100 ग्रा.= मि.ग्रा. पोटैशियम /100 ग्रा. मृदा)		चीन (उबलता नाइट्रिक अम्ल) (मि.ग्रा. पोटैशियम आक्साइड 100 ग्रा.=मि.ग्रा. पोटैशियम /100ग्रा. मृदा)	
अति निम्न	<110	5	<0.15	<5.9	<4	<3.3	<8	<6.6
निम्न			0.15–0.30	5.9–11.7	4–8.3	3.3–6.8	8–20	6.6–16.6
मध्यम निम्न	110–280	5–17	0.30–0.40	11.7–17.6			20–40	16.6–33
मध्यम					8.3–15	6.9–12.2	40–60	33.50
मध्यम–उच्च							60–90	50.75
उच्च	>280	>17	0.45–0.60	17.6–23.4	15–20	12.5–16.6	90–140	75–116
अति उच्च			>0.60	>23.4	>20	>16.6	>140	>116

साथ ही यह अनेक रोगों तथा हानिकारक कीड़े मकोड़ों से बचने की शक्ति प्रदान करता है। यहीं नहीं, पोटैशियम अनेक शरीर क्रियात्मक, प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अभी तक इस तथ्य की सही पुष्टि नही हो सकी है कि पोटैशियम किस तरह इन प्रक्रियाओं में योगदान करता है। पौधों के जीवन में पोटैशियम द्वारा सम्पन्न होने वाले महत्वपूर्ण कार्यों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

(1) पोटैशियम कार्बोहाइड्रेट तथा न्युक्लिक अम्ल के उपापचय में भाग लेने वाले अनेक इन्जाइम जैसे पाइरूविक काइनेज, फ्रक्टोकाइनेज, फास्फोग्लूको काइनेज, फार्मिलेज और फास्फोन्यूक्लियोटाइड फास्फोरिलेज आदि की क्रियाशीलता को बढ़ा देता है। पन्डलाइ और नागराजन (1973) ने खोपड़े के जल में पाए जाने वाले इन्जाइम कैटालेज पराक्सीडेज तथा पालीफेनाल आक्सीडेज की प्रतिक्रिया और पोटैशियम–सान्द्रता में सम्बन्ध पाया।

(2) पौधों के अन्दर सम्पन्न होने वाली अनेक उपापचन क्रियाओं में पोटैशियम का महत्वपूर्ण योगदान है। इसका उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

पौधों में नाइट्रोजन अथवा प्रोटीन के उपापचय में सहायता करता है। पेप्टाइड के निर्माण में सहायक होने के कारण प्रोटीन–संश्लेषण में इनका योगदान रहता है। पोटैशियम की कमी के कारण प्यूट्रेसिन (NH-CH-CH-CH-NH) तथा अग्नेटाइन जैसे विषैले पदार्थों का निर्माण होता है। जब आर्जिनीन से कार्बोक्सिल समूह अलग हो जाता है तब प्यूट्रेसिन और अग्मेटाइन बनता है। पोटैशियम की कमी से बगीचों की घासों में ऐसपेरिजिन, फ्लेक्स के पौधों में आर्जीनीन तथा अन्य प्रजातियों में लाइसिन, आर्जिनीन, ग्लाइसिन, ल्यूसिन, टाइरोसिन और फेनाइल अलेनिन की अधिकता हो जाती है। पोटैशियम के प्रयोग से दालों में प्रोटीन की मात्रा बढ़ जाती है।

(3) पोटैशियम का प्रकाश–संश्लेषण पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इससे पत्तियों की कार्बनडाई आक्साइड–परिपाचय क्षमता भी बढ़ जाती है। यह जड़ वाली फसलों के स्टार्च तथा शर्करा की मात्रा में वृद्धि करता है। पोटैशियम की कमी से श्वसन–दर भी बढ़ जाती है।

(4) परीक्षणों से पता चला है कि पोटैशियम के प्रयोग से सोयाबीन के दानों में तेल की मात्रा बढ़ जाती है क्योंकि यह वसा पैदा करने वाले एन्जाइम की क्रियाशीलता बढ़ाता है।

(5) एक अत्यन्त गतिशील तत्व होने के कारण यह नए विभज्योतकी ऊतकों (Meristematic Tissues) के कोशिका विभाजन में विशेष सहायक होता है। पोटैशियम की कमी से जड़ों की क्रियाशीलता कम हो जाती है जिससे पौधों के तना–जड़ का आपसी अनुपात प्रायः दुगुना हो जाता है। यह तत्व कोशीय संगठन, विद्युत आवेश संतुलन (Electrical charge balance) तथा जलयोजन एवं पारगम्यता बनाए रखने में मदद करता है। पोटैशियम पौधों में लिग्निन और सैलुलोस की मात्रा में वृद्धि करता है। पोटैशियम गन्ने के रस के गुणों में वृद्धि करता है। पौधों में अवशयन प्रतिरोधिता (Lodging resistance) लाता है। यह तत्व टमाटर के फलों के गुण तथा सुगन्ध में वृद्धि के साथ ही फलों को फटने से बचाता है। यह स्वलेरेनकाइमा (दृढ़ोत्तक) कोशिकाओं को कठोर बनाता है और उपज वृद्धि में सहायक होता है।

(6) पौधों को हानिकारक सूक्ष्म जीवों तथा रोगों से बचने की शक्ति प्रदान करता है। पोटाश के अभाव में धान के पौधे तना सड़न (स्टेमराट) नामक बीमारी से प्रभावित हो जाते हैं। पोटाश के प्रयोग द्वारा मक्के की मृत केन्द्र (डेड हर्ट) नामक बीमारी कुछ हद तक नियंत्रित की जा सकती है।

(7) पोटाश के प्रयोग द्वारा पौधों में सूखा सहन की शक्ति बढ़ जाती है।

(8) इससे भूमि में नाइट्रोजन का यौगिकीकरण कम होता है जिससे नाइट्रोजन की उपलब्धता बढ़ जाती है। पौधों द्वारा नाइट्रोजन उपयोग में पोटाश का योगदान होता है।

(9) यह प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से मिट्टी में पाए जाने वाले जीवाणुओं की क्रियाशीलता को भी प्रभावित करता है। इस प्रकार विभिन्न जैविक क्रियाओं जैसे अमोनीकरण को भी प्रभावित करता है। इस प्रकार विभिन्न जैविक क्रियाओं जैसे अमोनीकरण, नाइट्रीकरण एवं नाइट्रोजन यौगिकीकरण में पोटाश महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

कमी के लक्षण

पौधों में इसकी कमी के लक्षण इस प्रकार हैं:

पोटैशियम की कमी के लक्षण सर्वप्रथम पुरानी पत्तियों पर दिखाई पड़ते हैं जो धीरे–धीरे नई पत्तियों की ओर बढ़ते जाते हैं। पत्तियों के किनारे भुलस से जाते हैं। अधिक कमी होने पर वृक्षों में शीर्षारंभी–क्षय (डाई बैक) नामक रोग उत्पन्न हो जाता है। सर्वप्रथम पत्तियों के किनारों की ओर शिराओं के मध्य भाग में हरिमाहीनता हो जाती है अर्थात् पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं और अन्त में सूख जाती हैं। पोटैशियम के अभाव में प्युट्रेसिन नामक पदार्थ के अधिक मात्रा में एकत्र हो जाने के कारण पत्तियां सूखने लगती हैं। दलहनी फसलों में पत्तियों के किनारों पर सफेद–सफेद दाने से पड़ जाते हैं।

कुछ प्रजातियों में फास्फोरस की भांति पत्तियां गहरी हरी या नीली हरी हो जाती हैं। पत्तियों पर ऊतक क्षयी धब्बे (Necrotic spot) बन जाते हैं। पत्तियों के किनारे भी उत्तक क्षय (Necrosis), पर्ण परिदाह (Leaf scorch) जैसे लक्षण प्रदर्शित करते हैं। पौधों की वृद्धि रूक जाती है। विशेष कमी होने पर शीर्ष तथा पार्श्व कलिकायें मर सकती हैं।

न्युनता रोग

गुच्छ रोग (Rosette)

गाजर, सिलेरी (Cilery) और चुकन्दर में गुच्छे के रूप में झाड़ीनुमा वृद्धि होने लगती है। मटर, अनाज वाली फसलों, आलू आदि में इस प्रकार के लक्षण देखे जाते हैं।

फसलोत्पादन में पोटैशियम का योगदान

फसलों की पोटैशियम आवश्यकता में भिन्नता पाई जाती है जो कि फसलों द्वारा पोटैशियम की उपयोग की गयी मात्रा, मिट्टी में इस तत्व की उपलब्धता, फसल विशेष की पोटैशियम आवश्यकता तथा भूमि के भौतिक रासायनिक और जैविक गुणों पर निर्भर करता है। विभिन्न फसलों की पोटैशियम अवशोषण क्षमता का उल्लेख सारणी में दिए गए आंकड़ों से मिलता है। स्पष्ट है कि सर्वाधिक उपज पर पोटैशियम अवशोषण की न्यूनतम् मात्रा अरहर (55 कि.ग्रा./हे.) तथा अधिकतम (1000 कि.ग्रा./हे.) केले की है। जड़

वाली फसलों जैसे आलू, कसावा आदि की पोटैशियम आवश्यकता बहुत अधिक होती है। अधिकांश पोटैशियम इन फसलों के कन्दों में मौजूद रहता है जो कि आर्थिक उपज के रूप में खेत से हटा कर बिक्री हो जाता है। अतः ऐसी फसलें उगाने से पोटैशियम की कमी होने की सम्भावना रहती है। पोटैशियम के प्रयोग से इन फसलों के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। केला, नींबू और अनानास जैसी फल वाली फसलों की पोटैशियम आवश्यकता बहुत अधिक होती है। इसी प्रकार चारे वाली फसलों तथा गन्ने द्वारा पोटैशियम अवशोषण बहुत अधिक मात्रा में किया जाता है। पौधों की पत्तियों में पोटैशियम की सान्द्रता और उपज के आपसी सहसम्बन्ध का विवरण रेखाचित्र 6.3 में दिया गया है।

60 के दशक में फसलों की अधिक उपज देने वाली जातियों के प्रचलन के बाद भारत के विभिन्न कृषि जलवायु वाले क्षेत्रों में अनुसंधान केन्द्रों तथा कृषकों के खेतों पर अनेक उर्वरक परीक्षण कराए गये। भार्गव एवं सहयोगियों (1985) ने कृषकों के खेतों में किए गये परीक्षणों से प्राप्त परिणामों का आंकलन किया है जिन्हें सारणी 6.9 में दिया गया है। इन परिणामों से स्पष्ट है कि पहले की अपेक्षा बाद के वर्षों में धान और गेहूं की फसल की पोटाश अनुक्रिया में वृद्धि हुई है। जो कि मिट्टी में पोटैशियम की समय के साथ बढ़ती कमी से सम्बन्धित है। फसलों की अधिक उपज देने वाली जातियों के प्रचलन के बाद कृषि उत्पादन में वृद्धि के साथ ही मिट्टी में नाइट्रोजन और फास्फोरस के साथ ही पोटैशियम की उपलब्ध मात्रा में कमी हुई है। फसलों की पोटाश अनुक्रिया को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों का उल्लेख यहां किया जा रहा है।

मिट्टी के गुणों का प्रभाव

साधारणतया लैटेराइट, लाल, लाल–पीली और मिश्रित लाल–काली मिट्टियों में पोटाश के प्रयोग से फसलों की उपज में अन्य मिट्टियों की तुलना में विशेष वृद्धि देखी गयी है। इन परीक्षणों में सिंचित दशा में धान, मक्का, गेहूं और रागी में प्रति हेक्टर 60 कि.ग्रा. की दर से पोटाश का प्रयोग करने पर उपज में सार्थक वृद्धि हुई जो कि हल्के गठन वाली मिट्टियों तथा आर्द्र–दशाओं में अन्य परिस्थितियों की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक रही। उर्वरकों के प्रयोग से उपज में होने वाली कुल वृद्धि में पोटाश का औसत योगदान 15–20 प्रतिशत रहा।
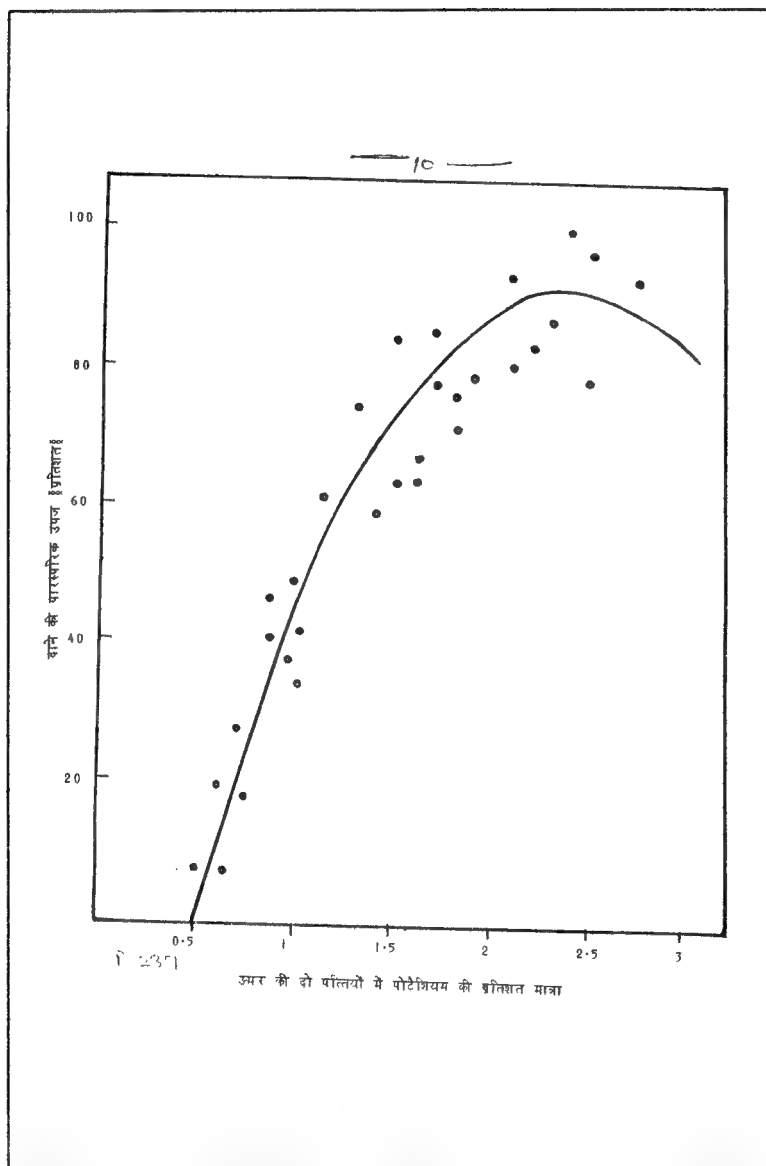
रेखाचित्र-6.3 धान में किल्ले निकलने की अवस्था के अन्त में ऊपर की दो पत्तियों में पोटैशियम की प्रतिशत मात्रा और दाने की पारस्परिक उपज (प्रतिशत) में सम्बन्ध

सारणी-6.9 पोटैशियम के प्रयोग से धान एवं गेहूं की उपज में वृद्धि (1969–1982)

	नाइट्रोजन और फास्फोरस के साथ पोटैशियम (60 कि.ग्रा./हे.) क्षेत्रका प्रभाव (प्रति कि.ग्रा. पोटैशियम से दाने में वृद्धि (कि.ग्रा.)					
	खरीफ धान			गेहूं		
	1969–70 से 1970–71	1975–76 से 1976–77	1977–78 से 1981–82	1969–70 से 1970–71	1974–75 से 1976–77	1977–78 से 1980–81
1	2	3	4	5	6	7
आर्द्र पश्चिमी हिमालय	6.7	–	8.9	4.2	6.5	10.6
आर्द्र पश्चिमी (बंगाल, आसाम)	2.0	4.2	4.4	4.1	–	8.0
आर्द्र पूर्वी हिमालय	5.3	5.8	7.7	–	–	–
उपआर्द्र सतलज गंगा का जलोढ़ मैदान	4.0	3.3	5.8	2.8	2.6	6.5
उपआर्द्र से आर्द्र पूर्वी एवं दक्षिणी पूर्वी क्षेत्र	3.7	3.5	8.2	1.7	4.7	5.9

1	2	3	4	5	6	7
शुष्क पश्चिमी मैदान	1.5	—	5.4	2.2	3.3	5.6
अर्द्धशुष्क ज्वालामुखी की पहाड़ियां एवं मध्यवर्ती उंची भूमि	3.5	8.0	8.9	3.2	2.1	6.0
आर्द्र से अर्द्ध शुष्क पश्चिमी घाट एवं कर्नाटक की पहाड़ियां	5.1	5.3	8.1	3.1	2.3	5.6

स्रोतः भार्गव इत्यादि(1985)

भारत के उत्तरी राज्यों की मिट्टियों में इलाइट खनिज का बाहुल्य होने के बावजूद 20–30 किलोग्राम प्रति हेक्टर की दर से पोटाश का प्रयोग लाभकारी सिद्ध हुआ।

फसलों के वृद्धि–काल की अवस्था में पोटैशियम की अधिक आवश्यकता पड़ती है। वृद्धि–काल से लेकर फूल आने की अवधि तक पोटैशियम की आवश्यकता बढ़ती जाती है।

फसल प्रबन्ध के अनुसार पोटैशियम की आवश्यकता में अन्तर पाया जाता है, प्रमुख फसल प्रबन्ध कारकों के प्रभाव का वर्णन यहां किया जा रहा है।

उपज स्तर

फसलों के उपज स्तर में वृद्धि के साथ ही पोटैशियम का अवशोषण भी बढ़ जाता है। अनवरत् खाद्यान्न उत्पादन लक्ष्य में वृद्धि के साथ ही पोटैशियम की अवशोषित की जाने वाली मात्रा में काफी वृद्धि हो जाती है जैसा कि रेखाचित्र 6.4 में दर्शाया गया है।

संकर या अधिक उपज देने वाली फसलें

अधिक उपज देने वाली जातियों का उत्पादन स्तर उच्च्य होने के कारण पोटैशियम आवश्यकता अधिक होती है। मिट्टी में पोटैशियम की कमी होने पर अधिक उपज देने वाली जातियों का उत्पादन विशेष रूप से प्रभावित होता है। परीक्षणों से प्राप्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि धान की अधिक उपज देने वाली तथा देशी जातियों की उपज में पोटैशियम के प्रयोग से फलस्वरूप होने वाली सापेक्ष वृद्धि में काफी अन्तर पाया जाता है। एक ही फसल की विभिन्न जातियों की पोटैशियम अवशोषण क्षमता में काफी अन्तर पाया जाता है जो कि रेखाचित्र 6.4 से स्पष्ट हो जाता है।

पोषक-तत्वों की अन्योन्य क्रिया

नाइट्रोजन और फास्फोरस का समुचित प्रयोग करने पर फसल की पोटैशियम आवश्यकता बढ़ जाती है किन्तु यदि मिट्टी में फास्फोरस या अन्य पोषक–तत्वों की कमी पौधों की वृद्धि के लिए बाधक सिद्ध हो रही हो तो ऐसी दशा में उर्वरक रूप में पोटैशियम के प्रयोग से वांछित लाभ नहीं मिल
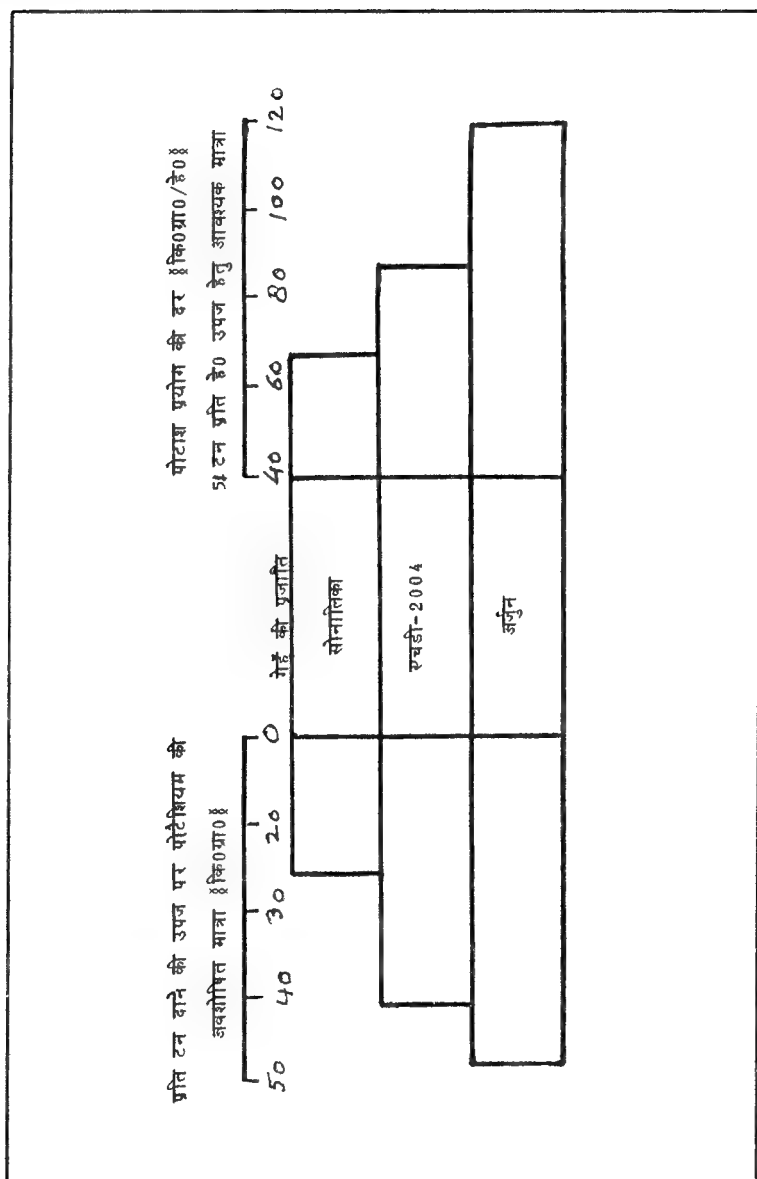
रेखाचित्र-6.4 प्रति टन दाने की उपज पर गेहूं की विभिन्न प्रजातियों द्वारा पोटैशियम की अवशोषित मात्रा (आंकड़ा स्रोत–रेड्डी इत्यादि 1986)

पाता। अतः अधिकतम उपज प्राप्त करने हेतु अन्य पोषक–तत्वों, जिनकी मिट्टी में कमी हो, पूर्ति कर देने पर फसल की पोटैशियम आवश्यकता में भी वृद्धि हो जाती है। रेखाचित्र 6.5 में प्रदर्शित आंकड़ों से स्पष्ट है कि नाइट्रोजन का कम मात्रा में प्रयोग करने पर पोटैशियम के प्रयोग से धान की उपज में विशेष वृद्धि नहीं होती है। परन्तु नाइट्रोजन का उचित मात्रा में प्रयोग करने पर पोटैशियम के प्रयोग से उपज में सर्वाधिक वृद्धि होती है।

इसी प्रकार मिट्टी में जिंक की कमी होने पर पोटैशियम के प्रयोग से तब तक कोई खास लाभ नहीं हो पाता जब तक जिंक की कमी दूर करने के उपाय न किए जायें। रेखाचित्र 6.8 एवं 6.9 में प्रदर्शित आंकड़ों से इस कथन की पुष्टि होती है।

फसल सघनता

बहु–फसली कृषि प्रणाली में पोटैशियम का अवशोषण अधिक मात्रा में होता है। सारणी 6.10 में दिए गये आंकड़ों से स्पष्ट है कि दो–फसली चक्र की तुलना में तीन फसल चक्र में पोटैशियम का अवशोषण अधिक हुआ। ऐसा देखा गया है कि बहु–फसली कृषि प्रणाली में पोटैशियम की आवश्यक मात्रा की पूर्ति उर्वरक पोटैशियम द्वारा सम्भव नहीं हो पाती। यही कारण है कि कुछ मिट्टियां कुछ समय तक फसलों की पोटाश आवश्यकता की पूर्ति करने में सक्षम रहती है परन्तु अधिक उपज लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पर्याप्त मात्रा में पोटाश का प्रयोग आवश्यक हो जाता है।

भारत जैसे विकासशील देश में मिलवां कृषि प्रणाली का काफी प्रचलन है। मक्का में उर्द/मूंग की खेती या बाजरा/ज्वार के साथ अरहर/उर्द/मूंग की खेती करने पर पोटैशियम का अवशोषण शुद्ध फसलों की तुलना में अधिक होता है। अतः फसल प्रणाली के अनुसार पोटैशियम की पूर्ति पर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है।

फसल अपशिष्टों का उपयोग

यदि फसल अपशिष्ट खेत में डालकर सड़ा–गला दिए जायें तो ऐसा करने पर काफी पोटैशियम लौटकर मिट्टी में आ जाता है जो कि फसल की पोटैशियम आवश्यकता की पूर्ति करने में सहायक होता है। धान, मक्का जैसी फसलों के अपशिष्ट पोटैशियम के महत्वपूर्ण स्रोत माने जाते हैं। इन फसलों

3261 HRD/2000—17
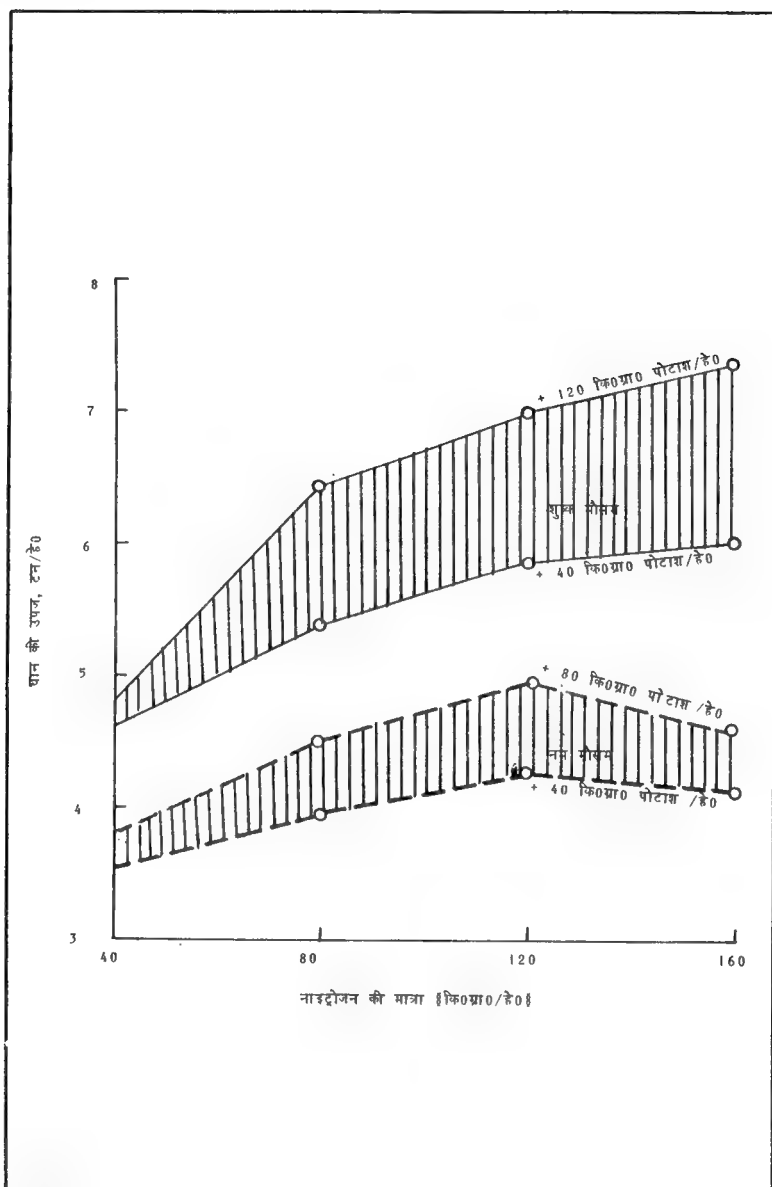
रेखाचित्र-6.5 नाइट्रोजन–पोटाश की अन्तर्क्रिया का धान की उपज पर शुष्क और आर्द्र मौसम में प्रभाव (स्रोत : टंडन एवं सेखों 1988)

द्वारा अवशोषित पोटैशियम की कुल मात्रा का 80 प्रतिशत इन अपशिष्टों में पाया जाता है। दाने के साथ ही इन अपशिष्टों को खेत से हटा देने पर काफी मात्रा में पोटैशियम का छीजन हो जाता है।

सारणी-6.10 सघन कृषि प्रणाली में विभिन्न फसलों द्वारा पोषक तत्वों का अवशोषण

फसल चक्र	फसल	उपज (कु./हे.)	पोषक तत्वों का अवशोषण (कि.ग्रा./हे.)		
			नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटैशियम
तीन फसली चक्र	मक्का	34.1	132	10	108
	गेहूं	38.6	111	11	98
	मूँग	9.4	63	6	26
	योग	82.1	306	27	232
	धान	67.8	176	16	189
	गेहूं	36.3	92	9	92
	मूंग	7.4	60	5	24
	योग	111.5	328	30	305
दो फसली चक्र	मक्का	33.9	147	21	140
	गेहूं	42.1	100	16	113
	योग	76.0	247	37	253
	धान	50	80	18	100
	गेहूं	38	155	22	180
	योग	88	235	40	280

स्रोतः भारद्वाज आर.वी.एल. एवं टण्डन एच.एल.एस. (1981) फर्टिलाइजर न्यूज 26 (9) : 23–32

मिट्टी के उपलब्ध पोटैशियम स्तर का प्रभाव

मिट्टी में उपलब्ध पोटैशियम की मात्रा का पोटैशियम के प्रयोग द्वारा फसलों की उपज में होने वाली वृद्धि पर सीधा प्रभाव पड़ता है। मिट्टी में उपलब्ध पोटैशियम की मात्रा कम होने पर पोटैशियम के प्रयोग से अधिक वृद्धि देखी जाती है। इसके विपरीत पोटैशियम की उपलब्ध मात्रा अधिक होने पर पोटैशियम द्वारा उपज में होने वाली वृद्धि या तो नही के बराबर या बहुत कम होती है। सम्बन्धित आंकड़े रेखाचित्र 6.6 में प्रदर्शित किए गये हैं। रेखाचित्र 6.6 से स्पष्ट है कि मिट्टी का उपलब्ध पोटैशियम स्तर निम्न या मध्यम होने पर पोटैशियम के प्रयोग द्वारा उपज में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

फसलों की पोटैशियम अनुक्रिया में विभिन्नता

तिवारी एवं निगम (1980–85) ने कानपुर में विभिन्न फसलों की पोटैशियम अनुक्रिया सम्बन्धी अध्ययन किया। इस अध्ययन से पता चला है कि दलहनी, तिलहनी, अनाज वाली तथा चारे वाली फसलों की उपज में पोटैशियम के प्रयोग से सार्थक वृद्धि हुई। फसलों की पोटैशियम आवश्यकता में अन्तर पाया गया और यह अन्तर पोटैशियम के विभिन्न दैहिक क्रियाओं में योगदान से सम्बन्धित पाया गया। यदि चारे जैसी फसलों की कटाई फसल पकने के पूर्व की जाती है तो प्रति इकाई शुष्क पदार्थ पर पोटैशियम की आवश्यकता काफी होती है इसके विपरीत फसल पकने पर कटाई करने पर प्रति इकाई शुष्क पदार्थ पर पोटैशियम की आवश्यकता कम हो जाती है।

उर्वरकों की प्रयुक्त मात्रा

ऐसा देखा गया है कि नाइट्रोजन और फास्फोरस का अधिक मात्रा में प्रयोग करने पर फसल की पोटाश अनुक्रिया में भी वृद्धि हो जाती है। सघन कृषि वाले क्षेत्रों में जहां अधिक उपज देने वाली जातियों का पूरी तरह प्रचलन हो गया है तथा नाइट्रोजन और फास्फोरस का भी समुचित मात्रा में प्रयोग हो रहा है वहां पोटैशियम के प्रयोग से फसलों की उपज में सार्थक वृद्धि होने के प्रमाण मिले हैं।

पोटैशियम का फसलों की गुणवत्ता पर प्रभाव

पोटैशियम के प्रयोग द्वारा फसलों की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार होता है। दानों का वजन बढ़ जाता है और यह चमकीले दिखायी देते हैं।
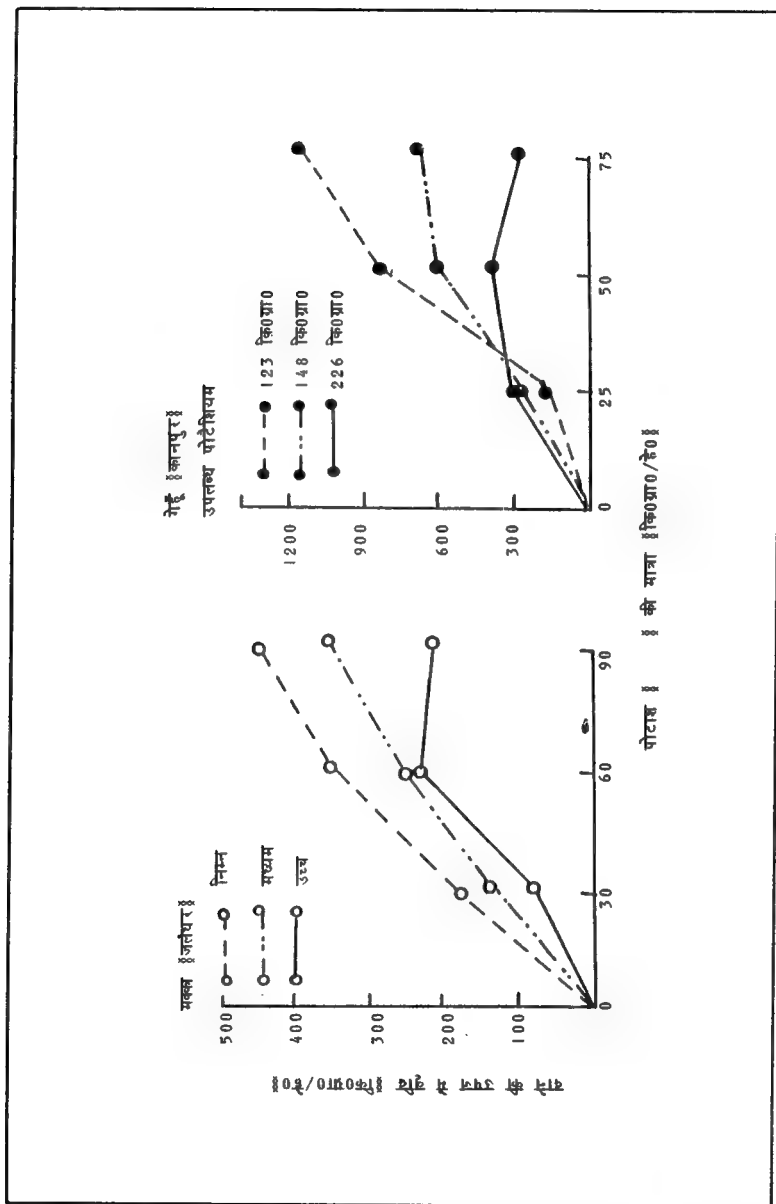
रेखाचित्र-6.6 मिट्टी में उपलब्ध पोटैशियम की मात्रा में विभिन्नता का पोटाश द्वारा मक्का और गेहूं की उपज में वृद्धि पर प्रभाव
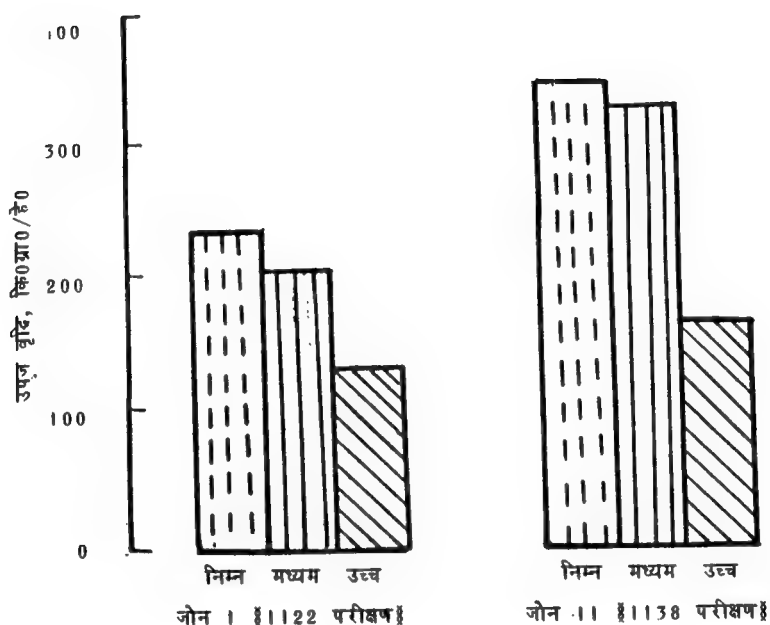
रेखाचित्र-6.7 विभिन्न पोटैशियम उर्वरता स्तर वाली मिट्टियों में 60 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर की दर से पोटाश के प्रयोग से गेहूं की उपज में वृद्धि

आलू में शर्करा तथा एस्कार्बिक अम्ल की मात्रा में सार्थक वृद्धि होती है। केले जैसे फलदार वृक्षों में छीमियों की संख्या और घौत के भार में वृद्धि होने के साथ घुलनशील लवणों की मात्रा अम्लता और एस्कार्बिक अम्ल की मात्रा में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। आलू की उपज और संगठन पर पोटाश के प्रभाव सम्बन्धी आकड़े सारणी 6.11 तथा केले की उपज और गुणवत्ता पर प्रभाव सम्बन्धी आंकड़े सारणी 6.12 में दिए गये हैं।

सारणी-6.11 पोटाश का आलू की उपज और संगठन पर प्रभाव

विवरण	नियन्त्रित (बिना पोटाश)	+ पोटाश
आलू की उपज (टन/हे.)	23.9	27.4
पोटैशियम अवशोषण (कि.ग्रा./हे.)	106	126
स्टार्च (प्रतिशत)	16.3	16.0
कुल शर्करा (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	1105	1301
अवकृत शर्करा (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	281	355
एस्कार्बिक अम्ल (मि.ग्रा./100 ग्रा.)	17.0	19.3

स्रोतः शर्मा इत्यादि (1976) इन्डियन जर्नल ऑफ एग्रोनामी 25, 49–59

सारणी-6.12 पोटाश का केले की उपज और गुणवत्ता पर प्रभाव

पोटाश	प्रयोग की दर	उपज और फल			गुण की मात्रा		
		उपज (टन/हे.)	छीमियों की संख्या	घौद का भार (कि.ग्रा.)	कुल घुलनशील लवण	अम्लता %	एस्कार्बिक अम्ल (मि.ग्रा./100 ग्रा.)
Ko	नियंत्रित	11.25	98.9	8.6	24.4	0.46	62.2
K2	(100) 100	13.65	99.5	10.5	25.6	0.50	78.2
K4	(200) 200	16.25	108.4	12.5	27.5	0.53	92.9
K6	(300) 300	18.98	122.7	14.6	29.0	0.51	108.6
K7	(400) 400	17.94	118.3	13.8	29.8	0.48	93.2
क्रान्तिक अन्तर 5%		1.97	2.7	0.3	1.6	0.02	13.4

स्रोतः मुस्तफा एम.एम. (1988) जर्नल ऑफ पोटैशियम रिसर्च 4 (2) : 75–79

कीट-व्याधियों के प्रकोप में कमी

पोटैशियम पौधों को हानिकारक सूक्ष्मजीवों और रोगों से बचाने की शक्ति प्रदान करता है। परीक्षणों से पता चला है कि पोटैशियम की कमी के कारण धान तना सड़न (स्टेमराट) बीमारी से विशेष रूप से प्रभावित होते हैं। पोटाश के प्रयोग द्वारा मक्के के मृत केन्द्र (डेड हर्ट) नामक बीमारी कुछ हद तक नियन्त्रित की जा सकती है। पोटैशियम के प्रयोग से धान में कीड़ों के प्रकोप में कमी की पुष्टि सारणी 6.13 में दिए गये आंकड़ों से हो जाती है।

सारणी-6.13 पोटाश का धान में कीड़ों के प्रकोप पर प्रभाव

पोटाश प्रयोग दर (कि.ग्रा./हे.)	थ्रिप्स/प्रति पत्ती	हल मैगट (सं.)	लीफ रोलर प्रतिशत
0	40	12	12
50	27	10	11
100	22	8	11

स्रोतः सुब्रामणियम एवं बाला सुब्रामणियम (1977) इन्डियन पोटाश जर्नल 2 (2) : 22–24

पौधों को मृदा-पोटैशियम से उपलब्ध होने वाली मात्रा को प्रभावित करने वाले कारक

मृदा और जलवायु से सम्बन्धित विभिन्न परिस्थितियों जो मिट्टी में पोटैशियम की उपलब्धता को प्रभावित करती हैं, उनका उल्लेख यहां किया जा रहा है:

नीक्षालन

अच्छे जल निकास वाले शीतोष्ण नम क्षेत्रों में जहां वर्षा प्रायः अधिक होती है, वहां नीक्षालन द्वारा पोटैशियम के हानि की समस्या बनी रहती है। ऐसी मिट्टियों जिनकी धनायन विनिमय क्षमता बहुत कम होती है वहां तो नीक्षालन द्वारा पोटैशियम के हानि की संभावना और भी बढ़ जाती है।

पौधों द्वारा पोटैशियम का अवशोषण होते रहने से नीक्षालन द्वारा होने वाली हानि काफी कम हो जाती है। स्वस्थ, अच्छी तरह पोषित पौधों की ओजयुक्त पूर्ण विकसित जड़–प्रणाली, जड़–क्षेत्र से पोटैशियम की गतिशीलता को रोककर उसके संचय में सहायता करती है।

क्ले खनिजों की मात्रा और प्रकार

सघन मृदा–अपक्षय के दरम्यान अपक्षय योग्य प्रमुख खनिजों जिनमें पोटाश–युक्त सिलिकेट खनिज भी सम्मिलित हैं, की हानि हो जाती है जिससे मिट्टी के क्ले अंश में विभिन्न विद्युत आवेश वाले कम सक्रिय घटक शेष रह जाते हैं। नम शीतोष्ण क्षेत्रों की मिट्टियों के महीन क्ले अंश में केओलिनाइट जैसे गौण सिलिकेट तथा विभिन्न मात्रा में मुक्त मणिभीय आक्साइड और **amorphous** सामग्रियों की बाहुल्यता होती है।

मिट्टी में मौजूद क्ले खनिजों की मात्रा और प्रकार का प्रभाव विनिमेय पोटैशियम को मिट्टी में धारण किये रहने की क्षमता और उसे बांधकर रखने की शक्ति पर पड़ता है। ये मृदीय गुण मृदा–विलयन में उपस्थित पोटैशियम की मात्रा और पर्याप्त मात्रा में पोटैशियम की आपूर्ति जिससे पौधों के सही पोषण हेतु आवश्यक मात्रा में पोटैशियम प्राप्त हो सके, को नियंत्रित करते हैं। बलुई मिट्टियों और केओलिनाइट खनिज युक्त मिट्टियों में संभवतः प्रारम्भ में मृदा विलयन में पोटैशियम की अधिक मात्रा हो सकती है किन्तु फसल लेने के बाद उनमें पोटैशियम की यह मात्रा बनी रहे, ऐसा संभव नहीं। अधिक क्ले वाली मिट्टियों में प्रारंभ में मृदा–विलयन में पोटैशियम की मात्रा कम अवश्य होती है परन्तु यह मात्रा काफी समय तक एक समान बनी रहती है।

क्ले के संगठन का मृदा–विलयन में पोटैशियम और विनिमेय पोटैशियम की मात्रा पर प्रभाव पड़ेगा। माइका युक्त इलाइट प्रकार के क्ले की उपस्थिति में विनिमेय पोटैशियम की मात्रा अधिक होती है किन्तु इनके विलयन में पोटैशियम की मात्रा केओलिनाइट प्रकार के क्ले वाली मिट्टियों की तुलना में कम होती है।

मृदा-पी एच मान और चूने का प्रयोग

उष्ण तथा उपउष्ण क्षेत्रों में मृदा अम्लता को कम करने के उद्देश्य से चूने का प्रयोग किया जाता है। परिणामस्वरूप अल्युमिनियम और मैगनीज की विषालुता कम हो जाती है जिसका सीधा प्रभाव पोटैशियम की उपलब्धता पर पड़ता है। अल्युमिनियम और मैगनीज की विषालुता कम हो जाने के कारण फसल जहां एक ओर इसके अन्यथा कुप्रभाव से बच जाती है वहीं दूसरी ओर पोटैशियम के अवशोषण पर इन आयनों के हानिकारक में भी काफी कमी आ जाती है। अन्ततः स्वस्थ जड़–प्रणाली के माध्यम से फसलें पोटैशियम का अवशोषण विशेष कुशलतापूर्वक करने लगती हैं। मिट्टी के पीएच–मान में वृद्धि हो जाने से फलस्वरूप ऐसी मिट्टियों, जिसमें पर्याप्त मात्रा में पीएच–आधारित सतह आवेशित खनिज पाये जाते हैं, उनकी धनायन विनिमय क्षमता के कारण मिट्टी की पोटैशियम–धारण क्षमता बढ़ जाती है। जिससे मृदा–विलयन से पोटैशियम दोहन अधिक होता है और नीक्षालन द्वारा होने वाली पोटैशियम की हानि कम हो जाती है।

अधिक मात्रा में चूने का इस्तेमाल करने पर पौधों को अधिक मात्रा में कैल्शियम प्राप्त होने लगता है जिससे जड़ों का विकास और उनकी सक्रियता में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। जड़–तंत्र पर उपस्थित कैल्शियम पौधों द्वारा पोटैशियम के अवशोषण में बाधा पहुंचता है। चूने के प्रयोग के फलस्वरूप पोटैशियम चयनित अधिशोषण साइटों/स्थानों पर बंध जाता है। यह स्थान पहले हाइड्राक्सी अल्युमिनियम धनायनों का हुआ करता था।

यदि ऐसी दशा में पोटाशधारी उर्वरकों का प्रयोग न किया जाय तो मृदा–विलयन में पोटैशियम की मात्रा काफी कम हो सकती है जिससे पौधे कुछ समय तक पोटैशियम का अभाव महसूस कर सकते हैं, दीर्घकालिक लाभ के लिए यह आवश्यक होगा कि पोटाशधारी उर्वरकों का प्रयोग करके विनिमेय पोटैशियम की मात्रा में वृद्धि की जाय क्योंकि इस रूप में मौजूद पोटैशियम का उपयोग पौधे कर सकते है, साथ ही नीक्षालन द्वारा इसकी हानि नहीं हो पाती।

मृदा संरचना और जल की मात्रा

जल एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से पौधे आवश्यक पोषक तत्वों का अवशोषण करते हैं तथा पोटैशियम एवं अन्य पोषक तत्वों को जड़ों तक

पहुचाते हैं, सूखी मिट्‌टी में जल का अभाव होने के कारण पौधों तक कम मात्रा में पोटैशियम पहुंच पाता है। जल की मात्रा कम होने के कारण फसल की उत्स्वेदन आवश्यकता भी पूरी नहीं हो पाती। कम नमी की दशाओं में मृदा–कणों के चारों तरफ पानी की फिल्म बहुत पतली रहती है तथा यह एकसार नहीं होती जिससे जड़ों तक पोटैशियम का पहुंचना अत्यन्त दुष्कर हो जाता है। इससे विसरण द्वारा जड़ों तक पोटैशियम के पहुंचने की गति बहुत धीमी पड़ जाती है। मृदा–विलयन में पोटैशियम की अधिक सान्द्रता सूखी मिट्‌टी में फसलों की पोटैशियम आपूर्ति में सहायक होती है।

मृदा-तापक्रम

मृदा–तापक्रम का पोटैशियम की उपब्धता और गतिशीलता पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

पोटैशियम के विसरण की दर बहुत हद तक तापक्रम आधारित होती है। उदाहरण के लिए, मृदा–तापक्रम 15 से बढ़ाकर 29 से.ग्रे. कर देने पर भूमि में मौजूद तथा उर्वरक द्वारा प्रयोग किये गये दोनों ही प्रकार के पोटैशियम की विसरण–दर में अच्छी खासी वृद्धि देखी गयी। तापक्रम मृदा खनिजों के विवरण को भी प्रभावित करता है। कम तापक्रम वाले ठंडे क्षेत्रों की तुलना में अधिक नमी और अधिक तापक्रम की दशा जो सामान्यतया उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में पायी जाती है, "संचित" या "अनुपलब्ध" पोटैशियम के माध्यम से पोटैशियम की पूर्ति अपेक्षाकृत बहुत अधिक मात्रा में होती है। व्यावहारिक रूप में इसका तात्पर्य यह है कि जहां तापक्रम कम होता है वहां पौधे साधारणतया "उपलब्ध" या "विनिमेय" पोटैशियम पर ऊष्ण क्षेत्रों की तुलना में अधिक निर्भर रहते हैं।

पोटैशियम अवशोषण की दृष्टि से अधिकांश पौधों के लिए 25 से 32 से.ग्रे. के मध्य का तापक्रम सबसे उपयुक्त माना जाता है। इससे अधिक या कम तापक्रम की दशा में पोटैशियम–अवशोषण की दर घट जाती है।

जलमग्न मृदाओं में पोटैशियम

प्रारम्भ में जल मग्न दशाओं में पोटैशियम की उपलब्धता बढ़ जाती है क्योंकि इसका पोषक तत्वों की गतिशीलता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। मिट्‌टी में पोटैशियम की उपलब्धता बढ़ने से धान के पौधों द्वारा पोटैशियम

का अधिकम मात्रा में अवशोषण होता है जिससे मृदा–पोटैशियम के तेजी से क्षीजन की संभावना बढ़ जाती है। धान की अधिक उपज देने वाली आधुनिक जातियों के साथ पोटैशियम का क्षीजन अधिक तेजी से होता है।

जलमग्न मिट्टियों में अवायवीय सड़ाव के कारण हाइड्रोजन सल्फाइड, ब्युटाइरिक अम्ल तथा अन्य पदार्थ तैयार होकर एकत्रित होने लगते हैं। इन पदार्थों का पौधों द्वारा श्वसन की क्रिया पर कुप्रभाव पड़ता है जिससे अन्ततः पोटैशियम जैसे पोषक तत्वों का अवशोषण बाधित होता है।

धान की स्वस्थ जड़ों की आक्सीकरण–शक्ति काफी अधिक होती है जो कि जड़ों की सतह पर मौजूद घुलनशील लोहे (Fe^{2+}) को अवक्षेपित करके अघुलनशील लोहे (FE^{3+}) के रूप में परिवर्तित कर देता है। पोटैशियम की कमी की दशाओं में धान की जड़ों की आक्सीकरण क्षमता कम हो जाती है और पौधे लोहे की विषाक्तता की समस्या से ग्रसित हो जाते हैं क्योंकि अब वे घुलनशील लोहे को अघुलनशील रूप में परिवर्तित करने में अपने को असमर्थ पाते हैं।

भारतीय कृषि में पोटैशियम का भविष्य

भारत में वर्ष 1989–90 में फसलों द्वारा पोटैशियम का कुल निष्कासन 124 लाख टन हुआ इसके विपरीत पोटैशियम का उपयोग बहुत ही कम अर्थात् 11 लाख टन हुआ। अतः फसलों द्वारा पोटैशियम की निष्कासित मात्रा और उर्वरकों से पोटैशियम की खपत में काफी अन्तर है। सारणी 6.14 में दिये आंकड़ों से पुनः यह पता चलता है कि फसलों द्वारा पोटैशियम के अवशोषण और उर्वरकों के माध्यम से होने वाली पूर्ति का अन्तर आगे आने वाले वर्षों में और बढ़ेगा। ऐसा अनुमान है कि वर्ष 2000 तक फसलों द्वारा पोटैशियम का अवशोषण 165 लाख टन हो जायेगा और उर्वरकों के माध्यम से पोटैशियम की पूर्ति 16 लाख टन हो पायेगी। उल्लेखनीय है कि भूमि में पोटैशियम की कमी होने पर फसलों की पोटैशियम आवश्यकता की पूर्ति के लिए बहुत अधिक मात्रा में पोटाशधारी उर्वरकों का प्रयोग करना पड़ेगा क्योंकि मिट्टी के अविनिमेय पोटैशियम पूल का ह्रास हो जाने पर मिट्टी की पोटैशियम योगिकीकरण क्षमता काफी बढ़ जाती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि यथासम्भव जैविक खादों फसल अपशिष्टों तथा उर्वरकों के माध्यम से पोटैशियम की पूर्ति होती रहे जिससे मिट्टी की पोटैशियम उर्वरता बनी रहे और उसका कृषि उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

सारणी-6.14 भारतीय कृषि में फसलों द्वारा पोटैशियम का भूमि से अनुमानित निष्कासन

वर्ष	लाख टन पोटाश			
	खाद्यान्न	अन्य फसलें	योग	उर्वरकों के माध्यम से पोटाश की खपत
1960–61	37	14	51	0.29
1970–71	50	15	65	2.36
1980–81	67	32	99	6.24
1984–85	70	33	103	8.38
1989–90	84	40	124	11.0
1994–95	96	45	141	15.0
1999–2000	112	53	165	16.0

संदर्भ-साहित्य

Agarwal, R.R. (1960). Soils and Fertilizers, Common wealth Bureau of Agriculture, U.K. **23** : 375.

Ahrens, L.H. (1965). Distribution of elements in our planet, MC Graw Hill, New York pp. 110.

Arnold, P.W. (1960). *J. Sci. Food Agr.* **11** : 285-292.

Barth, T.F.W. (1969). Feldspars, Wiley Inter-Science, New York.

Bassett, W.A. (1960). Role of hydroxyl orientation in mica alteration. *Bull. Geol. Soc. Am.* **17** : 449-456.

Bhardwaj, R.B.L. & Tandon, H.L.S. (1981). *Fert. News* **26** (9), 23-32.

Bhargav, P.N. et al. (1985). *J. Potassium Res.* 1 : 45-61.

Bhatnagar, R.K., Nathani, G.P., Chauhan, S.S. & Sethi, S.P. (1973). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **21** (4) : 429-432.

Chaudhuri, J.S. & Pareek, B.L. (1976). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **24** : 57-61.

Correns, C.W. (1961). The experimental chemical weathering of silicates Clay Minerals. *Bull.* **4** : 249-265.

Datta, N.P. & Kalbande, A.R. (1963). Release of K in different Indian soils at different moisture and temperature levels. Proc. Seminar on Potash. Deptt. of Agri. M.S.P. 34-42.

Ekambaram, S. (1973). Studies on the distribution of potassium and its influence on the yield and uptake of nutrients by ragi Co. 7. M.Sc. (Ag) Thesis. Tamil Nadu Agril. Univ. Coimbatore.

Garrels, R.M. & Howard, R. (1959). Clay and clay minerals, **6** : 68-76.

Ghosh, A.B. & Hasan, R. (1976). Potassium in soils, crops and fertilizers. *Bull. Indian Soc. Soil Sci.* **10** : 1-5.

Ghosh, G. & Ghosh, S.K. (1976). Ibid 10, 6-12.

Godse, N.G. & Gopala Krishnappa, S. (1976). Potassium in soils, crops and fertilizers. *Bull. Indian Soc. Soil Sci.* **10** : 52-55.

Grewal, J.S. & Kanwar, J.S. (1966). *J. Indian Soc. Soil. Sci.* **14** : 63-67.

Jackson, M.L. & Sherman, G.D. (1953). Adv. Agron. **5** : 219-318.

Joshi, K.V., Bindu, K.J. & Hasabnis, M.N. (1960). Sugarcane Soils of Gujarat. A brief note on Sugarcane soils of Bardoli trast. Proc. D.S.T.A. 17th Conv. **1** : 207-222.

Kadrekar, S.B. & Kibe, M.M. (1972). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **20** (3) : 231-240.

Krishnamoorthy, K.K., Mathur, K.K. & Mahalingam, P.K. (1976). Potassium in soils, crops and fertilizers. *Bull. Indian Soc. Soil Sci.* **10** : 38-41.

Lodha, B.K. & Seth, S.P. (1970). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **18** (2) : 121-128.

Marshall, C.E. (1964). The physical Chemistry and Mineralogy of soils, Vol. I. Soil Materials, John Wiley and Sons, New York, pp. 388.

Mehrotra, C.L., Singh, G. & Pandey, R.K. (1973). *J. Indian Soc. Soil. Sci.* **21** : 421-427.

Mishra, B., Tripathi, B.R. & Chauhan, R.P.S. (1970). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **18** : 21-26.

Mishra, R.V. & Shankar, H. (1970). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **18** : 317-319.

Mustafa, M.M. (1988). *J. Potassium Res.* **4** (2) : 75-79.

Nagarama Murty, G., Rahiman, M.A. & Narsimhan, R.L. (1976). Potassium in soils, crops and fertilizers. *Bull. Indian Soc. Soil Sci.* **10** : 46-51.

Nash, V.E. & Marshall. C.E. (1957). *Soil Sci. Soc. Am. Proc.* **21** : 149-153.

Pareek, B.L. Sethi, S.P. & Joshi, D.C. (1972). Potash News Letter. **7** (4) : 16-21.

Patil, A.J., Kale, S.P. & Shingte, A.K. (1976). Potassium in soils, crops and fertilizers. *Bull. Indian Soc. Soil Sci.* **10** : 132-137.

Rajakannu, K., Balasundaram, C.S., Lakshminarasimhan, Rangaswamy, P. & Malathi Devi, S. (1970). *Madras Agr. J.* **57** : 77-79.

Rich, C.I. (1968). Mineralogy of soil potassium. In the Role of Potassium in Agriculture, *Am. Soc. Agron. Madison, Wis.* pp. 509.

Rich, C.I. (1972). Potassium in Soils. 9th colloquium Intr. Potash Inst. 15-31.

Rassmussen, K. (1972). Potassium in soils, 9th Colloquium Int. Potash Inst., 57-60.

Reddy, K.C.K. et al. (1986). Soil test based fertilizer prescriptions for yield targets of crops. Extension Bulletin. All India coordinated Project on Soil Test Crop Response Correlation Studies, Hyderabad pp. 106.

Sarma, V.A.K. (1976). Potassium in soils, crops and fertilizers. *Bull. Indian Soc. Soil Sci.* **10** : 66-77.

Schroeder, D. (1972). Bodenkunde, in stchworten, Hirt-Verlag Kiel, 2nd ed.

Sharma, R.C. et al. (1976). *Indian J. Agron.* **25** : 49-59.

Singh, B. & Ram, P. (1976). Ibid., **10** : 129-131.

Singh, Bijay & Sekhon, G.S. (1977). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **25** : 394-397.

Subarmaniam, R. & Balasubramanian, M. (1977) *Indian Potash J.* **2** (2) 22-24.

Tandon, H.L.S. (1980). *Fert. News* **25** (10) : 45-78.

Tandon, H.L.S. & Sekhon. G.S. 1988). Potassium Research and Agricultural Production in Indian fertilizer Development and Consultation Organisation, New Delhi.

Tiwari, K.N. & Nigam, Vandana (1980-85). Annual Reports : Potassium in soils and crop response to potassium application in Uttar Pradesh, CSAUAT, Kanpur.

Tiwari, K.N. & Dev. G. (1992). Potash—Its need and use in modern agriculture (Hindi Translation) PPIC India.

Venkatasubbiah, V., Venkateswarlu, J. & Sastry, K.K. (1976). Ibid., **10** : 219-226.

Verma, O.P. & Verma, G.P. (1968). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **16** : 61-64.

Zende, G.K. (1978). Proc. internat. Symp. Potassium in soil and crops. Potash Res. Instt. of India, New Delhi pp. 52-68.

Zende, G.K. & Chinchorkar (1963). Potassium status of sugarcane soils of Maharashtra state. Proc. Seminar on Potash held at Pune. Dept of Agri. Maharashtra state, **1** : 57-67.

अध्याय-7

कैल्शियम, मैग्नीशियम और गंधक

कैल्शियम

कैल्शियम पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की श्रेणी में आता है। इसका महत्व अम्लीय तथा क्षारीय मिट्टियों में विशेष अनुभव किया जाता है। उदासीन अथवा कम क्षारीय मिट्टियों में इसकी मात्रा सामान्य पायी जाती है। अम्लीय मिट्टियों के सुधार हेतु चूने के प्रयोग की संस्तुति की जाती है। चूने के प्रयोग से इन मिट्टियों का आंशिक सुधार मात्र कैल्शियम की पूर्ति तथा लौह, मैगनीज और अल्युमिनियम आदि तत्वों की आपेक्षिक मात्राओं में संतुलन स्थापित हो जाने से हो जाता है। उल्लेखनीय है कि अम्लीय मिट्टियों में लौह, अल्युमिनियम तथा मैंगनीज विषाक्त मात्रा में मौजूद रहते हैं, परन्तु चूने के प्रयोग से मिट्टी में कैल्शियम की उपलब्ध मात्रा में वृद्धि होने के साथ ही विषाक्त मात्रा में मौजूद तत्वों की उपलब्धत कम हो जाती है। चूने के प्रयोग का फास्फोरस की उपलब्धता पर प्रभाव पड़ता है। क्षारीय मिट्टियों में कैल्शियम की मात्रा में वृद्धि करने से सोडियम का हानिकर प्रभाव कम हो जाता है जिसका मिट्टी के रासायनिक व भौतिक गुणों पर प्रभाव पड़ता है। इसके साथ ही कैल्शियम पादप पोषण में भी महत्व पूर्ण भूमिका निभाता है। वर्धनशील ऊतकों का विकास तथा जड़ों के अग्रभाग की क्रियाशीलता कैल्शियम की समुचित मात्रा पर ही आधृत है। पौधों की कोषा–भित्ति में यह कैल्शियम पेक्टेट के रूप में पाया जाता है।

मिट्टियों में कैल्शियम की मात्रा

समस्त प्रकार की चूने रहित मिट्टियों में कैल्शियम की मात्रा लगभग 0.05 से 2.5 प्रतिशत तक पाई जाती है, जबकि चुनही मिट्टियों में कैल्शियम 25 प्रतिशत तक होता है। मिट्टियों के गठन तथा पीएच मान में विभिन्नता का कैल्शियम की मात्रा पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अम्लीय रेतीली और अत्यन्त अम्लीय जैविक मिट्टियों में कैल्शियम की मात्रा अत्यन्त कम होती है। जिन मिट्टियों की अधोसतह में कैल्शियम कार्बोनेट अथवा जिप्सम

3261 HRD/2000—18

विद्यमान रहता है उनमें कैल्शियम की मात्रा स्वतः बढ़ जाती है। मिट्टी में कैल्शियम की मात्रा का जलवायु और पीएच से घनिष्ट सम्बन्ध है। अधिक वर्षा वाले आर्द्र क्षेत्रों में निःक्षालन के फलस्वरूप कैल्शियम मृदा के निचले संस्तरों में पहुंच जाता है। इसके विपरीत शुष्क क्षेत्रों में निःक्षालन की प्रक्रिया न हो पाने के कारण कैल्शियम की हानि नहीं हो पाती है। इसी कारण असम और केरल जेसे अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों की मिट्टियों में कैल्शियम की मात्रा राजस्थान, उत्तर प्रदेश, गुजरात, हरियाणा, दिल्ली आदि शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों की अपेक्षा कम होती है। इसी प्रकार अम्लीय मिट्टियों में लगभग उदासीन (6.5 से 7.5 पीएच वाली) अथवा क्षारीय मिट्टियों की अपेक्षा कैल्शियम कम होता है।

भारतवर्ष की विभिन्न मिट्टियों में कैल्शियम की मात्रा का उल्लेख सारणी 7.1 में किया गया है।

मिट्टी में कैल्शियम के स्रोत

मिट्टियों के जनकशैल तथा उनमें पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के खनिजों से कैल्शियम की आपूर्ति होती है। कैल्शियमधारी खनिजों में डोलोमाइट, कैल्साइट, ऐपेटाइट, कैल्शियम फेल्सपार और एम्फीबोल प्रमुख हैं, इन खनिजों के विघटन तथा अपघटन के फलस्वरूप कैल्शियम विमुक्त होता है। आग्नेय तथा अवसादी शैलों में 5 प्रतिशत कैल्शियम पाया जाता है। इसके विपरीत चूना पत्थर में कैल्शियम की बहुलता (43 प्रतिशत) होती है। आग्नेय तथा रूपान्तरित चट्टानों में पाया जाने वाला कैल्शियम मुख्यतः फेल्सपार की प्लेजिमोक्लेज सीरीज में विद्यमान रहता है जिसका अपक्षय बहुत तीव्रता से हो जाता है। खनिजों तथा जनक शैलों के अतिरिक्त राजस्थान और गुजरात जैसे शुष्क प्रदेशों में कैल्शियम कार्बोनेट भूमि की ऊपरी सतह पर ही पाया जाता है, परन्तु जैसे–जैसे वर्षा बढ़ती जाती है भूमि की ऊपरी सतह का चूना पत्थर निक्षालित होकर निचली सतहों में चलता जाता है और शुष्कता बढ़ने पर वहां प्रक्षिप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ मिट्टियों में कैल्शियम, जिप्सम (कैल्शियम सल्फेट) के रूप में भी पाया जाता है।

समस्त प्रकार की मिट्टियों में कैल्शियम विभिन्न रूपों में पाया जाता है। आमतौर पर चुनही मिट्टियों में अम्लीय मिट्टियों की अपेक्षा कैल्शियम की मात्रा अधिक होती है। मिट्टी में पाये जाने वाले कैल्शियम को निम्नांकित 4 समूहों में विभाजित किया जा सकता है।

सारणी-7.1 भारत की विभिन्न मिट्टियों में कैल्शियम की मात्रा

क्र.सं.	मृदा–प्रकार	पीएच	कैल्शियम आक्साइड (प्रतिशत)
1.	हिमालय के वनों की मिट्टी (उ.प्र.)	5.9	0.16
2.	तराई क्षेत्र की मिट्टी (मटकोटा फार्म, उ.प्र.	7.5	0.97
3.	सिंधु गंगा के मैदान की कछारी मिट्टी (उ.प्र.)	7.3	1.90
4.	सिंधु गंगा के मैदान की कछारी चुनही मिट्टी (उ.प्र.)	7.9	23.80
5.	गंगा के मैदान की मिट्टी (घाटमपुर, उ.प्र.)	6.6	0.56
6.	रेगुर या काली मिट्टी (अकोला, म.प्र.)	7.9	
7.	कछारी मिट्टी (सलेम, (तमिलनाडु)	6.6	0.714
8.	लेटेराइट मिट्टी (अंगदीपुरम् केरल)	4.0	0.21
9.	लाल दोमट मिट्टी (कासरगोड, केरल)	–	0.252
10.	पीटी मिट्टी (केरल)	5.3	0.250

1. खनिज कैल्शियम

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि प्लेजिओक्लेज जैसे प्राथमिक खनिजों जिनमें एनार्थाइट, इपिडोट का बाहुल्य होता है, कैल्शियम पाया जाता है। गैब्रो, बेसाल्ट और डायबेस जैसे क्षारीय प्रतिक्रिया वाले शैलों के कुछ

अवयवों में कैल्सियम विद्यमान रहता है। इन खनिजों के विघटन के बाद कैल्सियम उपलब्ध हो पाता है।

2. कैल्शियम कार्बोनेट

मिट्टी में कैल्शियम कार्बोनेट कई रूपों में पाया जाता है। कैल्साइट खनिज आमतौर पर विद्यमान रहता है। कैल्शियम कार्बोनेट या तो छोटी गोलियों के रूप में अथवा पाउडर रूप में पाया जाता है।

3. साधारण लवण

तमाम साधारण लवणों जैसे कैल्शियम क्लोराइड कैल्शियम सल्फेट, कैल्शियम नाइट्रेट, कैल्शियम बाईकार्बोनेट तथा कैल्शियम फास्फेट के अनेक यौगिकों में जिप्सम एपेटाइट जैसे खनिज प्रायः विद्यमान रहते हैं।

4. विमिमेय कैल्शियम

मिट्टियों के विनिमय–सम्मिश्र पर विद्यमान तमाम धनायनों में कैल्शियम सर्वाधिक प्रमुख धनायन माना जाता है। आर्द्र और शुष्क क्षेत्रों में पाई जाने वाली मिट्टियों के विनिमय–सम्मिश्र पर मौजूद विभिन्न धनायनों का संगठन सारणी 7.2 में दिया जा रहा है।

सारणी-7.2 विभिन्न मिट्टियों के विनिमय–सम्मिश्र पर पाए जाने वाले धनायनों का संगठन

धनायन	उदासीन अथवा क्षारीय मिट्टियां	क्षारीय मिट्टियां	अपघटित क्षारीय मिट्टियां, शिकारपुर आजमगढ़
कैल्शियम	62	33	44
मैग्नीशियम	26	36	22
पोटैशियम	4	2	–
सोडियम	8	20	7
हाइड्रोजन	–	–	27

मिट्टियों में कैल्शियम की उपलब्धता

मिट्टी में उपलब्ध कैल्शियम की पूर्ति मुख्यतया विनिमेय स्रोत से होती है परन्तु मिट्टी मे मौजूद सम्पूर्ण विनिमेय कैल्शियम पोधों को उपलब्ध होने की अवस्था में नहीं पाया जाता। मिट्टी में पाए जाने वाले विभिन्न मृत्तिका–खनिजों से होने वाली कैल्शियम की आपूर्ति दर में भी विभिन्नता पाई जाती है। कैल्शियम संतृप्त मान्टमारिलोनाइट मृत्तिका खनिज से कैल्शियम की आपूर्ति बड़ी ही कठिनाई से हो पाती है। इसके विपरीत इलाइट मृत्तिका खनिज से मान्टमारिलोनाइट की तुलना में कैल्शियम की आपूर्ति अपेक्षाकृत सुगमता पूर्वक हो जाती है। केओलिनाइट मृत्तिका–खनिज से इस तत्व की आपूर्ति सर्वाधिक सुगम रहती है। उल्लेखनीय है कि केओलिनाइट से होने वाली कैल्शियम की आपूर्ति की दर जीवांश पदार्थ के समान होती है। मान्टमारिलोनाइट मृत्तिकाओं में जब कैल्शियम संतृप्ति 70 प्रतिशत तक या इससे भी उच्च स्तर पर पहुंच जाती है तभी वर्धनशील पौधों के लिए कैल्शियम की पर्याप्त मात्रा में निर्मुक्ति हो पाती है। इसके विपरीत केओलिनाइट मृत्तिकाओं में 40 से 50 प्रतिशत कैल्शियम संतृप्तावस्था में ही अधिकांश पौधों की कैल्शियम आवश्यकता की पर्याप्त पूर्ति हो जाती है।

पोटेशियम की भांति विनिमेय कैल्शियम और विलयन रूप में उपस्थित कैलिशयम एक गतिक संतुलन में पाया जाता है। यदि पौधों द्वारा कैल्शियम के उपयोग के फलस्वरूप विलयन में उपस्थित कैल्शियम की सक्रियता कम हो जाती है तो गतिक संतुलन बनाए रखने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि अधिशोजित प्रावस्था से कैल्शियम का प्रतिस्थापन हो। इसके विपरीत कैल्शियम युक्त उर्वरकों या सुधारकों के प्रयोगोपरान्त जब मृदा–विलयन में कैल्शियम की सान्द्रता बढ़ जाती है तो उस दशा में विलयन में मौजूद कैल्शियम का स्थानान्तरण विनिमय सम्मिश्र की ओर होने लगता है, फलतः पुनः गतिक संतुलन स्थापित हो जाता है।

अतः स्पष्ट है कि पौधों द्वारा कैल्शियम का अवशोषण विनिमेय अथवा विलयन रूप में किया जाता है। पौधें को उपलब्ध होने वाला कैल्शियम आमतौर पर मिट्टी में उपस्थित विनिमेय कैल्शियम की मात्रा, विनिमय सम्मिश्र की संतृप्तता, मिट्टी में उपस्थित कोलाइडों के प्रकार तथा मृत्तिका द्वारा अवशोषित पूरक आयनों की प्रकृति द्वारा प्रभावित होता है।

मिट्टियों में कैल्शियम की हानि

मिट्टियों में कैल्शियम की हानि के लिए अनेक कारक उत्तरदायी हैं, इनमें से तीन प्रमुख कारकों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है:

(1) फसलों द्वारा कैल्शियम का निष्कासन

(2) निक्षालन

(3) कैल्शियम का अत्यन्त कम घुलनशील रूप में परिवर्तन

फसलों द्वारा कैल्शियम का निष्कासन

प्रत्येक फसल द्वारा कैल्शियम की कुछ न कुछ मात्रा का अवशोषण अवश्य किया जाता है। फसलों की प्रकृति तथा प्रयोग किए जाने वाले उर्वरकों की प्रकृति और उनकी मात्रा के साथ ही प्राप्त उपज के अनुसार फसलों द्वारा अवशोषित कैल्शियम की मात्रा में विभिन्नता पाई जाती है। अनाज वाली फसलों की तुलना में दलहनी और जड़ वाली फसलों की कैल्शियम आवश्यकता अधिक होती है। अर्थात् दलहनी और जड़ वाली फसलें कैल्शियम का अपेक्षाकृत अधिक निष्कासन करती हैं। उदाहरणार्थ–जहां एक ओर अनाज की फसलों द्वारा मात्र 10–20 किलोग्राम प्रति हैक्टर कैल्शियम का निष्कासन होता वहीं दूसरी ओर केले द्वारा 150 किलोग्राम प्रति हैक्टर कैल्शियम निष्कासित हो जाता है। इसी प्रकार 5 टन क्लोवर या लूर्सन द्वारा 60–100 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर कैल्शियम अवशोषित किया जाता है परन्तु चुकन्दर की 15 टन प्रति हेक्टर उपज के बावजूद केवल 25 कि.ग्रा. कैल्शियम अवशोषित किया जाता है। अतः यह स्पष्टतया कहा जा सकता है कि फसलों की कैल्शियम–आवश्यकता में अत्यन्त विभिन्नता पाई जाती है। फसल विशेष की प्रकृति के अनुसार मिट्टी से होने वाली कैल्शियम की हानि का सही अनुमान लगाया जा सकता है। बलुई मिट्टियों में लगातार अधिक कैल्शियम आवश्यकता वाली फसलों को उगाते रहने से मिट्टी में कैल्शियम के अभाव की संभावना बढ़ जाती है। कुके (1967) ने विभिन्न फसलों द्वारा विभिन्न धनायनों की अवशोषित मात्राओं के सम्बन्ध में जानकारी दी है। सम्बन्धित आंकड़े सारणी 7.3 में दिए जा रहे हैं।

सारणी-7.3 विभिन्न फसलों द्वारा विभिन्न धनायनों की अवशोषित मात्रा का विवरण

फसल	उपज (टन/हे.)	फसल द्वारा अवशोषित मात्रा (कि.ग्रा./हे.)			
		कैल्शियम	पोटैशियम	मैग्नीशियम	सोडियम
गेहूं	3.8	13	54	9	4
जई	2.5	13	56	8	7
चारा (हे)	3.8	26	47	10	8
राजमूल (मैनगोल्ड)	55.0	35	280	29	99
आलू	30.0	6	140	4	7
मक्का	150 बुसेल	36.3	175	39	–

निक्षालन

वर्षा या सिंचाई जल द्वारा निक्षालन होने से कैल्शियम की हानि हो जाती है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में निक्षालन द्वारा कैल्शियम की विशेष हानि हो जाती है। मिट्टियों की परगम्यता में वृद्धि होने के साथ ही कैल्शियम–हानि की दर भी बढ़ जाती है। इसी कारण हल्के गठन वाली बलुई मिट्टियों से कैल्शियम की हानि स्थूल गठन वाली मिट्टियों की अपेक्षा अधिक होती है। आर्द्र क्षेत्रों में ऊपरी सतह की मिट्टियाँ आमतौर पर अम्लीय होती हैं। इन मिट्टियों की ऊपरी सतह में मौजूद कैल्शियम निक्षालन द्वारा निचली सतह में पहुंच जाता है। चूंकि इन मिट्टियों में जीवांश पदार्थ का भी बाहुल्य होता है अतः उनके विघटन के फलस्वरूप के अन्दर जल के माध्यम से प्रवेश करता है तो विनिमेय सम्मिश्र के अन्तर्गत कैल्शियम को विस्थापित कर देता है और अनवरत् यह प्रक्रम चलते रहने से मिट्टी की अम्लता बढ़ती जाती है। इस अभिक्रिया को नीचे दर्शाए गए समीकरण द्वारा समझा जा सकता है:

$$\text{मृत्तिका}\begin{matrix} Ca^{++} \\ Ca^{++} \\ H+ \end{matrix} + 2H_2CO_3 \longrightarrow \begin{matrix} H^+ \\ H^+ \\ Ca^{++} \\ H^+ \end{matrix}\text{मृत्तिका} + Ca(HCO_3)_2$$
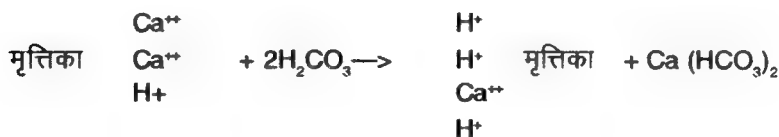
अमोनियम सल्फेट या अमोनियम क्लोराइड जैसे अम्लीय उर्वरकों का प्रयोग करते रहने से मिट्टी की प्रतिक्रिया पर अम्लीय प्रभाव पड़ता है, जिसके फलस्वरूप कैल्शियम के हानि की संभावना बढ़ जाती है।

निक्षालन द्वारा कैल्शियम की हानि मुख्य रूप से वर्षा की मात्रा, मिट्टी मे कैल्शियम की मात्रा और मिट्टी के गठन पर निर्भर करती है। यदि मिट्टी में कैथ्ल्शयम की मात्रा अधिक है तो निक्षालन के फलस्वरूप होने वाली हानि भी उस मिट्टी की अपेक्षा जिसमें कैल्शियम की मात्रा अपेक्षाकृत कम है विशेष सुगमता से होगी। ऐसा अनुमान है कि निक्षालन द्वारा 84.1 से लेकर 224.2 किलोग्राम कैल्शियम प्रति हैक्टर की हानि हो जाती है। चूने की विभिन्न मात्राओं के प्रयोग के फलस्वरूप बलुई दोमट मिट्टी में कैल्शियम कार्बोनेट के रूप में होने वाली कैल्शियम की हानि का विवरण सारणी 7.4 में दिया जा रहा है।

सारणी-7.4 बलुई दोमट मिट्टी में कैल्शियम कार्बोनेट के रूप में चूने की हानि का विवरण

चूने की प्रयोग की गई मात्रा (कि.ग्रा./हे.)	प्रथम 5 वर्ष में कैल्शियम कार्बोनेट के रूप में वार्षिक हानि की दर (कि.ग्रा./हे.)	15 वर्षों में कैल्शियम कार्बोनेट की हानि (कि.ग्रा./हे.)
3,140	380	3,100
6,300	630	5,300
12,600	1,000	8,800

इन कारकों के अलावा विभिन्न फसल चक्रों तथा भूमि संरक्षण विधियों द्वारा भी कैल्शियम की हानि प्रभावित होती है। भूमि संरक्षण शोध केन्द्र, देहरादून में किए गए प्रयोगों के आधार पर भट्ट तथा सहयोगियों ने सूचित किया है कि परती भूमि से कैल्शियम और मैग्नीशियम की हानि सर्वाधिक होती है। मक्का–गेहूं फसल–चक्र में भी इन तत्वों की काफी हानि हुई परन्तु सनई–गेहूं या ज्वार (चारा)–गेहूं फसल चक्रों में इन तत्वों की हानि की दर काफी कम रही।

कैल्शियम का अत्यन्त कम घुलनशील रूप में परिवर्तन

आर्द्र क्षेत्रों की अम्लीय मिट्टियों में कैल्शियम मुख्यतः विनिमेय रूप में पाया जाता है। यह अविघटित प्राथमिक खनिजों में भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। इस क्षेत्र की अधिकांश मिट्टियों में विनिमय सम्मिश्र पर कैल्शियम और हाइड्रोजन का बाहुल्य होता है। अन्य धनायनों की भांति जैसा कि पहले बताया जा चुका है, विनिमेय और विलयन रूप में उपस्थित कैल्शियम एक गतिक संतुलन में रहता है। विलयन में कैल्शियम की सक्रियता कम हो जाने पर अधिशोषित कैल्शियम का विस्थापन प्रारम्भ हो जाता है। इसके विपरीत विलयन में कैल्शियम की सक्रियता एकाएक बढ़ने पर गतिक सन्तुलन इसके विपरीत दिशा में परिवर्तित हो जाता है अर्थात् विनिमय सम्मिश्र द्वारा कैल्शियम की कुछ मात्रा अधिशोषित कर ली जाती है।

पौधों के पोषण में कैल्शियम का महत्व

पौधों में इसके कार्य इस प्रकार हैं:–

1. जड़ों के विकास में कैल्शियम का विशेष महत्व है इसीलिए इसकी कमी का सर्वाधिक प्रभाव जड़ों पर पड़ता है। जड़ों की वृद्धि रूक जाती है, वे असंगठित हो जाती है, उनका रंग उड़ जाता है और उग्र कमी के कारण कर भी जाती है।

2. पराग के अंकुरण तथा परागनाल की वृद्धि के लिए कैल्शियम विशेष रूप से आवश्यक होता है। साथ ही कोशिका भित्ति में पाए जाने वाले पदार्थों के संश्लेषण में भी इसका विशेष महत्व है। कोशिका कला को क्रियाशील बनाए रखने में इसकी प्रमुख भूमिका है।

3. कोशिका भित्ति में कैल्शियम पेक्टैट के रूप में पाया जाता है।

4. कैल्शियम एक अति आवश्यक सहकारक (cofactor) के रूप में अनेक एन्जाइम की क्रियाशीलता बढ़ाने में सहायक होता है।

5. कैल्शियम प्रत्यक्ष रूप से नाइट्रोजन यौगिकीकरण में भाग न लेकर दलहनी फसलों की जड़ ग्रंथियों पर पाए जाने वाले राइजोबियम जीवाणु की क्रियाशीलता को प्रभावित कर इस प्रक्रिया में सहायता करता है।

6. कार्बोहाइड्रेट के स्थानान्तरण में मदद करता है।

कमी के लक्षण

पौधों में इसकी कमी के लक्षण इस प्रकार हैं:

1. सर्वप्रथम नई पत्तियों तथा तनों व जड़ों के वर्धनशील भागों पर अभाव के लक्षण दिखाई पड़ते हैं।
2. पत्तियों का अग्रभाग पीछे की ओर मुड़कर हुक की तरह दिखाई देने लगता है। पत्तियों के किनारे भी ऊपर या नीचे की ओर मुड़ जाते हैं।
3. पत्तियां विकृत तथा खुरदरी सी हो जाती हैं।
4. किनारें झुलस से जाते हैं।
5. जड़ों का विकास रुक जाता है और जड़े चिपचिपी हो जाती हैं।

रोग

अग्रहुकिंग (Tip Hooking)

कैल्शियम की कमी से तम्बाकू, गोभी और चुकन्दर की पत्तियों का अग्रभाग मुड़ कर हुक की तरह दिखाई देने लगता है। पत्तियों के किनारे और मध्य भाग की वृद्धि होने के कारण तनाव उत्पन्न हो जाता है जिससे पत्तियों का आकार विकृत होकर हुक–सदृश दिखाई देने लगता है।

पुष्प मंजरी संड़न (Blossom end rot)

इस रोग से टमाटर की फसल विशेष प्रभावित होती है। नए फसलों के दूरांत (distal end) के समीप का भाग दबा हुआ सा दिखाई देता है और वहां के ऊतक गहरे रंग के तथा गूदा नारंगी रंग का हो जाता है।

कैल्शियम का उपज-वृद्धि पर प्रभाव

फसलों में चूने की अनुक्रिया के आधार पर मण्डल इत्यादि (1975) ने फसलों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है:

1. उच्च अनुक्रिया वाली फसलें: अरहर, सोयाबीन, कपास।

2. मध्यम अनुक्रिया वाली फसलें: चना, मसूर, मटर, मूंगफली, मक्का और ज्वार।

3. कम या शून्य अनुक्रिया वाली फसलें: छोटे–मोटे अनाज, धान, आलू इत्यादि।

ऐसा देखा गया है कि धान में जल मग्नता के कारण मिट्टी का पीएच बढ़ जाता है, इसीलिए धान की उपज पर चूना डालने से विशेष लाभ नहीं मिल पाता। हाल में वर्मा एवं त्रिपाठी (1984) ने सूचित किया है कि जलमग्नता की दशा में चूना डालने पर धान के पौधों में लोहा की सान्द्रता कम हो जाती है जिसके फलस्वरूप लोहा की विषालुता कम करने में मदद मिलती है। किल्ले निकलते समय धान के पौधों में लोहे की सान्द्रता घटती हुई देखी गयी। इस अध्ययन में यद्यपि भूरा रंग पत्तियों से समाप्त हो गया परन्तु अभाव के लक्षण 25 दिन विलम्ब से प्रकट हुए। चूने के प्रयोगोपरान्त लोहे की विषालुता में पूरी तरह सुधार न हो पाने का अर्थ कम मात्रा में चूने का प्रयोग करना या कोई अन्य विशेष कारण हो सकता है जिस पर पुनः अध्ययन की आवश्यकता है। ज्ञातव्य है कि यहां चूने का प्रयोग 3 टन प्रति हेक्टर की दर से किया गया। भारत में किए गये परीक्षणों में चूने के प्रयोग से फसलों की उपज में होने वाली वृद्धि का विवरण सारणी 7.5 में दिया गया है।

भारत में कैल्शियम के उपयोग का फसलोत्पादन पर प्रभाव

फसलों के उचित पोषण के लिए अन्य आवश्यक पोषक तत्वों के साथ कैल्शियम भी अत्यन्त आवश्यक होता है। अनेक मिट्टियों में विशेषकर आर्द्र क्षेत्रों की मिट्टियों में कैल्शियम इतनी कम मात्रा में उपस्थित रहता है कि पौधों की वृद्धि पर इस कमी का गंभीर प्रभाव पड़ता है। ऐसी मिट्टियों में कैल्शियम उपलब्धि को सुधारने हेतु कैल्शियम युक्त उर्वरकों/सुधारकों जैसे कैल्साइट या डोलोमाइट चूना डालना चाहिए। चूने के प्रयोग से अम्लीय मिट्टियों का पीएच बढ़ जाता है। यदि कैल्शियम की कमी बिना पीएच बढ़ाए दूर करना है तो ऐसी दशा में जिप्सम का प्रयोग विशेष उपयुक्त पाया जाता है।

सारणी-7.5 चूने के प्रयोग से विभिन्न फसलों की उपज में वृद्धि

राज्य	फसल	मृदा पीएच	चूने द्वारा उपज वृद्धि (कि.ग्रा./हे.)	प्रतिशत उपज वृद्धि
बिहार	सोयाबीन	5.5	1930	103
बिहार	चना	5.5	1350	159
बिहार	मूंगफली	5.5	1950	48
उड़ीसा	मक्का	5.0	1920	45
उड़ीसा	मूंगफली	5.5	1210	41
कर्नाटक	मूंगफली	5.1	660	100
मेघालय	मक्का	–	1035	319
मेघालय	सोयाबीन	–	1600	88
नागालैंड	गेहूं	4.1–4.6	3030	26
नागालैंड	मक्का	4.1–4.6	1150	78
नागालैंड	गेहूं	4.8	800	77
नागालैंड	मक्का	4.8	1766	94
पश्चिम बंगाल	जूट	5.3–7.0	1810	76

स्रोत: विश्वास इत्यादि (1985)

मिट्टियों में कैल्शियम की उपलब्धि

उदासीन तथा मध्यम क्षारीय मिट्टियों के विनिमय सम्मिश्र पर भस्मीय आयनों विशेषकर कैल्शियम की प्रधानता होती है अतः इन मिट्टियों में कैल्शियम की कमी शायद ही होती हो। इसके विपरीत अम्लीय तथा अत्यन्त क्षारीय मिट्टियों में कुल कैल्शियम की मात्रा कम होती है और इनके विनिमय सम्मिश्र पर अल्युमिनियम या सोडियम की प्रधानता होती है, जिसके कारण कैल्शियम की कमी पायी जाती है।

उल्लेखनीय है कि भारत के 25 प्रतिशत क्षेत्रों की मिट्टियों का पीएच मान 6.5 है किन्तु लगभग 65 लाख हेक्टर क्षेत्रफल में अम्लीय मिट्टियां (पीएच

5.5) और 70 लाख हेक्टर में क्षारीय मिट्टियां पायी जाती हैं। इन मिट्टियों मे कैल्शियम की उपलब्धि कम होती है।

मिट्टियों में कैल्शियम संतृप्तता 25 प्रतिशत से कम होने या विनिमेय कैल्शियम की मात्रा 1.5 मि.तु. प्रति 100 ग्राम से कम होने पर कैल्शियम की कमी विशेषकर आर्द्र क्षेत्रों की मिट्टियों तथा 750 मि.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पायी जाती है। अम्लीय आग्नेय चट्टानों या सिलिका प्रधान बालू पत्थर, अम्लीय पीट मिट्टियों और क्षारीय मिट्टियों में जहां विनिमेय सोडियम और पीएच अधिक हो, वहां कैल्शियम की कमी पायी जाती है। मिट्टी में कैल्शियम की कमी की समस्या कितनी गंभीर होगी यह मृदा अम्लता और क्षार–संतृप्तता पर निर्भर करता है।

माथुर एवं सहयोगियों (1991) ने मिट्टी की कुल चूना आवश्यकता का मात्र 10 प्रतिशत प्रत्येक फसल में देने की संस्तुति की है। सम्बन्धित आंकड़े सारणी 7.6 में दिये जा रहे हैं।

मैग्नीशियम

कैल्शियम की भांति मैग्नीशियम को नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम के बाद द्वितीय श्रेणी के आवश्यक पोषक तत्वों, जिन्हें "गौण तत्व" कहा जाता है, के अन्तर्गत रखा गया है। यद्यपि विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में मैग्नीशियम की मात्रा कैल्शियम की अपेक्षा कम है फिर भी अल्प कमी की स्थिति में यह तत्व पौधों के विकास में उतना बाधक सिद्ध नहीं होता जितना कि कैल्शियम होता है। इसका कारण है कि पौधों के जीवन में मैग्नीशियम द्वारा सम्पन्न होने वाले कुछ कार्य ऐसे भी होते हैं जो कैल्शियम और पोटैशियम द्वारा पूरे कर दिये जाते हैं।

मिट्टी में मैग्नीशियम की मात्रा

विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में मैग्नीशियम विभिन्न मात्राओं में पाया जाता है। पृथ्वी की ऊपरी सतह में मैग्नीशियम की औसत मात्रा लगभग दो प्रतिशत होती है, परन्तु मिट्टियों में यह अत्यन्त अल्प मात्रा में 0.02 प्रतिशत से लेकर अधिकतम 1.34 प्रतिशत तक पाया जाता है। वास्तव में मौसम और स्थान की विभिन्नता के अनुसार मिट्टी में उपस्थित मैग्नीशियम की मात्रा में विभिन्नता पाई जाती है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों की अम्लीय मिट्टियों में

सारणी-7.6 चूने की विभिन्न मात्राओं का फसलों की उपज पर प्रभाव

उपचार, चूना	उपज, कि.ग्रा. प्रति हे						
आवश्यकता के आधार पर चूने की मात्रा	मूंग 7 वर्ष का औसत	मसूर 5 वर्ष का औसत	मूँगफली 5 वर्ष का औसत	मटर 5 वर्ष का औसत	उर्द 6 वर्षका औसत	चना 4 वर्ष का औसत	सोयाबीन 6 वर्ष का औसत
नियंत्रित	278	1141	1204	1127	575	224	1332
पूरी मात्रा	605	1768	1673	1760	1212	509	2196
1/10 मात्रा	604	1756	1722	1657	1154	605	2166
1/15 मात्रा	576	1714	1603	1618	1128	590	2041
1/20 मात्रा	530	1582	1517	1562	1110	566	1979
क्रान्तिक अन्तर	31	187	162	172	186	189	303

स्रोतः माथुर बी.एस. राना एन.के. एवं लाल, एस. (1991) जर्नल आफ दि इण्डियन सोसायटी आफ सोयल साइंस अंक 39 पृष्ठ सं. 523–529

मैग्नीशियम की मात्रा कम होती है। इसका कारण है कि ऐसे स्थानों की मिट्टियों में विद्यमान खनिजों से मैग्नीशियम का निक्षालन हो जाता है जो कि अन्ततः धरातलीय जल प्रवाह द्वारा नदियों अथवा समुद्र में चला जाता है अथवा ऐसे प्रदेशों में पुनः शुष्कता बढ़ने पर प्रक्षिप्त हो जाता है। इसी कारण इन क्षेत्रों की मिट्टियों की ऊपरी सतह में निचली सतह की अपेक्षा मैग्नीशियम की मात्रा कम होती हे। इसके विपरीत शुष्क जलवायु वाले प्रदेशों जैसे राजस्थान और गुजरात आदि में मैग्नीशियम की मात्रा आर्द्र क्षेत्रों की तुलना में ऊपरी सतह में अधिक होती है। स्थूल गठन वाली मिट्टी में मैग्नीशियम की मात्रा अधिक होती है। यही कारण है कि रेतीली मिट्टिया मैग्नीशियम की कमी से विशेष प्रभावित हो जाती है।

भारतवर्ष की विभिन्न मिट्टियों में मैग्नीशियम की मात्रा सम्बन्धी आंकड़े सारणी 7.7 में दिए जा रहे हैं।

सारणी-7.7 भारत वर्ष की विभिन्न मिट्टियों में मैग्नीशियम की मात्रा

मिट्टियां	पीएच मान	मैग्नीशियम %
1. हिमालय के वनों की मिट्टी (उ.प्र.)	5.9	0.16
2. तराई क्षेत्र की मिट्टी (मटकोटा फार्म उ.प्र.)	7.5	0.97
3. सिंधु–गंगा के मैदान की कछारी मिट्टी (उ.प्र.)	7.3	1.90
4. सिंधु–गंगा के मैदान की कछारी चुनही मिट्टी (उ.प्र.)	7.9	23.80
5. गंगा के मैदान की मिट्टी (घाटमपुर, उ.प्र.)	6.6	0.56
6. कछारी मिट्टी (सालेम, तमिलनाडु)	6.6	0.714
7. रेगुर या काली मिट्टी (अकोला, म.प्र.)	7.9	–
8. लेटराइट मिट्टी (अंगदीपुरम, केरल)	4.0	0.21
9. लाल दुमट मिट्टी (कासरगोड, केरल)	–	0.252
10. पीटी (कारी) मिट्टी (केरल)	5.3	0.250

साधारणतया अम्लीय मिट्टियों में मैग्नीशियम की मात्रा हाइड्रोजन और कैल्शियम के बाद तीसरे स्थान पर और शुष्क प्रदेशों में पोटैशियम के बाद दूसरे स्थान पर आती है। कुछ विशेष परिस्थितियों में, जैसे निचले भागों में जहां निक्षालित लवण एकत्रित हो जाते हैं, मैग्नीशियम अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त मैग्नीशियम की बहुलता वाले सिंचाई जलों में सिंचित क्षेत्रों में मैग्नीशियम का बाहुल्य होता है। मिट्टी में अत्यधिक मात्रा में उपस्थित मैग्नीशियम का पौधों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

मिट्टी में मैग्नीशियम के स्रोत

मिट्टियों में मैग्नीशियम कुछ विशेष खनिजों जैसे–हार्नब्लेन्डी, आगाइट, टाक, ऑलिवाइन, सर्पेन्टीन, डोलोमाइट, क्लोराइट, बायोटाइट और मैग्नीसाइट के अपघटन के फलस्वरूप प्राप्त होता है। मिट्टी में इन खनिजों की कुल मात्रा तथा इनकी विघटन क्षमता का मैग्नीशियम की मात्रा पर प्रभाव पड़ता है। अम्लीय मिट्टियों में मैग्नीसाइट और डोलोमाइट का विघटन बहुत ही शीघ्र और सुगमता पूर्वक हो जाता है, जबकि अन्य खनिज बहुत धीरे–धीरे घुलते हैं। खनिजों के विघटन से प्राप्त मैग्नीशियम आयन कुछ तो घुलनशील अवस्था में बना रहता है और कुछ मिट्टी के बारीक कणों और जैव पदार्थ के बाहरी धरातल पर अधिशोषित हो जाता है। इस प्रकार मिट्टी में यह तत्व घुलनशील, विनिमेय और खनिजीय रूपों में विद्यमान रहता है।

कुछ मूलस्थानी मिट्टियों में डोलोमाइट तथा मैग्नीशियम द्वारा प्रतिस्थापित कैल्साइट काफी मात्रा में पाया जाता है। विश्व के शुष्क और अर्द्धशुष्क भागों में भूरी, चेस्टनट और चर्नोजेमी मिट्टियों में कार्बोनेट के रूप में 2 प्रतिशत या इससे भी अधिक मैग्नीशियम पाया जाता है।

मिट्टियों में मैग्नीशियम की उपलब्धता

पौधे मुख्यतया विनिमेय और विलयन में उपस्थित मैग्नीशियम का उपयोग करते हैं। यह तत्व बलुई तथा अम्लीय मिट्टियों में बहुत कम मात्रा में पाया जाता है। मिट्टी में उपलब्ध मैग्नीशियम की मात्रा 100 कि.ग्रा./हे. से कम होने पर पौधों में मैग्नीशियम के अभाव के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। अम्लीय मिट्टियों में विनिमेय हाइड्रोजन और अल्युमिनियम की बाहुल्यता के कारण मैग्नीशियम की उपलब्धता और भी कम हो जाती है। इसके

अतिरिक्त यदि मिट्टी में कैल्शियम का अनुपात बहुत अधिक है तो उस दशा में भी मिट्टी में मैग्नीशियम पर्याप्त मात्रा में होने के बावजूद पौधों को बहुत कम उपलब्ध हो पाता है। अत्यन्त अम्लीय मिट्टियों में मैग्नीशियम विहीन चूनेदार पदार्थ का प्रयोग करने पर मैग्नीशियम का उग्र अभाव हो जाता है। इसके विपरीत क्षारीय मिट्टियों में विनिमेय सोडियम की बहुलता के कारण मैग्नीशियम का अभाव हो जाता है। कुछ क्षारीय मिट्टियों में मैग्नीशियम की प्रचुरता की सूचनाएं मिली हैं।

आधुनिक कृषि में अधिक उपज देने वाली जातियों के प्रचलन तथा उर्वरकों के बढ़ते हुये प्रयोग के फलस्वरूप फसल द्वारा मिट्टियों से मैग्नीशियम के निष्कासन की दर बढ़ गई है। पोटैशियम और मैग्नीशियम के आपसी अन्तर्क्रिया का एक दूसरे की उपलब्धता पर प्रभाव पड़ता है। पोटैशियमधारी उर्वरकों की खपत में वृद्धि के फलस्वरूप मैग्नीशियम के अभाव की समस्या भविष्य में बढ़ सकती है।

अम्लीय पाड्जाल मिट्टियों में मैग्नीशियम का अभाव है। पश्चिमी बंगाल की जूट वाली लैटराइटी मिट्टियों में भी मैग्नीशियम की व्यापक कमी है।

मिट्टी में मैग्नीशियम की हानि

अन्य तत्वों की तरह मैग्नीशियम की हानि फसलों द्वारा उपभोग किये जाने निक्षालित हो जाने और मिट्टी में स्थिरीकृत हो जाने से होती है।

फसलों द्वारा मैग्नीशियम का निष्कासन

अन्य पोषक तत्वों की भांति विभिन्न फसलों की मैग्नीशियम अवशोषण क्षमता में भी विभिन्नता पाई जाती है। यह विभिन्नता फसल विशेष की प्रकृति और उसकी उत्पादन क्षमता पर निर्भर करती है। मिट्टी के गुणों तथा उनकी प्रबंध शैली का भी फसलों द्वारा मैग्नीशियम निष्कासन पर प्रभाव पड़ता है। जैकोव (1958) ने विभिन्न फसलों द्वारा अवशोषित प्रमुख तथा गौण पोषक तत्वों की मात्रा सम्बन्धी जानकारी प्रस्तुत की है।

सम्बन्धित आंकड़े सारणी 7.8 में दिये गये हैं।

3261 HRD/2000—19

सारणी-7.8 प्रमुख फसलों द्वारा भूमि से पोषक तत्वों की निष्कासित मात्रा (कि.ग्रा./हे.)

फसल	उपज		पोषक तत्वों की निष्कासित मात्रा (कि.ग्रा. हैक्टर)				
	दाना/कंद (कु./हे.)	भूसा/पत्तियों (कु./हे.)	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश	कैल्शियम	मैग्नीशियम
गेहूं	30	50	85	36	60	18	12
आलू	260	65	110	50	210	130	32
चुंकदर	400	200	150	60	190	55	56
राजमूल (मैंगगोल्ड)	800	160	200	80	400	50	81
तम्बाकू	–	20	140	60	280	165	22
श्वेत सरसों	24	50	120	60	75	110	19
गाजर	300	–	95	40	150	63	30
मूली	400	–	250	60	96	40	30

उपरोक्त आंकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजमूल, चुकंदर, आलू और गाजर जैसी फसलों द्वारा मैग्नीशियम का निष्कासन अन्य फसलों की तुलना में अधिक होता है। इन आंकड़ों ये भी विदित होता है कि कैल्शियम की अपेक्षा मैग्नीशियम का निष्कासन, चुंकदर और राजमूल को छोड़कर अन्य सभी फसलों द्वारा अधिक होता है।

निःक्षालन

निःक्षालन द्वारा मैग्नीशियम की काफी हानि हो जाती है। निक्षालन द्वारा मैग्नीशियम की हानि की मात्रा कैल्शियम से कम किन्तु पोटैशियम की तुलना में अधिक होती है। अम्लता बढ़ने के साथ ही साथ निःक्षालन द्वारा होने वाली मैग्नीशियम की हानि की मात्रा भी बढ़ जाती है इसके अतिरिक्त वार्षिक वर्षा में वृद्धि के साथ ही मैग्नीशियम हानि की दर बढ़ जाती है। कुछ अनुसंधानों के परिणामों से यह ज्ञात हुआ है कि कैल्शियम तथा जीवांश पदार्थ के प्रयोग के फलस्वरूप मैग्नीशियम की हानि हो जाती है। यूरोपियन शोधकर्ताओं के अनुमान के अनुसार निक्षालित जल द्वारा प्रतिवर्ष 20–40 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर मैग्नीशियम की हानि हो जाती है जब कि नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम और कैल्शियम की हानि की दर क्रमशः 30 से 50, 0–1, 20–40 और 125–175 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर तक रही।

कुछ प्रयोगों के परिणामों से यह भी ज्ञात हुआ है कि सुपरफास्फेट और पोटैशियम सल्फेट के प्रयोग के फलस्वरूप निक्षालित जल में मैग्नीशियम की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा पाई गई। मैग्नीशियम की यह हानि विनिमय सम्मिश्र पर पोटैशियम के विस्थापन के कारण होती है। पोटैशियम से सम्बन्धित ऋणायनों का भी मैग्नीशियम की हानि पर प्रभाव इस क्रम में पड़ता है। Cl > SO4>CO>PO4।

स्थिरीकरण

मृदा विलयन में उपस्थित कुछ मैग्नीशियम 2:1 प्रकार वाले मृत्तिका खनिजों में समरूपी स्थानान्तरण द्वारा मैग्नीशियम आयन, अल्युमिनियम आयन का स्थान ग्रहण कर लेता है। क्लोराइट तथा वर्मीकुलाइट खनिजों में अधिकांश मैग्नीशियम प्रजाल में उपस्थित रहता है। अभी तक यह निश्चित नहीं हो पाया है कि इन खनिजों द्वारा मैग्नीशियम का स्थिरीकरण किस तरह होता है।

मिट्टी में मैग्नीशियम स्थिरीकरण की समस्या विशेष विकट नहीं है क्योंकि यह धीरे–धीरे पौधों को उपलब्ध होता रहता है। मैग्नीशियम युक्त सिलिकेटों से भी धीरे–धीरे यह तत्व पौधों को उपलब्ध होता रहता है।

मस्कोवाइट माइका तथा मॉन्टमारिलोनाइट खनिजों में अल्युमिनियम को विस्थापित करने के लिए मैग्नीशियम की मात्रा 6 प्रतिशत तक पाई जाती है। बायोटाइट, इलाइट और क्लोराइट में मैग्नीशियम की अधिकतम मात्रा क्रमशः 7, 1 और 23 प्रतिशत कम पाई जाती है। वर्मीकुलाइट में मैग्नीशियम की मात्रा 12 से 15 प्रतिशत तक पाई जाती है। मिट्टी के गठन, पीएच मान तथा तापक्रम का मैग्नीशियम की उपलब्धता पर प्रभाव पड़ता है।

मिट्टियों में मैग्नीशियम की उपलब्धिता को प्रभावित करने वाले कारक

जिन परिस्थितियों में मिट्टियों में कैल्शियम की कमी हो जाती है, वही परिस्थितियाँ मैग्नीशियम की कमी के लिए भी उत्तरदायी है। आर्द्र क्षेत्रों की मोटे गठन वाली मिट्टियों में विनिमेय मैग्नीशियम की मात्रा कम होने के कारण मैग्नीशियम की कमी हो जाती है। इसके अतिरिक्त अम्लीय मिट्टियों तथा वे मिट्टियां जहां प्राकृत पोटैशियम या उर्वरकों के माध्यम से प्रयुक्त पोटैशियम की मात्रा अधिक हो, मैग्नीशियम की कमी हो जाती है। अम्ली मिट्टियों में चूना डालने पर मैग्नीशियम की कमी हो जाती है। विश्वास एवं सहयोगियों (1985) ने उल्लेख किया है कि जिन मिट्टियों में विनिमेय मैग्नीशियम की मात्रा 1 मि.तु. प्रति 100 ग्राम से कम हो या कुल धनायन विनिमय क्षमता का केवल 4–15 प्रतिशत मैग्नीशियम द्वारा संतृप्त हो, वहां फसलों में मैग्नीशियम की कमी हो जाती हे। केरल की अम्लीय लैटेराइट मिट्टियों, कर्नाटक के मालसीद क्षेत्र, तमिलनाडु के नीलगिरी क्षेत्र, आंध्र प्रदेश के कपास के अन्तर्गत कुछ क्षेत्र, गोआ में नीबूं और केला के अन्तर्गत क्षेत्र, हिमाचल प्रदेश के कुछ भाग और उत्तरी पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र में मैग्नीशियम की कमी पायी जाती है। सेखों इत्यादि (1975) ने सूचित किया कि फसलों में मैग्नीशियम की प्रच्छन भूख पोटैशियम की तुलना में अधिक है। पोटैशियम के प्रयोग से पौधों में मैग्नीशियम की सान्द्रता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसा माना जाता है कि पोटैशियम द्वारा मैग्नीशियम विस्थापित होकर निक्षालित हो जाता है जिससे इस तत्व की कमी हो जाती है।

पादप पोषण में मैग्नीशियम का महत्व

पौधों में इसके कार्य इस प्रकार हैं।

1. पौधों की पर्णहरित में मैग्नीशियम का एक अणु एक स्थिर अवयव के रूप में पाया जाता है। इन्हें मैग्नीशियम पोरफाइरिन कहते हैं।

2. पर्णहरित (क्लोरोफिल) का अवयव एवं फास्फोरस स्थानान्तरण को प्रभावित करने वाले तमाम एन्जाइमों का प्रेरक होने के कारण मैग्नीशियम के अभाव में पौधों की उपापचय क्रियायें प्रभावित होती हैं। इस तत्व की कमी से पर्णहरित और प्रकाश संश्लेषण प्रभावित होता है।

3. क्रोमोसोम का एक मुख्य अवयव होने के कारण मैग्नीशियम वंशानुगत गुणों को नियंत्रित करता है। यह पालीराइबोसोम का एक मुख्य भाग है।

4. अन्य तत्वों की तुलना में मैग्नीशियम का एन्जाइम की क्रियाशीलता बढ़ाने में सर्वाधिक महत्व है। वे इन्जाइम को फास्फोरिल युक्त जीवाधार (Phosphorylated substrate) पर कार्य करते हैं उनका यह सहखंड है। फास्फेट–स्थानान्तरण, कार्बोहाइड्रेट उपापचय एवं विकार्बोक्सिलीकरण (Decarboxylation) में इनकी भूमिका रहती है। मैग्नीशियम की अनुपस्थिति में कुछ महत्वपूर्ण एन्जाइम जेसे पाइरोफास्फेटेज अक्रियाशील हो जाते हैं। यह बहुत सूक्ष्म एन्जाइम जैसे जीवाणुओं में पाए जाने वाले कार्बोक्सिलेज यूडीपीजी–ग्लाइकोजन ग्लूकोसाइल ट्रान्सफरेज (UDPG), यू एम पी पाइरोफास्फोराइलेज, निकोटिन फास्फोराइबोसिल ट्रान्सफरेज, जीवाणुओं तथा इस्ट में पाए जाने वाले एन डी ए काइनेज, एडिनोसीन काइनेज, फास्फोग्लुको काइनेज और थाइमिन फास्फेट पाइरोफास्फोराइलेज की क्रियाशीलता को बढ़ा देता है।

5. मैग्नीशियम की कमी की दशा में घुलनशील नाइट्रोजन युक्त यौगिकों की सान्द्रता में वृद्धि हो जाती है। क्लोरोप्लास्ट और माइटोकान्ड्रिया की संरचना असामान्य हो जाती है।

मैग्नीशियम का कैल्शियम और पोटैशियम से आपसी वैमनश्य के कारण इन तत्वों की अधिकता होने पर मैग्नीशियम की कमी के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

कमी के लक्षण

पोधों में इसकी कमी के लक्षण इस प्रकार दिखाई देते हैं।

1. मैग्नीशियम एक गति शील तत्व है अतः अभाव के लक्षण सर्वप्रथम पुरानी पत्तियों पर दृष्टिगोचर होते हैं। बाद में नई पत्तियां भी प्रभावित हो जाती हैं।

2. सामान्य तथा पत्तियों के किनारों पर हरिमाहीनता के लक्षण दिखाई देते हैं, पत्तियों का रंग हल्का हो जाता है, परन्तु शिराएं हरी बनी रहती हैं।

3. उग्र कमी की स्थिति में उतकक्षय (Necrosis) हो जाता है और अपरिपक्व पत्तियां भी गिरने लगती हैं।

न्यूनता रोग

मैग्नीशियम न्यूनता [illegible] (Sand Drawn): तम्बाकू की फसल इस रोग से प्रभावित होती है। पुरानी पत्तियों के अग्र भाग का हरा रंग समाप्त हो जाता है। भयंकर कमी होने पर पत्ती सफेद हो जाती है। पत्तियों का लचीलापन कम हो जाता है और रंग में असमानता के कारण इनका मूल्य घट जाता है।

भारत में मैग्नीशियम के प्रयोग का फसलोत्पादन पर प्रभाव

मैग्नीशियम के प्रयोग से हिसार (गुप्ता तथा सिंह 1985) और वाराणसी (सिंह तथा सिंह 1985) में मक्के की उपज तथा दिल्ली में (शुक्ल 1986) गेहूं की उपज में वृद्धि हुई। इन मिट्टियों में विनिमेय मैग्नीशियम की मात्रा क्रमशः 120 पीपीएम, 155 पीपीएम और 0.50 मि.तु. प्रति 100 ग्राम थी। जिंक और मैग्नीशियम के बीच कम प्रयोग दर पर अनुकूल अन्तर्क्रिया पायी गयी किन्तु उच्च्य प्रयोग दर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा (शुक्ल 1986)। भारत में मैग्नीशियम के प्रयोग से फसलों की उपज में वृद्धि सम्बन्धी आंकड़े सारणी 7.9 में दिए गये हैं।

सारणी-7.9 मैग्नीशियम के प्रयोग से विभिन्न फसलों की उपज में वृद्धि

राज्य	फसल (मृदा)	मैग्नीशियम के प्रयोग से उपज वृद्धि
आसाम	जूट	300 कि.ग्रा. प्रति हे.
कर्नाटक	धान (लाल दोमट)	25 प्रतिशत
केरल	धान (लैटेराइट)	15 प्रतिशत
केरल	काकोनट	40 प्रतिशत
केरल	मूंगफली (लैटेराइट)	13 प्रतिशत
तमिलनाडु	चाय	8 प्रतिशत
तमिलनाडु	आलू (नीलगिरी)	84 प्रतिशत
उत्तर प्रदेश	मक्का (जलोढ़ मृदा)	500 कि.ग्रा. प्रति हे.
उत्तर प्रदेश	सरसों (जलोढ़ मृदा)	45 प्रतिशत
पश्चिम बंगाल	जूट	उपज वृद्धि सूचित

स्रोतः विश्वास इत्यादि (1985)

गंधक

अधिक उपज देने वाली जातियों के प्रचलन तथा अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में गंधक विहीन उच्च विश्लेषी नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाशधारी उर्वरकों के प्रयोग के फलस्वरूप मिट्टी में संचित गंधक–कोष का ह्रास हुआ है। परिणाम स्वरूप सघन कृषि क्षेत्रों में गंधक के प्रयोग से उपज में आशाजनक वृद्धि देखी जा रही है। गंधक प्रोटीन संश्लेषण में नाइट्रोजन और फास्फोरस की तरह आवश्यक है। यद्यपि भू–पर्पटी में गंधक का बाहुल्य होता है परन्तु मिट्टी में यह प्रायः कम मात्रा में पाया जाता है। मिट्टी में मौजूद अधिकांश गंधक जैविक रूप में पाया जाता है। विघटन के फलस्वरूप यह पौधों को उपलब्ध होने की दशा में रूपान्तरित हो जाता है।

मिट्टी में गंधक के स्रोत

भू–पर्पटी में गंधक की मात्रा 0.06 प्रतिशत बताई गई है (क्लार्क 1924)। इस मात्रा का अधिकांश भाग जटिल कार्बनिक तथा शेष भाग अकार्बनिक रूपों में पाया जाता है। मिट्टी में उपस्थित गंधक के निम्नांकित स्रोत हैं:

1. मृदा खनिज

मिट्टी में संपूर्ण गंधक का प्रारम्भिक स्रोत प्लुटोनिक शैलों में सल्फाइड रूप में उपस्थित गंधक है। निबंधित जल निकासी वाली मिट्टियों में लौह, निकिल और ताम्र के सल्फाइड पाए जाते हैं जिनसे गंधक विमुक्त होता रहता है। ज्वारीय कच्छ क्षेत्रों की मिट्टियों में इन खनिजों की प्रचुरता होती है। विदारण–प्रक्रिया के फलस्वरूप सल्फाइड रूप में मौजूद गंधक सल्फेट रूप में परिवर्तित हो जाता है। परिस्थितियों के अनुसार इस सल्फेट का कुछ अंश मिट्टी में घुल जाता है, कुछ अवक्षेपित हो जाता है और कुछ भाग तत्वीय गंधक के रूप में भी अवकृत हो जाता है।

आर्द्र–क्षेत्रों की मिट्टियों में कार्बनिक रूप में उपस्थित गंधक की प्रधानता रहती है। इसके विपरीत शुष्क क्षेत्रों में कैल्शियम, मैग्नीशियम, सोडियम और पोटैशियम के सल्फेटो का बाहुल्य होता है। ऐसा देखा गया है कि मालीसाल और एरिडीसाल मृदा–समूहों की मिट्टियों के निचले संस्तरों में जिप्सम का संचय हो जाता है। शुष्क तथा अर्द्धशुष्क क्षेत्रों की मिट्टियों की ऊपरी सतह में सल्फेट युक्त लवणों का संचय हो जाता है।

वायुमण्डलीय गंधक

वायुमण्डल से भी गंधक की पूर्ति होती है। औद्योगिक प्रतिष्ठानों के समीप वाले क्षेत्रों में ईंधन (कोयला) के जलने के फलस्वरूप सल्फर डाई आक्साइड गैस उत्पन्न होती है जो कि वर्षा–जल के माध्यम से भू–सतह पर ला दी जाती है। प्रकृति में वायुमण्डल से मिट्टी, मिट्टी से पोधों तथा पौधों से पशुओं तक गंधक का आवागमन गंधक–चक्र द्वारा सम्पन्न होता है। विभिन्न देशों में वायुमंडल से होने वाली गंधक की वार्षिक पूर्ति का अनुमान लगाया गया है। संयुक्त राज्य अमेरिका में यह मात्रा 8–12, जर्मनी में 13 और आस्ट्रेलिया में 2 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर आंकी गई। बड़े उद्योग वाले क्षेत्रों में यह मात्रा बहुत अधिक हो जाती है। यही कारण है कि औद्योगीकरण के फलस्वरूप आसपास की बस्तियों में प्रदूषण की समस्या दिनों दिन बढ़ती जा रही है।

उर्वरक

मिट्टी में गंधक की पूर्ति उर्वरकों के माध्यम से भी की जाती है। कुछ उर्वरकों में गंधक पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। सारणी 7.10 में दिए गए

आंकड़ों से विभिन्न उर्वरकों में पाई जाने वाली गंधक की मात्रा का बोध होता है।

सारणी-7.10 प्रमुख उर्वरकों में गंधक की मात्रा

उर्वरक का नाम	गंधक की प्रतिशत मात्रा
अमोनियम सल्फेट	23.7
अमोनियम फास्फेट सल्फेट	15.4
अमोनियम फास्फेट	4.5
अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट	12 से 15
अमोनियम नाइट्रेट सल्फेट	5.4
सुपर फास्फेट (सिंगल)	12.4
बेसिक स्लैग (थामस)	3.4
पोटैशियम–मैग्नीशियम सल्फेट	22.4
पोटैशियम सल्फेट	17.8
जिप्सम	23.5
जिंक सल्फेट	17.8
कापर सल्फेट	12.8
फेरस सल्फेट	18.8
मैंगनीज सल्फेट	12.4

जैविक-पदार्थ

विभिन्न प्रकार की जैविक खादों तथा पादप अवशेषों से गंधक की पूर्ति होती है।

मिट्टी में गंधक के स्रोत

भू–पपड़ी में गंधक की मात्रा 0.06 से 0.1 प्रतिशत बताई गयी है। मिट्टी में तत्व की मात्रा के अनुसार इसका 13 वॉं स्थान है। यह तत्व रूप में पाये जाने के अतिरिक्त सल्फाइड और सल्फेट के रूप में भी पाया जाता है तथा

कार्बन और नाइट्रोजन के साथ कार्बनिक पदार्थों में भी संयुक्त रहता है। चट्टानों और मिट्टियों में जिप्सम ($CaSO_4.2H_2O$) एनहाइड्राइड ($CaSO_4$) इप्सोमाइट ($MgSO_4.7H_2O$) मिशबिलाइट ($Na_2SO_4.10H_2O$) पाइराइट या मार्कासाइट (FeS_2) स्फालेराइट (ZnS) चाल्को पाइराइट ($CuCeS_2$) एवं कोबाल्टाइट (cuAsS) जैसे गंधकधारी खनिज मुख्य हैं।

तत्वीय गंधक नमक के दूहों पर जमा हो जाते हैं। इसके अलावा ज्वालामुखीय तथा कैल्साइट जिप्सम और एनहाइड्राइट के सम्पर्क से विघटित होकर तत्व रूप में पाया जाता है।

ज्वालामुखी क्रियाओं में फलस्वरूप गन्धक की थोड़ी मात्रा गैसीय–आक्साइड के रूप में निकलती है। ज्वालामुखी, जलतापीय तथा जैविक माध्यम से गन्धक हाइड्रोजन सल्फाइड के रूप में निकलती है इसके अलावा क्रूड तेल, कोयला आदि में गन्धक कार्बनिक यौगिकों के रूप में पाया जाता है। सिलिकेट खनिजों में गन्धक की मात्रा साधारणतः 0.01 प्रतिशत से कम होती है किन्तु बायोटाइट, क्लोराइट और संस्तर टाइप क्ले खनिजों में यह प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। अम्लीय आग्नेय चट्टानों में गन्धक की मात्रा 0.02 प्रतिशत और क्षारीय में 0.07 प्रतिशत तक पायी जाती है। अवशादी चट्टानों में यह मात्रा 0.2 से 0.22 प्रतिशत तक पाई जाती है। अतः विभिन्न मिट्टियों में यह गन्धक के महत्वपूर्ण स्रोत माने जाते हैं। इन चट्टानों के अपक्षय के फलस्वरूप खनिजों का विघटन होता है और सल्फाइड का आक्सीकरण सल्फेट रूप में हो जाता है। शुष्क तथा अर्धशुष्क जलवायु की दशाओं में यह सल्फेट अवक्षेपण के फलस्वरूप घुलनशील तथा अघुलनशील सल्फेट लवणों में परिवर्तित हो जाते हैं। भूमि में उपस्थित जीव या तो इसका उपयोग करते हैं अथवा अवातित दशाओं में यह सल्फाइड या तत्वीय गन्धक के रूप में अवकृत हो जाता है। सल्फेट का बाहुल्य न केवल चट्टानों और मिट्टियों में है बल्कि समुद्री जल में इसकी मात्रा लगभग 2700 पीपीएम तक पायी गयी। अन्य प्राकृत जलों में इसकी मात्रा 0.5 से 50 पीपीएम तक पायी जाती है किन्तु अत्यन्त लवणीय झीलों के जल में इसकी सान्द्रता 60,000 पीपीएम तक पायी गयी।

अधिकांश कृषि योग्य भूमि में गंधक, जीवांश–पदार्थ, मृदा–विलयन में घुलनशील सल्फेट रूप में या मृदा संकुल पर अधिशोषित रूप में पाया जाता है। ज्ञातव्य है कि गंधक प्रोटीन का एक अवयव है और जब जीवांश पदार्थ

मिट्टी में डाला जाता है तो इससे ह्युमस बनता है और गन्धक का मुख्य अंश कार्बनिक रूप में पाया जाता है। आर्द्र क्षेत्रों की मिट्टियों की उपरी सतह में पाये जाने वाले गंधक की कुल मात्रा का अधिकांश भाग कार्बनिक रूप में पाया जाता है। शुष्क क्षेत्रों की मिट्टियों में गंधक कैल्शियम, मैग्नीशियम, सोडियम और पोटैशियम के सल्फेटों के रूप में मृदा–परिच्छेदिका में अवक्षेपित रूप में पाया जाता है।

मिट्टियों में गन्धक की मात्रा

भारतीय मिट्टियों में गंधक की कुल मात्रा 19 से 3836 पीपीएम पायी गयी। सारणी 7.11 में राज्य, जनपद तथा विकास क्षेत्रों की विभिन्नता के अनुसार भिन्न–2 मात्राएं रिपोर्ट की गयी है। सामान्यतया मोटे गठन वाली हल्की मिट्टियों में गन्धक की कुल मात्रा कम पायी गयी। क्षारीय मिट्टियों की तुलना में अम्लीय मिट्टियों में यह मात्रा अधिक पायी गयी।

पंजाब की बलुई एवं मटियार बलुई मिट्टियों में गन्धक की कुल मात्रा 59 पीपीएम जबकि बलुई दोमट और दोमट मिट्टियों में जैव कार्बन की मात्रा 0.21 प्रतिशत तथा साद वाली मिट्टियों में 0.52 प्रतिशत पायी गयी। पर्वतीय मिट्टियों में ऊंचाई के साथ विभिन्न रूपों में पाये जाने वाले गन्धक की मात्रा में वृद्धि पायी गयी (सारणी 7.12)।

मिट्टी में जीवांश पदार्थ की मात्रा, कुल नाइट्रोजन, कार्बनिक फास्फोरस, सल्फेट–युक्त लवण, मृत्तिका की मात्रा, पीएच, जलवायु तथा समुद्र तल से ऊंचाई, वनस्पति आदि का गन्धक की कुल मात्रा पर प्रभाव पड़ता है। भारत की उष्ण मिट्टियों में शीतोष्ण क्षेत्र की मिट्टियों की तुलना में गन्धक की मात्रा कम पायी गयी।

अम्ल सल्फेट और लवणीय मिट्टियाँ इसके अपवाद स्वरुप हैं।

परिच्छेदिका में वितरण

अधिकांश मिट्टियों में गहराई के साथ गन्धक की कुल मात्रा में कमी आई, कुछ जलोढ़–क्षारीय मिट्टियों में, जिनमें कार्बनिक पदार्थ की मात्रा कम पायी जाती है उनमें गहराई के साथ गन्धक की कुल मात्रा की कमी में कोई निश्चित क्रम नहीं देखा गया क्योंकि इनमें गन्धक मुख्यतः कार्बनिक रूप में पाया जाता है।

सारणी-7.11 भारतीय मिट्टियों में गन्धक की कुल मात्रा का वितरण

राज्य	कुल गन्धक, मि.ग्रा./कि.ग्रा.	
	परास	औसत
आन्ध्र प्रदेश	621–2310	1300
बिहार	127–2045	577
गुजरात 'क'	42–173	74
गुजरात 'ख'	85–3836	–
हिमाचल प्रदेश	150–440	–
कर्नाटक	580–1010	196
महाराष्ट्र	95–513	265
पंजाब (क)	99–307	183
पंजाब (ख)	26–302	125
राजस्थान	100–3250	1577
तमिलनाडु	89–2256	1354
उत्तर प्रदेश 'क'	93–107	147
उत्तर प्रदेश 'ख'	213–582	377
पश्चिमी बंगाल	19–333	131

स्रोत: टण्डन (1986)

सारणी-7.12 हिमाचल प्रदेश की पर्वतीय मिट्टियों में ऊंचाई के अनुसार गन्धक की कुल एवं उपलब्ध मात्रा (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)

ऊंचाई मी.	नमनों की संख्या	पीएच	जैव कार्बन (प्रतिशत)	कुल गन्धक	कार्बनिक गन्धक	उपलब्ध गन्धक
610	17	6.1–7.8	0.48	205	106	12
611–925	14	5.3–7.4	0.61	222	128	25
916–1220	9	5.1–0.80	0.80	306	162	19
1220	14	5.1–601	0.92	367	189	24

स्रोत: सिहं इत्यादि (1976)

कार्बनिक-गन्धक

जलोढ़ मिट्टियों में कार्बनिक गन्धक की मात्रा 7 से 109 पीपीएम, पर्वतीय मिट्टियों में 88–318 पीपीएम, तराई मिट्टियों में 65–135 पीपीएम तथा अन्य मिट्टियों में 34 से 1646 पीपीएम पायी गयी। गन्धक की कुल मात्रा का जलोढ़ मिट्टियों में 16 से 89 प्रतिशत, पर्वतीय मिट्टियों में 53–98 प्रतिशत तथा अन्य मिट्टियों में 26–70 प्रतिशत कार्बनिक गन्धक के रूप में पाया गया। मिट्टी में कुल गन्धक के समान कार्बनिक गन्धक का वितरण गहराई के साथ घटते क्रम में देखा गया। विभिन्न मृदा कारकों के साथ इसका सह–सम्बन्ध गन्धक की कुल मात्रा के समान देखा गया।

सल्फेट रहित गन्धक

मिट्टी से कार्बनिक–गन्धक और सल्फेट रूप में पाये जाने वाले गन्धक के निष्कर्षण के बाद गन्धक की शेष मात्रा जो मृत्तिका में बन्धित और कार्बोनेट पर अधिशोषित रहती है, सल्फेट रहित गन्धक कहलाती है। इसमें मुख्य रूप से बेरियम, कैल्शियम इत्यादि के अघुलनशील गन्धक यौगिक होते हैं। साधारणतः भारतीय मिट्टियों में इस रूप में उपस्थित गन्धक की मात्रा 1–248 पीपीएम तक पायी गयी है और कुल गन्धक की मात्रा का 1–75 प्रतिशत गन्धक इस रूप में पाया जाता है। पर्वतीय और तराई मिट्टियों को छोड़कर अधिकांश मिट्टियों की ऊपरी सतह में इस रूप में पाये जाने वाले गन्धक की मात्रा बहुत कम होती है। क्षारीय चुनही मिट्टियों में यह अधिक मात्रा में पाया जाता है। अम्लीय और पर्वतीय मिट्टियों के ऊपरी सतह में भी इसकी मात्रा काफी कम होती है परन्तु अधो–सतह में यह अधिक मात्रा में पाया जाता है। अधिक अम्लता और वर्षा के फलस्वरूप गन्धक का नीक्षालन हो जाने के कारण अधो–सतह में गन्धक की मात्रा बढ़ जाती है।

सल्फेट गन्धक का उपलब्ध गन्धक

पौधे अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए गन्धक का अवशोषण सल्फेट आयन के रूप मे करते हैं। इस धूल के अन्तर्गत जल विलेय, अधिशोषित और मृदा के कार्बनिक पदार्थ से आसानी से मुक्त होने वाला गन्धक आता है। मिट्टियों में गन्धक की उपलब्ध मात्रा की जानकारी के लिए विभिन्न प्रकार के निष्कर्षक विलयन उपयोग में लाये जाते हैं और उन्हीं के अनुसार इनकी मात्रा में अन्तर पाया जाता है आमतौर पर 0.15 प्रतिशत कैल्शियम क्लोराइड

निष्कर्षित गन्धक की मात्रा 10 पीपीएम से कम होने पर गन्धक की कमी का संकेत मिलता है। तिवारी एवं सहयोगियों (1983) ने बताया है कि एक ही प्रकार की मिट्टियों के लिए कई निष्कर्षक विलयन उपयोग में लाये जा सकते हैं। संबंधित परिणाम रेखाचित्र 7 में दिये गये हैं।

सर्वप्रथम दत्त (1962) ने गंधक की कमी पश्चिमी बंगाल में गन्ने की फसल में देखी परन्तु भारतीय मिट्टियों में गंधक के इस्तेमाल से फसलोत्पादन में होने वाली वृद्धि की सही जानकारी कवर (1963) तथा कवर एवं टक्कर (1963) के अध्ययनों के फलस्वरूप हो सकी। इस अध्ययन से पता चला कि लुधियाना जिले के 75 प्रतिशत मूंगफली वाले खेतों में गन्धक की कमी है। इसी प्रकार हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा घाटी, जो पहले पंजाब राज्य में था के 75 प्रतिशत चाय वाले बागानों की मिट्टियों में गंधक की कमी पायी गयी। इसके बाद नायक और दास (1964) ने भारत के जलोढ़, लेटेराइट और लाल मिट्टियों में गंधक की कमी का अनुमान लगाया। अहमद और झा (1969) के शोध कार्यों से बिहार राज्य की मिट्टियों में गंधक की कमी की जानकारी हुई। इसके अतिरिक्त पाल और मोती रमानी (1971) ने मध्य प्रदेश, रेड्डी और मेहता (1970) ने गुजरात, भारद्वाज और पाठक (1979), भान तथा त्रिपाठी (1973), हसन (1980) ने उत्तर प्रदेश की मिट्टियों में गन्धक की उपलब्धता संबंधी जानकारी दी। हाल की खोजो से कर्नाटक (विजयाचन्द्रन 1983), आन्ध्र प्रदेश (सुब्बाराव 1975), गुजरात (डॉगरवाला 1983) हरियाणा (अहमद 1984), केरल (विजयाचन्द्रन 1984), मध्य प्रदेश (मोती रमानी (1983), महाराष्ट्र (घोंसीकर 1983, जेन्दे 1983), पंजाब (टक्कर 1984) तथा उत्तर प्रदेश (तिवारी 1990, 1991) में गन्धक की कमी की पुष्टि हुई है।

उल्लेखनीय है कि गन्धक की कमी आमतौर पर हल्के गठन वाली मिट्टियों जिनमें जीवांश पदार्थ की मात्रा बहुत कम होती है, विशेष रूप से पायी जाती है। ऐसी मिट्टियों में निःक्षालन द्वारा गंधक की हानि हो जाती है। आर्द्र क्षेत्रों की अम्लीय मिट्टियों में निःक्षालन द्वारा गन्धक की हानि हो जाने से इन मिट्टियों में गन्धक की कमी हो जाती है। इसके अतिरिक्त इन क्षेत्रों में भूक्षरण के फलस्वरूप भी मिट्टी में गंधक की ह्रास हो जाती है। आजकल यूरिया, डाई अमोनियम फास्फेट, नाइट्रोजन फास्फेट एवं अन्य सान्द्रित उर्वरकों का अधिकाधिक इस्तेमाल होने के कारण मिट्टी में गन्धक की कमी बढ़ी है। उल्लेखनीय है कि इन उर्वरकों में गंधक की मात्रा नगण्य

होती है। दिल्ली में किये गये एक दीर्घकालीन परीक्षण से पता चला कि लगातार गंधक–विहीन उच्च–विश्लेषी उर्वरकों के इस्तेमाल से मिट्टी में गन्धक का अभाव हो जाता है।

सल्फेट अभिग्रहण

मिट्टियों के सल्फेट अभिग्रहण क्षमता में अन्तर पाया जाता है। कुछ मिट्टियों में सल्फेट अभिग्रहण क्षमता बहुत थोड़ी या नगण्य होती है जबकि अन्य में यह पौधों के गन्धक आवश्यकता की पूर्ति हेतु, नीक्षालन द्वारा गन्धक की हानि को रोकने हेतु और मृदा–परिच्छेदिका में गन्धक–वितरण के अनुमान हेतु इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

सल्फेट अभिग्रहण, सुगमतापूर्वक उत्क्रमणीय होता है और मिट्टी के विभिन्न गुणों द्वारा प्रभावित होता है। इनमें से प्रमुख निम्नांकित हैं:–

मृत्तिका की मात्रा और मृत्तिका खनिज की किस्म

मिट्टियों में मृत्तिका की मात्रा में वृद्धि के साथ सल्फेट अभिग्रहण में वृद्धि होती है। केओलिनाइट खनिज की प्रधानता वाली मिट्टियों में मान्टमोरिलोनाइट की तुलना में सल्फेट अभिग्रहण अधिक होता है। हाइड्रोजन संतृप्त मृत्तिका की सल्फेट अभिग्रहण क्षमता इस प्रकार रही:

केओलिनाइट > इलाइट > बेन्टोनाइट

एल्युमिनियम से संतृप्त होने के बाद केओलिनाइट व इलाइट की अभिग्रहण क्षमता एक समान हो जाती है परन्तु बेम्टोनाइट की फिर भी कम बनी रहती है।

पी एच

मृदा–तन्त्र में सल्फेट अभिग्रहण के लिए अम्लीय दशायें अनुकूल होती हैं। मिट्टी में बढ़ने के साथ ही सल्फेट का अभिग्रहण अधिक होता है।

पीएच मान 6.5 से ऊपर होने पर सल्फेट अभिग्रहण की मात्रा नगण्य हो जाती है।

हाइड्रस आक्साइड

एल्यूमिनियम हाइड्रस आक्साइड्स की मात्रा बढ़ने से सल्फेट अभिग्रहण अधिक होता है। लौह हाइड्रस आक्साइड का भी सल्फेट अभिग्रहण पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। अधिकांश मिट्टियों में यही यौगिक सम्भवतयः सल्फेट अभिग्रहण के लिए उत्तरदायी होते हैं।

मृदा संस्तर या गहराई

नीचे संस्तरों की मिट्टियों की सल्फेट अभिग्रहण क्षमता अधिक होती है क्योंकि इन संस्तरों में मृत्तिका और लौह तथा एल्यूमिनियम आक्साइडों की मात्रा अधिक होती है।

सल्फेट सान्द्रता

सल्फेट की अभिग्रहीत मात्रा मृदा विलयन में सल्फेट की सान्द्रता पर निर्भर करती है। अभिग्रहित सल्फेट और मृदा विलयन में उपस्थित सल्फेट एक गतिक सन्तुलन में पाये जाते हैं

समय का प्रभाव

समयकाल बढ़ने से सल्फेट–अभिग्रहण अधिक होता है।

अन्य आयनों की उपस्थिति

सल्फेट आमतौर पर विभिन्न ऋणायनों द्वारा दुर्बलता से बंधित रहता है। विभिन्न ऋणायनों की प्रतिधारण शक्ति को इस घटते क्रम में देखा गया है:

हाइड्राक्सिल > फास्फेट > सल्फेट एसीटेट > नाइट्रेट = क्लोराइड

उल्लेखनीय है कि फास्फेट, सल्फेट अभिग्रहण को घटाने की क्षमता रखता है किन्तु सल्फेट का फास्फेट पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। क्लोराइड का सल्फेट अभिग्रहण पर बहुत थोड़ा प्रभाव पड़ता है। मालिब्डेट सल्फेट अभिग्रहण घटाने में सक्षम हैं।

धनायनों का प्रभाव

विनिमेय धनायनों या लवणों के सम्बन्धित धनायन सल्फेट–अभिग्रहण को प्रभावित करते हैं। इनके प्रभाव को इस क्रम में दर्शाया जा सकता है।

$H+ > Sr+ > Ba^{2+} > Ca^{2+} > Mg^{2+} > Rb^{+} > K^{+} > NH4^{+} > Na^{+} > Li^{+}$

लवण के धनायन और सल्फेट दोनों ही अभिग्रहित हो जाते हैं किन्तु अभिग्रहण शक्ति में ऋणायनों और धनायनों के अनुसार अन्तर पाया जाता है।

पोधों के पोषण में गंधक का महत्व

पौधों में गंधक का कार्य इस प्रकार है:

(1) पौधे गंधक को सल्फेट आयन के रूप में ग्रहण करते हैं जो कि अवकरण के पश्चात् जैविक यौगिकों में समाहित हो जाता है।

(2) यह सिस्टीन, सिस्टाइन और मिथियोनीन जैसे अमीनों अम्लों का अवयव है थियामाइन, बायोटिन और को–इन्जाइम 'ए' में गंधक पाया जाता है।

(3) फेरेडाक्सिन और प्रकाश–संश्लेषण में भाग लेने वाले हीम रहित लोहा–प्रोटीन में गंधक की मात्रा लोहे के बराबर होती है। गंधक युक्त वाष्पशील यौगिकों की उपस्थिति के कारण प्याज, सरसों और अन्य पौधों एवं पादप–सामग्रियों में एक विशेष प्रकार की गंध आती है।

(4) प्रोटीन एक ऐसा यौगिक है जिसमें पादप ऊतकों का अधिकांश नाइट्रोजन और गंधक सन्निहित रहता है। पौधों में नाइट्रोजन और गंधक एक निश्चित अनुपात में पाया जाता है यदि इन तत्वों का अलाभकर उपयोग न हो तो राई घास जैसे पौधों में पायी जाने वाली प्रोटीन के एक गंधक अणु के लिए नाइट्रोजन के 36 अणुओं की आवश्यकता होती है, पौधों में आमतौर पर नाइट्रोजन की 1.5 प्रतिशत तथा गंधक की 0.1 प्रतिशत मात्रा पर्याप्त समझी जाती है। इस सान्द्रता पर नाइट्रोजन और गंधक अणु 34:1 अनुपात में पाए जाते हैं।

3261 HRD/2000—20
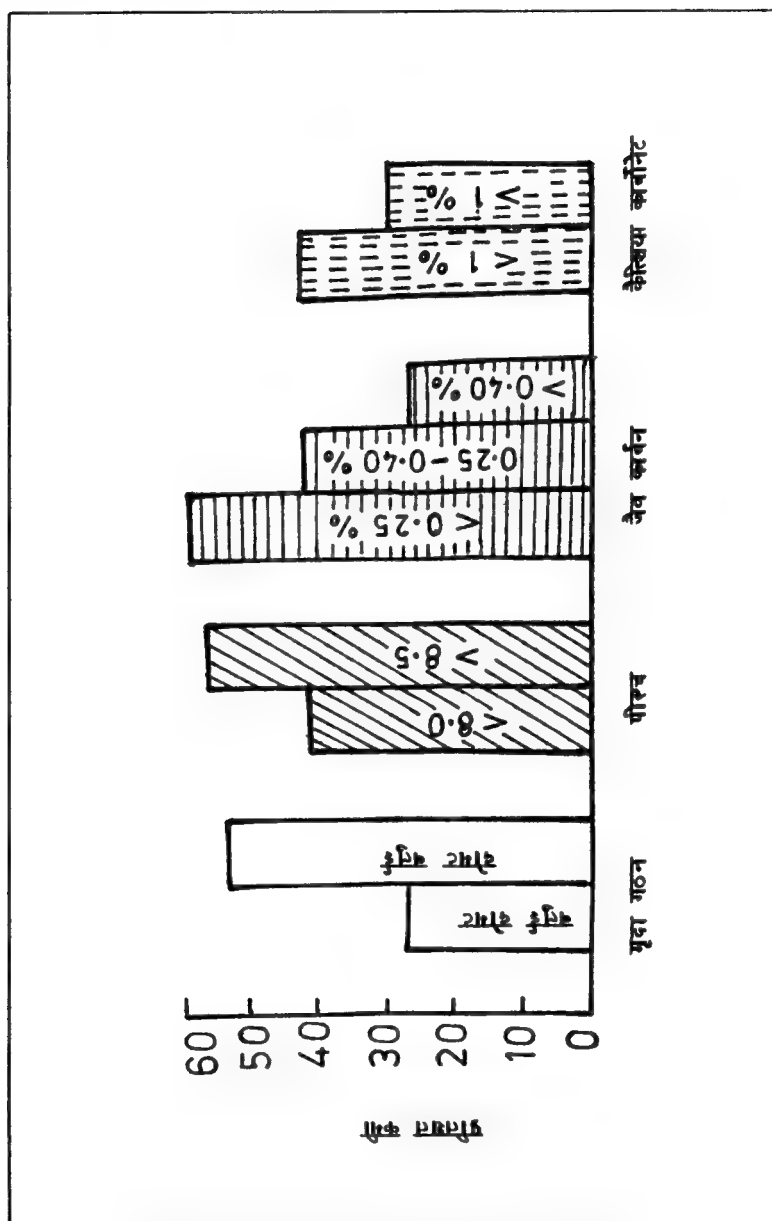
रेखाचित्र-7.1 मृदा गुणों का गंधक की कमी पर प्रभाव
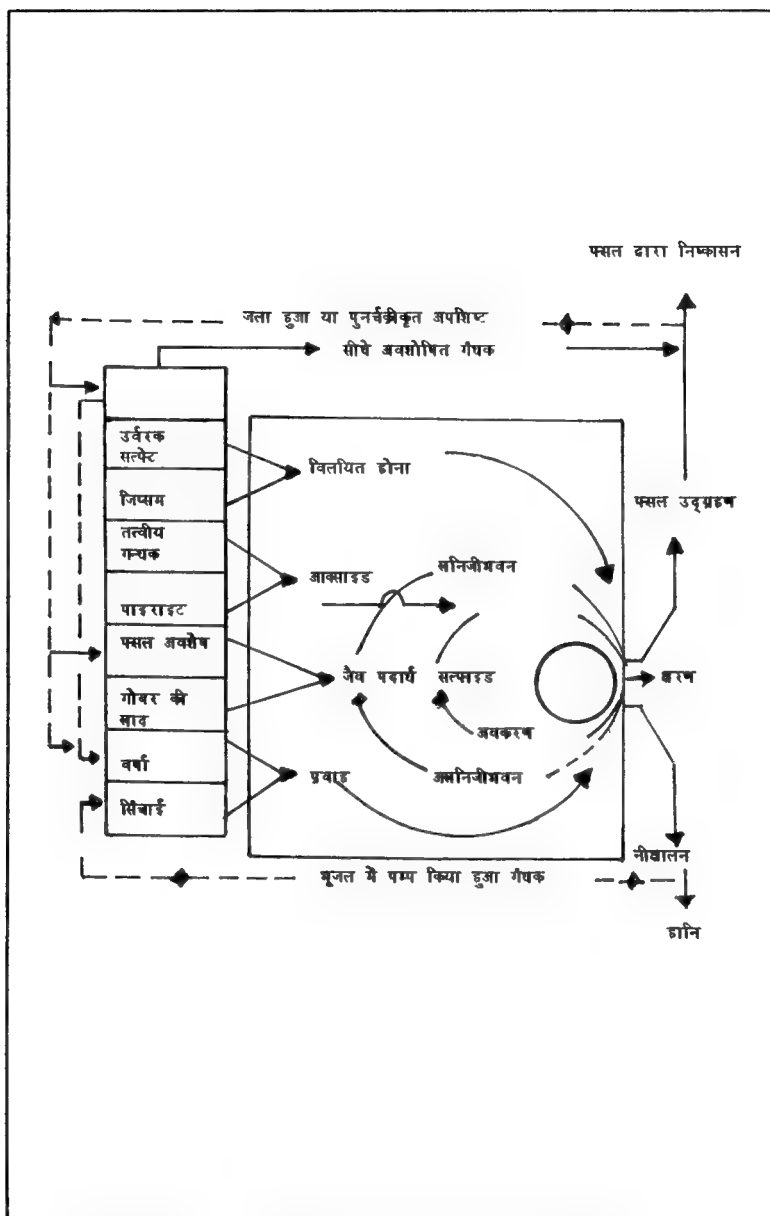
रेखाचित्र-7.2 भारत की कृष्य मिट्टियों में गंधक का गतिक चक्र

(5) गंधक कुछ एन्जाइम की क्रियाशीलता को बढ़ाता है।

(6) कार्यविशेष के लिए यह फास्फोरस का विकल्प भी हो सकता है।

(7) गंधक की कमी के कारण प्रकाश संश्लेषण कम होता है और कार्बोहाइड्रेट की मात्रा में भी कमी आ जाती है। घुलनशील नाइट्रोजन बन्धन की मात्रा बढ़ जाती है क्योंकि गन्धक की कमी के कारण प्रोटीन संश्लेषण में नाइट्रोजन युक्त जीवाधार का उपयोग नहीं हो पाता।

अभाव के लक्षण

पौधों में गंधक की कमी के लक्षण नाइट्रोजन से मिलते जुलते हैं फिर भी अन्तर इतना अवश्य होता है कि गन्धक की कमी के लक्षण सर्वप्रथम नई पत्तियों पर और नाइट्रोजन के पुरानी पत्तियों पर दृष्टिगोचर होते हैं। पत्तियों का आकार छोटा होना तथा पीला पड़ना गंधक के अभाव के सामान्य लक्षण हैं। पौधों में गंधक के साथ ही नाइट्रोजन की भी कमी होने पर पूरा पौधा पीला दिखाई देने लगता है।

उग्र कमी की स्थिति में नई पत्तियों की नोकों तथा किनारों का झुलसना तने की पौरी (Intemode) का छोटा होना, पार्श्विक कलियो का अपूर्ण विकास, मृत अग्रभाग वाली अनेक शाखाओं की उत्पत्ति, प्ररोह पश्चमारी (Shootdie back) आदि लक्षण दिखायी देते हैं।

फसलों की गन्धक की आवश्यकता

जहां तक फसलों की गंधक–आवश्यकता का प्रश्न है, यह या तो फास्फोरस के बराबर या कुछ फसलों जैसे–दलहनी और तिलहनी फसलों की गंधक आवश्यकता फास्फोरस से भी अधिक है। टण्डन (1905) द्वारा संकलित आंकड़ों से इस कथन की पृष्टि हो जाती है (सारणी 7.13)।

उपरोक्त विवरण से यह सर्वथा स्पष्ट है कि फास्फोरस की तुलना में गंधक की आवश्यकता का अनुपात (फास्फोरस : गंधक) अनाज वाली फसलों के लिए 1.3, दलहनी चारों के लिए 0.8 और तिलहनी फसलों के लिए 0.6 रहता है। इससे पुनः स्पष्ट हो जाता है कि तिलहनी फसलों द्वारा गंधक का अवशोषण फास्फोरस की तुलना में दो गुना अधिक होता है। दलहनी फसलें

सारणी-7.13 फसलों की गंधक–आवश्यकता

फसलें	एक टन खाद्यान्न उत्पादन हेतु गंधक की अवशोषित मात्रा (कि.ग्रा.)
अनाज (गेहूं, धान)	3–4
ज्वार और प्रकुंगु	5–8
दाल वाली और अन्य	
दलहनी फसलें	8
तिलहनी फसलें	12

गंधक की कमी के प्रति संवेदलशील होती हैं। इन सारे तथ्यों के बावजूद पोषक उर्वरक के रूप में गंधक के महत्व की मान्यता अभी बहुत कम है। खेद का विषय है कि हम फसलों की आवश्यकता के अनुरूप गंधक का इस्तेमाल नहीं कर रहे हैं। ज्ञातव्य है कि खाद्य तेलों और प्रोटीनयुक्त भोजन की कमी की दशा में गंधक का महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। आज जब हम दलहनी और तिलहनी फसलों की उत्पादन बढ़ाने को प्राथमिकता दे रहे हों उस दशा में गंधक का समुचित उपयोग निश्चित रूप से कारगर सिद्ध होगा।

भारत में गंधक के प्रयोग का फसलोत्पादन पर प्रभाव

मूंगफली

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि तिलहनी फसलों की गंधक आवश्यकता काफी अधिक होती है। पश्रिचा और औलख (1969) ने मूंगफली की गंधक के प्रति अनुक्रिया सम्बन्धी अध्ययनों से प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि इस फसल में गंधक के प्रयोग से उपज में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। बादीगर इत्यादि (1982) ने असिंचित दशा में कर्नाटक राज्य में उगायी गयी मूंगफली की उपज में काफी वृद्धि रिकार्ड की। टण्डन (1986) ने भारत में किये गये विभिन्न परीक्षणों में 0.8 से 4.8 कुन्तल प्रति हेक्टर की वृद्धि देखी। कृषकों के खेतों पर किये गये प्रदर्शनों में गंधक के प्रयोग से पंजाब में 5.77 कुन्तल और उत्तर प्रदेश में 3.25 कुन्तल प्रति हैक्टर अतिरिक्त उपज मिली (पुरी 1984)। कानपुर में किये गये अध्ययनों में मूंगफली की उपज में अधिकतम वृद्धि 4.33 कुन्तल प्रति हेक्टर पायी गयी (तिवारी 1988)।

सरसों

देश के विभिन्न भानों में किये गये परीक्षणें में गन्धक के प्रयोग के सरसों की उपज में उल्लेखनीय वृद्धि की सूचना औलखा इत्यादि (1980), अंकीनीडू इत्यादि (1983), तिवारी इत्यादि (1984, 1986), चटर्जी इत्यादि (1983) ने दी है। खेत में किये गये परीक्षणों के परिणामों का संकलन टक्कर (1987) ने किया है। इन परिणामों से पता चला है कि सिंचित तथा असिंचित दोनों ही दशाओं में गंधक के प्रयोग से सरसों की उपज में वृद्धि होती है। सिंचित और असिंचित दशाओं में उपज वृद्धि की दर पंजाब और हरियाणा में क्रमशः 120 से 342 और 50 से 510 किलोग्राम प्रति हैक्टर, उत्तर प्रदेश मे 120 से 840 तथा 160 से 420 किलोग्राम प्रति हैक्टर और राजस्थान में 180 से 910 तथा 120 से 510 किलोग्राम प्रति हैक्टर पायी गयी। इन परिणामों में स्पष्ट है कि असिंचित दशा में सरसों की फसल गंधक के प्रयोग से विशेष लाभान्वित होती है।

सूरजमुखी, कुसुम और अलसी

जैन इत्यादि (1984) ने राजस्थान की काली मिट्टियों, रावत और घोन्सिकर (1978) ने महाराष्ट्र की काली मिट्टियों तथा बादीगर इत्यादि (1982) एवं सिंह (1983) ने कर्नाटक की लाल मिट्टियों में गंधक के प्रयोग से सूरजमुखी की उपज में सार्थक वृद्धि पायी। कर्नाटक की लाल मिट्टियों में गंधक के प्रयोग से कुसुम की उपज में वृद्धि हुई (बादीगर और शिवराज (1988))। पंजाब की जलोढ़ मिट्टियों (पशिरचा इत्यादि 1987) और उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र की मिट्टियों (गंगवार तथा परमेश्वरन 1976) ने अलसी की उपज में सार्थक वृद्धि पायी।

दलहनी फसलें

उल्लेखनीय है कि दालों में प्रोटीन की प्रचुरता होने के कारण दलहनी फसलें गंधक के प्रयोग से विशेष लाभान्वित होती है। पंजाब (औलख और पशिरचा 1979, और औलख इत्यादि 1977), और उत्तर प्रदेश (तिवारी इत्यादि 1985) की जलोढ़ मिट्टियों तथा राजस्थान की काली मिट्टियों (जैन इत्यादि 1984) में गंधक के प्रयोग से दलहनी फसलों की उपज में वृद्धि देखी गयी। राजस्थान की काली मिट्टियों में 250 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से गंधक का इस्तेमाल करने पर मटर और मूंग की उपज दो गुना हो गयी। टक्कर

(1987) ने भारत में किये गये परीक्षणों के आधार पर प्रति किलोग्राम गंधक द्वारा विभिन्न फसलों की उपज में वृद्धि का उल्लेख किया है जो कि चना में 2 से 27 किलोग्राम, सोयाबीन में 3.5 से 16.3 किलोग्राम, मसूर में 2.7 से 10.0 किलोग्राम, मूंग में 1.5 से 9.7 किलोग्राम, उर्द में 1.1 से 6.4 किलोग्राम, मटर में 1.7 से 6.5 किलोग्राम और अरहर में 3.0 किलोग्राम थी। तिवारी और सहयोगियों (1985) में पाइराइट के प्रयोग से रवी दलहनों की उपज में उल्लेखनीय वृद्धि रिपोर्ट की। मसूर की फसल गंधक के प्रयोग से सबसे अधिक लाभान्वित हुई। इसके बाद क्रमशः चना और मटर का स्थान रहा (रेखा चित्र 7.3)। औलख और पश्रिचा (1986) ने दलहनी फसलों में गंधक के प्रभाव का अध्ययन किया। जलोढ़ और काली मिट्टियों में जहां गंधक की कमी हो वहां गंधक के प्रयोग से दलहनी फसलों की उपज में होने वाली वृद्धि आर्थिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण पायी गयी है।

गेहूं

पंजाब (औलख इत्यादि 1977), उत्तर प्रदेश (तिवारी इत्यादि 1984) की जलोढ़ मिट्टियों तथा राजस्थान (जैन इत्यादि, 1984) और मध्य प्रदेश शिन्दे (1983) की काली मिट्टियों में गंधक से गेहूं की उपज में सार्थक वृद्धि हुई। वृद्धि की दर उत्तर प्रदेश की तुलना में मध्य प्रदेश में अधिक थी (टक्कर 1987)। लुधियाना में किये गये परीक्षणों से पता चला है कि गेहूं की विभिन्न प्रजातियों की गंधक के प्रति अनुक्रिया में अन्तर पाया जाता है। 40 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से गंधक का प्रयोग करने पर प्रतिकिलोग्राम गंधक द्वारा एस–308, डब्ल्यू जी–357, पीवी–18, तथा के–227 में वृद्धि की दर क्रमशः 42, 34, 26 और 19 किलोग्राम अतिरिक्त उपज प्राप्त हुई। अतः स्पष्ट है कि गेहूं की एस–308 और डब्ल्यू जी–357 प्रजातियां गंधक के प्रयोग से विशेष लाभान्वित होती हैं।

धान

उत्तर प्रदेश (तिवारी इत्यादि 1983), दिल्ली (दास और दत्ता 1973), पश्चिमी बंगाल (घोष 1980) और राजस्थान (जैन इत्यादि 1984) में धान की गंधक के प्रति सार्थक अनुक्रिया देखी। हाल के कुछ वर्षों में सिंचाई साधनों में वृद्धि के साथ मक्का और बाजरा का स्थान धान ने ले लिया है। इन क्षेत्रों की मिट्टियाँ मोटे गठन की है। अतः इन क्षेत्रों में गंधक की कमी धान की उच्च्य उपज के लिए बाधक सिद्ध हो सकती है।
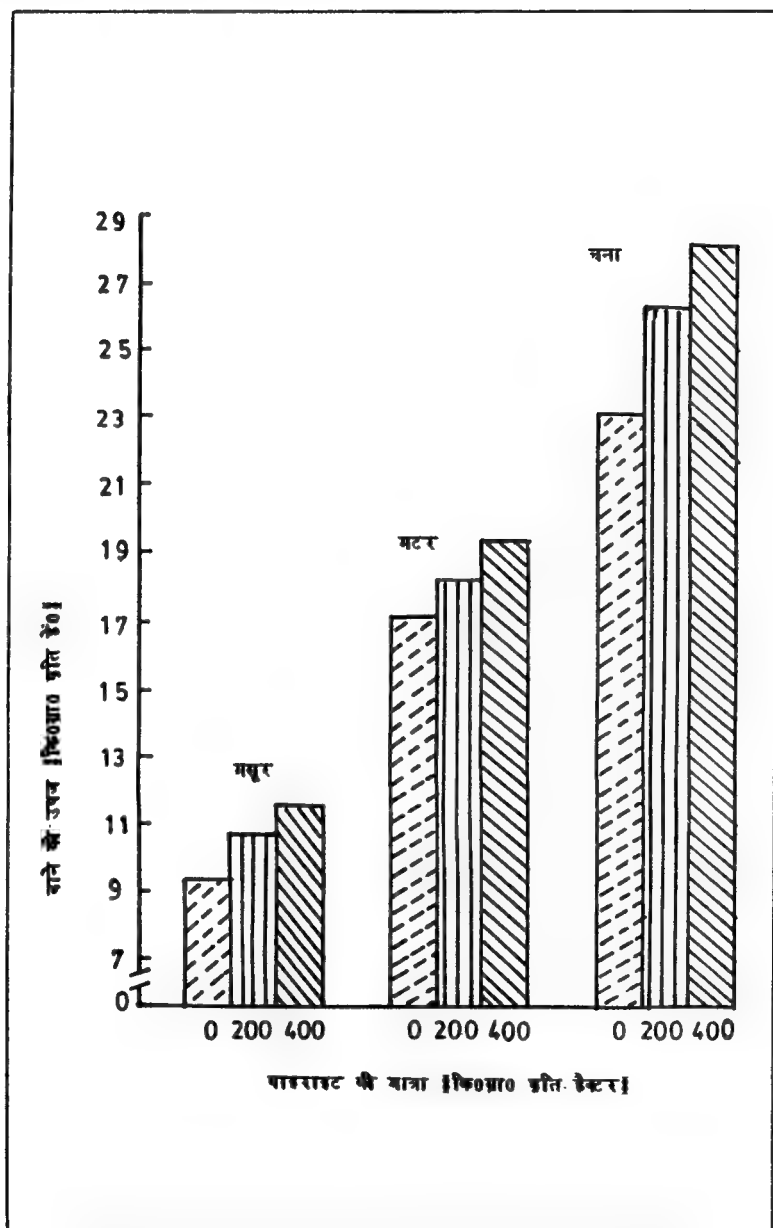
रेखाचित्र-7.3 मसूर, मटर और चने की उपज पर पाइराइट का प्रभाव

मक्का

दिल्ली की जलोढ़ मिट्टियों में गंधक के प्रयोग से मक्के की उपज में सार्थक वृद्धि हुई।

ज्वार और बाजरा

महाराष्ट्र की काली मिट्टियों में ज्वार तथा राजस्थान की बलुई मिट्टियों में बाजरे में गंधक के प्रयोग से उपज में वृद्धि हुई।

नकदी फसलें

आलू में 25 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से गंधक के प्रयोग से 29 प्रतिशत अतिरिक्त उपज मिली और पुनः 50 किलोग्राम प्रति हैक्टर गंधक की मात्रा द्वारा उपज में पुनः वृद्धि हुई (औलख इत्यादि 1977)।

क्षारीय चुनही मटियार दोमट मिट्टियों में 500 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से गंधक का प्रयोग करने पर सरोहा तथा सिंह (1979) ने गन्ने की उपज में उल्लेखनीय वृद्धि देखी। बरसीम में 60 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से पाइराइट द्वारा गंधक देने पर उपज में उल्लेखनीय वृद्धि हुई (तिवारी इत्यादि 1985 सी) फसलों की गंधक के प्रति अनुक्रिया संबंधी परीक्षणों के परिणामों का संकलन टण्डन (1986) ने किया है, जिन्हें सारणी 7.14 में दिया जा रहा है।

गंधकधारी-उर्वरक

इसके पूर्व सारणी 7.10 में गंधकधारी उर्वरकों में गंधक और अन्य तत्वों की मात्रा सम्बन्धी विवरण प्रस्तुत किया गया है। स्पष्ट है कि विभिन्न उर्वरकों में गंधक की मात्रा 12–24 प्रतिशत तक है।

इस सन्दर्भ में यह बता देना महत्वपूर्ण है कि हमारे देश में लगाये गये उर्वरक कारखानों में उपयोग होने वाला गंधक बाहर से आयात किया जाता है, जिस पर राष्ट्र की अच्छी खासी धनराशि विदेशी मुद्रा के रूप में खर्च करनी पड़ जाती है। ज्ञातव्य है कि वर्ष 1984–85 में भारत को 13 लाख टन गंधक के आयात पर 194 करोड़ की धनराशि खर्च करनी पड़ी। इसलिए हमारे देश में गंधकयुक्त नाइट्रोजन और फास्फोरसधारी उर्वरकों का उत्पादन कम होता

सारणी-7.14 गंधक द्वारा विभिन्न फसलों की उपज में वृद्धि

फसल	बिना गन्धक के प्रयोग से उपज (कु. प्रति हे.)	गंधक के प्रयोग से उपज–वृद्धि			
		कु. प्रति हे.		प्रतिशत	
		परास	औसत	परास	औसत
गेहूं (6)	26.1	2.4–13.4	7.0	9–186	27
धान (3)	36.0	6.7–20.0	13.1	15–70	36
मक्का (1)	51.0	–	4.7	–	36
बाजरा (1)	14.3	–	2.2	–	15
चना (2)	16.2	5.2–7.0	6.1	30–47	38
अलसी (1)	15.0	–	4.0	–	27
उर्द (1)	8.4	–	1.9	–	23
मोठ (1)	4.5	–	2.3	–	51
मूंगफली (8)	13.7	9.8–4.8	2.2	7–34	15
सरसों (13)	10.8	10.8	8.5–8.4	3.4	4–127
31					
राई (3)	12.5	1.2–5.6	3.3	9–68	26
तारामीरा (1)	4.5	–	3.9	–	88
सूरजमुखी (4)	7.3	8.6–4.4	2.1	12–34	27
आलू (3)	119	4.6–75	35.0	7–38	30
कसावा (1)	194	–	35.0	–	18
जूट (1)	19.3	–	4.0	–	21
चाय (1)	31.9	–	8.9	–	28
गन्ना (1)	7.31	–	206	–	28
प्याज (3)	24.8	9.8–12.1	4.8	2–41	19
ज्वार (1)	22.6	–	78.0	–	35
बरसीम (1)	10.9	–	54.0	–	49

स्रोतः टण्डन (1986)

जा रहा है। इन तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए भूमि में गंधक की कमी की बढ़ती समस्या के उपचार और रोकथाम के लिए देश में उपलब्ध गंधक के स्रोतों के कुशल उपयोग के लिए हर संभव प्रयास महत्वपूर्ण होगा। आज इस बात की आवश्यकता है कि गंधक उर्वरक के रूप में पाइराइट और जिप्सम जैसे देशज पदार्थों की उपयोगिता सम्बन्धी सुनियोजित अनुसंधान प्रारंभ किए जाएं, ताकि हमारे देश के विभिन्न अंचलों में गंधक की बढ़ती कमी के कुप्रभाव से कृषि उपज में होने वाली भारी कमी से समय रहते छुटकारा मिल सके। फास्फोजिप्सम, जोकि उर्वरक कारखानों से गौण पदार्थ के रूप में मिलता है, गंधक–उर्वरक का विकल्प हो सकता है। इसकी उपयोगिता का सही मूल्यांकन होना चाहिए।

उर्वरक के रूप में पाइराइट की उपयोगिता की जानकारी हेतु उर्वरक अनुसंधान केन्द्र, पुरा (कानपुर) में एक क्षेत्र–परीक्षण लगातार तीन वर्षों तक किया गया। रबी की चार प्रमुख फसलों–गेहू, चना, सरसों और बरसीम के उत्पादन पर पाइराइट द्वारा प्रयुक्त गंधक की 3 मात्राओं का प्रभाव देखा गया। इस परीक्षण में इस्तेमाल किये गये कृषि ग्रेड के पाइराइट में 33.1 प्रतिशत गंधक था। पाइराइट की विभिन्न मात्राओं के गेहूं, चना, सरसों के दाने की उपज और बरसीम के चारे की उपज में उल्लेखनीय वृद्धि हुई (रेखाचित्र 7. 3)। ज्ञातव्य है कि प्रथम दो वर्षों में पाइराइट के इस्तेमाल से वृद्धि तीसरे वर्ष की तुलना में विभिन्न फसलों के दाने व चारे की उपज में हुई वृद्धि काफी कम थी। तीसरे वर्ष में विभिन्न फसलों के दाने व चारे की उपज में हुई सर्वाधिक वृद्धि से इस बात का संकेत मिलता है कि गंधक का इस्तेमाल किये बिना अनवरत फसल लेने से मिट्टी में गंधक की कमी बढ़ती गयी। अतः पाइराइट के इस्तेमाल से फसलोत्पादन में होने वाली वृद्धि में उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी हुई।

इन परीक्षणों से इस बात की भी जानकारी मिली है कि पाइराइट के उपयोग से फास्फोरस की उपलब्धता पर अनुकूल प्रभाव पडता है।

चने के अलावा, मटर और मसूर की उपज में पाइराइट के इस्तेमाल से सार्थक वृद्धि देखी गयी। उर्वरक अनुसंधान केन्द्र, पुरा (कानपुर) और कृषि प्रक्षेत्र गिरथान, जालौन में किये गये परीक्षणों से प्राप्त परिणाम सारणी 7. 15 में दिये जा रहे हैं जिनसे इस कथन की पुष्टि हो जाती है।
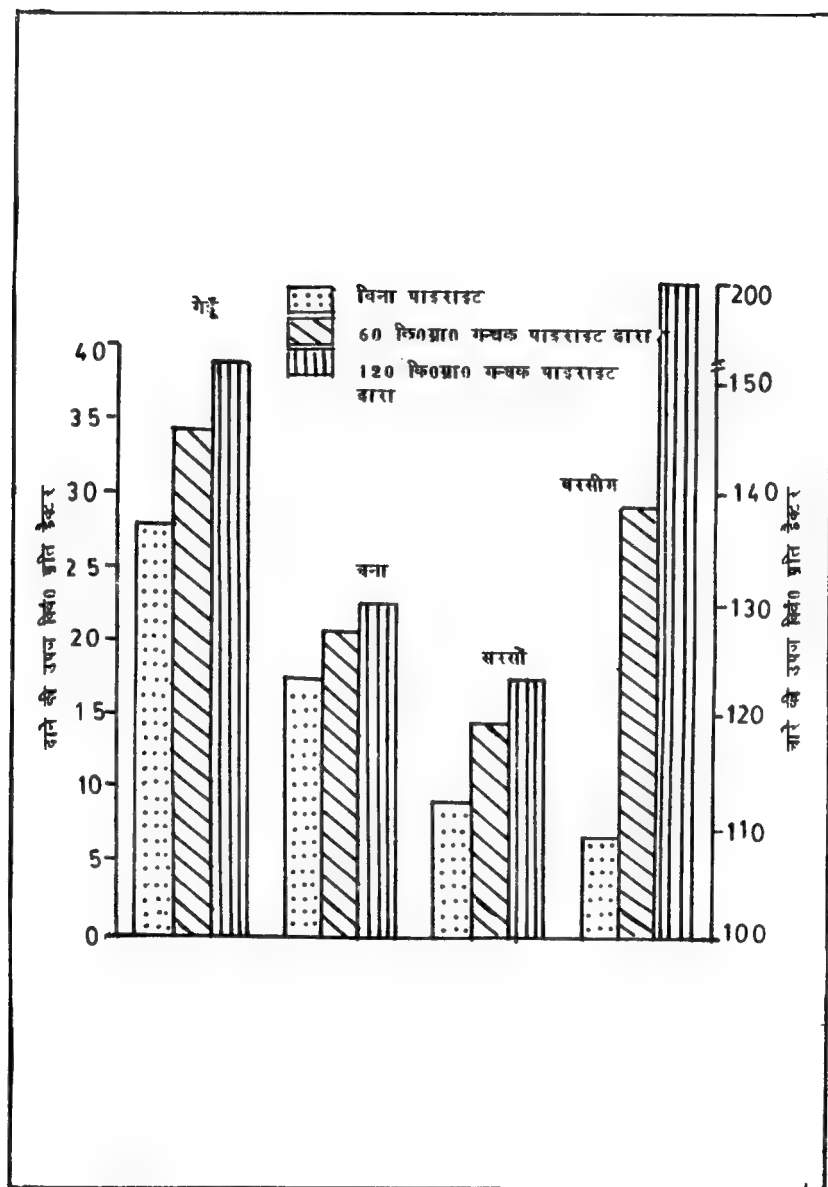
रेखाचित्र-7.4 पाइराइट की विभिन्न मात्राओं का गेहूं, चना, सरसों के दाने की उपज एवं बरसीम के चारे की उपज पर प्रभाव

विभिन्न फसलों की उपज वृद्धि में पाइराइट के योगदान की जानकारी किसानों तक पहुंचाने के आशय से क्षेत्र परीक्षणों का आयोजन, उन्हीं के खेतों पर किया गया। सारणी 7.16 में दिये गये आंकड़ों से पता चलता है कि गंधक की कमी की दशा में पाइराइट के उपयोगोपरान्त आलू, सरसों, चना और गेहूं की उपज में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

सारणी-7.15 प्रमुख दलहनी फसलों की उपज (कु. प्रति हे.) पर पाइराइट का प्रभाव (दो वर्ष का औसत)

विवरण	पाइराइट की मात्रा, कि.ग्रा. प्रति हे.		
	0	300	600
(क) पुरा (कानपुर) (सिंचित)			
चना	20.45	22.53	23.63
प्रतिशत वृद्धि	100	110	116
मसूर	8.25	10.90	11.91
प्रतिशत वृद्धि	100	132	144
मटर	23.76	25.04	27.03
प्रतिशत वृद्धि	100	105	114
(ख) गिरथान (जालौन) (असिंचित)			
चना	12.62	14.25	15.98
प्रतिशत वृद्धि	100	113	127
मसर	5.24	7.15	8.90
प्रतिशत वृद्धि	100	136	170
मटर	13.43	15.12	16.74
प्रतिशत वृद्धि	100	113	125

सारणी-7.16 पाइराइट द्वारा प्रयुक्त गंधक का विभिन्न फसलों की उपज पर प्रभाव

परीक्षण सं.	उपलब्ध गंधक की मात्रा, पी.पी.एम.	पाइराइट की मात्रा (कि.ग्रा. प्रति है.) 0	200	400	600
		आलू, उपज टन प्रति है.			
1.	5.21	16.54	17.50	19.85	19.85
2.	9.55	19.60	20.79	21.90	22.18
3.	19.77	20.53	21.53	22.04	22.19
	औसत	18.87	19.94	20.10	21.41
		सरसों, उपज कि.ग्रा. प्रति है.			
1.	4.34	1425	1500	1604	1774
2.	9.16	1670	1795	1941	2004
	औसत	1548	1652	1778	1880
		चना, उपज कि.ग्रा. प्रति है.			
1.	5.21	1624	1700	1805	1867
2.	9.55	1912	1895	2039	2051
	औसत	1918	1798	1922	1959
		गेहूं, उपज कि.ग्रा. प्रति है.			
1.	4.34	2872	4016	4300	4399
2.	8.16	3214	3288	3546	3629
3.	10.77	4380	4485	4690	4776
	औसत	3822	3930	4179	4268

गंधक-उर्वरक के रूप में पाइराइट का आर्थिक महत्व

कृषि ग्रेड पाइराइट का मूल्य लगभग 600 रुपये प्रति टन है। इसमें गंधक की मात्रा 22 प्रतिशत है। ऊसर भूमि के सुधार के लिए जिप्सम और पाइराइट की खरीद पर सरकार द्वारा 50 से 75 प्रतिशत की छूट किसानों को मिल

रही है। यदि गंधक उर्वरक के रूप में इस्तेमाल करने की दशा में भी इस छूट का लाभ किसानों को मिल सके तो जिप्सम और पाइराइट का इस्तेमाल विशेष लाभप्रद सिद्ध होगा। जलोढ़ मृदा क्षेत्र में एक किलोग्राम गंधक द्वारा 3.3 किलोग्राम चना, 2.6 किलोग्राम मटर और 4.4 किलोग्राम मसूर की अतिरिक्त उपज मिली है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में एक किलोग्राम गंधक से चना, मटर और मसूर की अतिरिक्त उपज क्रमशः 2.89, 2.81 और 3.18 किलोग्राम रही। जलोढ़ मृदा क्षेत्र में गंधक की उग्र कमी की दशा में एक किलोग्राम गंधक द्वारा सरसों की उपज में 8.3 किलोग्राम वृद्धि हुई। अतः स्पष्ट है कि गंधक की कमी वाले क्षेत्रों में पाइराइट या जिप्सम का इस्तेमाल आर्थिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

गंधक उर्वरक के रूप में जिप्सम की तुलना में पाइराइट की क्षमता

जिप्सम और पाइराइट की आपेक्षिक क्षमता की जानकारी के लिए एक क्षेत्र परीक्षण सरसों की फसल पर किया गया। सम्बन्धित आंकड़े रेखाचित्र में दर्शाये गये हैं, जिससे स्पष्ट है कि पाइराइट और जिप्सम की क्षमता लगभग एक सी है।

क्षारीय और चुनही मिट्टियों की उत्पादकता बढ़ाने में गंधक का महत्त्व

पाइराइट में मौजूद गंधक की उपयोगिता केवल गंधक की कमी दूर करने के लिए ही नहीं, वरन् इसके परोक्ष लाभ भी अनेक हैं, क्योंकि पाइराइट का मिट्टी पर अम्लीय प्रभाव पड़ता है, परिणाम स्वरूप मिट्टी का पी.एच. मान खासकर जड़ क्षेत्र का पीएच मान काफी कम हो जाता है, जिसका मिट्टी में मौजूद अन्य पोषक तत्वों की उपलब्धता पर अनकूल प्रभाव पडता है। उल्लेखनीय है कि पाइराइट के इस्तेमाल से नाइट्रोजन, फास्फोरस, लोहा, जिंक आदि तत्वों का अवशोषण फसलों द्वारा अधिक मात्रा में किया गया। चुनही मिट्टियों में फसलों में हरिमानीनता के लक्षणों में पाइराइट के उपयोग से सुधार पाया गया। परीक्षणों से पता चला है कि गन्ने की पत्तियों में पीलापन पाइराइट के उपयोग से सुधरा और गन्ने की उपज में सार्थक वृद्धि हुई। पाइराइट से दलहनी फसलों की नाइट्रोजन यौगिकीकरण क्षमता में वृद्धि देखी गयी।

गंधक का फसलों की गुणवत्ता पर प्रभाव

फसलों की गुणवत्ता गंधक के दो महत्वपूर्ण कार्यों की वजह से बढ़ जाती है:–

(1) तिलहनी फसलों में तेल की मात्रा में वृद्धि और (2) गंधकधारी अमीनो अम्लों तथा पादप प्रोटीन में वृद्धि।

गंधक का तेल की मात्रा पर प्रभाव

तिलहनी फसलों की उपज और उनके दानों में तेल की प्रतिशत मात्रा में वृद्धि के कारण खाद्य तेल की पूर्ति में गंधक की महत्वपूर्ण भूमिका है। गंधक का तिलहनी फसलों की उपज पर प्रभाव संबंधी विवरण इसके पहले दिया जा चुका है। दानों में तेल की सान्द्रता बढ़ाने में गंधक के प्रभाव संबंधी आंकड़े रेखाचित्र संख्या 7.4 में प्रदर्शित किये जा रहे हैं। उल्लेखीय है कि गंधक के प्रयोग से सरसों के दानों में तेल की मात्रा में 8.5 प्रतिशत, राई में 7.3 प्रतिशत, तारामिरा में 7.6 प्रतिशत, मूंगफली में 5.1 प्रतिशत, सूरजमुखी में 3.6 प्रतिशत और सोयाबीन में 6.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई। भारतीय कृषि में गंधक के इस योगदान का आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्व है। सिंह और सिंह (1983) के कार्यों से पता चला है कि सरसों की पत्तियों में गंधक की सान्द्रता में इकाई वृद्धि से तेल की मात्रा में 0.38 इकाई वृद्धि होती है। यद्यपि भारत में 160 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में तिलहनी फसलें उगायी जाती हैं, किन्तु इनका उत्पादन आवश्यकता से बहुत कम है। अतः तिलहनी फसलों का उत्पादन बढ़ाने में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम से साथ गंधक की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। उल्लेखनीय है कि 1 टन गंधक से 7–8 टन तिलहन पैदा हो सकता है जो कि 3–3.5 टन खाद्य तेल के समतुल्य होगा।

गंधक का अमीनो अम्ल और प्रोटीन की मात्रा पर प्रभाव

उल्लेखनीय है कि गंधक सिस्टाइन और मिथियोनीन जैसे अमीनों अम्लों का अवयव है, इसके प्रयोग से पौधों में इन यौगिकों की मात्रा में वृद्धि होती है, इस प्रकार गंधक प्रोटीन उत्पादन एवं गुणवत्ता बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान रखता है। विभिन्न फसलों से संबंधित आंकड़े उपलब्ध हैं जिनसे प्रोटीन उत्पादन और गुणवत्ता वृद्धि की पुष्टि होती है।

राई में तेल और प्रोटीन की मात्रा पर गंधक के लाभदायी प्रभाव की पुष्टि पाठक और त्रिपाठी (1979) द्वारा किये गये आंकड़ों से हो जाती है। आंकड़े सारणी 7.17 में दिये गये हैं।
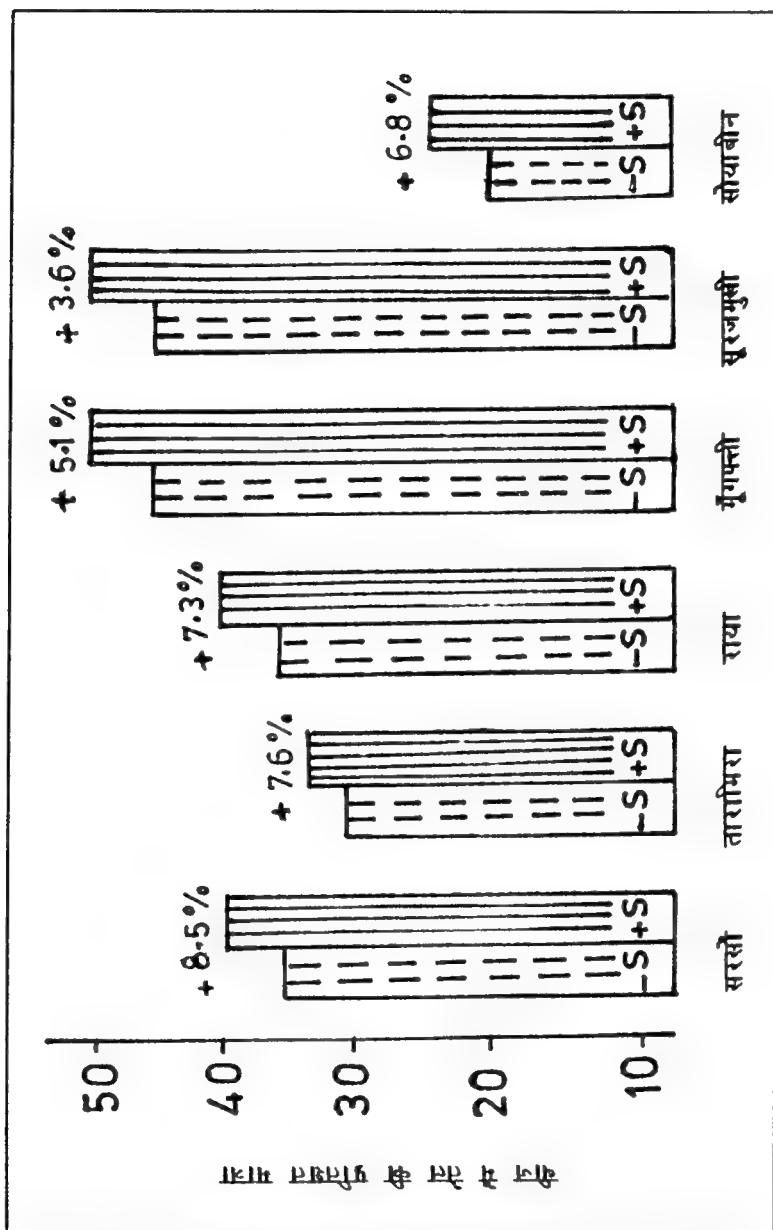
रेखाचित्र-7.5 भारत के कुछ प्रमुख तेलहनी फसलों के बीज में तेल की मात्रा

इसके अतिरिक्त गंधक के प्रयोग से आलू और कसावा में स्टार्च की मात्रा में वृद्धि होती है जिसकी पुष्टि क्रमशः रामामूर्ति तथा सुशीला देवी (1981) और मोहन कुमार इत्यादि (1984) के कार्यों से होती है। गंधक का गन्ने की गुणवत्ता वृद्धि में भी योगदान है। इसके प्रयोग से गन्ने के रस में चीनी की मात्रा में 5.6 प्रतिशत, चीनी की प्राप्ति में 5.8 प्रतिशत और रस की शुद्धता में 0.8 प्रतिशत की वृद्धि पायी गयी। चारे वाली फसलों में गंधक से प्रोटीन की मात्रा बढ़ जाती है, यह पौधों में उचित नाइट्रोजन गंधक अनुपात बनाये रखने में सहायक होता है, उल्लेखनीय है कि जुगाली करने वाले जानवरों के लिए 10.1–15.1 का नाइट्रोजन–गंधक अनुपात उपयुक्त माना जाता है। यह अनुपात यदि 10:1 से अधिक है तो पशु चारे का उपयोग कुशलतापूर्वक नहीं कर पाते (कनवर (1976)। सामान्य प्रोटीन उत्पादन के लिए अल्फाल्फा के लिए प्रत्येक 10–12 इकाई नाइट्रोजन पर 1 इकाई गंधक की आवश्यकता पड़ती है (औलख इत्यादि 1976)। गंधक के प्रयोग से कसावा (मोहनकुमार इत्यादि 1984) और ज्वार (सिंह इत्यादि 1983) में हाइड्रोसायनिक अम्ल की सान्द्रता कम हो जाती है।

दुग्ध उत्पादन के लिए गंधक की आवश्यकता का अनुमान लगाया गया, जिसके अनुसार दूध में गंधक की प्रति इकाई स्रावित मात्रा पर लगभग 4.49 इकाई गंधक की आवश्यकता पड़ती है। प्रति कि.ग्रा. दुग्ध उत्पादन के लिए चारे में 1.33 ग्राम गंधक की आवश्यकता पड़ती है। (हाजरा 1988)।

गंधक की अन्य पोषक तत्वों के साथ अन्तर्क्रिया

फसलों की गंधक आवश्यकता अनेक कारकों पर निर्भर करती है किन्तु अन्य पोषक तत्वों के साथ इसके उचित संतुलन का विशेष महत्व होता है जैसा कि हम जानते हैं कि पोष तत्वों में आपसी विरोधी या योगवाही सम्बन्ध होता है। गंधक की अन्य पोषक तत्वों जैसे—नाइट्रोजन, फास्फोरस, कैल्शियम, जिंक, बोरान, मालिब्डेनम तथा सेलेनियम के साथ अतिर्क्रिया का अध्ययन किया गया है। उल्लेखनीय है कि नाइट्रोजन और गंधक दोनों ही तत्व प्रोटीन के संश्लेषण में मदद करते हैं। अतः पौधों और पशुओं के पोषण में इनका विशेष महत्व होता है। विभिन्न फसलों जैसे—सरसों (पश्रीचा इत्यादि 1987) सूरजमुखी (शर्मा एवं देव 1988) और गेहूं (ईश्वरी इत्यादि 1987) नाइट्रोजन और गंधक की आपस में योगवाही अन्तर्क्रिया देखी गयी। इसी प्रकार

सारणी-7.17 "वरुणा" राई के दानों में तेल की प्रतिशत मात्रा व तेल का उत्पादन, प्रोटीन की मात्रा व उपज और मिथियोनिन की मात्रा व उपज पर गंधक का प्रभाव

गंधक, कि.ग्रा. प्रति है.	तेल प्रतिशत	तेल की उपज उपज कि.ग्रा. प्रति है.	प्रोटीन प्रतिशत	प्रोटीन, कि.ग्रा. प्रति है.	मिथियोनिन ग्रा. प्रति 16 ग्रा. नाइट्रोजन	मिथियोनिन कि.ग्रा. प्रति है.
0	39.62	612	34.62	326	1.63	523
40	39.67	694	34.37	334	1.69	559
80	42.06	778	34.68	371	1.68	615
120	41.85	754	35.35	372	1.67	615

स्रोतः पाठक एवं त्रिपाठी (1979)

अल्फाअल्फा में गंधक और फास्फोरस की धनात्मक अन्तर्क्रिया का उल्लेख गंवावार तथा परमेश्वरन (1986) के अध्ययनों तथा गंधक और कैल्शियम अन्तर्क्रिया का औलख तथा देव (1978) तथा विजयराज कुमार तथा साढे (1983) के अध्ययनों से मिलता है। गंधक और लोहा (बाबेनिय और पटेल (1980) तथा गंधक और जिंक (बहल इत्यादि 1986) में परस्पर योगवाही अन्तर्क्रिया की पुष्टि होती है। अनेक शोधकर्ताओं ने गंधक और फास्फोरस के आपसी सम्बन्धों में विरोधी अन्तर्क्रिया विशेषकर पौधों में इसकी सान्द्रता के सन्दर्भ में पाया। विभिन्न फसलों में गंधक के प्रयोग से पोटैशियम की सान्द्रता में वृद्धि पायी गयी। परन्तु गंधक और मालिब्डेनम में परस्पर विरोधी अन्तर्क्रिया का संकेत मिला है। इसी प्रकार गंधक और सेलेनियम में भी विरोधी अन्तर्क्रिया का संकेत मिला है। इसी प्रकार गंधक और सेलेनियम में भी विरोधी अन्तर्क्रिया देखी गयी है।

सघन कृषि प्रणाली में गंधक सन्तुलन

सघन कृषि प्रणाली में पुरानी जलोढ़, मध्यम, काली, लैटेराइट और उपपर्वतीय मिट्टियों के संबंध में गंधक–सन्तुलन का विवरण नाम्बियार (1988) ने दिया है जिसे रेखा चित्र 7.2 में दर्शाया गया है। स्पष्ट है कि सभी मिट्टियों और कृषि प्रणालियों में जहां भी फास्फोरस की पूर्ति के लिए सिंगल सुपर फास्फेट का प्रयोग किया गया, वहां गंधक–सन्तुलन धनात्मक पाया गया। इसके विपरीत जहां फास्फोरस के लिए डाई अमोनियम फास्फेट उपयोग में लाया गया वहां गंधक का वार्षिक सन्तुलन ऋणात्मक रहा। अतः सघन–कृषि–प्रणाली में उच्चत उपज प्राप्त करने के लिए गंधक की बढ़ती हुई कमी को रोकना आवश्यक होगा। गंधक–युक्त नाइट्रोजन या फास्फोरस धारी उर्वरकों या देशज सामग्रियों जैसे–जिप्सम या पाइराइट के प्रयोग से फसलों की गंधक–आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है।

सन्दर्भ-साहित्य

Ahmed, N. (1984). Problems and Prospects of the use of availability of secondary and micronutrients in the northern region Proc. FAI (NRC) Seminar 239-46.

Ahmed, S. & Jha, K.K. (1969). Sulphur status of Bihar soils. *J. Indian Soc. Soil Sci.* **17** : (2), 197-202.

Ankineedu, G., Rao, J.V. & Reddy B.N. (1983). *Fert. News,* **28** (9) : 79-90, 105.

Aulakh, M.S., Dev, G. & Arora, B.R. (1976). *Pl. Soil.* **45** : 75-80.

Aulakh, M.S., Dev. G. (1978). *Pl. Soil* **50** : 125.

Aulakh, M.S., Pasricha, N.S. & Dev, G. (1977). *Fert. News* **22** (9) : 32.

Aulakh, M.S. & Pasricha, N.S. (1979). *Bull. Indian Soc. Soil Sci.* **12** : 433-39.

Aulakh, M.S. & Pasricha, N.S. (1985). *Fert. News.* **31** (9) : 31-35.

Aulakh, M.S., Pasricha, N.S. & Sahota, N.S. (1980). *J. Agric. Sci.* Camb. **94** : 545-59.

Babonia, C.J. & Patel, C.L. (1980). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **28** : (3) 302-306.

Badigar, M.K., Subbu Raddy, N.P. Michel R. & Shivraj, B. (1982). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **30** : 166-169.

Budigar, M.K. and Shivraj, V. (1988). Proc. TSI. FAI. Symp. Sulphur in Indian Agriculture. PD 11/4(1-8).

Bahl, G.S., Pasricha, N.S. & Aulakh, M.S. (1986). *Indian J. Agric. Sci.* **56** (6) : 428-433.

Bhan, C. & Tripathi, B.R. (1975). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **23** (4) : 499-504.

Bhardwaj, S.P. & Pathak, A.N. (1969). *J. Indian Soc. Soil. Sci.* **17** : 285-289.

Bhat, S.S. & Ranganathan, V. (1981). Planter's Chronicle. 529-31.

Biswas, B.C., Yadav, D.S. & Maheshwari, S. (1985). *Fert. News* **30** (7) : 15-35.

Dangarwala, R.T., Trivedi, B.S., Patel, M.S. & Mehta, P.M. (19830. Micronutrient Research in Gujarat, GAU, Anand.

Das, S.K. & Dutta, N.P. (1973). *Fert News* **18** (9) : 3-10.

Dutta, A.K. (1962). Emp. *J. expl. Agric.* **30** : 257.

Gangwar, M.S. & Parmeswaran, P.M. (1976). *Oilseed J.* **6** (3) : 33-37.

Ghonsikar, C.P. (1983). Marathwada Agril. Unit. Parbhani, Personal Communication.

Ghosh, A.B. (1980). *Fert. News,* **25** (12) : 36.

Gupta, V.K. & Singh, B.J. (1985). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **33** : 204-207.

Hasan (1980). M.Sc. (Ag.) Thesis, CSAUAT, Kanpur.

Hazra, C.R. (1988). Proc. TSI-FAI Symp. sulphur in Indian Agriculture pp. S II/4-1 to 13.

Ishwari, Singh, R.S. & Tiwari, U.S. (1987). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **35** : 152-154.

Jain, G.L., Sahu, M.P. & Somani, L.L. (1984). Proc. FAI-NR-Seminar pp. 147-174.

Kanwar, J.S. (1963). *Indian J. Agric. Sci.* **33** : 196-198.

Kanwar, J.S. (1976). Soil Fertility-Theory and Practice, ICAR, New Delhi.

Kanwar, J.S. & Takkar, P.N. (1963). *Indian J. Agric. Sci.* **33** (4) : 291-294.

Mathur, B.S. et al. (1991). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **39** : 523-29.

Mohankumar, B. (1984). *Indian Farming* **33** (12) : 35-37, 49.

Naik, M.S. & Das, N.D. (1964). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **12** (2) : 151-156.

Nambiar, K.K.M. (1988). Proc. TSI-FAI Symposium Sulphur in Indian Agriculture pp. S-III/3-1-16.

Pal, A.R. & Motiramani, D.P. (1971). Soil Fertility Evaluation, New Delhi, 297-307.

Pasricha, N.S., Aulakh, M.S., Bahl, G.S. & Baddesha, H.S. (1987). Bul. PAU, Ludhiana.

Pasricha, N.S. & Aulakh, M.S. (1986). *Fert. News.* **36** (9) : 17-21.

Puri, D.N. (1984). Proc. FAI-NR Seminar pp. 175-184.

Ramanurti, N. & Susheela Devi (1981). I.L. Curr Res. **10** : 80-81.

Reddy, C.S. & Mehta, B.V. (1970). *Indian J. Agric. Sci.* **40** : 5-12.

Saroha, M.S. & Singh, H.G. (1979). *Pl. Soil,* **52** : 467-473.

Sekhon, G.S. Arora, C.L. & Soni, S.K. (1975). *Commu. Soil Sci. Pl. Anal.,* **6** : 609-618.

Sharma, R.L. & Dev, G. (1980). *J. Nucl. Agri. Biol.* **9** : 146.

Shinde, D.A. (1983). First Edn. FDCO, New Delhi.

Shukla, L.M. (1986). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **87** : 439-440.

Singh, B.P. (1983). *Indian J. Agric. Sci.* **53** : 676-680.

Singh, V.K. & Singh, R.P. (1985). *Pl. Soil* **87** : 439-440.

Singh, R., Goraya, D.S. & Brar, S.P.S. (1976). *J. Res.* Punjab Argic. Univ. Ludhiana, **13** : 255.

Subba Rao, I.C. (1975). Technical Bulletin No. 1, Andhra Pradesh Agric. Univ. Hyderabad pp. 52.

Tandon, H.L.S. Sulphur Research and Agricultural Production in India, 2nd ed, Fertilizer Development and Consultation Organisation, New Delhi, pp. 76+VIII (1986).

Takkar, P.N., Bansal, R.L. & Nayyar, V.K. (1984). Annl. Prog. Rep. All India Coordinated Scheme on Micronutrients in Soils and Plants.

Takkar, P.N. (1987). Proc. Symp. "Fertiliser Requirements and sources in Developing Countries of Asia and Pacific, Bangkok, Jan. 26-30.

Tiwari, K.N., Dwivedi, B.S., Pathak, A.N. (1984). Evaluation of iron pyrites as sulphur fertilizer, Fertilizer Research, **5** : 235-243.

Tiwari, K.N., Dwivedi, B.S., Pathak, A.N. (1986). Relative effectiveness of iron pyrites and gypsum as sulphur fertilizer for different cultivars of mustard, *Fert. Research,* **8** : 279-82.

Tiwari, K.N., Nigam, V. & Pathak, A.N. (1983). *Indian J. Agric. Sci.* **53** : 812-819.

Tiwari, K.N., Dwivedi, B.S. & Pathak, A.N.(1985). *Fert. Res.* **8** : 279-282.

Tiwari, K.N. (1990). Sulphur Research and Agricultural Production in Uttar Pradesh, Tech. Bull. CSAUAT, Kanpur.

Tiwari, K.N. (1990). Sulphur in Agriculture, TSI Washington, **14** : 29-34.

Verma, T.S. & Tripathi, B.R. (1984). *J. Indian Soc. Soil Sci.* **32** : 504-506.

Vijayachandran, P.K. (1984). FACT Ltd., Cochin, Personal Communication.

Vijaya Raj Kumar, K. & Sathe, Arun (1983). Madras, Agric. J. **70** (2), 799-803.

Zende, G.K. (1983). Pune, Personal Communication.

अध्याय-8

सूक्ष्म पोषक तत्व

सूक्ष्म पोषक तत्व या लेश तत्व का प्रयोग एक दूसरे के लिये किया जाता है, किन्तु अधिकांश वैज्ञानिक सूक्ष्म पोषक तत्व शब्द का ही प्रयोग करना उचित समझते हैं। सूक्ष्म पोषक तत्व से ऐसे तत्वों का बोध होता है जिनकी पौधों को बहुत थोड़ी मात्रा में आवश्यकता पड़ती है, परन्तु वह थोड़ी मात्रा यदि उपलब्ध न हो, तो पौधे अपना जीवन चक्र पूरा नहीं कर पाते। मिचेल (1963) ने मृदा, सस्य एवं पशुओं में सूक्ष्म पोषक तत्वों के सम्बन्ध का अनूठा वर्णन किया है। इनके अनुसार सूक्ष्म पोषक तत्व इन्जाइम या सहइन्जाइ के अंग होते हैं और जीवों की वृद्धि में मदद करते हैं। यह कथन इस दृष्टि से उचित प्रतीत होता है कि कुछ सूक्ष्म तत्व केवल पशुओं के लिए आवश्यक होते हैं और पौधों के लिये इनकी आवश्यकता नहीं होती। इसी तरह कुछ सूक्ष्म तत्व जीवाणुओं के लिये आवश्यक समझे जाते हैं परन्तु पौधों और पशुओं के लिये आवश्यक नहीं होते।

पौधों के लिए जिंक, तांबा, लोहा, मैंगनीज, मालिब्डेनम, बोरॉन और क्लोरीन सूक्ष्म पोषक तत्व के रूप में आवश्यक माने गये हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने कोबाल्ट, वेनेडियम और सोडियम को भी इसी श्रेणी में रखा है। मिचेल के अनुसार निकिल और जर्मेनियम भी आवश्यक हो सकते हैं। वाल्टररस्टाइल्स (1959) के अनुसार गैलियम, सिलिकान और एल्युमिनियम के आवश्यक होने की भी सम्भावना है। इसमें कोई भी तत्व पौधों के लिये आवश्यक है कि नहीं, इसकी पुष्टि भविष्य में होने वाले अनुसंधान द्वारा होगी।

कोबाल्ट, लोहा, तांबा, मैंगनीज, जिंक, मालिब्डेनम, आयोडीन और सेलेनियम पशुओं के लिये आवश्यक माने गये हैं। कुछ लोगों का विश्वास है कि फ्लोरीन, ब्रोमीन, बेरियम और स्ट्रांशियम भी पशुओं के लिये आवश्यक है।

दलहनी फसलों में नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले सूक्ष्मजीवों के लिये कोबाल्ट आवश्यक है, किन्तु दलहनी पौधों के लिये यह आवश्यक नहीं

माना जाता। इसी तरह उच्च पौधों के लिये बोरान आवश्यक होते हुये भी कवकों और जीवाणुओं के लिए आवश्यक नहीं समझा जाता। हरित शैवाल तथा सम्भवतः नील हरित शैवाल के लिए वेनेडियम आवश्यक माना जाता है।

कृषि की दृष्टि से विकसित अनेकों देशों में कृषि उत्पादन बढ़ाने में सूक्ष्मपोषक तत्व के प्रयोग की आवश्यकता को बहुत पहले ही मान्यता मिल गयी थी परन्तु भारत में आज से कुछ समय पहले तक सूक्ष्म पोषक तत्वों के प्रयोग पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। कुछ वर्ष पूर्व भारत में फसलों का उपज स्तर काफी कम था और उर्वरकों की खपत भी कम थी। मिट्टी से होने वाली सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति फसल की आवश्यकता के लिये पर्याप्त थी। छठे दशक के मध्य में अनाज वाली फसलों की अधिक उपज देने वाली जातियों के प्रचलन तथा उर्वरकों विशेषकर उच्च विश्लेषी उर्वरकों के उपयोग में वृद्धि के कारण सूक्ष्म पोषक तत्वों में रूचि बढ़ी। उल्लेखनीय है कि इन जातियों की न केवल उपज क्षमता ही अधिक है बल्कि इनकी पोषक तत्वीय आवश्यकता भी बहुत अधिक है। इनसे न केवल नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम जैसे प्रमुख तत्वों का भूमि से निष्कासन अधिक मात्रा में होता है बल्कि अन्य सभी पोषक तत्वो जिनमें सूक्ष्म पोषक तत्व भी सम्मिलित हैं उनका भी अवशोषण काफी मात्रा में होता है। फलतः इन वर्षों में मिट्टी से पोषक तत्वों का ह्रास तेजी से हुआ और इनके उपयोग की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। सघन कृषि प्रणाली में सूक्ष्म पोषक तत्वों के अवशोषण का विवरण 8.1 में दिया गया है।

सारणी-8.1 सघन कृषि प्रणाली में सूक्ष्म पोषक तत्वों के अवशोषण का विवरण

क्र सं	फसल प्रणाली	शुष्क पदार्थ (टन/है)	अवशोषण मात्रा (ग्राम प्रति है.)				
			लोहा	मैंगनीज	जिंक	तांबा	मालिब्डेनम
1.	कपास–लोबिया–मूंग	12.2	1068	771	187	113	10
2.	मूंगफली–गेहूं–ग्वार	26.2	6966	754	504	223	32
3.	लोबिया–कपास–बाजरा	28.2	7293	1219	482	279	30

मिट्टियों में सूक्ष्म पोषक तत्व

मिट्टियों में सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रमुख श्रोत पैतृक पदार्थ या चट्टाने हैं, जिनसे इनका निर्माण होता है। मृदा के पैतृक पदार्थ की सही जानकारी होने पर यह अनुमान लगाना सम्भव हो जाता है कि मृदा–विशेष में सूक्ष्म तत्वों की कमी है या अधिकता। भू–पपड़ी और कुछ चट्टानों एवं मिट्टियों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा का उल्लेख सारणी 8.2 में किया गया है।

सारणी-8.2 विभिन्न चट्टानों और मिट्टियों में सूक्ष्म पोषक तत्वों का औसत वितरण (पीपीएम)

तत्व	भू–पपड़ी	क्षारीय चट्टानें	अम्लीय चट्टानें	अवसादीय चट्टानें	मिट्टियां
बोरॉन	10	10	15	12	10
मैंगनीज	1000	1000	2000	600	1000
लोहा	50000	86000	27000	33000	–
कोबाल्ट	40	45	5	23	8
तांबा	70	140	30	57	20
जिंक	80	130	60	80	40
मौलिब्डेनम	2.3	1.4	1.9	2.0	1.0

मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कुल मात्रा

भारतीय मिट्टियों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कुल मात्रा सम्बन्धी सूचनाओं का संकलन कंवर और रन्धावा (1974), कत्याल और रन्धावा (1983) तथा टक्कर एवं सहियोगियों (1990) ने किया है। मिट्टियों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कुल मात्रा में उनकी पैतृक चट्टानों, अपक्षय प्रक्रियाओं तथा मिट्टियों की आयु के अनुसार अन्तर पाया जाता है। क्षारीय चट्टानों से विकसित मिट्टियों जो कि शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में पायी जाती है, उनमें सूक्ष्म पोषक तत्वों की कुल मात्रा अधिक होती है। इसके विपरीत अम्लीय चट्टानों से विकसित मिट्टियां जो कि नम और अर्द्धनम जलवायु वाले क्षेत्रों में पायी जाती हैं, उनमें इन तत्वों की कुल मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है। मृदा में सूक्ष्म पोषक

तत्वों की कुल मात्रा की जानकारी आमतौर पर भू–रासायनिक अध्ययनों के अन्तर्गत की जाती है। इनका पौधों के पोषण के संदर्भ में बहुत कम महत्व होता है। अतः पौधों की वृद्धि और उपज सम्बन्धी अध्ययनों के लिए मिट्टियों में इन तत्वों की पौधों को उपलब्ध होने वाली मात्रा की जानकारी करना आवश्यक होता है। भारत के प्रमुख मृदा समूहों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कुल एवं डीटीपीए द्वारा निष्कर्षित मात्रा का विवरण सारणी 8.3 में दिया गया है।

मिट्टियों में सूक्ष्म पोषक तत्वों के विभिन्न रूप

वीट्स (1962) ने मिट्टियों में सूक्ष्म पोषक तत्वों को पांच विशिष्ट पूलों में विभाजित करने की संकल्पना की है जिसे रेखाचित्र 8.1 में दर्शाया गया है।

पूल-ए

इसके अन्तर्गत जल विलेय आयनों की गणना की जाती है। इस रूप में सूक्ष्म पोषक तत्व बहुत कम मात्रा में पाया जाता है। तांबा और जिंक की मात्रा प्रायः नगण्य होती है। वायुवीय दशा में लोहा और मैंगनीज की मात्रा बहुत कम होती है। अवायुवीय दशायें जिनके फलस्वरूप आक्सीकरण–अवकरण विभव कम हो जाता है तथा कम पीएच मान की दशाओं का मैंगनीज और लोहे की जल विलेयता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है, किन्तु तांबा और जिंक की उपलब्धि यथावत रहती है।

पूल-बी

इसके अन्तर्गत विनिमेय धनायन जो कि अमोनियम जैसे दुर्बल विद्युत अपघट्य (weak electrolyte) के द्वारा विनिमयित हो जाते हैं। इस रूप में तांबा और जिंक बहुत कम मात्रा में पाया जाता है।

पूल-सी

अधिशोषित, किलेटीकृत या जटिल मूलक जो सशक्त क्लिेटीय अभिकर्मकों द्वारा विनिमयित होते हें, इस समूह में आते हैं। इन्हें ईडीटीए, डीटीपीए, कार्वनटेट्राक्लोराइड और डिथिजोन, पाइरोफास्फेटस, अमोनियम एसीटेट जैसे अभिकर्मकों द्वारा निष्कर्षित किया जाता है।

सारणी-8.3 भारत के आठ प्रमुख मृदा–समूहों 57 बेंचमार्क मृदाओं के विश्लेषण पर आधारित सूक्ष्म पोषक तत्वों की कुल तथा डीटीपीए द्वारा निष्कर्षित मात्रा

मृदा–समूह	कुल मात्रा मि.ग्रा./कि.ग्रा.			प्रतिशत	डीटीपीए द्वारा निष्कर्षित मात्रा (मि.ग्रा./कि.ग्रा.			
	जिंक	तांबा	मैंगनीज	लोहा	जिंक	तांबा	मैंगनीज	लोहा
एन्टीसाल	40	18	347	2.1	0.46	0.54	14.0	14.2
इनसेप्टीसाल	62	35	483	3.1	0.58	2.54	29.5	24.9
एरिडीसाल	61	51	813	4.5	0.38	1.28	12.7	9.6
वर्टीसाल	63	63	731	4.0	0.41	1.49	12.4	9.1
अल्फीसाल	44	31	391	2.4	0.55	1.69	31.3	28.5
अल्टीसाल	43	22	400	2.0	0.28	0.49	40.1	17.5
आक्सीसाल	72	56	214	5.5	0.86	1.73	86.8	37.8
मोलीसाल	30	30	388	3.2	1.86	1.99	47.3	59.0

स्रोत: कत्याल एवं शर्मा (1989)

पूल-डी

द्वितीय मृत्तिका खनिजों (Secondary clay minerals) और अघुलनशील धात्वीय आक्साइडों में धनायनों के रूप में पाये जाने वाले कुछ चट्टानें आती हैं। इनकी मात्रा मिट्टियों में मृत्तिका की मात्रा से प्रभावित होती है।

पूल-ई

प्राथमिक मृदा–खनिजों में बंधित धनायन इस केन्द्र समूह में आते हैं। पैतृक पदार्थ तथा अन्य भू–रासायनिक कारकों का इनकी मात्रा पर प्रभाव पड़ता है।

ऋणायनों के रूप में पाये जाने वाले सूक्ष्म पोषक तत्व भी इन केन्द्र समूहों के अन्तर्गत आते हैं। उदाहरणार्थ–क्लोराइट, ऋणात्मक अधिशोषण के कारण साधारणतः पूल–ए में आता है, किन्तु यह पूल–ई में भी आता है। बोरेट पूल–ई
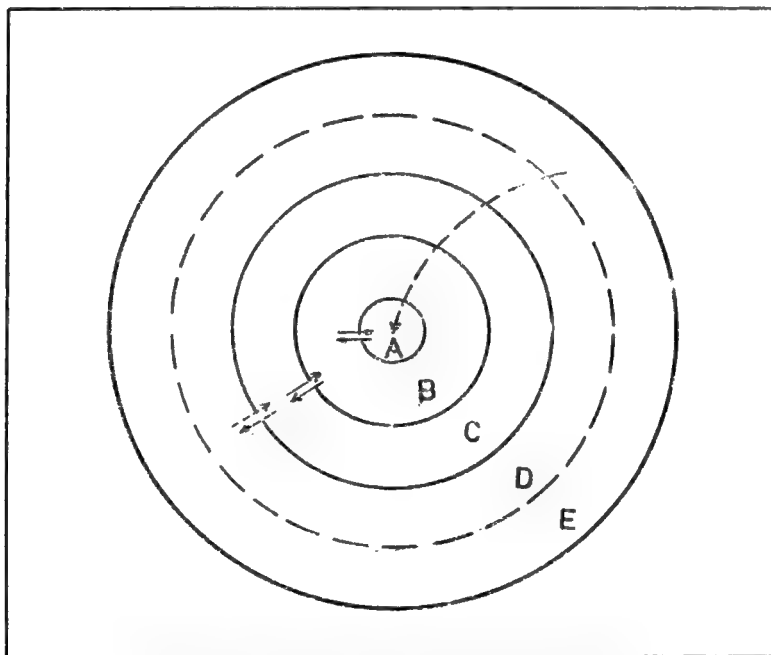
रेखाचित्र-8.1 मिट्टी में सूक्ष्म पोषक धनायनों के विभिन्न पूल

में आता है, क्योंकि यह प्राथमिक मृदा खनिज टारमैंलीन में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त यह ह्यूमस में किलेट रूप में पाये जाने के कारण पूल–सी में भी पाया जाता है। इसकी अधिकांश मात्रा जल विलेय होती है अतः अधिकाशतः यह पूल–ए में आता है।

मालिब्डेट भी सभी केन्द्र समूहों में पाया जाता है इन्हें आक्जेलेट, फास्फेट और हाइड्राक्सिल आयनों द्वारा विस्थापित किया जा सकता है। इसी कारण क्षारीय मृदाओं में अम्लीय मृदाओं की तुलना में मालिब्डेनम की उपलब्धता अधिक होती है। सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता पर मिट्टी के पीएच–मान के प्रभाव को रेखाचित्र संख्या 9.2 में प्रदर्शित किया गया है।

भारतीय मिट्टियों में विभिन्न सूक्ष्म पोषक तत्वों की कुल मात्रा तथा उनकी उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारकों का उल्लेख आगे किया जा रहा है।
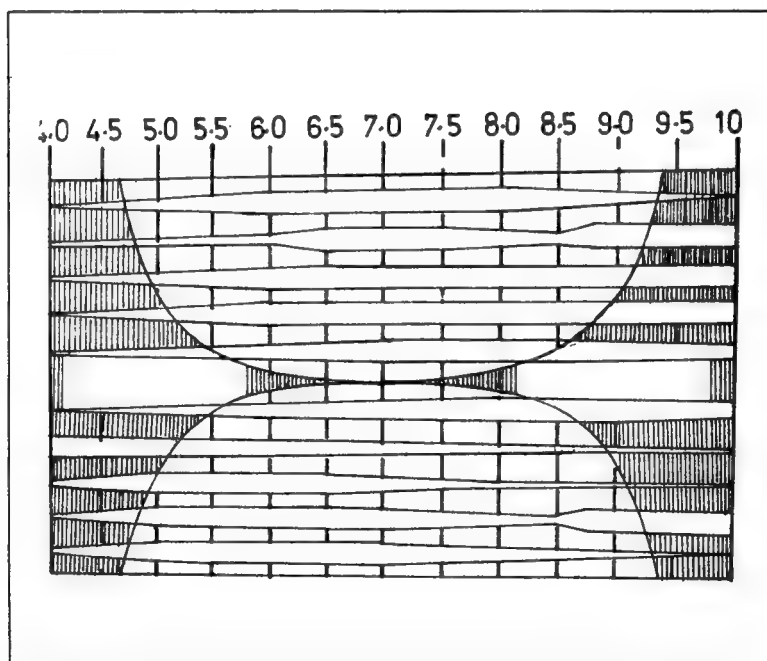
रेखाचित्र-8.2 विभिन्न पीएच मान पर पोषक तत्वों की उपलब्धता का विवरण

पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्व

अन्य पोषक तत्वों की भांति सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रमुख कार्य प्रकाश उर्जा को रासायनिक उर्जा के रूप में परिवर्तन करना है। ये सभी तत्व विभिन्न इन्जाइम सम्बन्धी प्रति क्रियाओं के लिए आवश्यक होते हैं। पौधें में तत्व विशेष ही कमी हो जाने पर पौधों की उपापचय क्षमता बुरी तरह प्रभावित होती है। कुछ विशेष इंजाइम क्रियाओं में परिवर्तन होने के कारण पौधों के संधटकों में गुणीय परिवर्तन हो जाता है जिसके फलस्वरूप कोषासमाकलन प्रभावित होता है, पोधों की वृद्धि रूक जाती है तथा पौधों में अभाव के लक्षण दिखायी देने लगते हैं और उनके कुछ अंग मर भी जाते हैं।

सूक्ष्म पोषक तत्वों की वह मात्रा जिसके नीचे पौधों की सामान्य ढंग से वृद्धि नहीं हो पाती "क्रान्तिक मात्रा" के नाम से जाना जाता है। सारणी 8.4 में सूक्ष्म तत्वों की मात्राएं दी गयी हैं, उन्हें कमी की क्रान्तिक सीमा माना जा सकता है। लोहा के लिए ऐसी सान्द्रता को क्रान्तिक सीमा मानने के लिए कत्याल एवं शर्मा (1980) ने शंका प्रकट की है। अन्य पोषक तत्वों की सान्द्रता तथा पौधों की वृद्धि आदि में गहरा सम्बन्ध पाया जाता है। लोहा के साथ सम्बन्ध तथा पौधों की वृद्धि आदि में गहरा सम्बन्ध पाया जाता है। लोहा के साथ सम्बन्ध स्थापित करने हेतु इसके सक्रिय अंश अर्थात फेरस आयन (Fe^{2+}) का विश्लेषण किया जाता है।

विभिन्न फसलों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा से सम्बन्धित पिछली सूचनाओं की समीक्षा करते हुए कत्याल एवं रंधावा (1983) ने निष्कर्ष निकाला कि मिट्टी में पौधों और जलवायु की अंतर्क्रिया के कारण पोधों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की सान्द्रता अत्यन्त अस्थिर होती है।

मिट्टियों की पोषक तत्वों की पूर्ति क्षमता में काफी अन्तर पाया जाता है और इसी प्रकार पौधों की पोषक तत्वों को अवशोषण करने की क्षमता में अन्तर पाया जाता है। जिन मिट्टियों में पोषक तत्वों की कमी हो, वहां अक्षम पौधों को उगाने से उनमें पोषक तत्वों की मात्रा प्रायः कम पायी जाती है। उल्लेखनीय है कि फास्फोरस की जस्ता और लोहा के साथ विपरीत अनुक्रिया होती है, अतः मिट्टियों में फास्फोरस के संचयन से जस्ता और लोहा के अवशोषण में बाधा पड़ती है। पोषक तत्वों की सान्द्रता में पौधों के अंग विशेष और आयु के अनुसार अन्तर पाया जाता है। वृद्धि काल में पौधों में जस्ता

सारणी-8.4 विभिन्न फसलों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की सान्द्रता

फसल	वृद्धि की अवस्था	सूक्ष्म पोषक तत्वों की सान्द्रता (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)		
		अपर्याप्त	पर्याप्त	विषालु
		जस्ता		
गेहूं और मक्का	8–30 से.मी.	< 15	15–150	> 150
सोयाबीन की पत्तियां	वर्धी	< 15	15–150	> 150
धान (निचली भूमि)	वर्धी	< 20	20–150	–
		लोहा		
मक्का	हाल की परिपक्व पत्तियां	24–56	56–78	–
धान	पत्तियां	< 63	> 63	–
सोयाबीन	प्ररोह (34 दिन आयु)	< 38	44–60	–
		मैंगनीज		
मक्का	बाली–पत्तियां	–	19–84	–
धान	ऊपरी भाग	< 20	–	> 250
गेहूं	ऊपरी भाग	–	181–621	–
सोयाबीन	ऊपरी भाग	< 15	> 15	–
		तांबा		
मक्का	बाली–पत्तियां	< 5	5–30	> 30
सोयाबीन	हाल की परिपक्व पत्तियां	< 10	10–30	> 30
गेहूं	तना	< 8	8–10	–
		बोरॉन		
मक्का	25 दिन की अवस्था	< 5	5–25	–
	की पत्तियां पत्र पटल	< 16	16–83	–
		मालिब्डेनम		
जौ	8 सप्ताह की पत्तियां	0.03		
पौधा	–	क्लोरनि < 100		

की मात्रा अधिक और लोहे की कम होती है। जैसे–जैसे अवस्था बढ़ती जाती है, सूक्ष्म तत्वों की मात्रा कम होती जाती है। पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की सान्द्रता के आधार पर तत्व की कमी का निश्चयन करते समय इन सभी बातों पर ध्यान देना आवश्यक होता है।

जस्ता

कुल मात्रा

भारतीय मिट्टियों में जस्ता की कुल मात्रा आमतौर पर 25.0 से 205.0 मि.ग्रा./कि.ग्रा. मे मध्य पायी जाती है। कुछ जलोढ़ मिट्टियों में इसकी न्यूनतम मात्रा 2.0 मि.ग्रा./कि.ग्रा. और अधिकतम मात्रा 1019 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक पायी गयी है। मिट्टी में जस्ता की मात्रा उसके मूल पदार्थ, विशेषकर जस्ताधारी खनिजों व सेस्कवी–आक्साइड के संग्रहण और भूरारासायनिक एवं मृदाजनिक–प्रक्रमों द्वारा प्रभावित होती है। साधारणतया उत्तर भारत की कम अपक्षयित जलोढ़ मिट्टियों में दक्षिणी भारत की ग्रेनाइट निर्मित एवं अपेक्षाकृत अधिक अपक्षयति, लाल एवं लेटराइट मृदाओं में जस्ता की कुल मात्रा अधिक होती है। काश्मीर की वन–मिट्टियों में पर्वत की तलहटी में पायी जाने वाली मिट्टियों और करेवा मिट्टियों की अपेक्षा जस्ता की प्रचुरता होती है। ऐसी मिट्टियों जिनमें आसानी से अपक्षयति खनिज जैसे–अगाइट और हार्नब्लेन्डे पाये जाते हैं। उनमें जिंक की मात्रा अधिक होती है। चूनायुक्त जलोढ़ एवं बेसाल्टयुक्त मिट्टियों में जस्ता की कुल मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। इस पर जीवांश पदार्थ की मात्रा का भी अनुकूल प्रभव पड़ता है। भारतीय मिट्टियों में जस्ता की कुल मात्रा का उल्लेख सारणी 8.5 में किया गया है।

उपलब्ध मात्रा

जल विलेय, विनिमेय और अधिशोषित जस्ता पूलों को आमतौर पर पौधों को उपलब्ध होने वाले जस्ता के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। कुछ भारतीय मिट्टियों में इन रूपों में पाये जाने वाले जस्ता की मात्रा का विवरण सारणी 8.6 में दिया गया है। अधिकांश उपलब्ध जस्ता अधिशोषित रूप में पाया जाता है, और जस्ता के प्रयोग के फलस्वरूप फसलों की उपज में होने वाली वृद्धि का इस रूप में मौजूद जस्ता की मात्रा के आधार पर सही अनुमान लगाया जा सकता है। इसीलिये सातवें दशक के प्रारंभ से ही अधिकांश मिट्टियों में जस्ता की उपलब्धता की जानकारी डीटीपीए या इडीटीए निष्कर्षक

सारणी-8.5 भारतीय मिट्टियों में जस्ता की कुल मात्रा (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)

राज्य	काली			लाल	लैटेराइट	जलोढ़	मरुस्थलीय	सन्दर्भ
	उथली	मध्यम	गहरी	पीली भूरी धूसर भूरी				
मध्य प्रदेश	58	72	65	41–42	–	18–32	–	शर्मा एवं मोती रमानी (1969) कंवर एवं रंधावा (1974)
महाराष्ट्र	–	39–60	–	35–65	64	40–43	–	रसादिवे इत्यादि (1964)
उड़ीसा	–	60	–	–	24–30	60	–	लाल इत्यादि (1959)
राजस्थान	40	84	38	80–90	–	37	40	लाल एवं विश्वास (1973)

सारणी-8.6 भारतीय मिट्टियों में उपलब्ध जस्ता के विभिन्न रूप (मि.ग्रा./कि.ग्रा.

राज्य/मृदा समूह	वर्ग/श्रेणी	जलविलेय	विनिमेय (1 नारमल अमोनियम एसीटेट अथवा उदासीन लवण	दुर्बल (अधिशोषित/ जटिल (डाइथायोजोन, ईडीटीए, डीटीपीए	सबल अधिशोषित (0.1 नारमल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल
1	2	3	4	5	6
बिहार (जलोढ़)	उत्तर	–	0.8–5.3	0.5–6.7	1.3–4.6
	दक्षिण	–	2.9–5.9	0.8–5.5	1.3–20.9
पंजाब (जलोढ़)	(अ) इसरी लैगेरियन (चुनही क्षारीय)	0.08–0.44 (0.29)	0.24–1.84 (0.73)	0.8–2.2 (1.3)	1.4–4.2 (2.5)
	(ब) बालेवाल खान पुर (चुनही क्षारीय)	0.04–0.56 (0.23)	0.16–1.68 (0.87)	0.52–3.6 (2.0)	2.8–10.4 (4.8)
	(स) फतेहपुर भनरा (क्षारीय)	0.16–0.40 (0.23)	0.06–2.24 (0.85)	0.50–6.8 (1.9)	3.6–11.6 (4.3)

1	2	3	4	5	6
हिमाचल प्रदेश	भूरी पर्वतीय	–	0.01–0.35 (0.07)	0.10–1.83 (0.48)	0.90–12.6 (2.8)
महाराष्ट्र		शून्य 0.3	0.4–3.4	0.2–14.3	0.3–9.7
जम्मू एवं काश्मीर (जलोढ़)	समतल घाटी का निचल प्रक्षेत्र	शून्य–0.1 (0.07)	0.5–0.55 (0.24)	0.25–5.4 (1.12)	–
	करेवा	0.02–0.10 (0.04)	0.05–0.35 (0.15)	0.2–1.14 (0.68)	–
	वन	0.02–0.24 (0.11)	0.10–0.55 (0.24)	0.40–4.2 (1.15)	–
कर्नाटक	लाल	–	0.30–1.38 (0.81)	0.43–2.53 (1.50)	1.9–7.0 (4.3)
	लैटेराइट	–	0.25–0.95 (0.44)	0.60–2.61 (1.23)	2.2–7.3 (3.8)

स्रोतः टक्कर एवं रंधावा (1980)

विलयनों द्वारा दी गयी। उल्लेखनीय है कि अधिशोषित या जटिल जस्ता की अधिकांश मात्रा का निष्कर्षण इन विलयनों द्वारा होता है।

मिट्टी और पौधों में सूक्ष्म पोषक तत्वों के अध्ययन से सम्बन्धित भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की अखिल भारतीय योजनान्तर्गत 50,000 से भी अधिक मिट्टी के न्मूनों के विश्लेषण से पता चला है कि विभिन्न राज्यों की मिट्टियों में उपलब्ध जस्ता की मात्रा 0.25 से 2.58 मि.ग्रा./कि.ग्रा. के बीच पायी गयी। कुछ स्थानों पर यह मात्रा शून्य से 10 मि.ग्रा/कि.ग्रा. तक पायी गयी। इस विश्लेषण के आधार पर 8 से लेकर 83 प्रतिशत नमूनों में जस्ता की कमी पायी गयी। हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश जैसे राज्यों में आधे से अधिक नमूनों में जस्ता की कमी पायी गयी। आमतौर पर मृदा की ऊपरी सतह में उपलब्ध जस्ता की मात्रा अधिक होती है, क्योंकि फसल अवशेषों के पुनर्चक्रीयकरण के फलस्वरूप जस्ता की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। भारतीय मिट्टियों के जस्ता उर्वरता का उल्लेख रेखाचित्र 8.3 में दिया गया है।

परिच्छेदिका में वितरण

अधिकांश मृदा–परिच्छेदिकाओं में जस्ता का वितरण लगभग एक समान देखा गया है। कुछ अध्ययनों में गहराई के साथ इसकी मात्रा में वृद्धि या कमी तथा अन्य अध्ययनों में निश्चित क्रम के अभाव का संकेत मिलता है।

उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारक

मृदा पीएच मान

आमतौर पर अम्लीय मिट्टियों में क्षारीय मिट्टियों की तुलना में जस्ता की उपलब्धता अधिक होती है। प्रायः पीएच 6.0–8.0 के बीच में होने पर जस्ता न्यूनता की स्थिति देखी गयी है, लेकिन ऐसे भी उदाहरण हैं जहां पीएच तथा जस्ता उपलब्धि में कोई सम्बन्ध नहीं पाया गया। ऐसा अनुमान है कि 7.5 से अधिक पीएच पर जिंकेट आयन बनता है जो कैल्सियम के साथ संयुक्त होकर अविलेय कैल्सियम जिंकेट बनाता है। तांबे की भांति उच्च पीएच पर Zn^{++} का भी जलअपघटन होता है जिससे हाइड्राक्सिलटीकृत जस्ता आयन $(ZnOH)^+$ बनता है।

$$Zn^{++} + H_2O \longrightarrow (ZnOH)^+ + H^+$$

भारतवर्ष में
जिंक की कमी वाले क्षेत्र
जम्मू और कश्मीर
हिमाचल
राजस्थान
मध्य प्रदेश
बिहार
सिक्किम
अरुणाचल प्र.
असम
मेघालय
नागालैण्ड
मणिपुर
प. बंगाल
उड़ीसा
महाराष्ट्र
आन्ध्र प्रदेश
कर्नाटक
केरल
तमिलनाडु
25% से कम कमी वाले क्षेत्र
25-50 प्रतिशत " "
50-75 " " "
75% से अधिक " "
सभी अनाजों की उच्च से मध्यम उपज वृद्धि
धान, गेहूँ, आलू, चाय, सेव की उपज में अधिक वृद्धि
धान व रागी की उपज में मध्यम वृद्धि
सभी अनाजों की उपज में मध्यम वृद्धि
धान और कपास की उपज में मध्यम वृद्धि
संकलनः— डा. पी. एन. टक्कर
वार्षिक रिपोर्ट सूक्ष्म पोषक तत्व
अनुसंधान योजना 1986-87
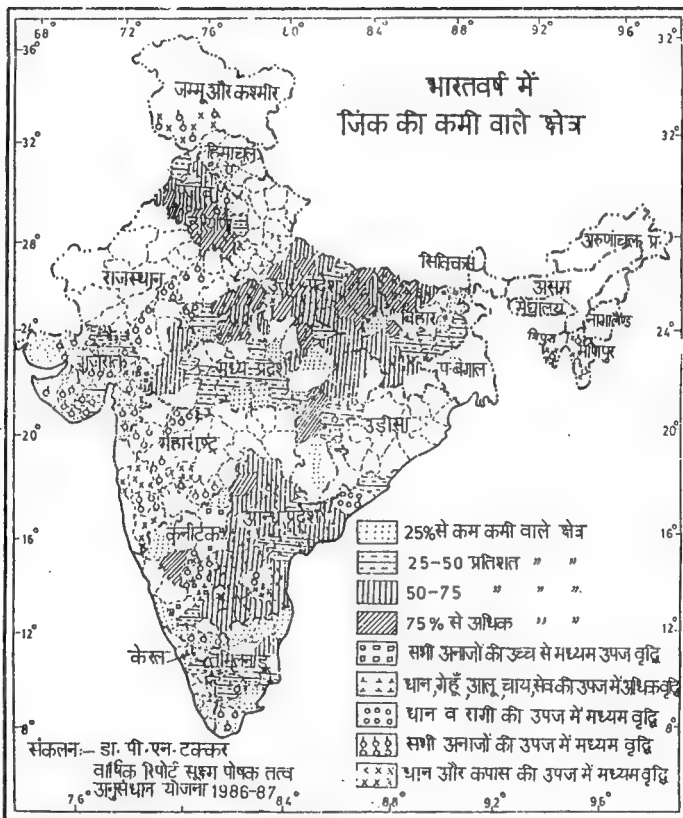
रेखाचित्र-8.3

काफी उच्च पीएच होने पर अविलेय $Z_n(OH)_2$ बनता है। संभवतया क्षारीय विलयन में जस्ता निम्नवत बंधिक हो जाता है।

कैल्सियम कार्बोनेट

जस्ता सल्फेट प्रत्यक्षतः कैल्सियम कार्बोनेट से क्रिया करके जस्ता कार्बोनेट और जस्ता सल्फेट बनाता है। चूनायुक्त मिट्टियों में जस्ता न्यूनता की संभावना रहती है। अम्लीय मिट्टियों में चूना डालने से पीएच बढ़ता है जिससे जस्ता की उपलब्धि घटती है। चूना अधिशोषक का कार्य भी करता है। कैल्सियम कार्बोनेट से जिंकेट आयन की अभिक्रिया के फलस्वरूप अविलेय कैल्सियम जिंकेट बनता है जिसे निम्नांकित रासायनिक प्रतिक्रिया के द्वारा दर्शाया जा सकता है।

$$CaCO_3 + H_2O \rightleftharpoons Ca^{2+} + HCO_3^- + OH^-$$

$$Zn^{++} + OH^- \rightleftharpoons Zn\ (OH)^+$$

$$Zn^{++} + 2OH \rightleftharpoons ZN\ (OH)_2$$

$$Zn^{++} + 6HOH \rightleftharpoons Zn\ (H.OH)6^{++}$$
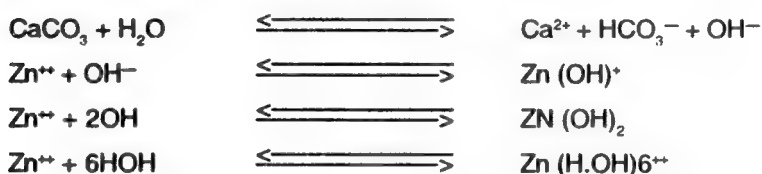
यही नहीं, Zn (OH)2, पुनः Zn^{++} से अभिक्रिया करके कुल जिंकहाइड्राक्साइड बना सकता है।

$$Zn^{++} + 3Zn\ (OH)_2 \rightleftharpoons \left[Zn\left(\begin{smallmatrix}OH\\OH\end{smallmatrix}\right\rangle Zn\right)_3\right]$$

पीएच 7.0 से ऊपर होने पर जिंकेट आयन बनते हैं।

$$Zn\ (OH)_2 + OH^- \rightleftharpoons [Zn\ (OH)_3^-]$$

$$Zn\ (OH)_2 + 2OH^- \longrightarrow [Zn\ (OH)_4^-]$$
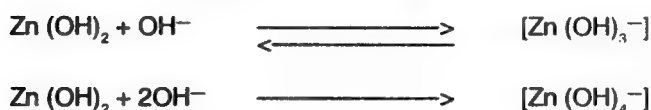
इसके अलवा Zn^{++} सीधे $CaCO_3$ से अभिक्रिया करके $ZnCO_3$ तथा क्षारीय कार्बोनेट ($2ZnCO_3.3Zn(OH)_2$) बनाकर अवक्षेपित हो सकता है।

कार्बनिक पदार्थ

मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ के साथ द्विसंयोजी धनायनों की अभिक्रिया किलेट निर्माण जैसी होती है। ऐसा देखा गया है कि हियूमीकरण के साथ–साथ उसकी जस्ता अधिशोषण शक्ति बढ़ती जाती है। खनिज मिट्टियों में कार्बनिक पदार्थ डालने से जस्ता की उपलब्धि पहले तो बढ़ती है किन्तु अधिक कार्बन डालने पर जस्ता अनुपलब्ध बन जाता है। गोबर की खाद डालने पर जस्ता न्यूनता प्रकट होने का रहस्य यही हो सकता है।

फास्फेट

अनेक अध्ययनों में यह देखा गया कि अधिक फास्फेट डालने से जस्ता की उपलब्धता कम हो जाती है। बहुत समय तक इसका कारण जिंक फास्फेट (Zn3 (PO4)2 4H2O) का बनना माना जाता रहा जो अविलेय है। बाद की खोजों से यह स्पष्ट हो चुका है कि जिंक कार्बोनेट या जिंक हाइड्राक्साइड की तुलना में जिंक फास्फेट कम विलये है फिर भी मिट्टी में प्राकृत जिंक (Zn मिट्टी) से यह कहीं अधिक विलेय है, अतः यह उर्वरक का काम कर सकता है। फास्फेट–जस्ता अन्तर्क्रिया विशेष पादप–अंगों में जस्ता के जमा हो जाने के फलस्वरूप होने के संकेत मिलते हें।

मृत्तिका

मिट्टियों में महीन कणों की मात्रा और जस्ता उपलब्धि में धनात्मक सह सम्बन्ध पाया गया है। मृत्तिका खनिज जस्ता के अधिशोषण के लिये उत्तरदायी होते हैं। मृदा खनिजों में विभिन्न धनायनों का अभिग्रहण इस क्रम में देखा गया है: $H > Zn > Cu > Mg > K$.

आर्द्रता

जलमगन दशाओं में जस्ता की उपलब्धि घट जाती है।

पौधों के पोषण में जस्ता का महत्व

पौधों में इनके कार्य इस प्रकार है:

(1) जस्ता अनेक धातु एन्जाइम का अंग–स्वरूप है। उदाहरणार्थ, यह कई डीहाइड्रोजिनेजों–अल्कोहल डीहाइड्रोजिनेज, प्रोटीनेजों और पेप्टाइडों में पाया जाता है।

कार्बोनिक एनहाइड्रेज नामक जस्ता–प्रोटीन एन्जाइम निम्नलिखित प्रतिक्रिया को उत्प्रेरित करता है।

H_2CO_3 ——> CO_2 + H_2O

कार्बोनिक–अम्ल कार्बन डाई आक्साइड पानी

पाइरूविक कार्बोक्सीलेज के संश्लेषण में भी जस्ता का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। जस्ता की उपस्थिति में एल्डोलेज एन्जाइम की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। यह एन्जाइम श्वसन के समय सम्पन्न होने वाली निम्नांकित रासायनिक प्रतिक्रिया को उत्प्रेरित करता है:

हेक्सोज फास्फेट ——> ट्रायोज फास्फेट

फास्फेट एस्टर एन्जाइम–हेक्सोकाइनेज को सक्रिय करने में जस्ता की भूमिका रहती है। यह एनोलेस एन्जाइम की क्रियाशीलता में वृद्धि करता है। यह एन्जाइम श्वसन की शर्करा वियोजन प्रावस्था (Glycolytic Phase) में डी–2 फास्फोग्लिसरिक अम्ल (d-2 Phosphoglyceric acid) का निर्जलीकरण करके फास्फोफेनाल पाइरूविकअम्ल (Phosphophenol Pyruvic acid) में बदल देता है।

(2) ग्लूकोज के फास्फोरिलीकरण में भी जस्ता का योगदान रहता है।

(3) जस्ता एन्डोल एसिटिक अम्ल के संश्लेषण में भाग लेता है। जस्ता का सीधा सम्बन्ध ट्रिप्टोफेन के संश्लेषण से रहता है जो कि एन्डोल एसिटिक अम्ल का पूर्वग (Precursor) माना जाता है।

(4) यह साइटोक्रोम "ए" तथा "बी" के उत्पादन में वृद्धि करता है। यह साइट्रोक्रोम आक्सीडेज को भी विशेष क्रियाशील बनाता है।

(5) यह सल्फहाइड्रिल यौगिकों को स्थिरता प्रदान करने में आवश्यक समझा जाता है और सिस्टीन अमीनों अम्ल को सिस्टाइन में आक्सीकृत कर देता है।

(6) जस्ता "आर एन ए" के विघटन को रोकता है।

(7) यह कोषा–संरचना को सामान्य बनाए रखने में मदद करता है। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार इसका सम्बन्ध इंग्लेना ग्रेसिलिस (Englena gracilis) के साइटोप्लाज्म में पाए जाने वाले राइबोसोमों से है।

(8) जस्ता प्रोटीन संश्लेषण में सहायक होता है। इसकी कमी से प्रोटीन का संश्लेषण ठीक से नहीं हो पाता।

(9) जस्ता पौधों में कार्बोहाइड्रेट के उपयोग को भी प्रभावित करता है।

(10) इस तत्व की कमी से पौधों की जल–उपयोग क्षमता कम हो जाती है जिससे पौधों के अग्रसिरा और जड़ों का प्रचूषण–दबाव बढ़ जाता है।

(11) लोहा और मैगनीज के साथ संयुक्त होकर जस्ता पर्णहरित के निर्माण में मदद करता है।

(12) जस्ता के प्रयोग से टमाटर की फसल में फाइटोफ्थोरा फ्यूजेरियम विल्ट तथा तम्बाकू में मौजेक वायरस नामक रोग के नियन्त्रण में मदद मिलती है।

कमी के लक्षण

पौधों में इसकी कमी के लक्षण इस प्रकार हैं:

(1) जस्ता की कमी के लक्षण समान्यतः पुरानी पत्तियों पर दिखायी पड़ते हैं परन्तु नई पत्तियाँ भी बाद में प्रभावित हो जाती हैं।

(2) आमतौर पर पत्तियाँ आकार में छोटी हो जाती हैं और उन पर पीले रंग के धब्बे पड़ जाते हैं।

(3) पत्तियों पर सफेद धारियां सी पड़ जाती है और शिराओं के बीच के ऊतक मर जाते हैं। विभिन्न फसलों में जस्ता की कमी के लक्षणों में अन्तर पाया जाता है जिन्हें नीचे दिया गया है।

न्यूनता रोग

धान का खैरा रोगः पौधों की तीसरी या चौथी पत्ती रोपाई के 20–25

दिन बाद हरिमाहीनता के लक्षण प्रदर्शित करती हैं। तत्पश्चात् इन पर भूरे रंग के छोटे–छोटे धब्बे पड़ जाते हैं जो बाद में एक दूसरे से मिलकर पूरी पत्ती पर फैल जाते हैं। फलतः पूरा पौधा ही भूरा–लाल दिखाई पड़ने लगता है। अन्त में पत्तियों मर जाती हैं।

मक्के का सफेद चित्ती रोग

पुरानी पत्तियों के शिराओं के बीच में हल्की पीली धारियां पड़ जाती हैं जो बाद में सफेद हो जाती हैं। नई पत्तियां प्रायः हल्की पीली या सफेद रंग की दिखाई देती हैं।

फलों का गुच्छ रोग

पत्तियां आकार में छोटी तथा गुच्छे के रूप में दिखायी देती हैं। इस रोग में पुरानी पत्तियों पर पीले रंग के धब्बे पड़ जाते हें। बाद में नई पत्तियों पर भी पीले धब्बे पड़ जाते हैं। पत्तियां कम चोड़ी, लम्बी और कुरूप हो जाती हैं। प्रभावित शाखायें अन्त में मर जाती हैं। इसे "वामन पत्री" या लिटिल लीफ के नाम से भी जाना जाता है।

नीबू का झुर्री रोग

सर्वप्रथम पत्तियों का अन्तः शिरा–क्षेत्र पीला पड़ता है। पत्तियां आकार में छोटी हो जाती हैं और केवल मुख्य शिरा के आधार पर ही हरिमाहीनता दिखाई देती है। विशेष कमी की दशा में शीर्षरंभी क्षय (डाइ बैंक) हो जाता है।

विषालुता

पत्तियों में हरिमाहीनता के लक्षण और अन्तः शिराओं में लाल भूरे धब्बे दिखाई देते हैं। चुकन्दर में विषालुता के लक्षण मैंगनीज के अभाव के लक्षणों के समान होते हैं। औद्योगिक प्रदूषण तथा मिट्टी में जस्ता युक्त उर्वरकों की लगातार अधिक मात्रा प्रयोग करने पर विषालुता की सम्भावना बढ़ जाती है।

भारत में जस्ता के प्रयोग का फसलोत्पादन में महत्व

मिट्टी और पौधों के सूक्ष्म पोषक तत्वों की अखिल भारतीय समन्वित योजनान्तर्गत देश के विभिन्न भागों में किये गये परीक्षणों से विभिन्न फसलों

की उपज वृद्धि में जस्ता के योगदान की पुष्टि हुई। टक्कर इत्यादि (1989) ने इन परिणामों को संकलित किया है जिन्हें सारणी 8.7 में दिया गया है।

सारणी-8.7 कृषकों के खेतों में किये गये परीक्षणों में जस्ता के प्रयोग द्वारा विभिन्न फसलों की उपज में वृद्धि

फसल	प्रयोगों की संख्या	उपज वृद्धि (कु. प्रति हे.) <2	2–5	5–10	> 10
		प्रयोगों में प्रतिशत संख्या			
गेहूं	2248	44	33	6	7
धान	1857	28	37	24	11
मक्का	231	48	24	21	7
ज्वार	58	64	26	10	–
बाजरा	180	63	34	2	1
रागी	33	73	24	3	–
मूंगफली	49	18	45	33	4
चना	3	34	33	–	33
कपास	25	60	36	4	–
सभी फसलें	4702	39	34	19	8

सारणी में दिये गये आंकड़ों से स्पष्ट है कि धान के कुल 1875 परीक्षणों में 2 कु. प्रति है. से अधिक वृद्धि हुई इसके समतुल्य गेहूं, मक्का और ज्वार में यह प्रतिशत क्रमशः 56, 52 और 36 रहा। कपास, बाजरा और रागी में अनुक्रिया की बारम्बारता और कम अर्थात क्रमशः 40, 37, और 27 प्रतिशत रही। आंध्र प्रदेश में किये गये मूंगफली के 49 परीक्षणों में 82 प्रतिशत में 2 कु. प्रति है. से अधिक उपज वृद्धि हुई जिससे मूंगफली के उत्पादन वृद्धि में जस्ता के महत्व की पुष्टि होती है। हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश में धान के लिए, आंध्र प्रदेश में गेहूं और मूंगफली, गुजरात और बिहार में मक्का के लिए जस्ता विशेष महत्वपूर्ण पाया गया।

साधारणतया यह देखा गया है कि खरीफ की फसलें जैसे धान, मक्का और ज्वार की उपज में रबी फसलों जैसे गेहूं, सरसों इत्यादि की तुलना में

जस्ता के प्रयोग से अधिक वृद्धि होती है। तिवारी और पाठक (1976) के अध्ययनों से धान और गेहूं में जस्ता के प्रभाव के अन्तर की पुष्टि हुई है। सम्बन्धित आंकड़े रेखाचित्र–8.4 में प्रदर्शित किये गये हैं।

स्पष्ट है कि एक ही खेत में उगाई गई धान व गेहूं की फसलों में धान की फसल जस्ता के प्रयोग से लाभान्वित हुई जबकि गेहूं की उपज में प्रथम वर्ष में कोई खास वृद्धि नहीं हुई। इन परीक्षणों से यह भी पता चला कि मिट्टी में जस्ता की क्रान्तिक सीमा धान के लिए 0.8 मि.ग्रा./कि.ग्रा. (डायथायजोन निष्कर्षित जिंक) और गेहूं के लिए 0.6 मि.ग्रा./कि.ग्रा. थी (रेखाचित्र–8.5)।
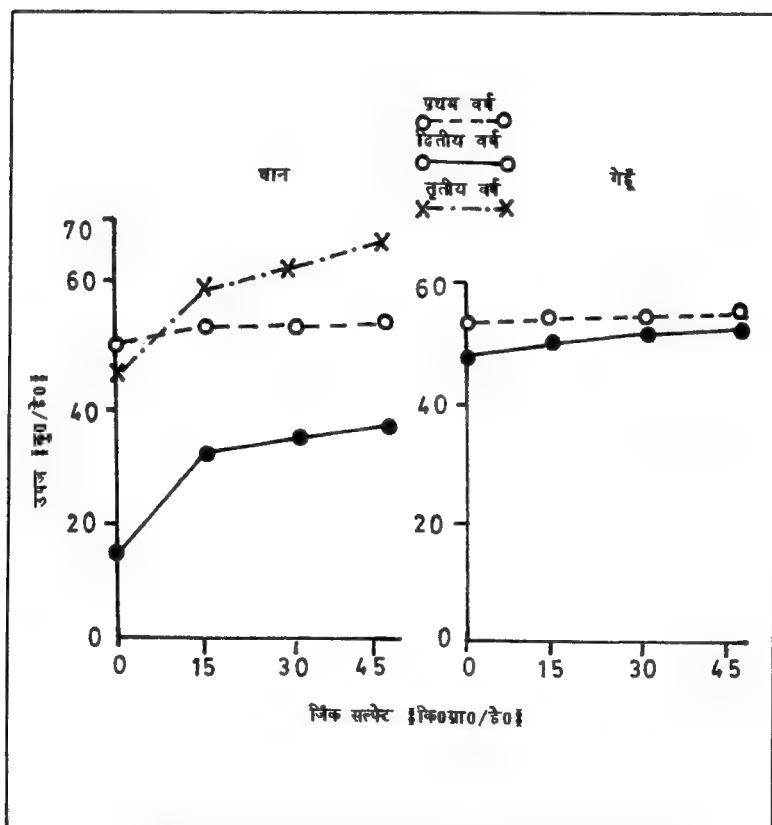
रेखाचित्र-8.4 जस्ता का धान और गेहूं की उपज पर प्रभाव
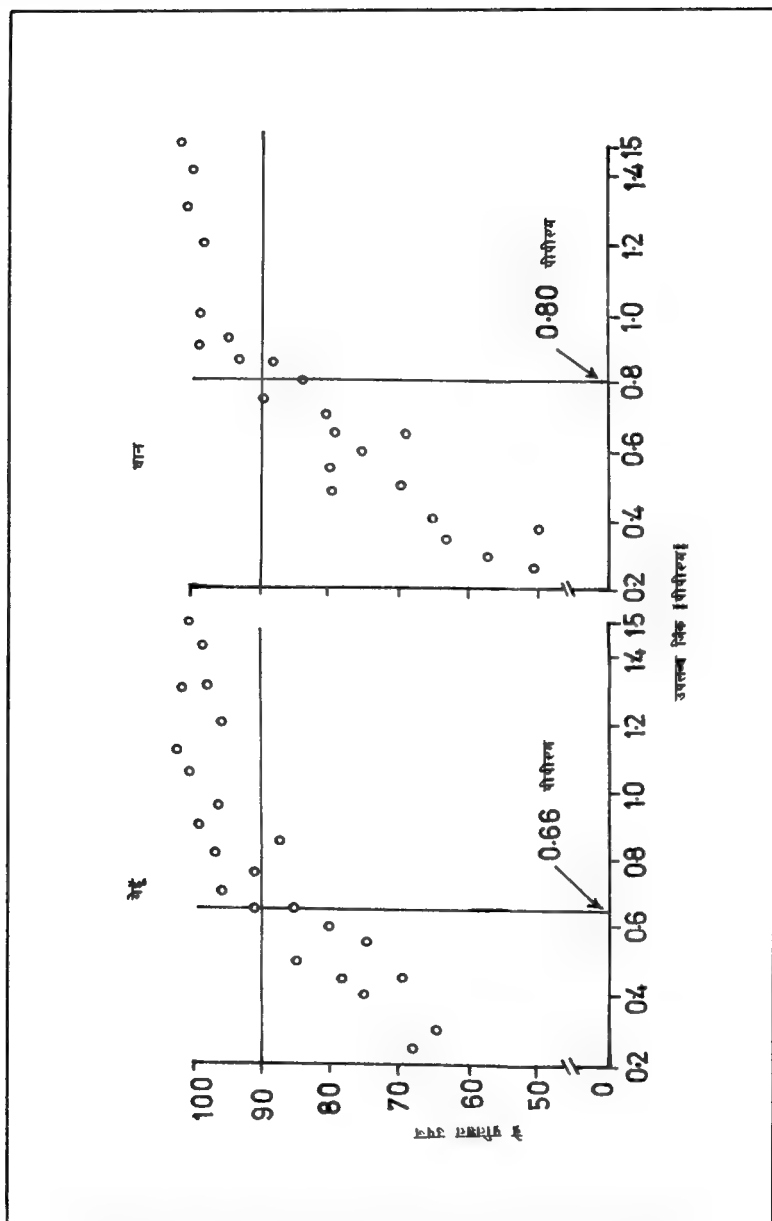
रेखाचित्र-8.5 गेहूं और धान के लिए मिट्टी में जस्ता की क्रान्तिक सीमा

फसलों में जस्ता अनुक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक

जस्ता के प्रयोग के फलस्वरूप फसलों की उपज में होने वाली वृद्धि पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है जिनमें फसलों और उनकी प्रजातियों की संवेदनशीलता, मिट्टी की किस्म और उनमें उपलब्ध जस्ता की मात्रा, मृदा वातावरण, जलवायु, सस्य क्रियायें, पोषक तत्वों की आपसी अर्न्तक्रिया आदि विशेष महत्वपूर्ण हैं। कुछ कारकों का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

फसल और उनकी प्रजातियां

कानपुर में विभिन्न फसलों की जस्ता अनुक्रिया से सम्बन्धित अध्ययन तिवारी एवं सहयोगियों (1982, 1986, 1990) द्वारा किये गये जिनसे पता चला कि दलहनी फसलें, जस्ता के प्रयोग से अनाज वाली और तिलहनी फसलों की तुलना में विशेष लाभान्वित होती है (रेखाचित्र–8.6)।

विभिन्न फसलों की जस्ता उपयोग क्षमता सम्बंधी गणनाओं से पता चला कि दलहनी फसलों की मृदा–जस्ता को प्रयोग करने की क्षमता अन्य फसलों की तुलना में कम थी। अतः इन फसलों की उजप में जस्ता के प्रयोग से अधिक वृद्धि हुई। उल्लेखनीय है कि दलहनी फसलों की जड़ों धनायन विनिमय क्षमता अधिक होती है। अन्य फसलों की तुलना में इनके पौधों में Ca:Zn< Mg:Zn,, Ca+MG:ZN और P:Zn अनुपात अन्य फसलों की तुलना में अधिक या सम्भवतया कैल्सियम, मैग्नीशियम और फास्फोरस के अधिक उपयोग के कारण पादप ऊतकों में जस्ता असंतुलन की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

जस्ता के प्रयोग से फसलों की विभिन्न प्रजातियों की उपज में होने वाली वृद्धि में काफी अन्तर पाया जाता है जैसा कि सारणी–8.8 में दिये गये आंकड़ों से स्पष्ट है।

मिट्टी में जस्ता की उपलब्ध मात्रा

साधारणतया यह देखा जाता है कि मिट्टी में उपलब्ध जस्ता की मात्रा जितनी ही कम होगी, जस्ता के प्रयोग से फसलों की उपज में होने वाली वृद्धि उतनी ही अधिक होती है। कानपुर जिले के खेतों में धान, मक्का और गेहूं में किये गये परीक्षणों से इस कथन की पुष्टि हुई है। सम्बन्धित आंकड़े सारणी–8.9 में दिये गये हैं।
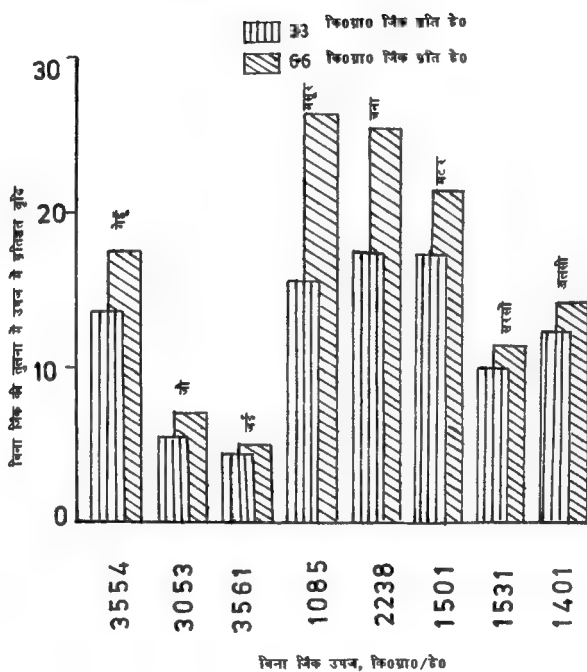
रेखाचित्र-8.6 जस्ता का विभिन्न फसलों की उपज पर प्रभाव

सारणी-8.8 गेहूं, जौ और बाजरे की विभिन्न प्रजातियों की उपज पर जस्ता का प्रभाव

प्रजाति	नियंत्रित की उपज (कु. प्रति हे.)	उपज वृद्धि (कु. प्रति हे.)
गेहूं		
कल्याण सोना	14.7	15.3
WL–394	9.3	10.9
WG–377	11.2	17.5
PB–18	11.3	15.7
WG–357	7.2	24.5
जौ		
DL–120	42.9	3.3
PL–101	54.8	8.1
PL–56	59.9	1.1
P–267	57.8	2.3
BG–25	38.2	3.3
DL–70	54.9	1.7
बाजरा		
PHB–10	16.4	1.7
PHB–14	16.3	3.0
PHB–37	14.2	5.0
PHB–12	18.9	4.0
76–32	14.4	3.8
76/2	19.1	3.7

जस्ता की प्रयोग दर 11.0 कि.ग्रा. प्रति हे.

स्रोत: टक्कर एवं नायर (1985)

3261 HRD/2000—23

सारणी-8.9 मिट्टी में उपलब्ध जस्ता की मात्रा में अन्तर का जस्ता के प्रयोग द्वारा विभिन्न फसलों की उपज पर प्रभाव

जस्ता उर्वरता स्तर	प्रयोगों की संख्या	जस्ता की प्रयुक्त मात्रा (कि.ग्रा. प्रति हे.)				अधिकतम उपज वृद्धि (%)	क्रान्तिक अन्तर (5%)
		0	1.25	2.50	5.0		
				धान			
निम्न	8	3644	3960	4521	4912	25.9	147
मध्यम	6	4437	4743	4909	4911	10.0	103
उच्च	3	4735	4833	4829	4760	2.2	NS
				मक्का			
निम्न	6	2413	2724	3064	3251	25.1	247
मध्यम	6	2840	3056	3178	3110	6.9	104
उच्च	3	3360	3381	3333	3112	1.2	NS
				गेहूं			
निम्न	11	4147	4313	4714	4907	15.7	140
मध्यम	7	4613	4721	4739	4645	2.5	78
उच्च	2	4852	4858	4825	4679	0.1	NS

स्रोतः द्विवेदी, ब्रह्म स्वरूप (1986) पी.एच.डी. थीसिस, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर।

मिट्टी की किस्म

यद्यपि जस्ता की कमी हल्की मिट्टियों, कछारी और क्षारीय मिट्टियों में अधिक पायी जाती है, फिर भी इसके प्रयोग से फसलों की उपज में होने वाली में मिट्टी के किस्म के अनुसार काफी अन्तर पाया जाता है। लुधियाना में किए गये परीक्षणों से पता चला है कि कछारी मिट्टियों में जस्ता के प्रयोग से धान की उपज में सर्वाधिक वृद्धि (39 कु. प्रति है.) हुई, क्षारीय मिट्टियों में यह वृद्धि 22 कु. प्रति हे. और बलुई मिट्टियों में मात्र 8.5 कु. प्रति हे. पायी गयी। अधिक क्षारीय मिट्टियों में कम क्षारीय मिट्टियों की तुलना में धान और गेहूं की उपज में वृद्धि की दर अधिक पायी जाती है। सम्बन्धित आंकड़े सारणी–8.10 में दिए गये हैं। इनसे स्पष्ट है कि क्षारीय मिट्टियों के सुधार हेतु जिप्सम या पाइराइट के साथ जस्ता का इस्तेमाल अवश्य करना चाहिए।

सारणी-8.10 विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में धान की उपज पर जस्ता का प्रभाव (कु. प्रति हे.)

जस्ता प्रयोग की दर (कि.ग्रा./है.)	कम क्षारीय मिट्टियां (8)	क्षारीय मिट्टियां (2)	कछारी मिट्टियां (6)
0	22	20	35
11	33	32	68
22	35	40	74

परीक्षणों की संख्या

स्रोतः टक्टर एवं नायर (1986) प्रो. एफ.ए.आई. सेमिनार पृ. सं. पीएस III/2-9

जल-प्रबन्ध

जगमग्नता की स्थिति में धान की फसल बिना जलमग्नता की तुलना में जस्ता के प्रयोग से विशेष लाभान्वित होती है। ब्रार एवं सेखों (1976) के अध्ययनों से प्राप्त जलमग्नता का जस्ता की उपलब्धता पर प्रतिकूल प्रभाव की पुष्टि करते हैं।

जस्ता उर्वरकों की आपेक्षित क्षमता

जस्ता की कमी वाले क्षेत्रों में जिंक सल्फेट (22–23 प्रतिशत जिंक), जिंक आक्साइड (67–80 प्रतिशत जिंक) और जिंक फ्रिट्स) 4–16 प्रतिशत जिंक) की आपेक्षिक क्षमता का अध्ययन किया गया है। अधिकांश परीक्षणों में जिंक सल्फेट सबसे अधिक प्रभावी सिद्ध हुआ है। यद्यपि जल–अविलये जिंक आक्साइड और जिंक–फिट्स की क्षमता हल्के गठन वाली क्षारीय मिट्टियों में जल विलेय जिंक सल्फेट की तुलना में काफी कम पाई गई, फिर भी भारी गठन वाली मिट्टियों में जल अविलेय जस्ता उर्वरकों की क्षमता जल विलये उर्वरक के समान पाई गई। ज्ञातव्य है कि भारी गठन वाली मिट्टियों में जल विलेय जस्ता का परिवर्तन अविलेय रूप में हो जाने के कारण क्षमता घट जाती है (रेखा चित्र 8.3)।

आजकल यह प्रयास हो रहा है कि एक सूक्ष्म पोषक तत्त्व बजाय कई सूक्ष्म पोषक तत्वों वाले उर्वरक तैयार किये जायें परन्तु (रेखा चित्र 8.3) में दिये गये आंकड़े से कई सूक्ष्म पोषक तत्वों वाले उर्वरकों की कोई खास उपयोगिता सिद्ध नहीं हुई है। इस मिश्रण में 6.5 प्रतिशत जस्ता, 4.2 प्रतिशत लोहा, 0.02 प्रतिशत तांबा और 10 प्रतिशत मैंगनीज था। ऐसे उर्वरकों के अनावश्यक इस्तेमाल से सूक्ष्म पोषक तत्वों की विषालुता और असंतुलन की भयावह स्थिति उत्पन्न हो सकती है। यद्यपि चिलेटेड जस्ता की क्षमता जिंक सल्फेट की तुलना में काफी अधिक होती है (रेखा चित्र–8.6)। परन्तु चिलेटेड जिंक की कीमत इतनी अधिक है कि आर्थिक दृष्टि से इसका उपयोग संभव नहीं हो सकता।

नाइट्रोजन और फास्फोरस–धारी उर्वरकों के साथ ही जस्ता जैसे सूक्ष्म पोषक तत्व की पूर्ति के लिए जिंकेटेड यूरिया और जिंकेटेड सुपरफास्फेट की उपयोगिता सम्बन्धी अध्ययन हुए हैं जिससे इन तत्वों का एक साथ समान रूप से इस्तेमाल हो सके और खर्च भी कम पड़े। धान और मूंगफली की फसल में जिंकेटेड सुपरफास्फेट जिसमें 2.5 प्रतिशत जस्ता पाया जाता है, की क्षमता जस्ता और सुपर–फास्फेट के मिश्रण के लगभग बराबर आंकी गयी। जिंकेटेड यूरिया के परिणाम विशेष उत्साहवर्धक नहीं रहे (सारणी–8.11)।

सारणी-8.11 जिंकेटेड सुपर और जिंक सल्फेट का धान और मूंगफली की उपज पर प्रभाव

उपचार	जस्ता की मात्रा (कि.ग्रा./है.)	दाने की उपज (कु./है.)	
		धान	मूंगफली
नियंत्रित	0	48	9
जिंकेटेड सुपर	9.4	59	10
सुपर फास्फेट+ जिंक सल्फेट (अलग–अलग)	9.4	63	10

जस्ता की आवश्यक मात्रा

परीक्षणों से पता चला है कि धान की जस्ता आवश्यकता खरीफ की अन्य फसलों की तुलना में सर्वाधिक होती है। धान की अधिकतम उपज के लिए जस्ता की आवश्यकता मात्र 11 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर, मक्के की 5.5 कि. ग्रा. प्रति हैक्टर और मूंगफली, ज्वार बाजरा, रागी आदि के लिए 2.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर होनी चाहिए।

जस्ता के उपयोग की विधि

जस्ता के इस्तेमाल हेतु कई विधियों की आपेक्षित क्षमता का मूल्यांकन किया गया है। आमतौर पर जिंक सल्फेट को बुरक कर मिट्टी में मिला देना, कूंड़ में इसके उपयोग करने की तुलना में विशेष प्रभावकारी सिद्ध हुआ। अतः खरीफ की सभी फसलों में जिंक सल्फेट को एक सार छिड़क कर ही इस्तेमाल करना चाहिए। इसके बाद जुताई करके इसे अच्छी तरह मिट्टी में मिला देना चाहिए।

बुआई या रोपाई से समय मिट्टी में उपयोग या खड़ी फसल में पर्णीय छिड़काव

पहले से ही मिट्टी में जस्ता की कमी की जानकारी होने की दशा में बुआई या रोपाई के समय ही जस्ता उर्वरक का इस्तेमाल उचित मात्रा में ऊपर

बताए ढंग से करना चाहिए। ऐसा न करने पर फसल पर जस्ता की कमी का बुरा असर पड़ता है, जिसे खड़ी फसल में जस्ता का पर्णीय छिड़काव करके कुछ हद तक ही ठीक किया जा सकता है। अतः जस्ता की कमी की आशंका होने पर जस्ता का इस्तेमाल खड़ी फसल में पर्णीय छिड़काव के बजाय रोपाई या बुआई के समय ही उचित मात्रा में करना श्रेयस्कर होगा (रेखाचित्र–8. 7)। जिंक सल्फेट की तुलना में जिंक आक्साइड और जिंक फ्रिटों का अनुगामी फसलों पर अवशेष प्रभाव अधिक पाया जाता है। देखें सारणी 8–12।

सारणी-8.12 विभिन्न जस्ता उर्वरकों का फसलों की उपज पर प्रत्यक्ष एवं अवशेष प्रभाव

जस्ता उर्वरक	जस्ता की मात्रा (कि.ग्रा.प्रति है.)	दाने की उपज (कु. प्रति है.)		
		प्रत्यक्ष प्रभाव	अवशिष्ट प्रभाव	
		जौ	धान	गेहूं
नियंत्रित	0	42	23	34
जिंक सल्फेट	5	48	32	36
	10	49	35	37
जिंक आक्साइड	5	48	35	35
	10	50	34	37
जिंक फ्रिट	5	44	35	36
	10	45	36	37
क्रान्तिक अन्तर		5	6	3

स्रोतः सकल इत्यादि (1985) जर्नल आफ दि इण्डियन सोसाइटी ऑफ सोयल साइंस : 33, 836–840

खड़ी फसल में जिंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव करने हेतु 5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट को एक हजार लीटर पानी में घोल लेना चाहिए। अच्छा हो कि इसमें 2.5 कि.ग्रा. बुझा चूना मिला लिया जाय। यह घोल एक हैक्टर क्षेत्रफल की फसल के लिए पर्याप्त होगा कम से कम दो छिड़काव आवश्यक होते हैं।
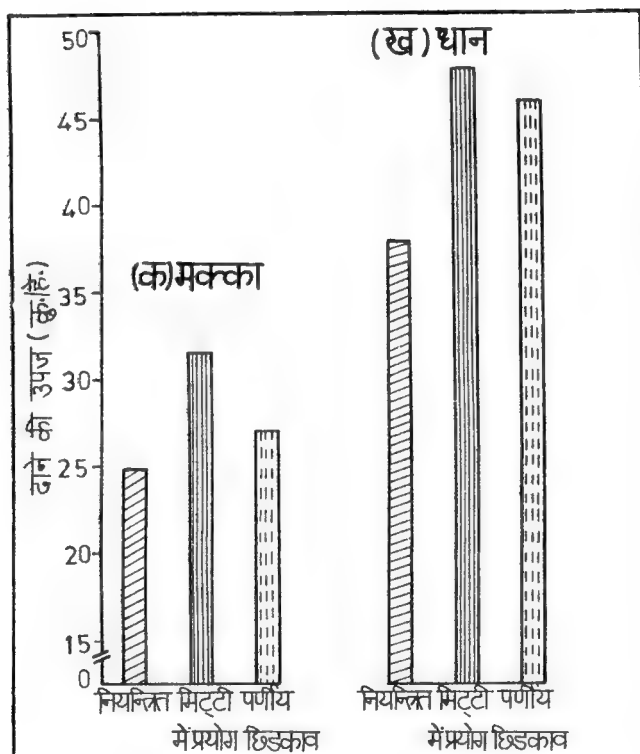
रेखाचित्र-8.7 जस्ता के मिट्टी में प्रयोग और पर्णीय छिडकाव का आपेक्षिक महत्व

यदि धान की पोध की जड़ों को रोपाई से पहले 2 से 4 प्रतिशत सान्द्र जिंक आक्साइड के घोल में डुबो दिया जाये तो फसल की जिंक–आक्साइड की पूर्ति कुछ हद तक हो सकती है (रेखाचित्र 8.8)। केवल जड़ों के उपाचार से जस्ता की कमी को दूर करना मुश्किल होता है। अतः खड़ी फसल में एक बार जिंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव आवश्यक हो जाता है।

लोहा

मिट्टियों में लोहा प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, इसलिए पहले यह प्रमुख तत्व के रूप में जाना जाता था। किन्तु कालान्तर में इसकी गणना सूक्ष्म पोषक तत्व की श्रेणी में की जाने लगी।

मृदा में लोहे की कुल मात्रा

वैसे तो विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में लोहे की मात्रा 0.27 से 19.1 प्रतिशत तक देखी गई परन्तु सामान्यतया यह मात्रा 1.0 से 4.0 प्रतिशत तक होती है। सम्बन्धित आंकड़े सारणी–8.14 में दिए गये हैं।

वन एवं अम्लीय मृदाओं में लोहे की मात्रा अधिक होती है। राजस्थान की धूसर–भूरी, पीली–भूरी, पर्वत के तलहटी की लाल मिट्टियों और काली मिट्टियों इसकी मात्रा अन्य प्रमुख मृदा–समूहों की तुलना में अधिक पायी जाती है। मोटे गठन वाली बलुंई मरुस्थलीय मिट्टियों में यह कम मात्रा में पाया जाता है। बिहार की मिट्टियों में लोहे की प्रचुरता पायी गयी। स्थानबद्ध मिट्टियों में लोहे की मात्रा जलोढ़ मिट्टियों की तुलना में अधिक थी। उत्तर प्रदेश की मिट्टियों में लोहे की कुल मात्रा इस क्रम में पायी गई काली मिट्टियों > लाल मिट्टियां > क्षारीय मिट्टियां > जलोढ़ मिट्टियां > भारी मिट्टियां (मिश्र और त्रिपाठी 1970)। तमिलनाडु की लैटेराइट मिट्टियों में लोहे की मात्रा सर्वाधिक, इसके बाद लाल, जलोढ़ और काली मिट्टियों का स्थान रहा।

परिच्छेदिका वितरण

साधारणतया गहराई में वृद्धि के अनुसार निचले संस्तरों में लोहे की मात्रा बढ़ते क्रम में पायी गयी। मिट्टी के बारीक कणों के सम्पोहन (illuviation) के कारण लोहा भी निचले संस्तरों में संयचित हो जाता है। मिट्टी में मृत्तिका या कैल्सियम कार्बोनेट के वितरण का लोहे पर प्रभाव पड़ता है। राजस्थान
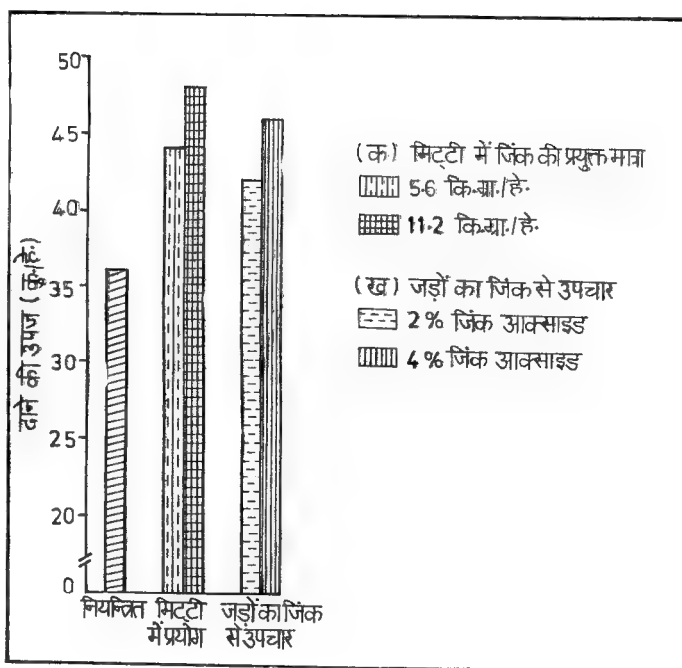
रेखाचित्र-8.8 जस्ता प्रयोग करने की विभिन्न विधियों का धान की उपज पर प्रभाव

की मरुस्थलीय, पुरानी जलोढ़ और गहरी काली मिट्टियों में लोहे का वितरण एक जैसा पाया गया।

सक्रिय एवं स्वतंत्र लोहा

स्वतंत्र लोहा जिसमें प्रमुख रूप से इसके आक्साइड और कार्बनिक रूप से मौजूद लोहा सम्मिलित होता है, मिट्टी की ऊपरी सतह में 0.054 से 0. 975 प्रतिशत और परिच्छेदिका में 0.050 से 0.576 प्रतिशत पाया गया (सारणी–8.13)। मिट्टी के कुल लोहा और स्वतंत्र लोहा की मात्रा में सार्थक सह–सम्बन्ध पाया गया।

अवकरणीय लोहा

वैसे तो भारतीय मिट्टियों में अवकरणीय लोहा की मात्रा 0.2 से 1780 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक पायी गयी है किन्तु सामान्यतया यह मात्रा 20 से 200 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक होती है। जलोढ़ और सीरोजम मिट्टियों में यह कम मात्रा में पाया जाता है। परिच्छेदिका में निचले संस्तरों में इसकी मात्रा में कमी देखी गयी है।

विनिमेय लोहा

उपयोग किए गये निष्कर्षक विलयन के अनुसार विनिमेय लोहा की मात्रा 5–100 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक आंकी गयी है (सारणी–9.7)। अपवाद रूप में धान की मिट्टियों में इसकी मात्रा बहुत अधिक पायी गयी। लवणीय क्षारीय, ऊपरी जलोढ़, चूनायुक्त गहरी काली और सीरोजम मिट्टियों में यह मात्रा 2 मि.ग्रा./कि.ग्रा.से भी कम पायी गयी जो कि लोहा–न्यूनता का द्योतक है।

विभिन्न राज्यों की मिट्टियों में डीटीपीए निष्कर्षक विलयन द्वारा निष्कर्षित लोहा की औसत मात्रा 2 से 64 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक पायी गयी भारतीय मिट्टियों में डीटीपीए निष्कर्षित लोहा की औसत मात्रा रेखाचित्र 8.6 में प्रदर्शित की गयी है।

उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारक

भारतीय मिट्टियों में लोहा की उपलब्धि विभिन्न मृदीय, वातावरणीय, प्रबन्धन एवं कर्षण क्रियाओं द्वारा प्रभावित होता है।

सारणी-8.13 भारतीय मिट्टियों में लोहे के विभिन्न रूप

मृदा समूह	जल विलये/ उपलब्ध (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	विनिमेय/ उपलब्ध (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	अवकृत (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)	स्वतन्त्र लोहा (70)	कुल लोहा (%)	संदर्भ
1	2	3	4	5	6	7
1. जलोढ़ सामान्य	0.5–77	0.8–77	0.8–1165	0540–0.975	0.28-7.91	सुब्बाराव (1971), कंवर एवं रंधावा (1974), वेंकटेश्वर्ल एवं सुब्बाराव (1979)
उदासीन	–	0.11–17.3	1.0–928	0.05–0.576	0.63–40	कंवर एवं रंधावा (1974), टक्कर (1978)
क्षारीय	–	0.47–16.2	2.0–432	0.034–0.298	1.45–3.89	टक्कर (1978)
लवणीय–क्षारीय	–	2.9–4.0	–	–	1.02	लाल एवं विश्वास (1973), कँवर एवं रंधावा (1974)
चुनही	–	5.6–21.4	1.0–550	–	0.32–19.11	कँवर एवं रंधावा (1974), जादव इत्यादि (1978)
ऊंची भूमि	–	0.6–21.7	–	–	0.63–1.66	कंवर एवं रंधावा (1974)
धान की मिट्टी	–	0.32–11700	15–676	0.109–0.279	1.47–6.16	कंवर एवं रंधावा (1974) टक्कर (1978)
	1.6	7.0	37–140	–	1.02–4.38	लाल एवं विश्वास (1973) कंवर एवं रंधावा (1974)

1	2	3	4	5	6	7
2. काली (सामान्य)	0.6–19.0	0.6–6.6	–	–	0.86–6.45	सुब्बाराव (1971), लाल एवं विश्वास (1973), कंवर एवं रंधावा (1974), वेंकअेश्वलू एवं सुब्बाराव (1979)
3. लाल	3.4	–	–	–	0.40–3.46	लाल एवं विश्वास (1973), वेकटेश्वर्लू एवं सुब्बाराव (1979)
4. लैटेराइट	1.2–7.9	3.1–5.0	–	–	2.45	कंवर एवं रंधावा (1974), वेकटंश्वर्लू एवं सुब्बाराव (1979)
5. सीरोजम	0.3–107	शुन्य–107.2	0.2–1214	–	0.63–315	शुक्ला एवं सिंह (1973), कंवर एवं रंधावा (1974)
6. मरुस्थलीय	2.2	–	–	–	1.04–1.53	लाल एवं विश्वास (1973)
7. अन्य	–	–	46–150	–	2.3–16.42	लाल एवं विश्वास (1973) कंवर एवं रंधावा (1974)

मृदा-पीएच

अम्लीय मिट्टियों मे लोहा की उपलब्धता अधिक होती है। पीएच मान बढ़ने के साथ ही लोहा की उपलब्धता पर कुप्रभाव पड़ता है। क्षारीय दशा में Fe++ का परिवर्तन Fe+++ रूप में हो जाने के फलस्वरूप लोहे की उपलब्धता घट जाती है। क्षारीय और चुनही मिट्टियों में लोहे की कमी देखी जाती है। मिट्टी में लोहा की घुलनशीलता लोहे के हाइड्राक्साइडों की घुलनशीलता पर निर्भर करती है।

$$Fe^{3+} + 3OH^{-} \longrightarrow Fe(OH)_3$$

पीएच परिवर्तित होने से कुल फेरिक आयन (Fe^{3+}) में कमी हो जाती है। इसकी न्यूनतम मात्रा पीएच 6.5–8.0 के परास में होती है। जब पीएच 8 के ऊपर आता है तो मुख्यतः $Fe(OH)^{4-}$ आयन उपस्थित रहता है। पीएच में इकाई वृद्धि होने पर Fe^{3+} सक्रियता में 1000 गुना ह्रास होता है।

कम पीएच पर मुख्यतः $Fe2^{+}$ पाया जाता है। पीएच की इकाई वृद्धि पर इसमें 100 गुना ह्रास देखा जाता है। पीएच 7.8 पर Fe^{2+} तथा Fe^{3+} दोनोंकी समान सान्द्रताएं (10^{-21}M) पायी जाती हैं। सुवातित मिट्टियों में Fe^{2+} का आक्सीकरण Fe^{3+} में होता रहता है अतः अपचित दशाओं में ही जल विलेय Fe^{2+} में वृद्धि होगी।

$$Fe(OH)_2 + 2H^{+} \rightleftharpoons Fe^{+2} + O_2 + 2\frac{1}{2} H_2O$$

बाई कार्बोनेट आयन (HCO_3^{-})

HCO_3^{-} के कारण लोह–न्यूनता उत्पन्न हो जाती है। HCO_3^{-} युक्त सिंचाई जल के प्रयोगोपरान्त लोह–न्यूनता की आशंका रहती है। जड़–तंत्र में HCO_3^{-} की प्रचुरता होने पर पादप–शरीर में लोहा निश्चल हो जाता है। HCO_3^{-} के कारण पौधों में लोहे की गतिशीलता क्यों कम हो जाती है, यह अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया है। संभवतया पौधों द्वारा लोहे का अवशोषण अधिक मात्रा में होने के कारण पादप–ऊतकों के पीएच–मान में वृद्धि हो सकती है जिसके फलस्वरूप लोहा निश्चल हो जाता है। चुनही मिट्टियों में उच्च पीएच के कारण एकत्र हो जाता है जिसे निम्नांकित रासायनिक प्रतिक्रिया द्वारा दर्शाया जा सकता है:

$$CaCO_3 + Co_2 + H_2O \rightleftharpoons Ca^{++} + HCO_3^{-}$$

आवश्यक कार्वन डाई आक्साइड की पूर्ति जड़ों तथा अणु जीवों के श्वसन द्वारा होती रहती है।

ऐसा भी समझा जाता है कि मिट्टियों में HCO_3^- की प्रचुरता के कारण फास्फेट की उपलब्धि बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप जड़ों की ऊपरी सतह या थोड़ा अन्दर लोह जमा हो जाता है।

कार्बनिक पदार्थ

कार्बनिक पदार्थ और लोहे के उपलब्ध एवं संभावी उपलब्ध पूलों के बीच सार्थक सह–सम्बन्ध पाया गया। स्वतंत्र और सक्रिय लोहा की मात्रा भी कार्बनिक पदार्थ के अनुसार प्रभावित होती पायी गई।

कैल्सियम कार्बोनेट

अधिकांश अध्ययनों में कैल्सियम कार्बोनेट की मिट्टियों में मात्रा बढ़ने से उपलब्ध लोहा की मात्रा कम हुई किन्तु पंजाब की मिट्टियों में कैल्सियम कार्बोनेट और विनिमेय लोहा की मात्रा में धनात्मक सह–सम्बन्ध पाया गया। ऐसे सम्बन्ध इस तथ्य के द्योतक हैं कि कैल्सियम कार्बोनेट और लोहा दोनों की घुलनशीलता और अवक्षेपण को प्रभावित करने वाले कारक एक समान होते हैं (टक्कर इत्यादि 1969)।

मृदा-गठन

लोहा की उपलब्धता पर मिट्टी के कणाकार का भी प्रभाव पड़ता है। साधारणतया महीन कणों की मात्रा बढ़ने से फेरस लोहा की मात्रा बढ़ती है।

जल मग्नता

जलमग्न खेतों में आक्सीजन के अभाव में फेरिक लोहा फेरस रूप में परिवर्तित हो जाता है जो कि पूरी तरह जल विलेय होता है। यह कार्वनिक पदार्थ के साथ लोहा–किलेट के निर्माण में भी सहायता करता है जिससे पौधों को सुलभ रूप में लोहा प्राप्त होता रहता है।

फास्फेट आयन

चुनही मिट्टियों में लोह–न्यूनता के लिए फास्फेट आयन को उत्तरदायी

बताया गया है। यह आम धारणा है कि फास्फेटों की उपस्थिति में बहुत सा लोह फास्फेटों के रूप में अविलेय हो जाता है किन्तु मिट्टी में लोहा की मात्रा फेरिक हाइड्राक्साइड ($Fe(OH)_3$ के रूप में इतनी अधिक होती है कि मिट्टी में जो भी थोड़ा फास्फेट होता है उससे लोहा अवक्षेपित होने के बाद भी विलेय लोह का साधन बना रहता है।

पोटैशियम आयन

पोटैशियम और लोहा के बीच विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। पोटाशधारी उर्वरकों के प्रयोग से अम्लीय मिट्टियों में धान की फसल में लोहे की विषालुता के कुप्रभाव को कम करने के प्रमाण मिले हैं। सारणी 8.14 में दिए गये आंकड़ों से इस कथन की पुष्टि होती है।

सारणी-8.14 लोहा की विषालुता वाली मिट्टियों में पोटाश का धान की उपज पर प्रभाव (कु./है.)

पोटाश की मात्रा (कि.ग्रा./है.)	जया	महसूरी	औसत
0	10.69	17.64	14.16
40	12.76	21.17	16.96
80	16.89	21.96	19.42
120	19.70	24.58	22.14
160	22.15	26.08	24.11
औसत	16.44	22.29	–
क्रान्तिक अन्तर	पोटाश की की मात्रा	प्रजाति	अन्योन्य क्रिया
	1.26	1.56	–

स्रोतः वार्षिक रिपोर्ट, पोटाश एण्ड फास्फेट इन्स्टीट्यूट आफ कनाडा (इण्डिया प्रोग्राम) 1990–91

अन्य आयन

पौधों मे लोहा की कमी हो जाने पर हरिमाहीनता के लक्षण देखे जाते हैं। ऐसी दश में तांबा, मैंगनीज, जस्ता और कोवाल्ट की मात्रा पौधों में बढ़ जाती है। मैंगनीज/लोहा अनुपात की जानकारी पोषक तत्वों के सन्तुलन सम्बन्धी अध्ययन में पहले से ही महत्वपूर्ण समझी गयी। धान, गेहूं और नीबू कुल के पेड़ों में असंतुलित दशाओं में इन अनुपातों में बड़ा अन्तर पाया जाता है।

पोधों मे पोषण में लोहा का महत्व

पौधों में इसके कार्य इस प्रकार हैं:

1. लोहे के परमाणु अनेक उपापचयंजों (**metabolites**) के अणु में स्थिर संघटक के रूप में पाए जाते हैं। लोहा या तो कम अणुभार वाले प्रास्थेटिक समूह (**Prosthetic group**) या स्वयं प्रोटीन का अविभाज्य अंग होता है। लोहा पोरफाइरिन यौगिकों का एक मुख्य अवयव है उदाहरणार्थ, साइटोक्रोम, हीम, अहीम, एन्जाइम तथा कार्यशील घत्विक प्रोटीन जैसे पौधों में फेरीडाक्सीन और हेमोग्लोबिन इत्यादि।

2. लोहा पर्णहरित का एक मुख्य अवयव होने के साथ ही यह इसके संश्लेषण में योगदान देता है (रेखाचित्र 8.9) किन्तु पर्णहरित के निर्माण में लोहे का क्या कार्य है। यह अभी तक ठीक से मालूम नहीं हो पाया है।

3. लोहा यूग्लेना (**Euglena**) के साथ मिलकर कोप्रोपोरफाइरिनोजेज को प्रोटोपोरफाइरिन में बदल देता है।

4. साइटोक्रोम की उपस्थिति में फोटोफास्पोरिलीकरण और आक्सीकरण क्रियाओं में प्रकाश संश्लेषण तथा श्वसन के समय ऊर्जा–स्थानान्तरण में सहायक होता है। यही नहीं, प्रकाश संश्लेषण के समय फेरीडाक्सिन और साइट्रोक्रोम का अवयव होने के कारण, यह प्रकाश–उर्जा को रासायनिक उर्जा (**ATP**) में परिवर्तित करता है।

5. विभिन्न एन्जाइमों का एक अंग होने के कारण उनकी क्रियाशीलता को उत्प्रेरित करता है। हाइड्रोजिनेज तथा हाइपोनाइट्राइट रिडक्टेज

एन्जाइम की उपस्थिति में प्रोटीन का निर्माण होता है। कुछ ऐसे भी एन्जाइम हैं जो प्रत्यक्ष रूप में प्रोटीन के निर्माण में भाग नहीं लेते फिर भी फ्लेविन या पोरफाइरिन का अवयव होने के कारण प्रोटीन का निर्माण करते हैं।

6. कुछ एन्जाइम जैसे कैटालेज, पराक्सीडेज और डिहाइड्रोजिनेज लोह पोरफाइरिन की श्रेणी में ओते हैं। अहीम लौह प्रोटीन जैसे फेरोडाक्सिन उर्जा परिवहन में भाग लेता है, ऐसा समझा जाता है।

7. राइजोबोसोम क्रोमोप्रोटीनमें लोहे की मात्रा 20 प्रतिशत होती है। लोहान्युक्लिक अम्ल में भी पाया जाता है। लोहे की कमी से न्युक्लिक अम्ल की सान्द्रता कम हो जाती है, फलतः आरएनए की सान्द्रता कम हो जाती है।

8. अधिकांश लोहा क्लोरोप्लाइट में मौजूद रहता है। लोहे के अभाव में क्लोरोप्लास्ट का स्वरूप ही बदल जाता है।
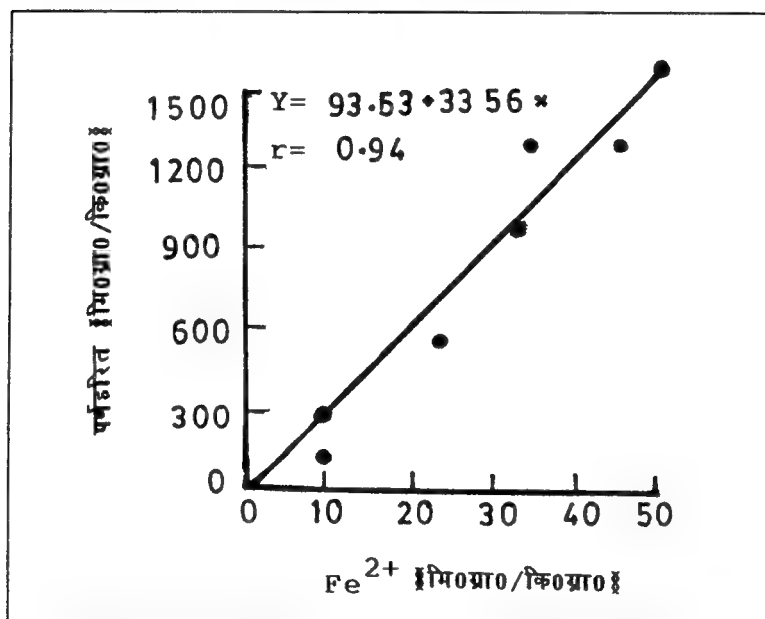
रेखाचित्र-8.9 हाइड्रोक्लोरिक अम्ल विलेय लोहा (Fe^{+}) और पर्णहरित की मात्रा में सम्बन्ध

9. लोहा फेरोडाक्सिन का अवयव होने के कारण वातीय एवं अवातीय जीवाणुओं और नील हरित शैवाल की उपस्थिति में नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करने में मदद करता है। यह दलहनी फसलों की जड़ग्रंथियों में पाये जाने वाले हीमोग्लोबनि (लैग हीमोग्लोबनि) का मुख्य अवयव है जो कि नाइट्रोजन यौगिकीकरण में मदद करता है।

कमी के लक्षण

पौधों में इसकी कमी के लक्षण इस प्रकार हैः

1. कमी के लक्षण सर्वप्रथम नई पत्तियों पर दिखाई पड़ते हैं।
2. पत्तियाँ की शिराओं के बीच का भाग पीला पड़ जाता है।
3. पौधे छोटे और कमजोर हो जाते हैं।
4. अनाज के पौधों की पत्तियों पर लम्बी पीली–हरी या पीली धारियां बन जाती हैं जो बाद में सफेद रंग की हो जाती हैं।

रोग

चूना प्रेरित हरिमाहीनता (Lime induced chlorosis)

चुनही मिट्टियों का पीएच–मान आधेक होने पर, लोहे की कमी के कारण पत्तियों में हरिमाहीनता के लक्षण देखे जाते हैं। इसे चूना प्रेरित हरिमाहीनता के नाम से पुकारते हैं। नई पत्तियां पीली सफेद अथवा सफेद रंग की हो जाती हैं। अनाज वाली फसलों की तुलना में फल वाले वृक्ष लोहे की कमी के प्रति विशेष संवेदनशील होते हैं।

भारत में लोहा के प्रयोग का फसलोत्पादन में महत्व

सूक्ष्म पोषक तत्वों की समन्वित योजनान्तर्गत हाल की खोजों से पता चला है कि उर्ध्व भूमि में उगाई जाने वाली फसलों विशेषकर, धान, ज्वार, मूंगफली, गन्ना, चना इत्यादि में अत्यधिक चुनही संहनित मिट्टियों के अतिरिक्त ऐसी मिट्टियाँ जिनमें लोहा की उपलब्ध मात्रा कम हो और बाइकार्बोनेट आयनों, फास्फोरस, मैंगनीज, तांबा आदि का बाहुल्य हो, वहां फसलों में लोह–हरिमाहीनता के लक्षण देखे जाते हैं। ऐसे क्षेत्रों मे आधुनिक

कृषि तकनीकी का प्रसार होने के साथ ही मिट्टियों में लोहे की कमी की समस्या फसलोत्पादन बढ़ाने में बाधक सिद्ध हो रही है।

बिहार में धान, गुजरात में गेहूं और तमिलनाडु में ज्वार पर लोहे की अनुक्रिया सम्बन्धी परीक्षणों में लोहे के प्रयोग से इन फसलों की उपज में प्रति हैक्टर क्रमशः 5.7, 9.7 और 7.3 कु. की वृद्धि हुई।

विभिन्न राज्यों में किये गये परीक्षणों में लोहे के प्रयोग से अनाज वाली फसलों की उपज में 4.5–8.9 कु. प्रति हैक्टर, मोटै अनाजों में 3.0–6.8 कु. प्रति है., दलहनी फसलों में 3.4–5.8 कु. प्रति है., तिलहनी फसलों में 1.6–5.5 कु. प्रति है.,सब्जियों में 2.0–15.3 कु. प्रति है. और नकदी फसलों में 3.9–96.8 कु. प्रति है. वृद्धि हुई। अतः स्पष्ट है कि यदि फसलें लोहे की कमी वाली मिट्टियों में उगाई जायें तो लोहे के प्रयोग से उनकी उपज में उल्लेखनीय वृद्धि होगी।

फसलों में लोहा की अनुक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक

1. मिट्टी की किस्म

भारत में उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर तराई, उपपर्वतीय और मध्यमकारी मिट्टियों में उगाई गई धान की फसल की उपज में वृद्धि लोहे के प्रयोग से अन्य मिट्टियों की तुलना में अधिक पायी गई। मिश्रित लाल–काली मिट्टियों में लोहा द्वारा गेहूं की उपज में सर्वाधिक वृद्धि हुई। सिंह इत्यादि (1979) द्वारा संकलित आंकड़े सारणी 8.15 में दिये जा रहे हैं।

2. फसल प्रजातियां

मिट्टी और पौधों के सूक्ष्म तत्वों की समन्वित योजनान्तर्रगत फसलों की विभिन्न प्रजातियों की लोहे की कमी के प्रति संवदेनशीलता सम्बन्धी अध्ययन किया गया। इनसे प्राप्त परिणामों का अनूठा संकलन टक्कर इत्यादि (1989) ने किया है। गेहूं की एचडी–1553, डब्ल्यूएच–357, एचपी–1102, यूपी–2003, यू.पी.–310, यू.पी. 215, यूपी–319, डब्ल्यू एल 711 आदि; धान की पंकज, जगन्नाथ, आई आर–8, पूसा 2–21, हंसा, सरजू–5, आई आर–62, जया, सीता; मक्का की किसान, जवाहर, विजय, विक्रम, गंगा–5, प्रजातियां, लोहे की कमी के प्रति विशेष संवेदनशील पायी गयी।

सारणी-8.15 विभिन्न मिट्टियों में उगाई गई धान और गेहूं की फसल में लोहा के पर्णीय छिड़काव का उपज पर प्रभाव

मृदा–समूह	उपज वृद्धि (कु. प्रति है.)	
	धान	गेहूं
जलोढ़	3.4	0.0
लैटेराइट	1.0	2.0
मध्यम काली	5.6	1.7
मिश्रित लाल–काली	3.6	1.0
लाल	2.4	3.0
लाल एवं पीली	3.1	0.0
तराई	8.0	1.7
उपपर्वतीय	8.6	1.9

स्रोतः सिंह इत्यादि (1979) मानोग्राफ भारतीय कृषि सांख्यिकी अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली।

3. पंकिल जुताई (Pudding)

उर्ध्व भूमि या हल्के गठन वाली मिट्टियों में वातीय वातावरण आयन का अपेक्षित अवकरण न हो पाने के कारण उपलब्ध लोहे की मात्रा में कमी हो जाती है जिसके फलस्वरूप धान में लोह हरिमाहीनता के लक्षण देखे जाते हैं। धान की रोपाई के समय पंकिल जुताई करने से लोह–हरिमाहीनता में संतोषजनक सुधार पाया गया (सारणी 8.16)।

स्पष्ट है कि लोहे की कमी दूर करने में पर्णीय छिड़काव मिट्टी में प्रयोग की तुलना में विशेष कारगर सिद्ध हुआ।

हरी खाद या जैविक खादों का प्रयोग

हरी खाद या जैविक खादों को अकेले या लोह–उर्वरकों के साथ प्रयोग करने पर उर्वरक द्वारा दिये गये लोहे तथा मिट्टी में मौजूद लोहे की उपलब्धता

सारणी-816 विभिन्न मृदा परिस्थितियों में धान की लोहा के प्रति अनुक्रिया

उपचार	प्रयोग विधि	दाने की उपज (कु. प्रति है.) पंकिल जुताई	बिना पंकिल जुताई
नियंत्रित		56.4	15.0
फेरस सल्फेट, 100 कि.ग्रा. प्रति हे.	मिट्टी में	65.4	15.7
फेरस सल्फेट + गोबर की खाद (15 टन प्रति है.)	मिट्टी में मिट्टी में	81.4	27.8
2% फेरस सल्फेट	पर्णीय छिड़काव	84.6	44.7
3% फेरस सल्फेट	पर्णीय छिड़काव	87.0	50.7
क्रान्तिक अन्तर (5%)		6.0	3.3

स्रोतः टक्कर एवं नायर (1979)

में वृद्धि हो जाती है। टक्कर एवं नायर (1986) द्वारा प्राप्त परिणामों से पता चला है कि लोहे के मिट्टी या पर्णीय छिड़काव द्वारा देने की तुलना में हरी खाद का प्रयोग विशेष लाभकार सिद्ध होता है। सम्बन्धित आंकड़े रेखाचित्र 8.10 से प्रदर्शित किये गये हैं।

जैसा कि रेखाचित्र 8.11 से स्पष्ट है कि हरी खाद के प्रयोग के फलस्वरूप डीटीपीए द्वारा निष्कर्षित लोहे की मात्रा में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

मैंगनीज

कुल मात्रा

भारतीय मिट्टियों में मैंगनीज की कुल मात्रा 37 से 11500 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक रिपोर्ट की गई है परन्तु सामान्य दशाओं में यह 200 से
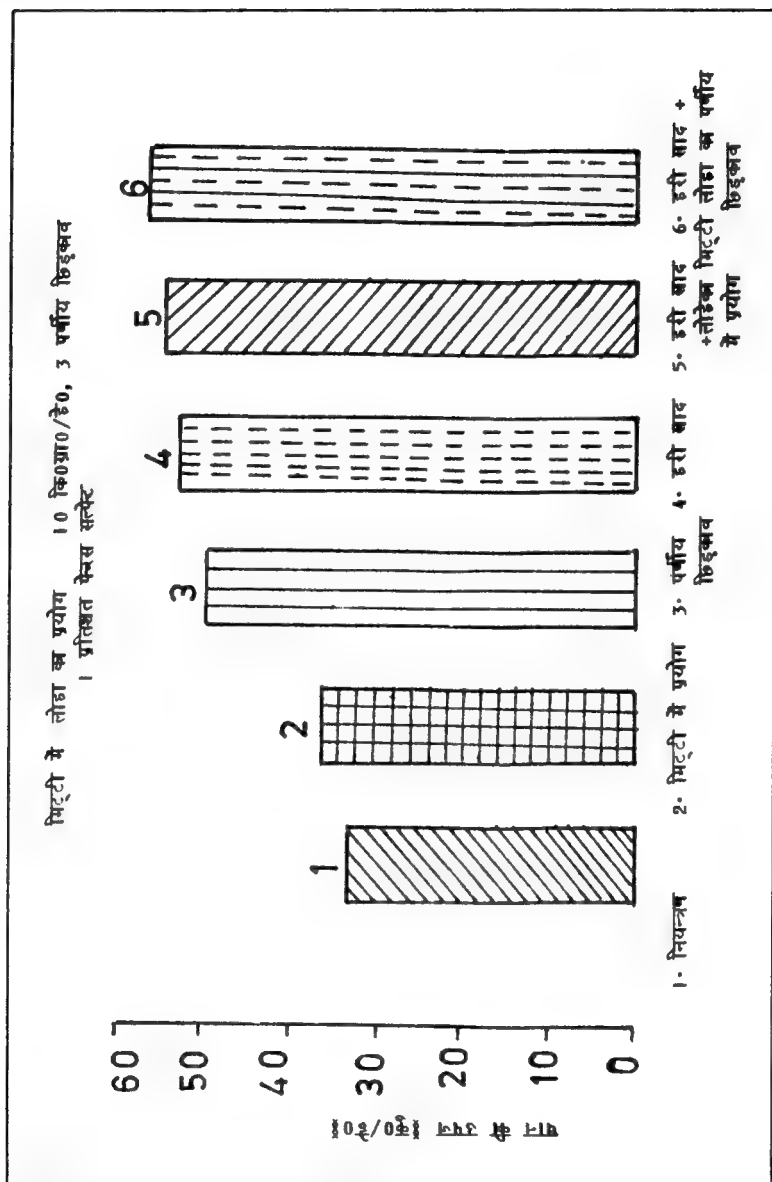
रेखाचित्र-8.10 हरी खाद की उपस्थिति में मिट्टी मे लोहा का प्रयोग तथा उसके पर्णीय छिडकाव का धान की उपज पर प्रभाव
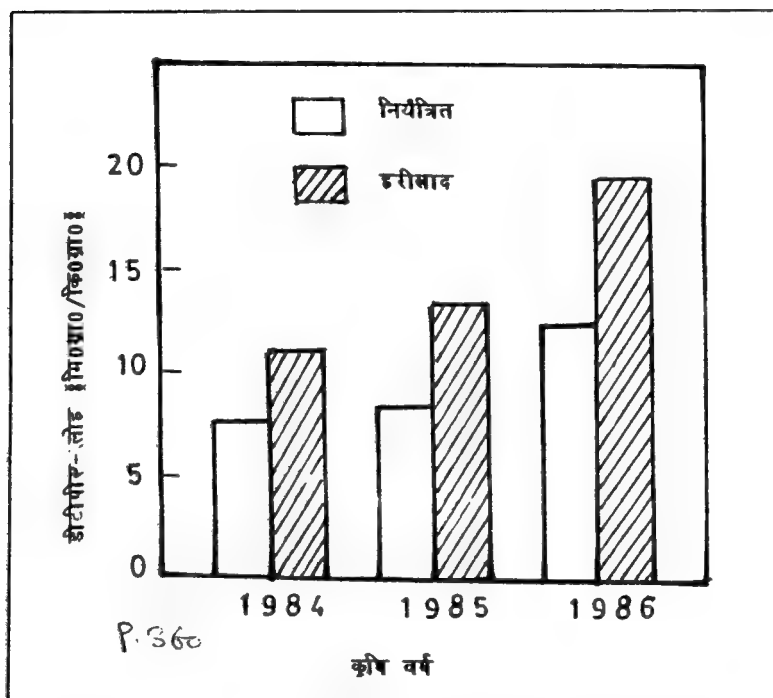
रेखाचित्र-8.11 हरी खाद के बाद धान लेने पर डीटीपीए निष्कर्षित लोह की मात्रा पर प्रभाव

2000 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक होती है। लेटेराइट मिट्टियों में यह मात्रा क्रमशः काली, जलोढ़ और लाल मिट्टियों की तुलना में अधिक पायी गयी। मराठावाड़ा की चूनायुक्त मिट्टियों में चूनायुक्त काली मिट्टियों की अपेक्षा यह मात्रा अधिक थी। भारतीय मिट्टियों में मैगनीज की मात्रा सम्बन्धी आंकड़े सारणी–8.17 में दिये गये हैं।

परिच्छेदिका में वितरण

पंजाब, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश के सभी मृदा–समूहों में मैंगनीज का व्यवहार लोहा के सामन देखा गया अतः परिच्छेदिका में इनका वितरण भी एक समान होता है। समपोहन प्रक्रिया के फलस्वरूप निचले संस्तरों में इनका संचयन होते देखा गया है। मिट्टियों में मैगनीज और लोह की कुल

मात्रा में सार्थक धनात्मक सम्बन्ध इस बात का द्योतक है कि ये तत्व एक प्रकार के मृदा रचनात्म्क कारकों से प्रभावित होते हैं और विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में यह एक निश्चित अनुपात में पाए जाते हैं। मिट्टियों में उपस्थित कंकड़ों में अन्य तत्वों (Fe, Cu, Co, Na एवं Zn) की अपेक्षा मैगनीज सर्वाधिक मात्रा में पाया जाता है। शुष्क क्षेत्रों की चुनही मिट्टियों में मैंगनीज का परिच्छेदिका में वितरण लोहा के समान पाया गया जो कि मुख्यतया मिट्टियों के क्ले या कैल्सियम कार्बोनेट/पीएच द्वारा प्रभावित होता है। अनेक अध्ययनों में मैंगनीज के परिच्छेदिका में वितरण के सम्बन्ध में कोई निश्चित क्रम न पाये जाने का संकेत है।

सक्रिय और स्वतंत्र मैगनीज

मिट्टियों की ऊपरी सतह में स्वतंत्र मैंगनीज 15 से 475 मि.ग्रा./कि ग्रा. तथा सक्रिय मैगनीज 2 से 738 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक पाया गया। मृदा परिच्छेदिका में स्वतंत्र मैगनीज की मात्रा 15 से 662 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक पायी गयी। चुनही मिट्टियों में कुल मैगनीज का 31 प्रतिशत स्वतंत्र रूप में पाया गया जबकि पर्वतीय मिट्टियों में में इसका अंश 55 प्रतिशत तक था। मध्य प्रदेश की अधिकांश मिट्टियों महाराष्ट्र की कुछ निश्चित मिट्टियों तथा हिमाचल प्रदेश की पर्वतीय मिट्टियों में सक्रिय मैगनीज की मात्रा अन्य मिट्टियों की तुलना में अधिक पायी गयी। स्वतंत्र मैंगनीज की मात्रा तथा कुल मैंगनीज, स्वतंत्र लोहा एवं सक्रिय मैगनीज के बीच परस्पर सह सम्बन्ध पाया गया जो इस बात का द्योतक है कि मिट्टियों में लोहा और मैगनीज के यौगिकों की घुलनशीलता और अवक्षेपण समान कारकों द्वारा प्रभावित होते हैं। गुजरात, उत्तर प्रदेश और हरियाणा की मिट्टियों में कुल मैगनीज और सक्रिय मैंगनीज की मात्राओं में आपसी सह–सम्बन्ध पाया गया है।

अवकरणीय और विनिमेय मैंगनीज

सक्रिय मैंगनीज की मात्रा में अवकरणीय मैंगनीज का मुख्य अंश होता है अतः मिट्टियों में अवकरणीय मैंगनीज का वितरण सक्रिय मैंगनीज के ठीक समान होता है। भारतीय मिट्टियों में मैंगनीज की यह मात्रा 2 से 779 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक पायी गयी (सारणी 9.18)। मैदानी क्षेत्रों की चुनही तथा चूना विहीन मिट्टियों में अवकरणीय मैगनीज की मात्रा पर्वतीय अम्लीय मिट्टियों की तुलना में कम पायी गयी है। अतः अनेक चुनही, पुरानी जलोढ़,

सारणी-8.17 भारतीय मिट्टियों में मैंगनीज मि.ग्रा./कि.ग्रा. के विभिन्न रूप

मृदा समूह	जल विलेय	विनिमेय	अक्कृत	सक्रिय	कुल	संदर्भ
1	2	3	4	5	6	7
1. जलोढ़						
सामान्य	शून्य–2.4	1.2–62.0	40–342	69–217	37–2710	सुब्बाराव (1971), मिश्रा एवं त्रिपाठी (1972) रंधावा (1974), वैंकटेश्वर्लू एवं सुब्बाराव (1974)
उदासीन	शून्य–0.56	शून्य–40.6	23–365	26–366	90–922	कंवर एवं रंधावा (1974) टक्कर (1978)
लवणीय क्षारीय	–	शून्य–1.2	–	–	–	कंवर एवं रंधावा (1974)
क्षारीय	–	0.1–9.4	7–140	–	205–460	कंवर एवं रंधावा (1974) टक्कर (1978)
चुनही	शून्य–1.0	–	–	–	150–460	–तदैव–
ऊर्ध्व भूमि	0.1–1.3	–	–	–	191–1613	कंवर एवं रंधावा (1974)
सोन	शून्य–3.1	शून्य–12.0	61–356	–	201–2710	–तदैव–

1	2	3	4	5	6	7
धान मिट्टी	शून्य–3.4	9.2–34.6	39.3–22.6	29.8–29.1	–	–तदैव–
पुरानी	–	17.5	30.2	–	421	लाल एवं विश्वास (1973)
2. काली	शून्य–1.0	1.5–93.0	42–750	227–738	484–1656	लाल एवं विश्वास (1973) कंवर एवं रंधावा (1974)
3. लाल एवं पीली	–	4.2–170	7–778.5	–	1988	–तदैव–
4. सीरोजम	–	–	–	–	234–704	वेक्टेश्वर्लू एवं सुब्बाराव (1979)
5. मरुस्थलीय	–	4.0–16.9	47.6	–	521–569	लाल एवं विश्वास (1973) वेकटेश्वर्लू एवं सुब्बाराव (1979)
6. अन्य	शून्य–4.8	0.9–126	6.0–1780	2.0–475	140–1580	कंवर एवं रंधावा (1974)

धान वाली, लाल पीली आदि मिट्टियों में इस प्रकार के मैंगनीज की मात्रा काफी कम होती है जिनकी वहज से मैंगनीज की कमी हो जाती है। वैसे तो विनिमेय मैंगनीज की मात्रा शून्य से 126 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक पायी गयी है। परन्तु अधिकांश मिट्टियों में यह मि.ग्रा./कि.ग्रा. 2 से 30 तक थी। चुनही मिट्टियों की तुलना में चूना विहीन मिट्टियों में विनिमेय मैंगनीज की मात्रा कम पायी गयी। हरियाणा की सीरोजम मिट्टियों, पंजाब की जलोढ़ मिट्टियों और गुजरात के कुछ क्षेत्रों की मिट्टियों में मैंगनीज की कमी पायी गयी।

देश के विभिन्न राज्यों की मिट्टियों में डीटीपीए द्वारा निष्कर्षित मैंगनीज की मात्रा 4 से 68 मि.ग्रा./कि.ग्रा. पायी गयी (रेखाचित्र 8.1)। विश्लेषित नमूनों में मध्य प्रदेश के 28 प्रतिशत, दिल्ली के 26 प्रतिशत, तमिलनाडु के 16 प्रतिशत केरल के 15 प्रतिशत, हरियाणा के 13 प्रतिशत और अन्य राज्यों के 8 प्रतिशत से कम नमूनों में मैंगनीज की कमी आंकी गयी। अभी हाल में किये गये अनुसंधानों से पता चला है कि धान के बाद गेहूं बरसीम उगाने से पंजाब की हल्के गठन वाली क्षारीय मिट्टियों में मैंगनीज की भयंकर कमी को गयी। इन खेतों की मिट्टियों में उपलब्ध मैंगनीज की मात्रा 2 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से कम पायी गयी।

उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारक

पीएच-मान

पीएच–मान 5.5 से कम वाली मिट्टियों में उपस्थित अधिकांश मैंगनीज द्विसंयोजी जल विलेय और विनिमेय रूप में पाया जाता है। किन्तु पीएच में वृद्धि के साथ ही इनकी मात्रा घट जाती हैं। रंधावा इत्यादि (1961) द्वारा किये गये अध्ययनों से प्राप्त आंकड़ों से इसकी पुष्टि हुई है जो कि सारणी–8. 18 में दिए गये हैं।

खोजों से पता चला है कि पीएच की प्रति वृद्धि पर की विलेयता में 100 गुना ह्रास आता है।

कार्बनिक पदार्थ

कार्बनिक पदार्थ के साथ विलेय मैंगनीज की अभिक्रिया के फलस्वरूप मैंगनीज के अविलेय संकुलों का निर्माण होता है। हाजसन (1963) ने कार्बनिक पदार्थ के तीन प्रकार के प्रभाव बताए हैं:

सारणी-8.18 विभिन्न पीएच–मान वाली मिट्टियों में विभिन्न रूपों में पाए जाने वाले मैंगनीज की मात्रा

मैंगनीज के रूप	अम्लीय मिट्टियां पीएच 5.8 से 7.0 (पीपीएम)	क्षारीय मिट्टियां पीएच 7.1 से 8.2 (पीपीएम)
जल विलेय	1.8	0.3
विनिमेय	16.9	3.7
अवकरणीय	131	88
सक्रिय	150	92
कुल	617	640

(1) संकुल कारकों के उत्पादन द्वारा विलयन में मुक्त Mn^{2+} आयन की सक्रियता घटाना।

(2) मिट्टी के आस्कीकरण विभव को घटाना।

(3) जैण्विक सक्रियता को उत्तेजित करना जिससे Mn जीवाणुओं का अंग स्वरूप बन जाता है।

कैल्सियम कार्बोनेट

कैल्सियम कार्बोनेट के महीन कणों पर मैंगनीज का अधिशोषण होने के बाद अवक्षेपण हो जाता है। भारत में किए गये खोजों से चुनही मिट्टियों में मैंगनीज की कमी की पुष्टि हुई। सारणी–8.19 में दिये आंकड़ों से स्पष्ट है कि चुनही मिट्टियों में चुना विहीन मिट्टियों की अपेक्षा मैंगनीज की मात्रा काफी कम होती है (रन्धावा इत्यादि 1961)।

जल मग्नता

जल मग्नता के फलस्वरूप अवातित दशा में मैंगनीज आक्साइड का अवकरण सुगमतापूर्वक हो जाता है। अतः धान के खेतों में जहां प्रायः जल निकास बाधित रहता है और कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है, मैंगनीज के अवकरण के फलस्वरूप इसकी मात्रा विषालुता की सीमा तक पहुंच जाती है।

सारणी-8.19 कैल्शियम कार्बोनेट का मिट्टी में विभिन्न रूपों में उपस्थित मैंगनीज पर प्रभाव (पीपीएम)

मैंगनीज के रूप	चूना–विहीन मिट्टी	चुनही मिट्टी
जल विलेय	1.1	0.0
विनिमेय	10.8	1.0
अवकरणीय	113.0	75.0
सक्रिय	125.0	76.0
कुल	694.0	504.0

कणाकार

क्ले प्रधान बारीक कणों वाली भारी मिट्टियों में बालू प्रधान मोटे कणों वाली मिट्टियों की तुलना में कुल विनिमेय तथा सक्रिय मैंगनीज की मात्रा अधिक होती है।

लोहा-मैंगनीज अनुपात

मैंगनीज के उचित पोषण के लिए लोहा और मैंगनीज के वास्तविक पूर्ति का महत्व उनके आपसी अनुपात की तुलना में कहीं बहुत अधिक होता है।

मृत्तिका खनिज

मान्टमारिलोनाइट प्रकार के मृदा खनिजों वाली मिट्टियों में सक्रिय एवं कुल मैंगनीज की मात्रा केओलिनाइट युक्त मिट्टियों की तुलना में अधिक पायी गयी है। किन्तु विनिमेय तथा जल विलेय मैंगनीज की मात्रा कम थी। लाल तथा लैटेराइट मिट्टियों में उनके फेरूजिनस स्वभाव के कारण उपलब्ध मैंगनीज अधिक मात्रा में पाया गया।

फसल प्रणाली एवं मृदा प्रबन्ध

धान वाली मिट्टियों में अधिक समय तक जल मग्नता के कारण सक्रिय मैंगनीज की प्रचुरता हो जाती है। हाल की खोजों से पता चला है कि पंजाब

की हल्की मिट्टियों में धान के बाद गेहूं या बरसीम उगाने पर इन फसलों में मैंगनीज की प्रायः कमी हो जाती है।

उर्वरकों एवं मृदा-सुधारकों का प्रभाव

अमोनियम सल्फेट जेसे अम्लता उत्पन्न करने वाले उर्वरकों के प्रयोग से मैंगनीज की उपलब्धता बढ़ती है। कुछ अध्ययनों से फास्फेट के प्रयोग से मैंगनीज–उपलब्धता में वृद्धि के संकेत मिले हैं परन्तु भारत में किये गये खोजों से पता चला है कि दलहनी फसलों जैसे मटर और चना में फास्फेट के प्रभाव से मैंगनीज का अवशोषण घटता है।

अम्लीय मिट्टियों में चूना डालने से पीएच मान बढ़ता है और मैंगनीज की उपलब्धता घटती है।

आर्द्रण और शुष्कन का प्रभाव

मिट्टी में मैंगनीज का स्थिरीकरण या विमुक्ति न केवल आक्सीकरण अपचयन प्रक्रमों द्वारा वरन् आर्द्रण और शुष्कन द्वारा प्रभावित होती है। यह अपचयन कम पीएच, इलेक्ट्रान प्रदाता कार्बनिक पदार्थ की उपस्थिति तथा मैंगनीज के आक्साइडों के प्रकार पर निर्भर करता है।

पौधों के पोषण में मैंगनीज का महत्व

पौधों में इसके कार्य इस प्रकार हैं:

1. मैंगनीज अनेक एन्जाइमों की क्रियाशीलता को बढ़ाता है परन्तु उच्च कुल के पौधों से अब तक केवल एक ही एन्जाइम अलग किया जा सका है। 'वैज्ञानिकों ने मूंगफली के बीज से मैंगनोप्रोटीन मैंगनीज नामक एन्जाइम अलग किया। आर्जिनेन्स एन्जाइम भी मैंगनीज द्वारा सक्रिय होता है। यह "क्रेब चक्र" (Tricarboxylic acid cycle) में भाग लेने वाले मौलिक डिहाइड्रोजिनेज जैसे एन्जाइमों की क्रियाशीलता को भी बढ़ाता है। फास्फेट–स्थानान्तरण में भाग लेने वाले एन्जाइमों को विशेष प्रभावी बनाने में मैग्नीशियम का कार्य कर सकता है। यह हेक्सोकाइनेस और कार्बोक्सिलेस एन्जाइमों का सक्रियकारी तत्व है। मैंगनीज आक्सीडेज की भी क्रियाशीलता को बढ़ाता है। फ्लेवोप्रोटनि एन्जाइम, आर्जिनेज तथा प्रोलिडेज को सक्रियित करने में इसका हाथ रहता है।

2. मैंगनीज की कमी के कारण उपापचय में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। इसका प्रभाव अनेक उपापचयजों (Metabolites) पर पड़ता है। यह तत्व नाइट्रोजन उपापचय में भी भाग लेता है।

3. यह क्लोरोप्लास्ट का एक प्रमुख अवयव है और उन क्रियाओं में भाग लेता है जिनमें आक्सीजन मिलती है।

4. चेनी (1970) ने पौधों में प्रकाश संश्लेषण की फोटो प्रणाली (11) में मैंगनीज की पहचान किया। उनके अनुसार मैंगनीज की कमी से हिल अभिक्रिया रूक जाती है और क्लोरोप्लास्ट तत्व की मात्रा घट जाती है। मैंगनीज की अधिकता के कारण पौधों में लोहे की कमी हो जाती है और मैंगनीज की मात्रा कम होने पर पौधे के भीतर फेरिक लौह का निक्षेपण होने लगता है। पौधों के सही पोषण के लिए उचित लोह–मैंगनीज अनुपात का विशेष महत्व है।

कमी के लक्षण

पौधों में इसकी कमी के लक्षण इस प्रकार हैं:

1. अभाव के लक्षण नयी पत्तियों पर दिखाई पड़ते हैं परन्तु कुछ फसलों में ये लक्षण सर्वप्रथम पुरानी पत्तियों पर दृष्टिगोचर होते हैं। पत्तियों पर हरिमाहीन धब्बे बन जाते हैं और शिराएं हरी बनी रहती हैं।

2. विशेष कमी होने पर हल्के हरे रंग के स्थान पर पीले या भूरे सफेद धब्बे बन जाते हैं।

3. पौधों की वृद्धि रूक जाती है।

4. आनाज की फसलों में मैंगनीज के अभाव के कारण पत्तियां भूरे रंग की तथा पारदर्शी हो जाती हैं। बाद में पत्तियों पर ऊतक क्षयीअंश दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

न्यूनता रोग

जई का भूरी चित्ती रोग (Grey Speck)

मैंगनीज की कमी से होने वाले इस रोग को ''धूसर धारी'' (grey stripe)

"धूसर चित्ती" (grey spot) या "शुष्क चित्ती" (Dry spot) के नाम से पुकारते हैं। जई के अलावा जौ, गेहूं, राई और मक्का की फसलें "धूसर चित्ती रोग" से प्रभावित होती हैं। इस रोग की पहचान तीसरी या चौथी पत्ती के आधे भाग में धूसर रंग की छोटी–छोटी चित्तियों से की जा सकती हैं। यही चित्तियों आपस में मिलकर लम्बी धारी का रूप धारण कर लेती हैं। बाद में ये पत्तियां झुक जाती हैं और फिर मर जाती हैं।

गन्ने का अंगमारी रोग (Pahla Blight of sugarcane)

नई पत्तियां आंशिक रूप में हरिमाहीन हो जाती हैं और बाद में यही हरिमाहीन धब्बे आपस में मिलकर धारियों का रूप धारण कर लेते हैं। प्रभावित पत्तियों की हरिमाहीन कोशिकाओं के मर जाने के फलस्वरूप लाल–लाल धारियों दिखाई देने लगती हैं और पौधों की वृद्धि रूक जाती हैं।

मटर का पंक चित्ती रोग (Marsh spot of Pea)

मटर की फलियों और बीज पर इस रोग के लक्षण दिखाई देते हैं। बीजों के बीज पत्र (Cotyledons) की आन्तरिक सतह पर भूरे या काले धब्बे या कोठरियां (cavities) बन जाती हैं कभी–कभी बीज चोल (Plumule) पर भी इस रोग का प्रभाव दिखाई देता है। यह आवश्यक नहीं कि पत्तियों पर भी अभाव के लक्षण दिखाई पड़े। हां, विशेष कमी की दशा में पत्तियां हल्के पीले रंग की हो जाती हैं और उन पर छोटे–छोटे ऊतक क्षयी धब्बे बन जाते हैं।

चुकन्दर का चित्तीदार पीला रोग (Speckled yellow of sugarbeet)

पत्तियों पर पीले रंग के धब्बे बन जाते हैं। शिराएं हरी बनी रहती हैं। प्रभावित पत्तियां ऊपर की ओर मुड़ सी जाती हैं।

विषालुता

गेहूं और जौं की पत्तियों में भूरे धब्बे बन जाते हैं। जड़ों का रंग भूरा हो जाता है। अम्लीय भूमि में उगाई गई तम्बाकू, सोयाबीन, धान और कपास में मैंगनीज विषालुता के लक्षण विशेष रूप से देखे जाते हैं।

भारत में मैंगनीज के प्रयोग का फसलोत्पादन में महत्व

भारत में फसलों की मैंगनीज के प्रति अनुक्रिया सम्बन्धी अध्ययन बहुत कम हुए हैं। सूक्ष्म पोषक तत्वों की समन्वित योजना के अनुसंधानों से उपलब्ध सूचनाओं के अनुसार मैंगनीज के प्रयोग से मक्का, ज्वार, जई, मूंगफली, अलसी और बरसीम की उपज में सार्थक वृद्धि हुई। हाल की खोजों से पता चला है कि पंजाब के मूंगफली–गेहूं, मक्का–गेहूं आदि फसल चक्र वाले पुराने क्षेत्रों का अधिकांश क्षेत्रफल अब धान–गेहूं फसल चक्र के अन्तर्गत आ गया है। इन क्षेत्रों की मिट्टियों हलके गठन की हैं। यहां गेहूं की फसल में आजकल मैंगनीज की भयंकर कमी देखी जा रही है। ऐसा समझा जाता है कि हल्के गठन वाली क्षारीय मिट्टियों में धान–गेहूं फसल चक्र में गेहूं में मैंगनीज की कमी धान के वृद्धि काल के दरम्यान नीक्षालन द्वारा इसकी हानि के कारण हो जाया करती है। मैंगनीज सल्फेट के 0.5 प्रतिशत के घोल के चार छिड़काव या इसके 1% के घाले के तीन छिड़काव (पहला छिड़काव पहली सिंचाई के दो दिन पूर्व और शेष इसके एक सप्ताह के अन्तराल पर) करने से गेहूं में उत्पन्न मैंगनीज की कमी की रोकथाम करने में सफलता मिली है। सम्बन्धित आंकड़े सारणी–8. 20 में दिये गये हैं। गेहूं में मैंगनीज की गुप्त कमी पहली सिंचाई के पूर्व से ही बनी रहती है, अतः पहली सिंचाई के पूर्व मैंगनीज सल्फेट का पर्णीय छिड़काव अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होता है।

विभिन्न प्रजातियों की मैंगनीज की कमी के प्रति संवदेनशीलता

टक्कर एवं सहयोगियों (1989) ने उल्लेख किया है कि गेहूं यूपी 262, यूपी 2003 और यूपी 2002 जैसी प्रजातियों की उपज में मैंगनीज की कमी के कारण 52–60 प्रतिशत, यूपी 115, डब्ल्यू एल 711 तथा यूपी 270 में 40–46 प्रतिशत एवं यूपी 2001 व यूपी 268 में 33 से 37 प्रतिशत की कमी हुई। अतः यूपी 2001 और यूपी 268 को अन्य प्रजातियों की तुलना में अधिक सहिष्णु माना गया। लखनऊ केन्द्र पर हुए कार्यों से पता चला कि मूंगफली की टीएमवी–7, पोल–1, फलोरिजेन्ट, गी 133, जार्जिया, टी60 और एमसी 18 अधिक संवदेनशील सिद्ध हुई। इसके विपरीत एम सी 32, एम सी 9 और एम सी 17 अपेक्षाकृत कम संवदेनशील रही। मसूर की एल 9–12 प्रजाति सर्वाधिक संवेदनशील और पीएल 234 सर्वाधिक सहिष्णु पायी गयी।

3261 HRD/2000—25

सारणी-8.20 मैंगनीज के उपयोग से गेहूं की उपज में वृद्धि

उपचार		दाने की उपज (कु. प्रति हे.)	उपज वृद्धि (%)
नियंत्रित		13	–
मिट्टी में प्रयोग (कि.ग्रा. मैंगनीज प्रति हे.)			
5		22	69
10		24	85
20		25	22
पर्णीय छिड़काव			
मैंगनीज सल्फेट विलयन की प्रतिशत सान्द्रता	छिड़काव की संख्या		
0.5	2	32	146
0.5	3	38	192
1.0	1	30	131
1.0	2	37	185
2.0	1	30	131
2.0	2	34	161
क्रान्तिक अन्तर (5%)	–	8	–

स्रोत: टक्कर एवं नायर, 1986 प्रोसिडिंग एफएआई सेमिनार पृष्ठ सं. III/2, 1-16

तांबा

कुल मात्रा

भारतीय मृदाओं में तांबे की कुल मात्रा 1.9 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से 960 मि. ग्रा./कि.ग्रा. तक पायी गयी है। उत्तर प्रदेश की जलोढ़ मिट्टियों में यह मात्रा न्यूनतम और गुजरात की गहरी काली मिट्टियों में अधिकतम रही। सारणी 8.21 में दिये गये आंकड़ों से पता चलता है कि अधिकांश मिट्टियों में यह मात्रा 20–100 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक पायी जाती है। उल्लेखनीय है कि तांबा

सारणी-8.21 भारतीय मिट्टियों में तांबा (मि.ग्रा./कि.ग्रा.) के विभिन्न रूप

मृदा समूह	विनिमेय	दुर्बल अधिशोषित	सबल अधिशोषित	कुल	संदर्भ
1	2	3	4	5	6
1. जलोढ़					
सामान्य	0.25–6.0	1.2–3.9	01–16.2	5–168	सुब्बाराव (1971), लाल एवं विश्वास (1973), वेंकटेश्वर्लू एवं सुब्बाराव (1979)
क्षारीय	–	–	0.7–1.7	9–100	कंवर एवं रंधावा (1974)
लवणीय	–	–	10.0–16.0	55–112	–तदैव–
लवणीय क्षारीय	शून्य–0.70	1.8–5.9	–	8.8–100	रानादिवे इत्यादि (1964), लाल (1968), मिश्र एवं मिश्र (1968), कंवर एवं रंधावा (1974)
चुनही	–	–	शून्य–3.3	10–100	कंवर एवं रंधावा (1974)

1	2	3	4	5	6
2. काली	शून्य–1.5	4.4–7.2	2.0–172	17–960	सुव्वाराव (1971), कंवर एवं रंधावा (1974), वेकटश्वर्लू एवं सुव्वाराव (1979)
3. लाल एवं पीली	शून्य–2.1	2.8–6.7	2.5–6.8	12–125	पंडा (1969) कंवर एवं रंधावा (1974), वेकटेश्वर्लू एवं सुव्वाराम (1979)
4. लैटेराइट	2.6–2.7	–	12.6	65–84	कंवर एवं रंधावा (1969) वेकटेश्वर्लू एवं सुव्वाराव (1979)
5. सीरोजम	–	–	–	20–246	कंवर एवं रंधावा (1974) वेकटेश्वर्लू एवं सुव्वाराव, 1979
6. मरुस्थलीय	–	–	–	18	लाल एवं विश्वास (1973)
7. अन्य	शून्य–12.0	0.98–3.90	शून्य–7.0	4.5–446	कंवर एवं रंधावा (1974)

की कुल मात्रा गुजरात की काली कपासी मिट्टियों में मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र की इसी प्रकार की मिट्टियों की तुलना में काफी अधिक पायी जाती है। राजस्थान की मरुस्थलीय, धूसर भूरी और पुरानी जलोढ़ मिट्टियों की तुलना में काली मिट्टियों और पर्वतीय क्षेत्रों के निचले भागों में पायी जाने वाली लाल मिट्टियों में तांबे की कुल मात्रा काफी अधिक होती है। ज्ञातव्य है कि इन मिट्टियों में मृत्तिका की मात्रा के साथ ही इनकी धनायन विनिमय क्षमता भी अधिक होने से कारण ऐसा होता है। महाराष्ट्र की समुद्रतटीय मिट्टियों गुजरात की कुछ क्षारीय एवं अम्लीय पर्वतीय मिट्टियों और हरियाणा की सियरोजेम मिट्टियों में तांबे की कुल मात्रा अधिक पायी गयी। मध्य प्रदेश की विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में तांबे की कुल मात्रा इस क्रम में पायी गई है।

उथली लाल > मध्यम काली > लाल–पीली काली > मिश्रित लाल और काली मिट्टियां

उत्तर प्रदेश की काली मिट्टियों में लाल और क्षारीय मिट्टियों की तुलना में यह मात्रा अधिक पायी गयी है।

मूल पदार्थ जो मृदा विशेष के निर्माण में भाग लेते हैं उनसे मिट्टी में तांबे की मात्रा प्रभावित होती है। शेष चूना पत्थर और आग्नेय चट्टानों में तांबे की मात्रा क्रमशः 192, 20 और 70 मि.ग्रा./कि.ग्रा. पायी गयी (राय चौधरी एवं दत्ता, विश्वास 1964)।

उपलब्ध मात्रा

मृदा में तांबे की विभिन्न मूलों के विश्लेषण सम्बन्धी अध्ययनों का अभाव है। अधिकाशंतः अभी तक विनिमेय तथा शक्ति से अधिशोषित तांबे की जानकारी से सम्बन्धित अध्ययन हुये हैं। भारतीय मिट्टियों में विनिमयशील तांबे की मात्रा शून्य से लेकर 12 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक पायी गयी। अधिकांश मिट्टियों में यह मात्रा 2 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से कम पायी जाती है। लवणीय तथा क्षारीय मिट्टियों की तुलना में सामान्य मिट्टियों में विनिमेय तांबे की मात्रा अधिक आंकी गयी।

दुर्वलता से अधिशोषित तांबे की मात्रा 0.98 से लेकर 7.2 मि.ग्रा./कि. ग्रा. तक पायी गयी। काली और लाल मिट्टियों में यह मात्रा अन्य मिट्टियों की तुलना में अधिक रहीं (सारणी–8.22)। अम्लीय मिट्टियों की तुलना में क्षारीय मिट्टियों में इसकी मात्रा कम रही।

शक्ति से अधिशोषित तांबें की मात्रा शून्य से लेकर 16.5 मि.ग्रा./कि. ग्रा. तक पायी गयी। यह मात्रा चूना युक्त नीबूं वाली मिट्टियों में न्यूनतम और महाराष्ट्र की समुद्रतटीय जलोढ़ मिट्टियों में सर्वाधिक थी। लवणीय और समुद्रतटीय जलोढ़, चूना विहीन लाल और काली मिट्टियों तथा कुछ अवर्गीकृत मृदाओं में इस रूप में तांबा अधिक मात्रा में पाया गया।

भारत में विभिन्न राज्यों की मिट्टियों में डीटीपीए निष्कर्षक विलयन द्वारा निष्कर्षित तांबे की औसत मात्रा 0.7 से 4.6 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक पायी गयी। इन नमूनों के विश्लेषण से प्राप्त आंकड़ों से पता चला कि दिल्ली के 46 प्रतिशत, तमिलनाडु के 40 प्रतिशत, केरल के 24 प्रतिशत, कर्नाटक के 20 प्रतिशत और अन्य राज्यों के 10 प्रतिशत से कम नमूनों में तांबें की कमी पायी गयी।

परिच्छेदिका में वितरण

मृदा–परिच्छेदिका में तांबे के वितरण का कोई निश्चित क्रम नहीं पाया जाता। अधिकांश अध्ययनों में मृदा–सतह में तांबे की मात्रा अधिक पायी गयी।

मृदा में तांबे की उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारक

मृदा पीएच-मान

चूना युक्त उदासीन और क्षारीय मिट्टियों में कापर हाइड्राक्साइड के रूप में अवक्षेपण हो जाने के कारण तांबे की उपलब्धता घट जाती है। अनुसंधानों से पता चला कि मिट्टी का पीएच–मान 5.5 से अधिक होने पर तांबे का स्थिरीकरण हो जाता है। तांबे की उपलब्धता केवल अधिक पीएचमान के कारण नहीं होती क्योंकि इसकी कमी अम्लीय मिट्टियों में भी हो सकती है जो कि नीक्षालन द्वारा तांबे की हानि के कारण होती है।

कैल्सियम कार्बोनेट

चूना युक्त मृदाओं में तांबा कैल्सियम कार्बोनेट के कणों पर अधिशोषित हो जाता है। कैल्सियम कार्बोनेट की उपस्थिति में तांबा अधिक पीएच पर कापर हाइड्राक्साइड ($Cu(OH)2$) और क्षारीय कापर कार्बोनेट ठ$Cu(OH)CO3$) के रूप में अवक्षेपित हो जाता है और इसकी कुछ मात्रा कैल्सियम कार्बोनेट के बारीक कणों पर अधिशोषण के बाद अवक्षेपित हो जाती है।

जीवांश पदार्थ या ह्यूमस

जिन मिट्टियों में जीवांश पदार्थ की प्रचुरता होती है उनमें तांबें का स्थिरीकरण हो जाता है। ऐसा कार्बनिक जैव धात्विक यौगिकों के निर्माण के फलस्वरूप होता है भारत में किये गये परीक्षणों से पता चला है कि गोबर की खाद या गेहूं के भूसे के लगातार इस्तेमाल से धान की मिट्टियों में तांबे की उपलब्धता घटी। मिश्र तथा तिवारी (1964) ने कम्पोस्ट के साथ तांबे के दृढ़ता पूर्वक बंधित होने का प्रमाण दिया है।

मृदा गठन

मिट्टी में मृत्तिका या सिल्ट की मात्रा बढ़ने से उपलब्ध तांबें की मात्रा में साधारण वृद्धि पायी जाती है। परन्तु मध्य प्रदेश की काली मिट्टियों में तांबे की कम उपलब्धता के कारण क्ले की अधिक मात्रा और उसमें प्रचुर मात्रा में मौजूद स्मेक्टाइट खनिज बताया गया है।

जीवाण्विक क्रियायें

ऐसा माना जाता है कि जीवांश पदार्थ के विघटन में भाग लेने वाले अणुजीव पोधों के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं, जिसके फलस्वरूप उनकी कोशिकाओं में तांबें के परमाणु बंधित हो जाते हैं।

उर्वरकों का प्रयोग

भारत में किये गये परीक्षणों से पता चला है कि फास्फेट के प्रयोग से तांबें की उपलब्धता घटती है।

पोंधों के पोषण में तांबा का महत्व

पौधों में इसके कार्य इस प्रकार हैं:

1. तांबा अनेक इन्जाइम जैसे एस्कार्बिक अम्ल आक्सीडेज, फेनोलेज लैकसेज, यूरिकेज, साइटोक्रोम आक्सीडेज, टाइरोसिनेज आदि का संघटक है।

2. इस धातु के आयन अनेक एन्जाइमों के सहकारक भी हैं। अन्य तत्वों की तरह इसका भी उत्प्रेरकीय क्रियाओं में महत्व है।

3. इसके अभाव में प्रोटीन–संश्लेषण में बाधा पड़ती है और घुलनशील नाइट्रोजन यौगिको की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। तांबा की कमी में अवकरत शर्करा की मात्रा में भी कमी हो जाती है।
4. यह कुछ जीवाणुओं और कवकों के आक्सीकरण में सहायक होता है।
5. यह विटामिन "ए" के निर्माण में योगदान देता है।
6. श्वसन क्रिया को नियंत्रित करता है।
7. कुछ पौधों में एन्डोल–एसिटिक अम्ल के संश्लेषण में सहयोग देता है।
8. यह अप्रत्यक्ष रूप में पर्णहरित के विकास में सहायक होता है।
9. तांबा की कमी से प्रकाश–संश्लेषण की दर कम हो जाती है। पत्तियों में पाए जाने वाले कुल तांबा की मात्रा क्लोरोप्लास्ट में सर्वाधिक होती है। यह पैराफाइरिन के निर्माण में भी सहायक सिद्ध हुआ है।
10. प्रकाश संश्लेषण की प्रारम्भिक क्रियाओं के अन्तर्गत तांबा युक्त यौगिकों जैसे प्लास्टोकिनोन और प्लास्टोसाइनिन की उपस्थिति में पर्णहरित से एवं जल से पर्णहरित तक ऊर्जा का आवागमन सफलतापूर्वक सम्पन्न होता है।

कमी के लक्षण

पौधों में इसकी कमी के लक्षण इस प्रकार हैं:

1. कमी के लक्षण सर्वप्रथम नई पत्तियों पर दिखाई पड़ते हैं। पत्तियां प्रारम्भ में गहरे हरे रंग की हो जाती हैं जो कि बाद में पीली पड़ जाती हैं। फिर भी उनकी शिराएं हल्की या गहरी हरी बनी रहती हैं।
2. विशेष कमी की दशा में पत्तियां कोमल, लचीली और हरिमाहीन होकर मुड़ जाती हैं।
3. नई निकली हुई पत्तियां पहले से मुड़ी पत्तियों के बीच में फंस सी जाती हैं।

4. तांबे की कमी से बर्धनशील कल्लों और कलियों की संख्या सामान्यतः अधिक हो जाती है।

न्यूनता रोग

फलों का पश्चमारी रोग (Die back of fruit trees)

सर्वप्रथम यह रोग फलोरिडा (अमेरिका) में नीबू कुल के वृक्षों में देखा गया। प्रभावित वृक्षों की पत्तियों पर फुंसिया सी बन जाती हैं। फलों का आकार छोटा, रंग भूरा, चिकना हो जाता है। प्रभावित शाखाओं की पत्तियां गिर जाती हैं जिसे पश्चमारी शीर्षारंभी कहकर पुकारते हैं। पार्श्विक शाखायें झाड़ीनुमा दिखाई देने लगती हैं।

क्षारीय रोग (Reclamation disease)

तांबें की कमी से अनाजों, जई, चुकन्दर और दलहनी फसलों में क्षारीय रोग या श्वेत अग्र (व्हाइट टिप) लक्षण दिखाई देते हैं। जिसमें पत्तियों का अग्र भाग हरिमाहीन होकर मर सा जाता है और बीज का निर्माण ठीक ढंग से नहीं हो पाता है।

भारत में तांबा के प्रयोग का फसलोंत्पादन में महत्व

अभी तक किये गये परीक्षणों से यह पता चला है कि कुछ खास परिस्थितियों में ही तांबा का प्रयोग लाभदायक होता है। उत्तरी बिहार (पूसा) और हरियाणा राज्य में तांबा के उपयोग से फसलों की उपज में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इन क्षेत्रों के अलावा अन्य क्षेत्रों से तांबा की कमी की पुष्टि अभी नहीं हो पायी है। साधारणतया तांबा के उपयोग से विशेष लाभान्वित होने वाली फसलें जई, गेहूं, पालक और लूसर्न हैं। पातगोभी, फूलगोभी, चुकन्दर और मक्का की अनुक्रिया दर मध्यम श्रेणी की है किन्तु दलहनी फलियों वाली फसलें, घासें, आलू और सोयाबीन तांबा के प्रति कम अनुक्रिया प्रदर्शित करती हैं।

सिंह इत्यादि (1979) ने अखिल भारतीय सस्य प्रयोग की समन्वित योजनान्तर्गत अनुसंधान केन्द्रों पर किये गये 124 परीक्षणों से फसलों की तांबा के प्रति अनुक्रिया सम्बन्धी निष्कर्ष निकाला। फसलों की उपज में तांबा के पर्णीय प्रयोग से वाराणसी में एक वर्ष तथा चिपलिया में दो वर्ष सार्थक वृद्धि

पायी गयी। 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से कापर सल्फेट का इस्तेमाल करने पर बिहार की विभिन्न मिट्टियों में धान की उपज में शून्य से 10.3 कु. प्रति है. (औसत 4.5 कु. प्रति है.) वृद्धि पायी गयी।

बोरान

मृदा सतह में कुल मात्रा

भारतीय मिट्टियों की उपरी सतह में बोरान की कुल मात्रा 3.8 से 630 मि.ग्रा./कि.ग्रा. आंकी गयी है (सारणी 8.22)।

आमतौर पर यह मात्रा 15 से 65 मि.ग्रा./कि.ग्रा. के बीच पायी जाती है। कुछ जलोढ़, काली और लाल मिट्टियों में यह मात्रा 630 मि.ग्रा./कि. ग्रा. पायी गयी है जबकि अन्य में यह मात्रा 9.4 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक पायी गयी है। साधारणतः चूना युक्त लवणीय, लवणीय–क्षारीय मिट्टियों एवं शुष्क तता अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों की मिट्टियों में बोरान की कुल मात्रा चूना युक्त सामान्य मृदाओं और आर्द्र क्षेत्रों की मिट्टियों की तुलना में अधिक पायी जाती है।

परिच्छेदिका में वितरण

विभिन्न मिट्टियों की परिच्देदिकाओं में बोरान की कुल मात्रा के वितरण में गहराई के साथ कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं पाया जाता है। उदाहरण के तौर पर पंजाब एवं हरियाणा की मिट्टियों में, महाराष्ट्र की चूना युक्त मिट्टियों, राजस्थान की सिंचित मिट्टियों तथा उत्तर प्रदेश की भावर और बुन्देलखण्ड क्षेत्र की मिट्टियों में गहराई में वृद्धि के साथ बोरान की मात्रा में वृद्धि हुई। इसके विपरीत बिहार की गन्ने वाली मिट्टियाँ, राजस्थान की असिंचित मिट्टियों और उत्तर प्रदेश के विन्ध्य क्षेत्र की अधिक निक्षालित मिट्टियों में यह मात्रा गहराई के साथ घट गयी।

प्रभावित करने वाले कारक

अधिक पुरानी चट्टानों से निर्मित मिट्टियों में कुल बोरान की मात्रा कम होती है। जलोढ़, पाश (ट्रेप), कुडुप्पाह, दिल्ली और प्राचीन क्रिस्टलीय भूगर्भीय प्रणाली के अन्तर्गत निर्मित मिट्टियों में यह मात्रा क्रमशः 42, 38, 39, 29 और 22 मि.ग्रा./कि.ग्रा. पायी गयी इससे स्पष्ट है कि अधिक पुरानी चट्टानों से निर्मित मिट्टियों में बोरान की मात्र कम होती है। मिट्टियों में

सारणी-8.22 भारतीय मिट्टियों में बोरान की कुल एवं उपलब्ध मात्रा (पीपीएम)

मृदा समूह	कुल मात्रा	उपलब्ध मात्रा	संदर्भ
1	2	3	4
1. जलोढ़			
(क) सामान्य	3.8–630	शून्य–6.5	कंवर एवं रंधावा (1974), वेकटेश्वर्लू एवं सुव्वाराव (1979)
(ख) उदासीन	9.4	0.1–34.7	सिंह एवं जैन (1971), कंवर एवं रंधावा (1974)
			तलाटी एवं अग्रवाल (1974), सिंह एवं रंधावा (1977)
(ग) क्षरीय	12.4–170	0.58–1.6	सिंह एवं जैन (1971), कंवर एवं रंधावा (1974),
			सिंह एवं रंधावा (1977), शर्मा एवं बाजवा (1988)

1 2	3	4	
(घ) लवणीय	14.0–46.0	0.46–11.8	पंडा (1969), कंवर एवं रंधावा (1974),
क्षारीय			सिंह एव रंधावा (1977)
चुनही	14.0–81.0	0–6.5	सिंह एवं रंधावा (1974), सिंह इत्यादि (1977)
लवणीय	–	3.0–3.5	कंवर एवं रंधावा (1974)
2. काली			
सतह	18.0–630	0.03–2.10	कंवर एवं रंधावा (1974), वेकटैश्वर्लू एवं सुव्वाराव (1979)
मृदा परिच्छेदिका	–	0.96–2.10	कंवर एवं रंधावा (1974)
3. लाल	58–467	1.5	लाल एवं विश्वास (1973), वेकटेश्वर्लू एवं सुव्वाराव (1979)
4. लैटेराइट	13.8–38.9	0.10–2.0	वेकटैश्वर्लू एवं सुव्वाराव (1979)
5. सीरोजम	7.5–40.0	0.17–4.46	–तदैव–
6. मरुस्थलीय	4.1–41.2	0.17–10.24	लाल एवं विश्वास (1973), कंवर एवं रंधावा (1974) तलाटी एवं अग्रवाल (1974)
7 अन्य	7.5–57.5	0.02–1 40	कंवर एवं रंधावा (1974), कपूर एवं देव (1977) गुलाटी इत्यादि (1979)

बोरान का प्रारम्भिक स्रोत "टारमेलीन", अवसादी जलोढ़ से निर्मित मिट्टियों में बोरान की कुल मात्रा अधिक होती है। अधिकांश अध्ययनों सेपता चला है कि मिट्टी में मॉजूद बोरान की कुल मात्रा एवं मिट्टी की पीएच–मान उनमें मौजूद जीवांश पदार्थ, कैल्सियम, क्ले और बालू की मात्रा में सार्थक सम्बन्ध नहीं पाया जाता है। प्रबन्ध क्रियाओं, विशेषकर सिंचाई जल की मात्रा एवं उसके रासायनिक संगठन, उर्वरक और भूमि–सुधारकों की उपयोग की गयी मात्रा का मिट्टी के कुल और उपलब्ध बोरान की मात्रा पर की मात्रा पर प्रभाव अवश्यमेव पड़ता है। सिंचाई जल में उपस्थित बोरान की मात्रा और सिंचित मिट्टियों के बोरान की मात्रा में सार्थक सह–सम्बन्ध देखा जाता है।

मृदा सतह में उपलब्ध बोरान की मात्रा

जल विलेय बोरान जलोढ़ मिट्टियों में लेस मात्रा से लेकर लवणीय–क्षारीय मिट्टियों में 12 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक पाया गया है। सारणी–9. 23 में दिये गये आंकड़ों से स्पष्ट है कि अधिकांश मिट्टियों में यह मात्रा 0. 2 से 3 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक होती है। लवणीय, क्षारीय लवणीय–क्षारीय तथा चूनायुक्त मिट्टियों और शुष्क क्षेत्र की मिट्टियों में उपलब्ध बोरान की मात्रा सामान्य मिट्टियों और आर्द्र क्षेत्रों की मिट्टियों की तुलना में अधिक पायी जाती है। कुछ लवण प्रभावित मृदाओं में उपलब्ध बोरान की मात्रा इतनी अधिक होती है कि यह पौधों के लिए विषाक्त हो जाती है। राजस्थान की मिट्टियों में उपलब्ध बोरान की मात्रा पौधों की वृद्धि क लिए निर्धारित सीमा से अधिक मात्रा में पाया जाती है।

मृदा परिच्छेदिका में वितरण

पंजाब की अच्छी जल निकास वाली मिट्टियों, गुजरात की मिट्टियों, राजस्थान की सिंचित मिट्टियों और पश्चिमी बिहार की लवणीय मिट्टियों में उपलब्ध बोरान की मात्रा गहराई के साथ बढ़ते क्रम में पायी गयी जबकि पंजाब की क्षारीय मिट्टियों, सौराष्ट्र की लवणीय मिट्टियों और राजस्थान की असिंचित मिट्टियों मे यह मात्रा गहराई से घटते क्रम में पायी गयी।

उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारक

मिट्टियों में बोरान की कुल मात्रा इसकी उपलब्ध मात्रा को कुछ हद तक प्रभावित करती है। मिट्टी की पीएच–मान, सोडियम अवशोषण अनुपात

और लवण की मात्रा में बृद्धि के साथ ही उपलब्ध बोरॉन की मात्रा में वृद्धि देखी गयी है। यह सह सम्बन्ध लवणीय और क्षारीय मिट्टियों में विशेष सटीक बैठता है। मिट्टी में कैल्सियम कार्बोनेट की मात्रा के साथ धनात्मक (शर्मा एवं शुक्ला 1972, सिंह एवं रंधावा 1977) और ऋणात्मक (तलाटी एवं अग्रबाल 1974, टक्कर एवं रंधावा 1978) सह सम्बन्ध पाये गये। बारीक गठन वाली मिट्टियों में हल्के गठन वाली बलुई मिट्टियों की तुलना में उपलब्ध बोरान की मात्रा अधिक पायीं जातीं है। कुछ वैज्ञानिकों ने जीवांश पदार्थ का मृदा में उपलब्ध बोरान के साथ धनात्मक सह–सम्बन्ध जोड़ा जबकि अन्य अध्ययनों में इस प्रकार के सम्बन्ध की पुष्टि नहीं हो पायी। पंजाब और उत्तर प्रदेश की लवणीय–क्षारीय मिट्टियों मे जीवांश पदार्थ और मृदा–बोरान उपलब्धता में ऋणात्मक सह सम्बन्ध पाया गया।

फसल प्रबन्ध विशेषकर सिंचाई जल, उर्वरक और भूमि सुधारकों का सीधा प्रभाव मिट्टी में उपलब्ध बोरान की मात्रा पर पड़ता है।

पौधों के पोषण में बोरान का महत्व

इसके कार्य इस प्रकार हैं:

1. बोरान एक ऐसा तत्व है जिसकी सान्द्रता मिट्टी और पौधों दोनों में ही अपेक्षाकृत कम पायी जाती है। इसकी एक अंश प्रति दशलक्षाश मात्रा पोधों के पोषण के लिए पर्याप्त समझी जाती है। इसकी अधिक मात्रा पौधों के लिए विषाक्त हो जाती है। विभिन्न फसलों के लिए विषुलता की मात्रा भिन्न–भिन्न होती है। पौधे इस तत्व का अवशोषण बोरेट आयन के रूप में करते हैं।

2. बोरान यद्यपि किसी एन्जाइम का संघटक नहीं है, फिर भी यह अनेक एन्जाइमों जैसे कैटालेज, आक्सीडेज, पराक्सीडेज और सुक्रेज की सुक्रियाशीलता में वृद्धि करता है।

3. कार्बोहाइड्रेट तथा नाइट्रोजन उपापचयन में भी बोरान का महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

4. आमतौर पर शर्करा वियोजन (Glycolysis) प्रक्रिया द्वारा ग्लूकोज का विघटन होता है। कुछ ऊतकों में बोरान की उपस्थिति से यह प्रक्रिया

पेन्टोज शन्ट पाथ वे (**Pantase shunt pathway**) द्वारा भी सम्पन्न हो जाती है। बोरान–6 फास्फोग्लूकोनेट से मिलकर 6–फास्फोग्लूकोनेट–बोरेट यौगिक बनाता है जो कि पुनः उपपचित नहीं हो सकता।

5. बोरान की कमी प्रायः फेनोलिक अम्ल के अधिक संश्लेषण के बाद ही देखी जाती है।

6. बोरान के अभाव में परागकण और पराग नली की वृद्धि पर भयंकर कुप्रभाव पड़ता है।

7. पत्तियों में शर्करा स्थानान्तरित करने में बोरान महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बोरान की कमी हो जाने पर टमाटर की पत्तियों में शर्करा और तम्बाकू की पत्तियों में निकोटीन का संचय अधिक होता है। बोरान के अभाव में पौधों मे कैफीन क्लोरोजनिक अम्ल का भी संचय होता है।

8. जल–अवशोषण, उत्स्वेदन और ऋणायनों का अवशोषण भी बोरान द्वारा नियंत्रित होता है। यह प्रोटीन और न्यूक्लिक अम्ल के संश्लेषण तथा फास्फेट के उपयोग और कोशिका भित्ति में पेक्टिन पदार्थ के निर्माण में सहायक होता है। पोधों में बोरान की भूमिका के बारे में सही जानकारी अभी नहीं हो पायी है। इसका कारण है कि बोरान का विश्लेषण अपेक्षाकृत जटिल है, साथ ही उचित रेडियो आइसोटोप का अभाव है।

कमी के लक्षण

पौधों में इसकी कमी के लक्षण इस प्रकार हैं:

1. बोरान की कमी के लक्षण सर्वप्रथम नई निकलती हुई पत्तियों या शिराओं में दिखाई पड़ते हैं। पत्तियों मोटी होकर मुड़ जाती हैं।

2. जड़ों का विकास रूक जाता है।

3. मुख्य तने की फुन्गी मर जाने के कारण फूल और फल नहीं लग पाते। इसके अतिरिक्त पत्तियों में कड़ापन भी आ जाता है, झुर्रियां पड़ जाती हैं और हरिमाहीन धब्बे दिखाई देने लगते हैं।

4. बोरान की अधिक कमी होने पर पत्तियों सूख जाती हैं।

न्यूनता रोग

आंतरिक गलन (Heart rot)

शीर्ष गलन (crown rot) या शुष्क गलन (Dry rot) के नाम से जाना जाने वाला रोग चुकंदर और मैंगोल्ड में विशेष रूप से देखा जाता है। आंतरिक जड़ों के ऊतक मर जाते हैं तथा नई पत्तियाँ बुरी तरह मुड़ जाती हैं, शिराएँ पीली पड़ जाती हैं और पर्णवृंत्त कड़े हो जाते हैं। शाखाओं के वर्धनशील अग्र भाग मरने लगते हैं।

फूल गोभी का भूरा रोग (Browning of cauliflower)

शीर्ष पर भूरे चकत्ते पड़ना, पत्तियों का मोटा तथा कड़ा हो जाना, नीचे की ओर मुड़ जाना, मध्य शिरा के किनारे–किनारे एवं पर्णवृंत पर फफोले पड़ जाना इस रोग के लक्षण हैं।

लूसर्न की पीली फुनगी का रोग (Yellow top of lucerne)

इस रोग में पूरी पत्ती समान रूप से पीली या भूरी हो जाती है। तने की पोरी (internode) छोटी हो जाती है और शाखाओं के वर्धनशील भाग मर जाते हैं।

तंबाकू का शिखर व्याधि (Top sickness of tobacco)

नई निकलने वाली पत्तियों का आधार अग्रभाग की अपेक्षा अधिक पीला दिखाई पड़ता है। आधार के उत्तक टूट जाते हैं और कलियाँ मर जाती हैं। पुरानी पत्तियाँ मोटी और कड़ी हो जाती हैं। मध्य शिरा टूट जाती हैं और पत्तियाँ ऊपर की ओर गिर जाती हैं।

नींबू के फलों का कठोरपन (Hard fruit of citrus)

नींबू कुल के पौधों के वर्धनशील अग्र भाग मर जाते हैं। पेड़ों में फूल कम आते हैं और फल झड़ जाते हैं। फलों का आकार भद्दा हो जाता है एवं छिलका मोटा हो जाता है। मध्यवर्ती अक्ष के चारों ओर गोंद की तरह धब्बे देखने को मिलते हैं।

विदलित तना (Cracked stem)

सिलेरी में होने वाले रोग को विदलित तना के नाम से जाना जाता है। यह रोग सर्वप्रथम सन् 1935–37 में फ्लोरिडा में प्रकट होते देखा गया है।

विषालुता

बोरान की विषालुता होने पर हरिमाहीनता के लक्षण देखे जाते हैं। बोरान युक्त उर्वरकों की अधिक मात्रा प्रयोग करने पर भी विषालुता का भय बना रहता है। सिंचाई जल में बोरान की प्रचुर मात्रा होने के कारण ऐसे जल द्वारा सिंचित फसलों में विषालुता उत्पन्न होने की आशंका रहती है।

भारत में बोरान के प्रयोग का फसलोत्पादन में महत्व

बोरान की कमी बिहार की चुनही मिट्टियों में देखी गयी। पूसा (बिहार) में किये गये परीक्षणों में चुनही मिट्टियों में (पीएच. 8.6–8.7 जैव कार्बन 0.28–0.32% कैल्सियम कार्बोनेट 36–38% गर्म जल विलेय बोरान 0.35–0.40 मि.ग्रा./कि.ग्रा.) के प्रयोग से चना और उर्द की उपज में सार्थक वृद्धि हुई। उल्लेखनीय है कि 2.0 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से बोरान का इस्तेमाल करने पर उर्द की उपज में 672 से 925 कि.ग्रा. प्रति हे. और चने की उपज में 1423–2333 कि.ग्रा. प्रति हे. की वृद्धि हुई। इन आँकड़ों के विश्लेषण में क्वाडैट्रिक उत्पादन फलन का उपयोग करने पर बोरान का 1.98 कि.ग्रा. प्रति हे. की दर से प्रयोग करने पर उर्द की अधिकतम 866 कि.ग्रा. प्रति हे. उपज मिली जबकि चने की अधिकतम 2224 कि.ग्रा. उपज पर 2.09 कि.ग्रा. बोरान प्रति हे. प्रयोग की मात्रा उपयुक्त पायी गयी। संबंधित आँकड़े रेखाचित्र में दिये गये हैं।

अखिल भारतीय समन्वित सस्य प्रयोग की योजनान्तर्गत देश के विभिन्न भागों में स्थित अनुसंधान केन्द्रों पर किये गये परीक्षणों के परिणाम सिंह इत्यादि (1979) ने संकलित किये। वाराणसी, नाँदयाल, कारामना, क्थूलिया फार्म, भवानी सागर और चिपलिमा केन्द्रों पर बोरान के पर्णीय छिड़काव से धान की उपज में उल्लेखनीय वृद्धि (4.5 से 16.1 क्विं./हे.) हुई। पापरखेड़ा, उमराला, करजत, चिपालिया और हिसार केन्द्रों पर गेहूँ की उपज में सार्थक वृद्धि (3.2–9.8 क्वि./हे.) हुई। बिहार में किये परीक्षणों से पता चला कि धान गेहूँ फसल चक्र में 15 कि.ग्रा. प्रति हे. की दर से बोरैक्स का इस्तेमाल करने

से विभिन्न मृदा समूहों में धान की उपज में 1.7–4.1 क्विं. प्रति हे. (औसत 3.0 क्विं. प्रति हे.) और गेहूँ की उपज में (0.4–6.6 क्विं प्रति हे. औसत 2. 8 क्विं. प्रति हे. वृद्धि हुई)। अन्य परीक्षणों में मक्का, बाजरा, मूंगफली, मसूर, बरसीम और सूरजमुखी की उपज पर बोरान का सार्थक प्रभाव देखा गया।

चुकंदर बोरान की कमी के प्रति सर्वाधिक संवेदनशील है। इसके अलावा सरसों कुल की फसलों जैसे शलजम, फूलगोभी और पातगोभी में बोरान आवश्यकता अधिक होती है।

फल वृक्षों में सेब और नाशपाती बोरान की कमी के प्रति विशेष संवेदनशील हैं। कुछ दलहनी फसलें बोरान के लाभ से विशेष लाभान्वित होती हैं। बोरान के प्रयोग से लूसर्न की उपज में उल्लेखनीय वृद्धि होती है। साधारणतया द्विबीज फसलों की बोरान आवश्यकता एक बीज पत्री फसलों की तुलना में अधिक होती है। इसलिए अनाज वाली फसलें बोरान की कमी के प्रति कम संवेदनशील होती हैं।

मालिब्डेनम

भारतीय मिट्टियों में मालिब्डेनम की कुल और उपलब्ध (अम्ल अमोनियम आक्जलेट निष्कर्षित) मात्रा संबंधी अध्ययन हुए हैं।

कुल मात्रा

अधिकांश मिट्टियों की ऊपरी सतह में मालिब्डेनम की यह मात्रा 0.013 से 2.50 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक पायी गयी। किन्तु बिहार की कुछ मिट्टियों में अधिकतम मात्रा 18.1 मि.ग्रा./कि.ग्रा. पायी गयी। उत्तर प्रदेश की बुंदेलखंड, भाबर, विंध्य एवं जलोढ़ मिट्टियों में मालिब्डेनम की मात्रा सबसे कम (0.1 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से कम) पायी गयी। हिमाचल प्रदेश की अम्लीय मिट्टियों में पंजाब और हरियाणा की उदासीन एवं क्षारीय मिट्टियों की तुलना में मालिब्डेनम की मात्रा कम रही। तमिलनाडु की काली मिट्टियों में लाल और जलोढ़ मिट्टियों की अपेक्षा यह मात्रा अधिक थी देखें सारणी–8.23। परिच्छेदिका में मालिब्डेनम के वितरण संबंधी सूचनाओं का अभाव है।

सारणी-8.23 भारतीय मिट्टियों में मालिब्डेनम की कुल एवं उपलब्ध मात्रा (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)

मृदा समूह	कुल	उपलब्ध	संदर्भ
1. जलोढ़			
सामान्य	0.013–5.6	0.004–1.30	सुव्वाराव (1971), लाल एवं विश्वास (1973) कंवर एवं रंधावा (1974), वेंकटेश्वर्लू एवं सुव्वाराव (1979)
उदासीन	1.8–6.0	–	कंवर एवं रंधावा (1974)
क्षारीय	0.87–3.0	–	मिश्रा एवं मिश्रा (1972)
लवणीय क्षारीय	–	0.012–0.720	कंवर एवं रंधावा (1974)
2. काली	0.6–11.6	0–2.0	सुव्वाराव (1971), मिश्रा एवं मिश्रा (1972), कंवर एवं रंधावा (1974), वेंकटेश्वर्लू एवं सुव्वाराव (1979)
3. लाल	0.013–5.3	0.004–1.66	मिश्रा एवं मिश्रा (1972), लाल एवं विश्वास (1973), वेंकटेवर्लू एवं सुव्वाराव (1979)
4. लैटेराइट	1.34–10.0	0.32–1.60	कंवर एवं रंधावा (1974), वेंकटेश्वर्लू एवं सुव्वाराव (1979)
5. सीरोजम	–	0–0.55	– तदैव–
6. मरूस्थलीय	1.37	0.21	लाल एवं विश्वास (1973)
7. अन्य	0.013–18.1	0–1.2	कंवर एवं रंधावा (1974)

उपलब्ध मात्रा

भारतीय मिट्टियों में मालिब्डेनम की उपलब्ध मात्रा प्रायः 0.10 से 0.75 मि.ग्रा./कि.ग्रा. के मध्य पायी गयी। किन्तु गुजरात की कुछ लैटेराइट, मध्यम तथा गहरी काली जलोढ़ और पर्वतीय मिट्टियों और उत्तर प्रदेश की लवणीय–क्षारीय मिट्टियों में यह काफी अधिक मात्रा (1.2 से 1.60 मि. ग्रा./कि.ग्रा.) में पाया गया। तमिलनाडु की लाल तथा काली मिट्टियों में जलोढ़ मिट्टियों की अपेक्षा उपलब्ध मालिब्डेनम की मात्रा कम पायी गई फिर भी पादप पोषण हेतु पर्याप्त थी। गुजरात की बलुई मिट्टियों और उत्तर प्रदेश की धूसर–भूरी पोडजाल मिट्टियों में मालिब्डेनम की कमी पायी गयी। इन मिट्टियों में उपलब्ध मालिब्डेनम की मात्रा 0.05 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से कम थी। गुजरात की बलुई मिट्टियों में उपलब्ध मालिब्डेनम की मात्रा 0.05 पी.पी.एम. से कम थी। उत्तर प्रदेश में की गई खोजों से पता चला कि कुल मात्रा का 29 से 65 प्रतिशत क्षारीय मिट्टियों में तथा 17 से 50 प्रतिशत पास की सामान्य मिट्टियों में उपलब्ध रूप में पाया गया। पंजाब की नयी सुधारी गयी ऊसर भूमि में उपलब्ध मालिब्डेनम ऊपरी मृदा–संस्तरों की तुलना में अधोसंस्तरों में अधिक मात्रा में पाया गया। लगभग 97 प्रतिशत चुनही कछारी मिट्टियों में यह मात्रा क्रांतिक सीमा से भी अधिक थी (नायर इत्यादि, 1971)। इन मिट्टियों तथा क्षारीय मिट्टियों में उगाई गई बरसीम की फसल में मालिब्डेनम की सांद्रता पशुओं के लिए विषाक्त सिद्ध हुई (नायर इत्यादि, 1978)।

उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारक

मालिब्डेनम मिट्टी में चार रूपों में विद्यमान रहता है। 1. जल विलेय; 2. मृत्तिका द्वारा अधिशोषित मालिब्डेट आयन; 3. कार्बनिक पदार्थ के अंग स्वरूप और 4. खनिजों के क्रिस्टल जलक में अविलेय रूप में। मालिब्डेनम की उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारक निम्नांकित हैं:

मृदा पीएच.

मैगनजि के बाद यही एक ऐसा तत्व है जिसकी उपलब्धि पीएच. के साथ अत्यंत घटती–बढ़ती है। अम्लीय मिट्टियों में मालिब्डेनम की कम उपलब्धता की समस्या से हम सभी भली–भांति परिचित हैं। पीएच. मान तथा विनिमेय सोडियम की मात्रा में वृद्धि के साथ मालिब्डेनम की उपलब्धि बढ़

जाती है। मृदा में पीएच बढ़ाने पर मालिब्डेनम विमुक्ति की क्रियाविधि इसके अधिशोषित रूप के माध्यम से दी जा सकती है।

कार्बनिक पदार्थ

विदर्भ की मिट्टियों में जीवांश पदार्थ की वृद्धि के साथ मालिब्डेनम की उपलब्धि बढ़ी परंतु तमिलनाडु की लाल, काली और जलोढ़ मिट्टियों में इसकी मात्रा घटी। गुजरात की मिट्टियों में इस प्रकार का कोई संबंध नहीं पाया गया। अम्लीय मिट्टियों में कार्बनिक पदार्थ के साथ मालिब्डेनम की उपलब्धि में वृद्धि इसके ऋणायन अधिशोषण के विमुक्ति से होती है।

कैल्सियम कार्बोनेट

मिट्टी के कैल्सियम कार्बोनेट की वृद्धि का मालिब्डेनम उपलब्धि पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। अम्लीय मिट्टियों में चूने के प्रयोग से मालिब्डेनम की मात्रा बढ़ जाती है। यदि अम्लीय मिट्टियों में चूना डालकर पीएच मान 5 से 7 कर दिया जाए तो पौधों द्वारा इसके अवशोषण में दस गुना की वृद्धि हो जाती है।

कणाकार

मिट्टियों में क्ले की मात्रा बढ़ने से मालिब्डेनम की मात्रा बढ़ जाती है।

फास्फेट तथा गंधक उर्वरक

यदि मिट्टी में फास्फोरस और गंधक की कमी हो तो इन दशाओं में मालिब्डेनम उर्वरक के प्रयोग से विशेष लाभ नहीं हो पाता। जिन मिट्टियों में उपलब्ध मालिब्डेनम की मात्रा कम हो वहां फास्फेट के प्रयोग से मालिब्डेनम की कमी विशेष मुखर हो जाती है। इसी प्रकार की कमी गंधक के प्रयोग के बाद भी देखी जाती है। इसके अलावा सल्फेट आयन मालिब्डेनम आयन के साथ मृदा तथा पौधों में विनिमय के लिए प्रतिस्पर्धा रखते हैं।

नाइट्रोजन और पोटाशधारी उर्वरक

दलहनी फसलों में नाइट्रोजनधारी उर्वरकों के प्रयोग से मालिब्डेनम द्वारा उपज में होने वाली वृद्धि घट जाती है किन्तु अनाज वाली फसलों में ऐसा नहीं होता। पोटेशियम और मालिब्डेनम में धनात्मक अंतक्रिया के संकेत मिलते हैं।

आर्द्रता

आर्द्र अवस्था में मृदा विलयन में मालिब्डेनम की मात्रा अधिक रहती है। मिश्र तथा मिश्र (1972) ने एकांतर आर्द्रण तथा शुष्कन द्वारा काली मिट्टी में मालिब्डेनम अधिग्रहण की मात्रा में ह्रास देखा। इसी प्रकार के परिणाम किलेटी कारकों के साथ भी प्राप्त हुए। यदि जलमग्न अवस्था में अधिक अपचयन हो तो मालिब्डेनम की विलेयता घट जाती है।

पूरक आयनों का अभाव

मृदा विनिमय तंत्र पर उपस्थिति पूरक आयनों का मालिब्डेनम की उपलब्धि पर प्रभाव पड़ता है। विभिन्न आयनों से संतृप्त मृदा में मालिब्डेनम की अवशोषित मात्रा इस क्रम में पायी गई:

लोह–मृदा > अल्युमिनियम – मृदा > कैल्सियम–मृदा > मूल मृदा > पोटैशियम–मृदा अमोनियम–मृदा (पशरीचा एवं रंधावा, 1977)।

पौधों के पोषण में मालिब्डेनम का महत्व

पौधों में इसके कार्य इस प्रकार हैं:

1. मालिब्डेनम तत्व की आवश्यकता की पुष्टि सर्वप्रथम दलहनी पौधों के लिए की गई। स्वतंत्र रूप से पाये जाने वाले नाइट्रोजन यौगिकीकरण में सहायता करने वाले जीवाणुओं की वृद्धि में मालिब्डेनम के जैविक महत्व की पुष्टि वोटेल्स (1930) ने की। मुल्डर (1948), जेन्सन और स्पेन्सर (1947) और जेन्सन (1948) ने भी नाइट्रोजन यौगिकीकरण में मालिब्डेनम के लाभदायी प्रभाव का समर्थन किया।

2. प्रयोगों से अब यह स्पष्ट हो गया है कि मालिब्डेनम की बहुत थोड़ी सी मात्रा दलहनी पौधों में नाइट्रोजन यौगिकीकरण क्रिया को विशेष प्रोत्साहित करती है।

3. मालिब्डेनम नाइट्रोजन–उपापचय में सहायक होती है। यही नहीं, यह नाइट्रेट अपचयन के लिए भी अनिवार्य रूप से आवश्यक है। नाइट्रेट रिडक्टेज एंजाइम नाइट्रेट अपचयन क्रिया को इस प्रकार उत्प्रेरित करता है:

$$NO_3^- + TPNH + H^+ \rightleftharpoons NO_2^- + TPN^+ + H_2O$$

नाइट्रेट रिडक्टेज एंजाइम की क्रियाशीलता बढ़ाने में मालिब्डेनम की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस क्रिया में यह अपचित फलेविन एडेनिन डाइन्युक्लियोटाइड (FAD) और नाइट्रेट के बीच इलेक्ट्रॉन वाहक का कार्य करता है। इसे इस प्रकार से दर्शाया जा सकता है।

TPNH ————> FAD ————> Mo ————> NO^{+}

इस अभिक्रिया से स्पष्ट है कि नाइट्रेट के अपचयन हेतु मॉलिब्डेनम विमुक्त एंजाइम की क्रियाशीलता में ह्रास हो जाता है। इस क्रिया में स्थानांतरित होने वाले इलेक्ट्रॉन को निम्न प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है:

$TPNH_2R^-$ FAD e^- M<u>OV</u>
$e^-MO_3^-$
$DPNH^- \rightarrow FAD^2H_2 \rightarrow MOV$
DPNH + H^+ FAD ↗↓ अवकृत मालीब्डेनम +2H+ ↙ / NO_3^-
DPN ↙→ FADM आक्सीकृत मालब्डिनम ↙ ↳NO2– + H_2O
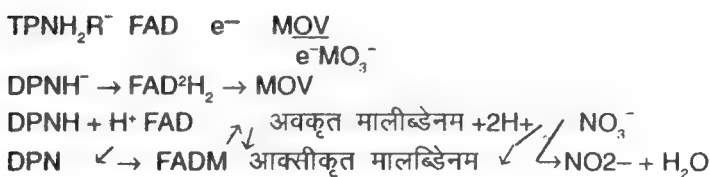
नाइट्रेट रिडक्टेज के अलावा मॉलिब्डेनम तीन अन्य एंजाइम नाइट्रोजनेज, जैथीन आक्सीडेज और एल्डीहाइड आक्सीडेज का संघटक है। नाइट्रोजनेज अमोनिया के रूप में नाइट्रोजन यौगिकीकरण में आवश्यक पाया गया है।

कमी के लक्षण

पौधों में इसकी कमी के लक्षण इस प्रकार हैं:

1. कमी के लक्षण पुरानी पत्तियों से प्रारंभ होकर अग्र सिरे की ओर बढ़ते हैं। शिराओं के मध्य भाग में चमकीले, पीले, हरे अथवा पीले नारंगी रंग के धब्बे दिखायी देते हैं। पत्तियों के किनारे झुलस जाते हैं और पत्तियाँ मुड़ कर प्याले के आकार की हो जाती है।

2. दलहनी फसलों में कमी के लक्षण प्रारंभिक अवस्था में नाइट्रोजन की कमी के लक्षणों से मिलते–जुलते हैं। मोलिब्डेनम की कमी से उपस्थित नाइट्रेट का उपापचय न होने से नाइट्रोजन की कमी का हो जाना स्वाभाविक है।

न्यूनता रोग

व्हिपटेल (Whiptail of brassica) सरसों कुल के पौधों में मालिब्डेनम की कमी से होने वाले रोग को व्हिपटेल के नाम से जाना जाता है। रोग के लक्षण मध्य शिरा के पास अर्द्ध पारदर्शक अंडाकार धब्बों के रूप में जो बाद में सफेद होकर मर से जाते हैं, दिखायी पड़ते हैं। पत्तियों का किनारा टेढ़ा–मेढ़ा होकर ऊपर की ओर मुड़–तुड़ जाता है। व्हिपटेल की स्थिति पैदा होने के प्रारंभ में पत्तियाँ आकार में लंबी हो जाती हैं। पत्रपटल संकुचित हो जाता है और बाद में वर्धनशील अंग का क्षय हो जाता है।

दलहनी फसलों का झुलसा रोग

पत्तियों का पीला पड़ना, मुरझा जाना, किनारों पर से मुड़ना और झुलस जाना इस तत्व के अभाव के लक्षण हैं।

विषालुता

चारे में मालिब्डेनम की सांद्रता 5 अंश प्रति दशलक्षांश से अधिक होने पर पशुओं के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। आमतौर पर क्षारीय या उदासीन मिट्टियों में मालिब्डेनम की अपेक्षाकृत अधिक उपलब्धता होने के कारण विषालुता रहने की संभावना रहती है। विषालुता वाले चारे को खाने से पशुओं में होने वाले रोग को मालिब्डेनोसिस (Molybdenosis) के नाम से पुकारते हैं।

भारत में मालिब्डेनम के प्रयोग का फसलोत्पादन में महत्व

सूक्ष्म पोषक तत्वों की समन्वित योजनान्तर्गत फसलों में मालिब्डेनम की अनुक्रिया से सबंधित क्षेत्र परीक्षण बहुत कम हुए हैं। अन्य अध्ययनों से पता चला है कि सरसों कुल की फसलों खासकर फूलगोभी और पातगोभी की मालिब्डेनम आवश्यकता अधिक होती है। यही बात दलहनी फसलों के लिए भी लागू होती है क्योंकि मालिब्डेनम का नाइट्रोजन स्थिरीकरण में विशेष महत्व होता है। लूसर्न भी इस तत्व के उपयोग से विशेष लाभान्वित होती पायी गयी। साधारणतया एक बीजपत्री फसलें मालिब्डेनम की कमी के प्रति द्विबीजपत्री की तुलना में सहिष्णु सिद्ध होती हैं।

बरसीम, आलू, दलहनी फसलों, मूंगफली, सूरजमुखी, धान और मक्का की उपज में मालिब्डेनम के प्रयोग से सार्थक वृद्धि हुई है। खडगपुर में धान–गेहूँ

फसल चक्र तथा इन्दौर में ज्वार–गेहूँ फसल चक्र में गेहूँ की फसल में मालिब्डेनम का अवशिष्ट प्रभाव क्रमशः 8 क्विंटल और 6.1 क्विंटल प्रति हे. पाया गया।

मालिब्डेनम का नाइट्रोजन स्थिरीकरण तथा राइजोबियम की वृद्धि पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। बरसीम की फसल में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं की संख्या और मिट्टी में नाइट्रोजन स्थिरीकरण की मात्रा में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

तमिलनाडु से प्राप्त सूचना के अनुसार काली चिकनी मिट्टी में मालिब्डेनम के प्रयोग से उर्द और मूंगफली की उपज में क्रमशः 35 और 50 प्रतिशत वृद्धि हुई।

क्लोरीन

यह पौधों के लिये आवश्यक समझा जाने वाला सबसे नया पोषक तत्व है। जिसकी आवश्यकता की दृष्टि ब्रोयर एवं सहयोगियों ने 1954 में की।

मिट्टी की मात्रा

जल और वायु में क्लोरीन की प्रचुरता के कारण मिट्टियों में क्लोरीन पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। इसी कारण फसलोत्पादन में अभी तक क्लोरीन के अभाव का पता नहीं चला है। मिट्टी में इसकी मात्रा 100–500 मि.ग्रा. /कि.ग्रा. पायी गयी है। यह अनुमान लगाया गया है कि वर्षा जल से प्रतिवर्ष लगभग 5 कि.ग्रा. प्रति हे. की दर से क्लोरीन की पूर्ति हो जाती है। इसके अतिरिक्त अमोनियम क्लोराइड (69–70% क्लोरीन) पोटेशियम क्लोराइड (47.3% क्लोरीन), वाहित जल, खाद और पौधों के अवशिष्टों से क्लोरीन की पूर्ति होती है जिसे पौधे सुगमतापूर्वक अवशोषित कर लेते हैं। क्लोरीन के स्रोतों को देखते हुए वैज्ञानिक इस बात की शंका करते हैं कि क्या कभी क्लोरीन की मिट्टी में कमी हो सकती है।

उपलब्धता को प्रभावित करने वाले कारक

यह अति घुलनशील तत्व है। अतः निक्षालन द्वारा हानि होती है। मिट्टी में इसकी उपलब्धता अधिक होती है, इसलिए पौधे इसका उपयोग कुशलतापूर्वक प्रचुर मात्रा में करते हैं। पीएच. में वृद्धि से इसकी उपलब्धि कम

हो जाती है। ऐसी दशा में हाइड्राक्सिल आयन की अधिकता के कारण अधिशोषित क्लोराइड मृदा–विलयन में आ जाता है।

पौधों के पोषण में महत्व

पौधों में इसके कार्य इस प्रकार हैं:

सर्वप्रथम ब्रोयर (1954) ने टमाटर के पौधों पर किये गये प्रयोग के आधार पर क्लोरीन की अनिवार्यता का ज्ञान कराया। पौधों में क्लोरीन के कार्य की विस्तृत सही जानकारी नहीं है, फिर भी यह ज्ञात है कि क्लोरीन प्रकाश संश्लेषण के द्वारा ऑक्सीजन विर्सजन की क्रिया में सहायक होता है (बोब और सहयोगी, 1963)। ऐसा अनुमान है कि क्लोरीन के अभाव में पत्तियों के मुरझाने के लक्षण दिखाई देते हैं। ऐसा उस्वेदन क्रिया में गढ़बड़ी पैदा होने के कारण हो सकता है। कुछ अध्ययनों में क्लोरीन की कमी से प्रभावित पौधों में स्वतंत्र एमीनो अम्ल की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक पायी गयी फिर भी अभी तक एमीनो अम्ल के संश्लेषण में इस तत्व की भूमिका की सही जानकारी नहीं हो पायी है।

कमी के लक्षण

पौधों में इसकी कमी के लक्षण इस प्रकार हैं:

यद्यपि अधिकांश परिस्थितियों में क्लोरीन की कमी नहीं देखी गयी, फिर भी विलयन संबर्द्ध में उगाए गये टमाटर के पौधे में क्लोरीन के अभाव के लक्षण बताए गये। ऐसी दशा में नई पत्तियाँ नीली–हरी तथा चमकीली दिखाई पड़ने लगीं। साधारणतया दिन की गर्मी में पत्तियों का अग्र भाग मुरझाकर झुक जाता है और रात में ठंड पाकर इनकी दशा में पुनः सुधार हो जाता है। धीरे–धीरे पत्तियों पर भूरे धब्बे दृष्टिगोचर होने लगते हैं और पत्तियाँ हरिमाहीन होकर मर–सी जाती हैं। उग्र कमी की स्थिति में पौधे तकुआकार और बौने हो जाते हैं। अन्य पोषक तत्वों की भाँति क्लोरीन के अभाव के लक्षणों में भी फसल विशेष के अनुसार भिन्नता पायी जाती है। पात गोभी की पत्तियों का मुड़ना, बंद गोभी में गंध का अभाव होना, बरसीम की पत्तियों का मोटा तथा छोटा हो जाना और पत्तियों का किनारा कटा–पिटा होना, जौ की नई पत्तियों में हरिमाहीनता का उत्पन्न होना, मक्का की पत्तियों का सूख जाना आदि क्लोरीन के लक्षण बताये गये हैं।

विषालुता

क्लोरीन की विषालुता के कारण पत्तियाँ आकार में छोटी हो जाती हैं और वृद्धि कम होती है। कुछ पौधों की पत्तियों के किनारे व नोंक झुलसे हुए दिखाई देते हैं। नींबू कुल व अंगूर के पौधों में 'क्लोराइड जलन' नामक बीमारी हो जाती है।

पौधों में क्लोराइड की आवश्यकता और इसकी अनुक्रिया

साधारणतः चार टन शुष्क पदार्थ पैदा करने के लिए एक कि.ग्रा. क्लोरीन की आवश्यकता पड़ती है। जौ, रिजका, टमाटर, पात गोभी, चुकंदर, गाजर तथा कपास में इसकी अनुक्रिया देखी गई।

क्लोराइड की अधिकता का तंबाकू तथा आलू के उत्पाद की गुणवत्ता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। दोनों ही फसलों की पत्तियाँ मोटी होकर मुड़ने लगती हैं। आलू की भंडारण गुणवत्ता तथा तंबाकू की धूम्रपान गुणता कम हो जाती है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी का उपचार

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी का उपचार सूक्ष्म पोषक तत्वों वाले विशिष्ट उर्वरकों के प्रयोग द्वारा किया जाता है। जैसा कि सारणी 8.24 और 8.25 में किया गया है।

सारणी-8.24 सूक्ष्म पोषक तत्वों वाले सामान्य उर्वरक

तत्व	उर्वरक	प्रतिशत (लगभग)
बोरान	बोरैक्स	11
ताँबा	कॉपर सल्फेट	25
लोहा	फेरस सल्फेट	19
मैंगनीज	मैंगनीज सल्फेट	26–29
मालिब्डेनम	सोडियम मालिब्डेनम	39
	अमोनियम मालिब्डेट	54
जस्ता	जिंक सल्फेट हेप्टाहाइड्रेट	21
	जिंक ऑक्साइड	78

सारणी-8.25 सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए उर्वरक सामग्री की आवश्यक मात्रा

उर्वरक सामग्री	मात्रा
जिंक सल्फेट	सामान्य भूमि में 15–25 कि.ग्रा./हे. और ऊसर भूमि में 50 कि.ग्रा./हे. विशेषकर धान के फसल चक्र में बाद में हाने वाली फसलें भूमि में अवशेष जिंक से लाभान्वित होती हैं। एक बार इस्तेमाल की गयी जिंक की मात्रा 2 फसल चक्र के लिये पर्याप्त होती है।
फेरस सल्फेट	50 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर
मैंगनीज सल्फेट	20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर
कॉपर सल्फेट	15 से 20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर
बोरेक्स	5 से 10 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर
सोडियम मालिब्डेट	1–2 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर

सारणी-8.26 प्रयुक्त सूक्ष्म तत्वों के वाहकों के पर्णीय छिड़काव की दर

वाहक	प्रयुक्त दर
जिंक सल्फेट	एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिए 5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट और 2.5 कि.ग्रा. बुझा चूना 1000 लीटर पानी में घोलकर दो–तीन छिड़काव करना चाहिये।
फेरस सल्फेट	एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिये 10 कि.ग्रा. फेरस सल्फेट को 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
मैंगनीज सल्फेट	एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिये 5 कि.ग्रा. मैंगनीज सल्फेट को 1000 लीटर पानी में घोलकर छिडकाव करें।
कॉपर सल्फेट	एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिये 2 कि.ग्रा. कॉपर सल्फेट को 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
बोरेक्स	एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिये 1 कि.ग्रा. बोरेक्स को 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
सोडियम मालिब्डेट	एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिये 100 ग्रा. सोडियम मालिब्डेट को 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

नोट: फसल की कल्ले निकलने की अवस्था। घुटने की ऊंचाई की अवस्था में पर्णीय छिड़काव प्रारंभ करना चाहिये। नियंत्रण के लिए साप्ताहिक अंतराल पर 2–3 छिड़काव आवश्यक होता है।

संदर्भ-साहित्य

Brar, M.S. and Sekhon, G.S. (1976). J. Indian Soil Sci. 22, 383.

Gulati, K.L., Goswami, S.C. and Nag Paul, K.K. (1979). Pl. Soil, 52 345.

Hodgson, J.F. (1963). Advances in Agronomy, Vol. 15.

Jadhav, N.S., Malewar, G.U. and Varade, S.B. (1978). Iron status of orchard soils of Marathwada Res. Bull Marathwada agri. Uni. Parbhani.

Kanwar, J.S. and Randhawa, N.S. (1974). Micronutrient Research in Soils and Plants in India. A Review ICAR Tech. Bull. (Agric.) No. 50.

Kapur, M.L. and Dev, G. (1977). J. Res. Punjab Agric. Univ., 14, 140.

Katyal, J.C. and Sharma, B.D. (1980). Pl. Soil, 55, 105.

Lal, B.M., Sahu, D. and Das, N.B. (1959). Curr. Sci. 19, 280.

Lal, C. (1968). M.Sc. Thesis, Punjab Agric. Univ., Ludhiana.

Lal, F. and Biswas, T.D. (1973). J. Indian Soc Soil Sci. 21, 455.

Misra, B. and Tripathi, B.R. (1972). J. Indian Soc. Soil Sci. 20, 249.

Misra, S.G. and Misra, K.C. (1972). J. Indian Soc. Soil Sci. 20, 250–262.

Misra, S.G. and Misra, K.C. (1973). J. Indian Soc. Soil Sci. 20, 259.

Mitchell, R.L. (1963). Jr. Agric. Sco., 124, 75–86.

Mulder, E.G. (1948). Pl. & Soil. 1, 94.

Nayyar, V.K., Pasricha, N.S. and Randhawa, N.S. (1978). Indian Fmg. 28, 13.

Panda, S.N. (1969). Indian J. Agron. 14, 205.

Ranadiva, S.J., Naik, M.S. and Das, N.B. (1964). J. Indian Soc. Soil Sci. 12, 243.

Randhawa, N.S., Kanwar, J.S. and Nijhawan, S.D. (1961). Soil Sci. 92: 106–112.

Randhawa, N.S., Takkar, P.N. and Venkataraman, C.S. (1974). Zinc in crop nutrition, published jointly by International Zinc Research Organisation and Zinc Institute, New York and Indian Lead Zinc Information Centre, New Delhi p. 58.

Sharma, R.B. and Motiramani, D.P. (1969). J. Indian Soc. Soil Sci. 17, 19.

Sharma, R.G. and Shukla, U.C. (1972). Indian J. Agric. Res. 6, 285.

Shukla, U.C. and Singh, R. (1973). J. Indian Soc. Soil Sci., 21, 35.

Singh, B. and Randhawa, N.S. (1977). J. Indian Soc. Soil Sci. 25, 47.

Singh, D., Leelawathi, C.R., Krishnan, K.S. and Sarup, S. (1979). Monograph on Crop Responses to micronutrients. Indian Agric. Statistics Res. Inst. (ICAR), New Delhi.

Singh, R., Singh, M.V. and Pant, P.C. (1977). Indian J. Agric. Chem, 10, 35.

Singh, S. and Jain, R.K. (1971). Indian J. Agric. Res., 5, 271.

Subba Rao, I.V. (1971). Ph.D. Thesis, Indian Agric. Res. Inst., New Delhi.

Takkar, P.N. (1978). Land and water management in the Indus Basin (India) Vol. 1, Natn. Symp. pp. 348.

Takkar, P.N. Chhibba, I.M. Mehta, S.K. (1989). Twenty years of Coordinated Research on Micronutrients in Soils and Plants.

Takkar, P.N. and Nayyar, V.K. (1986). Proc. FAI Seminar on "Growth and Modernization of Fertilzier Industry" held at New Delhi, Dec. 15–17 ps 111 2-1-16.

Takkar, P.N. and Randhawa, N.S. (1978). Fert. News 23(8), 3.

Talati, N.R. and Aggarwal, S.K. (1974). J. Indian Soc. Soil Sci. 22, 262.

Tiwari, N.R. and Aggarwal, S.K. (1974). J. Indian Soc. Soil Sci. 22, 262.

Tiwari, K.N. (1986). Final Report of the ad-hoc scheme on changing micronutrient pattern of major intensive agricultural regions of Uttar Pradesh. Dept. Soils and Agril. Chem. CSAUAT, Kanpur.

Tiwari, K.N. (1990). In Soil Fertility and Fertilizewr Use, IFFCO, New Delhi.

Tiwari, K.N. and Pathak, A.N. (1976 a). Fert. News 21(8), 39–42.

Tiwari, K.N. and Pathak, A.N. (1982). Exp. Agric. 18, 393–398.

Viets, F.G. (Jr.) (1962). J. Agric. Fd. Chem, 10, 174–178.

Venkateswarlu, J. and Subba Rao, I.V. (1973). Paper presented at the Joint India/FAO/Norway Seminar on Micronutrients in Agriculture, New Delhi, 17–21 Sept.

अध्याय-9

अन्य सूक्ष्म मात्रिक तत्व

पौधों के लिये आवश्यक सोलह पोषक तत्वों के अतिरिक्त कुछ अन्य सूक्ष्म मात्रिक तत्व जैसे सिलेनियम, फ्लोरीन, कोबाल्ट, निकिल, आयोडीन, लीथियम, सोडियम, बेनेडियम आदि हैं जो पौधे की वृद्धि के लिए आवश्यक न होते हुए भी ये या तो पौधों के लिए लाभदायक होते हैं, या जिधर विषाक्त तत्व सूक्ष्म तत्वों से भी कम मात्रा में पौधों और पशुओं के लिये आवश्यक हैं। यद्यपि सोडियम भू–पपड़ी में बहुतायत में पाया जाता है तथापि अन्य तत्वों की तुलना में यह पौधों की वृद्धि को उतना प्रभावित नहीं करता है। इसलिए पादप पोषण में इसका बहुत महत्व नहीं है अन्य सूक्ष्म मात्रिक तत्व विषाक्त होने के बावजूद मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों को प्रभावित करते हैं। साथ ही साथ सिंचाई जल एवं पीने के पानी की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। इनका वर्णन यहाँ पर किया जा रहा है।

सेलेनियम

आल्लावे एवं कैरी (1966) के अनुसार पशुओं के चारे में बहुत थोड़ी मात्रा में सेलेनियम का पाया जाना आवश्यक होता है। उल्लेखनीय है कि चारे वाली फसलों में सेलेनियम की सांद्रता 5 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से अधिक लेने पर ऐसा चारा पशुओं के लिए विषाक्त हो जाता है। इसके विरीत 0.1 मि. ग्रा./कि.ग्रा. से कम मात्रा होने पर पशुओं में सेलेनियम की कमी हो जाती है। अतः भोजन तथा चारों में सेलेनियम की मात्रा 0.1 से 1 मि.ग्रा./कि.ग्रा. के बीच होनी चाहिए। सेलेनियम की 5 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से अधिक मात्रा पशुओं में क्षारीय रोग (Alkaline disease) उत्पन्न करती हैं।

मिट्टियों में वितरण

भू–पपड़ी में सेलेनियम की औसत मात्रा लगभग 0.8 मि.ग्रा./कि.ग्रा. होती है जो कि मुख्यतः सल्फाइड चट्टानों में अशुद्धता के रूप में पायी जाती है। गुजरात की मिट्टियों में सेलेनियम की कुल मात्रा 0.142–0.678

मि.ग्रा./कि.ग्रा. और उपलब्ध मात्रा 0.051–0.121 मि.ग्रा./कि.ग्रा. पाई गई। यह मात्रा गहराई के बढ़ने के साथ कम होती गई (पटेल और मेहता, 1968)। इस अध्ययन में कुल सेलेनियम का मृत्तिका, उपलब्ध सेलेनियम तथा पीएच. के साथ धनात्मक सह–संबंध पाया गया। मिश्रा और त्रिपाठी (1971) के अनुसार उत्तर प्रदेश की लाल एवं काली मिट्टियों में कुल सेलेनियम क्रमशः 0.549 और 0.35 मि.ग्रा./कि.ग्रा. पाया गया। जल विलेय सेलेनियम की मात्रा काली मिट्टियों में अधिक (0.039 मि.ग्रा./कि.ग्रा.) थी। जल विलेय सेलेनियम की सबसे कम मात्रा (0.029 मि.ग्रा./कि.ग्रा.) क्षारीय मिट्टियों में पायी गयी, जलोढ़–चुनही एवं लाल मिट्टियों में जल विलेय सेलेनियम की मात्रा 0.029 से 0.039 मि.ग्रा./कि.ग्रा. के मध्य पाई गयी। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों की मिट्टियों में मध्य प्रदेश की मिट्टियों की अपेक्षा जल विलेय सेलेनियम की मात्रा अधिक थी। मृदा में कार्बनिक–कार्बन की मात्रा तथा सेलेनियम के दोनों रूपों में धनात्मक संबंध पाया गया जबकि कुल सेलेनियम एवं पीएच. के मध्य ऋणात्मक संबंध पाया गया। हरियाणा की मिट्टियों में सेलेनियम की मात्रा दूसरे संस्तर (15–30 से.मी.) में सबसे अधिक पायी गयी। अपेक्षाकृत अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में निक्षालन के कारण सेलेनियम की मात्रा मिट्टी की गहराई के साथ बढ़ते क्रम में पायी गयी। मिट्टियों में कैल्सियम कार्बोनेट और मृत्तिका की मात्रा का इनके कुल सेलेनियम के साथ धनात्मक सह–संबंध पाया गया। हरियाणा की मिट्टियों में उपलब्ध सेलेनियम 0.05–0.62 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक पायी गयी जो कि अन्य मिट्टियों की तुलना में अधिक है। कुछ क्षेत्रों में सेलेनियम की मात्रा ऊपरी सतह में सर्वाधिक पायी गयी। सामान्य मिट्टियों की तुलना में पास की लवणीय मिट्टियों में कुल तथा जल विलेय सेलेनियम की मात्रा अधिक पायी गयी।

मिट्टियों में अभिग्रहण एवं उपलब्धि

मिट्टियों के भौतिक–रासायनिक गुणों का सेलेनियम–अभिग्रहण पर प्रभाव पड़ता है। अध्ययनों से पता चला है कि लाल मिट्टियों, जिनमें सेस्क्वीऑक्साइड की मात्रा सबसे अधिक थी (15%), उनमें सेलेनियम अभिग्रहण सर्वाधिक मात्रा में हुआ इसके बाद काली मिट्टियों का स्थान था। इन मिट्टियों में अधिकांश अभिग्रहित सेलेनियम (Adsorbed selenium) के रूप में अवक्षेपित हो गया। अधिक चुनही मिट्टियों में जिनमें सेस्क्वीआक्साइड की मात्रा कम थी, उनमें सेलेनियम आक्साइड की अभिग्रहित मात्रा कम थी और अधिकांश अभिग्रहित सेलेनियम जल विलेय में मौजूद था त्रिपाठी एवं

मिश्र, 1975। सेलेनियम की मृदा विलयन में सांद्रता जीवांश पदार्थ, मृत्तिका, कैल्सियम कार्बोनेट और धनायन विनिमय क्षमता का सेलेनियम अभिग्रहण के साथ धनात्मक सह–संबंध पाया गया। इसके विपरीत मिट्टियों में लवण की मात्रा, क्षारीयता और पीएच. के साथ ऋणात्मक सह–संबंध पाया गया। अतः स्पष्ट है कि जैव कार्बन–प्रधान मिट्टियों में सेलेनियम अभिग्रहण अधिक होता है, इसके बाद क्रमशः चुनहीं, सामान्य लवणीय और क्षारीय मिट्टियों का अभिग्रहण की दृष्टि से स्थान होता है। सेलेनियम की उपलब्धता बढ़ाने में सल्फेट की तुलना में फास्फेट विशेष प्रभावी पाया गया। ये दोनों ही ऋणायन सेलेनियम अभिग्रहण घटाने में सहायक सिद्ध हुये हैं।

पादप-वृद्धि में सेलेनियम

हरे चारे वाले पौधों, जैसे बरसीम, अल्फा–अल्फा, ज्वार, नैपियर घास और गिनी घास, अनाज वाली फसलों जैसे – रागी और गेहूँ के भूसों, मेड़ की घासों जैसे अंजर, बरमूदा और नट घास में सेलेनियम की मात्रा 0.20–0.87 मि.ग्रा./कि.ग्रा. पायी गयी। बरमूदा घास में सेलेनियम की मात्रा सबसे कम और अल्फा–अल्फा एवं बरसीम में सबसे अधिक पायी गयी। पंजाब में चारे एवं घासों में सेलेनियम की मात्रा गुजरात की तुलना में अधिक पायी गयी। त्रिपाठी एवं मिश्रा (1971) के अनुसार मटर और गेहूँ की तुलना में सरसों में सेलेनियम की मात्रा अधिक पायी गयी। आमतौर पर सेलेनियम के प्रयोग से पौधों में सेलेनियम की मात्रा बढ़ी और इसका उपज पर प्रतिकूल प्रभाव देखा गया (सिंह एवं सिंह, 1978)। गंधक के प्रयोग से सेलेनियम की विषालुता कम हो जाती है।

पौधों में उपापचय और पोषक तत्वों का अवशोषण

सेलेनियम का गंधकधारी अमीनो अम्लों के संश्लेषण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, क्योंकि इनकी संरचना में उपस्थित गंधक का स्थान सेलेनियम ले लेता है। इससे क्रूड प्रोटीन की मात्रा घट जाती है। पौधों में सेलेनियम की विषुलता का प्रभाव पर्णहरित आर.एन.ए., डी.एन.ए., प्रोटीन और प्रोलीन के संश्लेषण में कमी और स्वतंत्र अमीनो अम्लों की अधिकता से संबंधित होता है। सेलेनियम का पौधों में गंधक की आपूर्ति का कुप्रभाव पड़ने से सरसों में तेल की मात्रा और एमाइल–आइसोथायोसाइनेट घट जाता है। सिंह और सिंह (1980) के अध्ययनों से सेलेनियम और गंधक की प्रतिकूल अन्तर्क्रिया की पुष्टि हुयी है।

3261 HRD/2000—27

सेलेनियम विषालुता का उपचार

गंधक के प्रयोग से सेलेनियम की विषालुता कम हो जाती है। किसी भी सल्फेट लवण के प्रयोग से सेलेनियम की विषालुता कम होने का संकेत मिलता है। गेहूँ, बरसीम और सरसों में फास्फोरस के प्रयोग से सेलेनियम की विषालुता में कमी आने का प्रमाण मिला है। सिंह एवं सिंह (1979)। पौधों में नाइट्रोजन, फास्फोरस, गंधक और सूक्ष्म पोषक तत्वों का अधिक मात्रा में अवशोषण होने तथा प्रोटीन, पर्णहरित, न्यूक्लिक अम्ल और गंधकधारी अमीनो अम्लों के अधिक निर्माण के फलस्वरूप सेलेनियम की विषुलता कम हो जाती है।

फ्लोरीन

यद्यपि फ्लोरीन पौधों के लिये आवश्यक नहीं है किन्तु पशुओं के लिये यह आवश्यक माना गया है।

मिट्टियों में वितरण

फ्लोरीन चट्टानों एवं मिट्टियों में बहुतायत में पाया जाता है। पंजाब और हरियाणा की मिट्टियों में इसकी कुल मात्रा 2.5 से 85.0 मि.ग्रा./कि. ग्रा. पायी गयी है जबकि जल विलेय मात्रा 0.13 से 14.5 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक थी। कुछ जिप्सम उपचारित मिट्टियों में जल विलेय फ्लोरीन की मात्रा 6.0 से 19.2 मि.ग्रा./कि.ग्रा. (औसत 11.0 मि.ग्रा./कि.ग्रा.) तक पायी गयी है।

जल में वितरण

हरियाणा और पंजाब के भू–जल में फ्लोरीन की मात्रा 0.1 से 13.6 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक पायी गयी। हिसार के सभी नमूनों तथा संगरूर के 91 प्रतिशत नमूनों में 1.0 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से अधिक फ्लोरीन पाया गया जो कि पशुओं और मनुष्यों के लिये हानिकारक है। राजस्थान, दिल्ली और आंध्र प्रदेश में फ्लोरीन की मात्रा क्रमशः 1.5 से 28.1 मि.ग्रा./कि.ग्रा., 0.4 से 4.0 मि.ग्रा. /कि.ग्रा. और 0.1 से 6.0 मि.ग्रा./कि.ग्रा. रिपोर्ट की गयी है। राजस्थान के भीलवाणा, नागौड़ और जयपुर जिलों के अधिकांश पानी में फ्लोरीन की मात्रा हानिकारक सीमा से अधिक पायी गयी। भू–गर्भ जल की गहराई, विद्युत संचालकता, बोरान और सोडियम की मात्रा का कुओं के पानी में फ्लोरीन की मात्रा के साथ धनात्मक सह–संबंध पाया गया।

मिट्टियों में व्यवहार

मिट्टी में विनिमेय सोडियम की मात्रा तथा पीएच. के साथ फ्लोरीन की उपलब्धता का धनात्मक सह–संबंध पाया गया।

पौधों की वृद्धि पर प्रभाव

अधिक फ्लोरीन की बीजों के अंकुरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। परीक्षणों से पता चलता है कि एक मि.ग्रा./कि.ग्रा. की दर से फ्लोरीन का प्रयोग करने पर गेहूँ, जौ और राया की उपज में वृद्धि हुई किन्तु फ्लोरीन की अधिक मात्रा का उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

क्षारीय भूमि में फ्लोरीन के प्रयोग से पौधों में फ्लोरीन की मात्रा में सामान्य भूमि की तुलना में काफी अधिक वृद्धि देखी जाती है।

फ्लोरीन की विषालुता का उपचार

फास्फोरस के प्रयोग से फ्लोरीन की विषालुता में सुधार होता है।

कोबाल्ट

पशुओं के लिये कोबाल्ट आवश्यक माना गया है किन्तु अभी यह निश्चित करना है कि सभी फसलें इसकी कमी के प्रति संवेदनशील हैं या नहीं?

कुल मात्रा

भारतीय मिट्टियों में कोबाल्ट की मात्रा 8.0 से 47.0 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक पायी गयी है। इसकी उच्चतम मात्रा काली मिट्टियों में और न्यूनतम मात्रा मोहाने की जलोढ़ मिट्टियों में पायी गयी है। पंजाब की मिट्टियों में कोबाल्ट की मात्रा 4.4 से 32.5 मि.ग्रा./कि.ग्रा., दिल्ली की मिट्टियों में 3.7–12.1 मि.ग्रा./कि.ग्रा., गुजराज की मिट्टियों में 12.4 से 47.9 मि.ग्रा./कि.ग्रा., उत्तर प्रदेश की कृषिगत क्षारीय मिट्टियों और नजदीक की सामान्य मिट्टियों में क्रमशः 14.1 और 13.8 मि.ग्रा./कि.ग्रा. पायी गयी। गुजरात की काली कपासी मिट्टियों में यह मात्रा 7.0 से 141.5 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक पायी गयी।

उपलब्ध मात्रा

गुजरात की मिट्टियों में एसिटिक अम्ल द्वारा निष्कर्षित उपलब्ध कोबाल्ट की मात्रा 0 से 1.2 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक पायी गयी। कोबाल्ट की

क्रांतिक सीमा 0.5 मि.ग्रा./कि.ग्रा. मान लेने पर इन मिट्टियों में कोबाल्ट की उपलब्धि पर्याप्त मानी गयी। बाद की खोजों से पाता चला है कि गुजरात की 30 प्रतिशत मिट्टियों में चराई वाले जानवरों के लिये यह मात्रा कम पायी गयी। इस अध्ययन में उपलब्ध कोबाल्ट की मात्रा 3.0 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से कम होने पर इसकी उपलब्धता कम, 3.0 से 5.0 तक मध्यम और 5.0 मि.ग्रा./कि ग्रा. से अधिक होने पर उच्च बताई गयी है। उत्तर प्रदेश की क्षारीय और नजदीक की सामान्य मिट्टियों में यह मात्रा क्रमशः 0.24 और 0.22 मि.ग्रा. /कि.ग्रा. थी। हरियाणा की 25 प्रतिशत मिट्टियों में कोबाल्ट की कमी पायी गयी। 29 प्रतिशत मिट्टियों में कमी का स्तर मध्यम, और शेष में अधिक था।

मिट्टियों में कोबाल्ट की मात्रा को प्रभावित करने वाले कारक

पीएच., कार्बनिक पदार्थ, मृत्तिका, आक्सीकरण–अवकरण तथा ऋतु यह विभिन्न कारक हैं जिनसे मिट्टियों में कोबाल्ट की उपलब्धता प्रभावित होती है।

जीवांश पदार्थ और कोबाल्ट में कोई निश्चित सह–संबंध नहीं पाया गया। कुछ शोधकर्ताओं ने इन दोनों कारकों में धनात्मक तथा अन्य ने ऋणात्मक सह–संबंध पाया।

यादव इत्यादि (1975) ने उपलब्ध कोबाल्ट और पीएच. के साथ ऋणात्मक सह–संबंध रिपोर्ट किया है।

हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश की मिट्टियों में बारीक कणों का कुल एवं उपलब्ध कोबाल्ट की मात्रा के साथ धनात्मक सह–संबंध पाया गया।

फसलों की कोबाल्ट के प्रति अनुक्रिया

पश्चिमी भारत में चारे वाले पौधों में कोबाल्ट की मात्रा 0.2 से 1.0 मि ग्रा./कि.ग्रा., दलहनी फसलों में 0.4 से 1.6 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तथा घासों में औसत मात्रा 0.36 मि.ग्रा./कि.ग्रा. पायी गयी। हरियाणा में गेहूँ और बरसीम में यह मात्रा क्रमशः 0.18 से 0.19 और 1.25 से 3.90 मि.ग्रा./कि.ग्रा. पायी गयी। मालिब्डेनम के साथ कोबाल्ट का प्रयोग करने पर बरसीम की उपज में वृद्धि हुई। चूना और सुपर फास्फेट के प्रयोग से बरसीम और बाजरा द्वारा कोबाल्ट का अवशोषण अधिक मात्रा में हुआ। यादव इत्यादि (1980) के अनुसार 1.5 मि.ग्रा./कि.ग्रा. की दर से कोबाल्ट डालने पर फास्फोरस का सर्वाधिक अवशोषण हुआ।
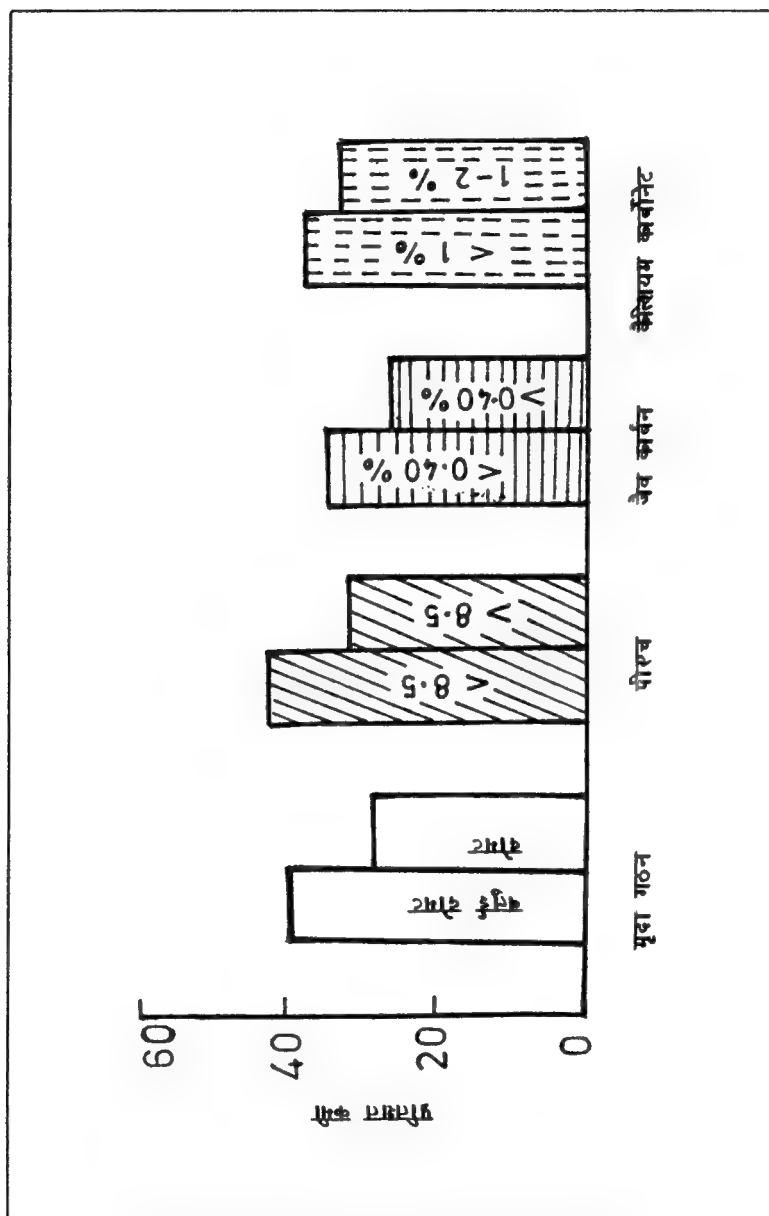
रेखाचित्र-9.1 मृदा गुणों के अनुसार कोबाल्ट की कमी

लीथियम

सिंचाई जल में विद्युत मात्रा में पाये जाने के कारण लीथियम का महत्व बढ़ रहा है। कैलीफोर्निया में 0.05 मि.ग्रा./कि.ग्रा. लीथियम वाले जल से सिंचाई करने पर नींबू में लीथियम की विषुलता सूचित है (ब्रेडफोर्ड, उत्तर प्रदेश 1963)।

उत्तर प्रदेश में ममुसी और उन्नाव जनपद के कुंओं के पानी में लीथियम की अधिक मात्रा पायी गयी है। हिसार के तोशन विकास खंड में 295 कुओं के जल में लीथियम की मात्रा 0.05 से 3.1 मि.ग्रा./कि.ग्रा. तक पायी गयी। केवल 3.4 प्रतिशत नमूनों में इसकी मात्रा 0.05 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से कम पायी गयी।

आयोडीन

यह पशुओं तथा मनुष्यों के लिये अनिवार्य तत्व है। पशुओं की थायराइड ग्रंथि में पाये जाने वाले थायरोसिन हारर्मोन का महत्वपूर्ण अवयव है जिसमें शुष्क आहार दर 1000 से 4000 मि.ग्रा./कि.ग्रा. आयोडीन रहता है। इसकी कमी से एक विशेष प्रकार का रोग 'कंठमाला' हो जाता है जिसमें थायराइड ग्रंथि फूल जाती है। स्टाउट और जानसन (1957) के अनुसार पशुओं के भोजन में 0.01 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से कम आयोडीन रहने पर कंठमाला उत्पन्न होता है। यह रोग पर्वतीय और तराई क्षेत्रों में अत्यधिक प्रचलित है।

अभी तक पौधों के लिये आयोडीन अनिवार्य सिद्ध नहीं हो पाया है। कुछ शोधकर्ताओं ने इसकी अत्यंत अल्प मात्रा के द्वारा (0.01 से 0.1 मि.ग्रा./कि.ग्रा.) वानस्पतिक वृद्धि देखी है परंतु इसकी उच्च सांद्रता पौधों के लिये विषालु बन जाती है। पशुओं में इसकी विषालुता नहीं पायी जाती।

मिट्टियों में वितरण

मिट्टियों में आयोडीन की औसत मात्रा 5 मि.ग्रा./कि.ग्रा. बतायी गयी है। जो प्रदेश समुद्र से जितना दूर होगा और जहाँ जितनी कम वर्षा होगी, वहाँ मिट्टियों में आयोडीन की मात्रा कम होती जायेगी। पीट, लिग्नाइट, कोयला आदि में आयोडीन की प्रचुर मात्रायें संचित रहती हैं। कांगडा जिले की मिट्टियों में कनवर (1964) ने आयोडीन की कमी बतायी। मिश्र तथा त्रिपाठी (1971) ने उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा बिहार की कई मिट्टियों में कुल आयोडीन की मात्रा 0.55 से 9.82 मि.ग्रा./कि.ग्रा. निकाली। सर्वाधिक

मात्रा काली मिट्टियों में और सबसे कम मात्रा भाट मिट्टियों में मिली। इनमें उपस्थित आयोडीन और कार्बन के मध्य धनात्मक तथा पीएच. और कैल्सियम कार्बोनेट के साथ ऋणात्मक सह–संबंध मिला। परिच्छेदिकाओं में आयोडीन की मात्रा गहराई से साथ घटी।

आयोडीन का अभिग्रहण

यह एक ऐसा तत्व है जो हाइड्राक्सिल आयनों से युक्त खनिजों में प्रतिस्थापित हो जाता है। फेरिक हाइड्राक्साइड के साथ भी इसकी अभिक्रिया होती है। मिट्टी के महीन कणों पर यह अधिशोषित होकर स्थिर हो जाता है। फास्फेट, फेरिक क्लोराइड तथा कम्पोस्ट की उपस्थिति में आयोडाइड का अभिग्रहण अधिक मात्रा में हुआ। कम पीएच. पर मिट्टियों द्वारा प्रचुर आयोडाइड अधिशोषण देखा गया। कैल्सियम कार्बोनेट की उपस्थिति में अभिग्रहण में वृद्धि होती है। कम्पोस्ट के द्वारा खनिज मिट्टी की तुलना में अधिक अभिग्रहण होता है। उत्तर प्रदेश की भाट मिट्टियों द्वारा आयोडीन का सर्वाधिक अधिशोषण किया गया।

उपलब्धि को प्रभावित करने वाले कारक

अम्लीय मिट्टियों में चूना डालने से पौधे कम मात्रा में आयोडीन अवशोषित करते हैं। नाइट्रोजन उर्वरक के प्रभावसे आयोडीन अवशोषण घटता है। फसल की किस्म का भी आयोडीन के अवशोषण पर प्रभाव पड़ता है। आलू, शलजम आदि की तुलना में दलहनी फसलें दो–तीन गुना अधिक आयोडीन ग्रहण करती है। सरसों द्वारा गेहूँ तथा मटर की अपेक्षा अधिक शोषण देखा गया। आयोडेट की अपेक्षा आयोडाइड डालने से पौधे आयोडीन का अधिक उपग्रहण करते हैं। आयोडीन उपलब्धि पर ऋतु का भी प्रभाव पड़ता है।

टाइटेनियम

उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश की काली, लाल, क्षारीय जलोढ़ तथा चुनही मिट्टियों में त्रिपाठी तथा मिश्र (1971) ने कुल टाइटेनियम की मात्रा (220–8228 मि.ग्रा./कि.ग्रा.) तक पायी। सर्वाधिक मात्रा काली मिट्टी में और सबसे कम चुनही मिट्टियों में मिली। लाल मिट्टी की प्रचेच्छदिकाओं में गहराई के साथ इसकी मात्रा बढ़ी किंतु अन्य मिट्टियों में घटी।

निकेल

मिश्र तथा पांडे (1972) ने उत्तर प्रदेश के 8 जिलों की जलोढ़ मिट्टियों में विनिमेय निकिल की मात्रा 0.1 से 0.32 मि.ग्रा./कि.ग्रा. रिपोर्ट की। सभी मिट्टियों में विनिमेय निकिल की मात्रा पर्याप्त पायी गयी।

सीसा

मिश्र तथा पांडे (1974) ने उत्तर प्रदेश की क्षारीय मिट्टियों में उपलब्ध शीशे की मात्रा का निश्चयन मृदा प्रदूषण ज्ञात करने के संदर्भ में किया।

संदर्भ साहित्य

Allaway, W.H. and Carry, C.E. (1966). Feed stuffs, Mineapolis 38, 61.

Bradford, G.R. (1963). Soil Sci. 97, 77.

Kanwar, J.S. (1964). J. Indian Soc. Soil Sci. 12, 223.

Mishra, S.G. and Tripathi, N. (1972). Anales del Institute Nacional de Investigaciones Agraries General No. 1, 209.

Mishra, S.G. and Pande, P. (1972). Vigyan Anusandhan Patrika 15, 193.

Singh, M. and Singh, N. (1978). Soil Sci. 126, 255.

Singh, M. and Singh, N. (1979). Soil Sci. 127, 264.

Singh and Singh (1980).

Stout, P.R. and Johnson, C.M. (1957). Year Book of Agriculture USDA-Soils.

Tripathi, N. and Mishra, S.G. (1975). J. Indian Soc. Soil Sci. 23, 103.

Yadav, D.V., Choudhary, M.L. and Khanna, S.S. (1975). Haryana Agric. Univ. J. Res. 5, 103.

Yadav, D.V., Khanna, S.S. and Chaudhary, M.L. (1980). J. Indian Soc. Soil Sci. 28, 460.

अध्याय-10

मृदा-उर्वरता अनुरक्षण में सूक्ष्म जीवों का महत्व

मिट्टी पौधों के उगने का माध्यम होने के साथ ही उनके पोषण के लिए आवश्यक तत्वों को प्रदान करने का महत्वपूर्ण साधन है। खनिज पदार्थ, जीवांश पदार्थ, जल और वायु मिट्टी के प्रमुख घटक हैं। मिट्टी एक सजीव एवं क्रियाशील माध्यम है, उसमें विविध प्रकारक के जीव–जंतु पाये जाते हैं। मिट्टी में सम्पन्न होने वाली विभिन्न सूक्ष्म जैविक क्रियाओं का मिट्टी की उर्वरा शक्ति पर लाभदायी प्रभाव पड़ता है। अतः मिट्टी की उर्वरा शक्ति रासायनिक संघटनों पर ही आधारित न होकर उसमें पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवों की संख्या और उनकी किस्म पर भी निर्भर करती है।

जीवाणु, किरण कवकानि, फफूंदी (कवकानि), शैवाल (काई), प्रोटोजोआ आदि मिट्टी में पाये जाने वाले प्रमुख सूक्ष्म जीव हैं। ये आकार में इतने छोटे होते हैं कि हम इन्हें किसी आवर्धन लेंस की मदद से ही देख सकते हैं। इनके अतिरिक्त मिट्टी में कुछ ऐसे भी जीव पाये जाते हैं जिन्हें हम आसानी से आँख से देख सकते हैं। इस श्रेणी के जीव हैं – केंचुआ, दीमक, चूहे और चीटियाँ। ये सभी जीव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मृदा–उर्वरता को प्रभावित करते हैं।

यह देखा गया है कि ये जीव मिट्टी के भौतिक तथा रासायनिक गुणों जैसे मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता, मृदा–तापमान, नमी, पीएच.–मान, ऑक्सीजन की उपलब्धता, लवण–सांद्रता आदि को प्रभावित करते हैं। इन मृदा कारकों का मृदा–सूक्ष्म जीवों की संख्या पर प्रभाव पड़ता है जिससे अंततः मिट्टी के अन्य गुण प्रभावित होते हैं। इनमें जीवांश पदार्थ का विघटन, ह्यूमस का निर्माण, पोषक तत्वों का रूपांतरण एवं पौधों को उनकी उपलब्धता, नाइट्रोजन यौगिकीकरण, हार्मोनों का उत्सर्जन, जीवांश पदार्थ के विघटन के फलस्वरूप अम्लों का उत्पादन और मृदा आदि विशेष उल्लेखनीय है।

मिट्टी के गुणों के अनुसार विभिन्न सूक्ष्म जीवों की संख्या और क्रियाशीलता मे अंतर पाया जाता है। ऊसर भूमि में किरण कवकानि व नाइट्रोसोमोनास की क्रियाशीलता यद्यपि आंशिक रूप में प्रभावित होती है परंतु नाइट्रोजन बंधक जीवाणु जैसे एजोटोबैक्टर व क्लास्ट्रीडिया क्रियाशील बने रहते हैं। फफूंदी क्षार के प्रति विशेष संवेदनशील होती है, अतः क्षारीय मिट्टियों में इनकी संख्या कम होती है। क्षारीय मिट्टियों में नील हरित शैवाल की वृद्धि ठीक से होती है। बाहुल्यता होने पर क्षारीय मृदाओं की गुणवत्ता में सुधार होता है और अंततः सामान्य मृदा में परिवर्तित हो जाती है।

मृदा में पाये जाने वाले विभिन्न सूक्ष्म जीवों का संक्षिप्त उल्लेख आगे किया जा रहा है।

जीवाणु (Bacteria)

मृदा में जीवाणुओं का प्रभुत्व विशेष रूप से देखा गया है। साथ ही पूरे जैव मात्रा में जीवाणुओं की मात्रा आधी होती है। जीवाणुओं की संख्या हर मृदा समूह में भिन्न–भिन्न हो सकती है परन्तु मृदा परिच्छेदिका में गहराईनुसार इनकी संख्या कम होती जाती है। जीवाणु आक्सीजन की अनुपस्थिति में भी क्रियाशील बने रहते हैं।

मिट्टी में जीवाणु–कोकाई (0.5 माइक्रॉन) या वैसिली (छड़ीकार–0.5 से 0.3 माइक्रॉन) या बेलन के आकार में पाये जाते हैं। वैसिली आकार के जीवाणु साधारणतया सभी प्रकार की मिट्टियों में पाये जाते हैं जबकि बेलनाकार जीवाणुओं की उपस्थिति कुछ ही मृदाओं में देखी गयी है। विनोग्रेडेस्की (1925) ने जीवाणुओं को दो भागों में बांटा है जो इस प्रकार हैः

(अ) आटोकोनस जीवाणु (Autochonous bacteria)

ये मिट्टी में पाये जाने वाले पैतृक जीवाणु होते हैं। इनका परिवर्तन सामान्यतया नहीं होता और मृदा में संपन्न होने वाली क्रियाओं में इनका बहुत कम योगदान होता हैं यह जीवाणु मृदा से ही अपने जीवन चक्र को पूरा करने के लिए तथा अपनी जीवन वृद्धि के लिए पोषक तत्व ग्रहण करते हैं। पोषक तत्वों का मुख्य स्रोत जीवांश पदार्थ होता है। इस श्रेणी में आने वाले जीवाणु हैं – आर्थ्रोबैक्टर व नोकार्डिया।

(ब) जाइमोजीनस जीवाणु (Zymogenous bacteria)

इस प्रकार के जीवाणु मृदा में विशेष सक्रिय रहते हैं। कार्बनिक या अकार्बनिक पदार्थ को प्रयोग करने से इनकी संख्या एवं क्रियाशीलता में वृद्धि होती हैं। कृत्रिम रूप से पोषक तत्वों की आपूर्ति न करने पर इनकी संख्या घट जाती है। इस श्रेणी में आने वाले जीवाणु हैं – स्यूडोमोनास व बैसिलसी है। इनके अतिरिक्त सेल्यूलोज के विघटन में भाग लेने वाले तथा नाइट्रोजन खनिजीकरण करने वाले जीवाणु भी इसी श्रेणी में आते हैं। वर्गीर्ज मैनुअल ऑफ डिटरमिनेटिंग बैक्टीरियोलॉजी के अनुसार जीवाणु को दस समूहों में वर्गीकृत किया गया है परंतु मृदा जीवाणुओं को केवल तीन समूहों में रखा गया है जो नीचे दिये जा रहे हैं:

समूह (Order)	कुल (Family)	प्रजाति (Genus)
1. स्यूडोमोनेडेल्स (Pseudomonadales)	स्यूडोमोनेडेसी (Pseudomonadaceae)	स्यूडोमोनास (Pseudomonas)
2 यूबैक्टरिएल्स (Eubacteriales)	1. राइजोवियेसी (Rhizobiaceae)	राइजोबियम, एग्रोबैक्टीरियम, (Rhizobium), (Agrobacterium) क्रोमोबैक्टीरियम (Chromobacterium),
	2. एक्रोमोबैक्टीरियेसी (Achromobacteriaceae)	एक्रोमोबैक्टर, फ्लैवोबैक्टिरियम (Achromobacterium), (Flavobacterium)
	3. माइक्रोकोकेसी (Micro-coccaceae)	माइक्रोकोकस, सरसीना, (Micrococcus), (Sarceena)
	4. कैरिनो बैक्टीरियेसी (Caryonobac teriaceae)	कैरिनोबैक्टीरियम, अर्थोबैक्टर (Carynobacterium), (Arthrobacter)
	5. वैसिलेसी (Bacillaseae)	वैसिलस, क्लास्ट्रीडियम (Bacillus), (Clastridium)
	6. एजोटोबैक्टीरियेसी (Azotobacteriaceae)	एजोटोबैक्टर (Azotobacter),
3 एक्टीनोमाइसिटेल्स (Actinomycetales)	माइकोबैक्टीरियेसी (Mycobacteriaceas)	माइक्रोबैक्टीरियम, माइकोकस (Microbacterium),

जीवाणुओं का वर्गीकरण कई प्रकार से किया गया है:

(अ) पोषण के आधार पर

1. स्वतः पोषी (Autotroph)
2. परिपोषी (Heterotroph)

(ब) ऑक्सीजन की आवश्यकता के आधार पर

1. वायुवीय (Aerobic)
2. अवायुवीय (Anaerobic)

(स) प्रकाश की उपस्थिति में क्रियाशीलता के आधार पर

1. प्रकाश संश्लेषी जीवाणु (Photo synthetic bacteria)
2. प्रकाश असंश्लेषी जीवाणु (Non-photo synthetic bacteria)

(द) तापीयता के आधार पर

1. लघु तापीय (Psychrophiles)
2. मध्य तापीय (Mesophilic)
3. अति तापीय (Thermophilic)

(य) जीवाणुओं द्वारा सम्पन्न होने वाली रासायनिक क्रियाओं के आधार पर

1. सेल्यूलोज विघटित करने वाले
2. गंधक ऑक्सीकृत करने वाले
3. नाइट्रोजन बंधन करने वाले
4. बायो गैस पैदा करने वाले

2. फफूंदी या कवकानि (Fungi)

मृदा सूक्ष्मजीवों में जीवाणुओं के बाद फफूंदी का विशेष स्थान है। ये फिलामेंटस माइसीलियम हाइफी के रूप में पाये जाते हैं। ये हाइफी एक, द्विव व बहुन्यूक्लीएट और नॉन सेप्टेट या सेप्टैट हुआ करते हैं जो बाहर से धागे के रूप में दिखाई देते हैं। फफूंदी का मृदा की उर्वरता बढ़ाने में मुख्य योगदान कार्बनिक पदार्थ विशेषकर सेल्यूलोज तथा लिगनिन के विघटन, ह्यूमस निर्माण तथा माइसीलियम संरचना के कारण जल स्थिर मृदा समूह में वृद्धि करके मृदा संरचना सुधारने में है।

मृदा में फफूंदी की संख्या को प्रभावित करने वाले कारकों में मुख्यतया जीवांश की मात्रा, नमी, तापक्रम, वातन, पीएच मान आदि हैं। वैसे फफूंदी अम्लीय पीएच. मान से लेकर क्षारीय पी.एच. मान तक अपना सवर्धन कर सकते हैं परन्तु अम्लीय मृदाओं में इनकी वृद्धि व संवर्धन सर्वाधिक होती है। ज्ञातव्य है कि अम्लीय मृदाओं में जीवाणु एवं किरण कवकनि की संख्या नगण्य होने के कारण पोषक तत्वों की अधिकांश मात्रा फफूंदी को उपलब्ध हो जाती है जिससे इनकी वृद्धि अधिक होती है।

बृहत स्तर पर इन फफूंदियों को फाइकोमाइसीज्स, एस्कोमाइसीट्स बेसिडियो माइसीट्स और फंजाई इम्परफेक्टाई में वर्गीकृत किया गया है परंतु मृदा में पाये जाने वाले फफूंदी को विशेष रूप से फंजाई इम्परफेक्टाई श्रेणी में ही रखा गया है क्योंकि ये एसेक्सुअल स्पोर्स का निर्माण ज्यादा करते हैं। इनकी पहचान सेप्टेट माइसीलियम और एक प्रकार की रचना जिसे कोनिडियोस्पोर की वृद्धि के आधार पर मानते हैं, करने में आसानी होती है।

फफूंदी की अन्य श्रेणियों में लिंगीय (Sexual) व अलिंगीय (Asexual) प्रजनन की गुणवत्ता पायी जाती है। फाइकोमाइसीट्स के सदस्य नानसेंप्टेट और एक कोषीय माइसिलियम के गुणों से संपन्न होने के नाते सेक्स से संतृप्त होते हैं जिसमें स्पोरेजिया के स्पोर्स होते हैं। एस्कोमाइसीट्स की विशेषता यह होती है कि उनमें एस्कस होते हैं जिसमें एक निश्चित मात्रा में एस्कोस्पोर्स (4–8) होते हैं। इनमें सेप्टेड माइसीलिया पाये जाते हैं जिनको पृथक करना कठिन होता है क्योंकि ये मृदा में माइसीलियम की दशा में पाये जाते हैं। इनकी मौजूदगी विशेष रूप से फलों के सड़ाव वाले स्थानों पर देखी जाती है। ये वेसिडियोमाइसीट्स भी अपनी वृद्धि हेतु सेल्यूलोज का उपयोग करते हैं।

मृदा में पायी जाने वाली फफूंदी का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है:

वर्ग (Class)	कुल (Family)	प्रजाति (Genus)
1. ड्यूटेरोमाइसीट्स (फंजाई–इम्फर–फेक्टाई) Deutero mycetes (Fungi-) imperfectii)	1. मोनोलिएसी (Monoleaceae)	एस्परजिलस, मेनोलिया, पेनीसीलियम ट्राइकोडर्मा
	2. डिमैटिएसी (Dematiaceae)	एल्टरनेरिया, क्लेडोस्पोरियम, पुलुलेरिया
	3. ट्यूबरकुलेरिएसी (Tuberculariaceae)	सिलिन्ड्रोकार्पोन, फ्यूजेरियम
2. फाइकोमाईसीटस	1. म्यूकोरेसी (Muccrraea)	म्यूकर, राइजोपस
	2. पेरीस्पोरेसी	पीथियम
3. एस्कोमाइसीटस	–	कीटोमियम
4. माइसीलिएस्टीरीबिया	–	राइजोक्टीनिया

3. किरण कवकानि

ये जीवाणु फफूंदी के समान ही होते हैं। फिर भी कुछ खास विशेषता के कारण इनकी पहचान आसनी से की जा सकती है। किरण कवकानि साधारण तौर पर जीवाणु से जुड़े हुए रहते हैं और स्काइजोमाइसीट्स की श्रेणी में क्रमबद्ध होते हैं। किंतु इनका गोत्र 'एक्टिनोमाइसिटेल्स' होता है।

यह एक कोशीय सूक्ष्म जीव होते हैं जो एक कोमल तथा शाखायुक्त माइसीलियम की रचना करते हैं। यह हवा में टूटकर अलैंगिक स्पोर्स की रचना करते हैं जो फफूंदी की माइसीलियम की तरह होते हैं किन्तु इनकी चौड़ाई अपेक्षाकृत बहुत ही कम (0.5 से 0.2 माइक्रॉन) होती है अर्थात् जीवाणु के आकार के समान होती है।

किरण कवकानि की वृद्धि को प्रभावित करने वाले मृदा कारकों में पीएच मान का विशेष प्रभाव पड़ता है। अध्ययनों से पता चला है कि 5 से कम पीएच मान पर यह निष्क्रिय हो जाता है। इसकी संतोषजनक वृद्धि के लिए 6 से

8 पीएच. मान विशेष उपयुक्त होता है। तापमान इसके लिए कोई विशेष महत्व नहीं रखता है। कुछ किरण कवकानि जैसे माइकोबैक्टीरियम और कोरिनेबैक्टीरियम आकारिकी व दैहिकी दृष्टि से वाइरस द्वारा अप्रभावी हुआ करते हैं। किरण कवकानि फफूंदी से आकारिकी दृष्टि से भिन्न हुआ करते हैं। इनमें काइटिन व सेल्यूलोज नहीं होता है। जैव पदार्थों की उपस्थिति में इनकी वंश वृद्धि होती है।

किरण कवकानि का अलग से कोई वर्गीकरण उल्लेखित नहीं है। इन्हें जीवाणुओं के साथ ही वर्गीकृत किया गया है। इस सूक्ष्म जीव को गोत्र एक्टिनोमाइसिटेल्स के अंतर्गत रखा गया है। मृदा–उर्वरता और उत्पादकता में योगदान देने के साथ ही किरण कवकानि एंटीबायोटिक पदार्थ भी पैदा करते हैं जिनका अन्य जीवाणुओं की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। साथ ही मिट्टी से जो एक प्रकार की गंध की अनुभूति होती है वह भी एक्टिनोमाइसीटीज की एक प्रजाति स्टेप्टोमाइसीज के कारण होती है। किरण कवकानि का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है:

गोत्र	कुल	प्रजाति
एक्टिनोमाइसिटेल्स	1. एक्टिनोमाइसिटेसी	एक्टिनोमाइसीज, नोकार्डिया
	2. स्ट्रेप्टोमॉइसीटेसी	स्ट्रेप्टोमाइसीटेसी स्ट्रेप्टोमाइसीज, माइक्रोमोनोस्पोरा, थर्मोएक्टिनोमाइसीज।
	3. एक्टिनोप्लानेसी	एक्टिनोप्लास, स्ट्रेप्टोस्पोरेजियम
	4. माइकोबैक्टिरियेसी	

किरण कवकानि मिट्टी में निम्न प्रक्रियाओं में विशेष रूप से सहयोग करते हैं।

1. जीवांश पदार्थों में पाये जाने वाले लिगनिन. व सेल्यूलोज जैसे अवयव जो बड़ी कठिनाई से विघटित होते हैं, को यह विघटित कराकर ह्यूमस के निर्माण में सहायता करता है।

2. विघटन की प्रारंभिक अवस्था में जिस समय तापमान अधिक हो जाया करता है उस समय किरण कवकानिकी कुछ विशेष प्रजातियाँ जैसे थर्मो एक्टिनोमाइसीज व स्ट्रेप्टोमाइसीज अपनी वंश वृद्धि कर विघटन प्रक्रिया को गति प्रदान करता है।

3. किरण कवकानि की कुछ प्रजातियाँ पौधों के जड़ीय भाग में विशेषकर आलू व शकरकंदी में रोग पैदा करते हैं।

4. इनकी कुछ प्रजातियाँ मृदा में एंटीबायोटिक पैदा करके मिट्टी के अंदर होने वाली अणु जीवीय वैमनस्यता में सक्रिय भाग लेते हैं।

4. शैवाल या अप्यका या काई

मिट्टी में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवों में शैवाल का महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी संख्या तथा भार अन्य सूक्ष्म जीवों की अपेक्षा कम होता है। शैवाल पोषक की दृष्टि से स्वतः प्रकाश पोषी होती है अर्थात् ऊर्जा के रूप में प्रकाश तथा कार्बन के रूप में कार्बन डाईआक्साइड का प्रयोग करती है। नमी की अधिकता तथा प्रकाश की उपलब्धता की दशा में इसकी समुचित वृद्धि होती है।

आकारिकी दृष्टि से शैवाल एक कोषीय या फिलामेंट्स (सूत्रीय) होती है जो क्लोरोफाइसी कुल से संबंधित हुआ करती है। लेकिन मृदा की उर्वरता व उत्पादकता की दृष्टि से इसकी साइनोबैक्टीरिएसी कुल की प्रजातियाँ विशेष लाभकारी पायी गयी हैं। क्लोरोफिल की उपस्थिति के कारण इनको फोटोआटोट्राफिक भी कहा जाता है। ये अपने जीवन चक्र में वातावरण से कार्बन डाईआक्साइड अर्जित कर आक्सीजन उत्सर्जित करती हैं। शैवाल की कुछ प्रजातियाँ मृदा की निचली सतह जहाँ प्रकाश नहीं पहुंचता, में भी पायी जाती हैं। परन्तु इस प्रकार के शैवाल की संख्या सतह पर पाये जाने वाली शैवाल की तुलना में बहुत कम हुआ करती है।

शैवाल की कुछ हरी प्रजातियाँ जैसे क्लोरेला, क्लेमाइडोमोनास, क्लोराकाइट्रियम, क्लोरोकोकम, प्रोटोसिफान और ओइडोमोनियम विशेष रूप से सक्रिय पायी गयी है।

नील हरित शैवाल के अंदर क्लोरोफिल के अतिरिक्त एक प्रकार का रंग होता है जिसे फाइकोसाइनिन कहते हैं जिसके कारण नीलहरित शैवाल

में नीलहरितिमा रूपी गुण परिलक्षित होता है। नीलहरित शैवाल की कुछ प्रभावकारी प्रजातियाँ जो भारतीय मृदाओं में पायी जाती हैं। कोकूकोकस, एफानोकेप्सा, लिंगबिया, ओसिलेटोरिया, फार्मिडियम, माइक्रोकोलियस, सिलिंड्रोस्पर्मम, एनाबिना, स्काइटोनीमा और फिशरेला आदि नामों से जाना जाता है नीलहरित शैवाल में कुछ विशेष ऊतक (cell) या भित्ति पायी जाती है जिसे 'हिटरोसिस्ट' कहते हैं जो नाइट्रोजन बंधन का कार्य संपन्न करते हैं। धान के खेतों में जलमग्न की दशा इनकी क्रियाशीलता के लिये विशेष उपयुक्त होती है। ऐसी ही स्थिति में वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण मृदा में विशेष रूप से हुआ करता है। मृदा में पाये जाने वाले शैवाल को चार भागों में बाँटा गया है।

1. क्लोरोफाइसी (Chlorophyceae or green algae)

इस कुल में क्लेमाइडोमोनास (Chlamydomonas), क्लोरोकोकम (Chlorococcum), बाट्रीडापोप्सिस (Botrydiopsis), हिट्रोथ्रिक्स (Heterothrix) व हेट्रोकोकस (Heterothrix) व हेट्रोकोकस (Hetrococcus) प्रजातियाँ सम्मिलित हैं।

2. साइनोफाइसी (Cyanophyceae or Blue green algae)

इसके अंतर्गत अनाबिना (Anabaena), फारमीडियम (Phormedium), आसीलेटोरिया (Oscillatoria), सिटोनिमा (Scytonema), टालीपोथ्रिक्स (Tolypothrix), नास्टाक व आलोसिरा (Aulosira) प्रजातियाँ आती हैं।

3. बेसिलेरियोफाइसी (Bacillariophyceae or Diatoms)

इस समूह में मुख्य रूप से नैविकुला (Navicula), सिनेड्रा (Synedra) व सिम्बेला (Cymbella) प्रजातियाँ आती हैं।

4. जैन्थीफाइसी (Xynthophyceae or yellow green algae)

इसके उदाहरण हैं: क्लोरोमेसान (Chloromsan), बाट्रीडियम (Botrydium), हेट्रोकोकस (Hetrococcus) व हिटरोर्थिक्स (Heterothrix)। इस प्रकार के शैवाल मृदा में बहुत ही कम पाये जाते हैं।

इन प्रजातियों की वृद्धि में मृदा में उचित नमी, प्रकाश व पीएच. मान का विशेष प्रभाव पड़ता है। शैवाल की प्रायः सभी प्रजातियाँ प्रकाश संश्लेषी

हुआ करती हैं। अतः ये मृदा की ऊपरी सतह पर जहाँ प्रकाश उपलब्ध होता है, पायी जाती हैं। नील हरित शैवाल की जातियां पी.एच. मान 6–10 अर्थात् उदासीन से लेकर क्षारीय मिट्टयों में वृद्धि करती हैं। इसकी कोई भी जाति पीएच. मान 5 के नीचे नहीं उग पाती हैं। लेकिन चूना युक्त मृदाओं में इनकी वंश वृद्धि या वानस्पतिक वृद्धि अधिक हुआ करती है। लेकिन हरी शैवाल अपनी वंश वृद्धि हर प्रकार की मृदा में करने में सक्षम हुआ करती है।

शैवाल के मृदा उर्वरता पर लाभकारी प्रभाव का विवरण नीचे दिया जा रहा है:

1. प्रकाश संश्लेषण द्वारा मृदा की मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की वृद्धि हुआ करती है जिसके फलस्वरूप मृदा क्षारीयता कम होती है और कालांतर में मृदा उदासीन हो जाती है।

2. ये चट्टानों के ऊपर वृद्धि करके चट्टानों के खुरचने या तोड़ने में जीवाणु व कवकानि की क्रियाशीलता में वृद्धि कर मृदा निर्माण में सहयोग करते हैं।

3. जलमग्नता की दशा में धान के खेतों में शैवाल की वृद्धि होने से धान की दैहिक क्रियाओं पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। ये प्रकाश संश्लेषण के फलस्वरूप ऑक्सीजन मुक्त करती है जो धान की जड़ों को उपलब्ध हो जाता है।

4. नीलहरित शैवाल की कुछ विशेष जातियाँ जैसे एनाबिना, नास्टाक, आलासिरा, प्लेक्टोनीमा, टालिपोथ्रिक्स–ह्यूनिससिलिन्ड्रोस्पर्मम व कैलोथ्रिक्स आदि में वायुमंडलीय नाइट्रोजन के बंधन की क्षमता होती है। परीक्षणों से पता चला है कि नीलहरित शैवाल लगभग 30 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रतिवर्ष प्रति हेक्टेयर स्थिर करती है।

5. कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि शैवाल की वृद्धि मृदा क्षरण रोकने में भी सहायक होती है। प्रयोगों द्वारा यह भी सत्यापित हुआ है कि ये शैवाल अपनी वंश वृद्धि के फलस्वरूप कुछ पादप वृद्धि पदार्थों (Plant Hormones) जैसे ऑक्सिजन्स, विटामिन बी–12 आदि को उत्सर्जित करते हैं जो पौधों की वृद्धि हेतु लाभकारी होता है।

5. प्रोटोजोआ (Protozoa)

यह एक कोषीय जीव है। इनकी एक विशेषता यह होती है कि अपने बाह्य शरीर पर एक सिस्ट का निर्माण कर लेते हैं जिससे उनके ऊपर मृदा की प्रतिकूल परिस्थितियों का कुप्रभाव नहीं पड़ता है। इनकी कुछ प्रजातियाँ लिंगीय कोष से संबद्ध होती हैं और वंश वृद्धि करती रहती हैं लेकिन अन्य प्रजातियाँ एक लिंगीय प्रजनन करती हैं। फ्लैनिला युक्त प्रोटोजोआ जो मास्टिगोफोरा वर्ग से संबंधित होती हैं मृदा में अधिक मात्रा में मौजूद हुआ करती हैं। इस वर्ग में कुछ प्रजातियाँ जैसे ऐलेन्सन, बोडो, सर्कोबोडा सर्कोमोनास, इंटोसिफान, हिटरोमिटामोनास, आइकोमोनास, सैनोयूरान, साइरोमोनास, स्पांजोमोनास और टेट्रामिटस आदि विशेष रूप में पायी जाती हैं। इनका दूसरा वर्ग कूटपादि (Pseudopodia) होता है जिसके अंतर्गत 9 प्रजातियाँ जैसे – बायोबिक्सा, निग्लेरिया, युग्लाइफा, डिफ्यूजिया लेसीथियम, न्यूक्लेरिया, ट्राइनेमा, एमीबा, हार्टमनेला होती हैं जो अस्थाई रूप में गतिशील होती हैं। तीसरे वर्ग में पक्ष्मांग (Ciliata) प्रोटोजोआ आता है जो अपने शरीर के ऊपर छोटे–छोटे बालों के सदृश रचना (Cilia) रखकर गतिशील होते हैं। इस वर्ग की कुछ प्रजातियाँ जैसे बलंटियोफोरस, काल्पिडियम कालपोडा, इनचेलिस, गैस्टोस्टाइल हाल्टेरिया आक्सीटिका, प्ल्यूरोट्रिका, यूरोलिप्टसव वोर्टीसेल आदि हैं।

उपरोक्त प्रोटोजोआ का आकार 2–5 माइक्रॉन तक होता है। अब तक अध्ययनों के आधार पर इनकी 250 जातियाँ पायी गयीं। प्रयोगशाला में किये गये अध्ययन के आधार पर इनकी संख्या प्रतिग्राम मृदा में 100×10^4 होती है जिसका अनुमानित भाग लगभग 100 से 200 पौंड प्रति एकड़ होता है।

पोषकीय दृष्टि से प्रोटोजोआ का विभाजन दो वर्गों में किया जाता है। पहली श्रेणी में वे प्रोटोजोआ आते हैं जो निर्जीव जीवांश पदार्थ पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं जिसे सैप्रोजोइक प्रोटोजोआ (Saprozoic protozoa) कहते हैं और पोषण को मृतजीवी पोषण (Saprozoic nutrition) कहते हैं। दूसरी श्रेणी को हैलोजोइक प्रोटोजोआ (Halozoic protozoa) के नाम से जाना जाता है। ये प्रोटोजोआ जीवाणु व अपनी जाति की ही प्रजातियों का भक्षण करते हैं फलस्वरूप इस पोषण को हैलोजाइक पोषण कहते हैं। इस प्रकार का पोषण मृदा में ये प्रायः करते रहते हैं।

प्रोटोजोआ का जीवन मृदा में पाये जाने वाले जीवाणुओं की प्रजातियों जैसे ऐरोबैक्टर, एग्रोबैक्टिरियम, वैसिलस इस्केरीसिया, माइक्रोकाकस व स्यूडोमोनास आदि पर विशेष रूप से निर्भर करती है। क्योंकि ये प्रोटोजोआ इनका भक्षण कर अपना जीवन चक्र पूरा करने में काफी सक्षम होते हैं। इनकी संख्या मृदा की ऊपरी सतह पर ज्यादा होती है और यह जीवाणुओं की संख्या पर विशेष रूप से निर्भर करती है। बाहृय रूप से कार्बनिक पदार्थों की पूर्ति करने से इनकी संख्या में वृद्धि हुआ करती है।

6. बैक्टिारियोफाजेज (Bacteriophoges)

ये सूक्ष्म जीवों की वे छोटी किस्में हैं जो जीवाणु व किरण कवकानि को खा जाते हैं और इस प्रकार उनकी संख्या को काफी घटा देते हैं। इनके आकारिका अध्ययन से पता चला है कि जहाँ पर हम जीवाणु, फफूंदी, किरण कावकानि व प्रोटोजोआ को युग्म सूक्ष्मदर्शी से देख सकते हैं वहीं पर बैक्टिरियोफाजेज को बगैर प्रकाश सूक्ष्मदर्शी से नहीं देख सकते हैं। वैज्ञानिकों के मतानुसार जिस प्रकार के सूक्ष्मजीवों पर ये आक्रमण करते हैं उसी के अनुसार हम फाजेज का नामकरण करते हैं। जैसे – बैक्टीरिया, फफूंदी, किरण कवकानि, नीलहरित शैवाल, प्रोटोजोआ आदि के लिए क्रमशः बैक्टिारियोफाज, फंजीफाज, एक्टिनोफाज, साइनोफाज व प्रोटोजाआज आदि। इनका आकार 0.05 से 0.10 माइक्रान व्यास तक ही होता है। अतः इनका पृथकीकरण बैक्टिरियल फिल्टर के माध्यम से संभव हो पाता है। इनकी रचना सिर व पूंछ की तरह होती है। पूंछ वाला भाग ही अणु जीवों पर चिपक कर उनके प्रोटोप्लाज्म में प्रवेश करता है और एक प्रकार का लाइसिस का निर्माण कर लेता है। इस निर्माण द्वारा ही इसकी वंश वृद्धि संभव होती है।

7. वाइरस या विषाणु

यह एक प्रकार का ऐसा सूक्ष्म जीव होता है जिसकी आकारिकी परख प्रकाश सूक्ष्मदर्शी से भी करना कठिन होता है। इनकी वृद्धि एवं प्रजनन पादप जंतु या सूक्ष्मजीव की जीवित कोशिकाओं के अंदर होती है। ये विषाणु एक विशिष्ट पादप जंतु या सूक्ष्म जीव को पोषिता (Host) बनाते हैं और इसी आधार पर इनका वर्गीकरण किया गया है जिसे हम बैक्टिरियोफेज तथा एक्टिनोफेज के नाम से जानते हैं।

कुछ समय पूर्व तक मृदा कवकानि का कोई भी विषाणु नहीं मालूम हो सका। लेकिन 1968 के बाद विषाणु की 60 प्रजातियों में से 50 प्रजातियां फफूंदी से ही संबंधित पायी गयी हैं जिसे साधारण भाषा में माइकोवाइरस ऑफ पेनीसीलियमक्राइसोजीनम कहा गया। नीलहरित शैवाल पर आश्रित रहने वाले विषाणु का हाल ही में पता लग जाने से इसे साइपोफेजेज की संज्ञा दी गयी है। उचित परोपजीवी के अभाव में मृदा में ये जीवाणु कुछ समय तक निष्क्रिय अवस्था में पड़े रहते हैं और जैसे ही पोषिता उपलब्ध हो जाता है, क्रियाशील हो जाते हैं। मृदा उर्वरता में इनका कोई योगदान नहीं होता है बल्कि ये उल्टे उत्पादन को ही बुरी तरह प्रभावित करते हैं।

मृदा सूक्ष्मजीवों में परस्पर संबंध

मृदा में पाये जाने वाले सभी सूक्ष्मजीव एक–दूसरे से विशेष सम्बन्ध रखते हैं। ये सम्बन्ध या तो सहयोगी (Associative) होते हैं या विरोधी (Antagonistic)। इन आपसी सम्बन्धों के परिणामस्वरूप किसी प्राकृति वातावरण में सूक्ष्मजीवों की एक संतुलित संख्या निर्धारित होती है। इस स्थिति को 'जैविक संतुलन' (Biological equilibrium) कहते हैं। मृदा सूक्ष्मजीवों में पाए जाने वाले आपसी सम्बन्ध निम्नांकित हैं:

(1) आद्य सहयोग (Protocooperation)

सूक्ष्मजीवों में इस प्रकार के पारस्परिक संबंध में सूक्ष्म जीवों के अस्तित्व के लिए एक दूसरे का सहयोग आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए स्ट्रेप्टोकोकस फिकलिस तथा लैक्टोवैसिलस एराबिनोसस के आपसी संबंध को लिया जा सकता है जो कि फेनाइल एलानीन तथा फोलिक एसिड विहीन माध्यम में अलग–अलग वृद्धि नहीं कर सकते हैं। इसका कारण यह होता है कि पहला जीवाणु अपनी वृद्धि के लिए फोलिक अम्ल चाहता है और दूसरा जीवाणु फेनाइल अलेनिन। परंतु ये दोनों जीवाणु जब साथ–साथ उगाये जाते हैं तब दोनों की वृद्धि सामान्य रूप से होती है क्योंकि ये एक–दूसरे के लिए आवश्यक विटामिन तथा एमीनो अम्ल बना देते हैं।

(2) सह भोजिता (Commensalism)

इस प्रकार के संबंध में सूक्ष्मजीव की केवल एक ही प्रजाति को लाभ प्राप्त होता है जबकि दूसरे पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता। जैसे वायुवीय

जीवाणु ऑक्सीजन का उपयोग करके अवायुवीय जीवाणु के लिए उपयुक्त वातावरण बनाता है।

(3) उदासीनता (Neutralism)

इस प्रकार के संबंध में सूक्ष्मजीव पूर्ण रूप से सर्वथा स्वतंत्र जीवन यापन करते हैं। इनमें आपस में कोई सहयोग या विरोध नहीं होता है।

(4) प्रतियोगिता (Competition)

जब दो या दो से अधिक जीवों में एक सीमित पोषक तत्व ऑक्सीजन या अन्य आवश्यकताओं के लिए संघर्ष होता है तब ऐसी परिस्थिति में जिस सूक्ष्मजीव की संख्या उस स्थान विशेष से अधिक होगी वह उसको अधिक मात्रा में ग्रहण कर अपनी वंश वृद्धि आसानी से कर लेगा और दूसरा सूक्ष्मजीव ऐसा करने में सक्षम नहीं हो सकेगा। इस विशेष प्रक्रिया को प्रतियोगिता कहते हैं।

(5) प्रतिजीविता (Antibiosis)

जब एक वर्ग के सूक्ष्मजीव द्वारा उत्सर्जित पदार्थ दूसरे वर्ग के सूक्ष्मजीव के लिए घातक सिद्ध होते हैं तो इस प्रकार के सूक्ष्मजीव संबंध को Amensalism or antibiosis कहते हैं।

(6) परजीविता (Parasitism)

इस प्रकार के संबंध में कोई सूक्ष्मजीव दूसरे जीव से अपना भोजन (पोषण) प्राप्त करते हैं। इस प्रक्रिया में जो सूक्ष्म जीव किसी पर आश्रित होता है। उसे पराश्रयी (Parasite) तथा जिस पर आश्रित रहते हैं, उसे पोषिता (Host) कहते हैं। इस संबंध के परिणामस्वरूप आमतौर पर पोषिता रोगी हो जाता है।

(7) परभक्षिता (Predation)

जब एक सूक्ष्मजीव दूसरे को भोजन रूप में प्रयोग करता है तो इस संबंध को परभक्षिता कहते हैं। उदाहरण–प्रोटोजोआ द्वारा अन्य सूक्ष्मजीवों का भक्षण।

(8) सहजीवन (Sumbiosis)

जब सूक्ष्मजीव आपस में एक–दूसरे को लाभान्वित करते रहते हैं तो इस संबंध को सहजीवन कहते हैं।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि मृदा में कई सूक्ष्मजीव समूह तथा उनकी जातियाँ होती हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न क्रियाओं द्वारा मृदा उर्वरता और पादप–वृद्धि को प्रभावित करती हैं। मृदा में होने वाली क्रियाओं का मुख्य आधार मृदा जीवांश पदार्थ की उपस्थिति है क्योंकि अधिकांश मृदा सूक्ष्मजीवों की कोशिकाओं के निर्माण के लिए कार्बन और ऊर्जा का स्रोत जीवांश पदार्थ ही है। इस प्रकार के सूक्ष्मजीवों को परिपोषी (Heterotroph) कहते हैं जिनकी संख्या मृदा में अपेक्षाकृत अधिक होती है।

दूसरे प्रकार के सूक्ष्मजीव जिनके कार्बन का मुख्य साधन कार्बन डाई आक्साइड तथा ऊर्जा का साधन प्रकाश या अकार्बनिक पदार्थों का आक्सीकरण है। इस प्रकार के सूक्ष्मजीवों को स्वपोषी (Autotrophs) कहते हैं। यहां पर मृदा जीवांश पदार्थ के विषय में थोड़ी जानकारी देना आवश्यक है। कोई भी कार्बनिक पदार्थ जो पादप, जंतु या सूक्ष्मजीव की उत्पत्ति अथवा उनके अवशेष के रूप में मिट्टी में पाए जाते हैं, मृदा जीवांश पदार्थ कहलाते हैं। कभी–कभी मृदा जीवांश पदार्थ का ह्यूमस को पर्याय के रूप में प्रयोग किया जाता है। सही अर्थ में ह्यूमस पदार्थ का एक मुख्य अवयव है जो पादप एवं जंतु अवशेषों के ऊपर सूक्ष्मजीवों की प्रक्रिया एवं अन्य रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा निर्मित होता है। इसलिए ठीक ही कहा गया है कि आज का पादप या जंतु अवशेष कल का ह्यूमस है।

मृदा में पादप–अवशेषों तथा मृत जानवरों के विघटन के फलस्वरूप जीवांश पदार्थ की पूर्ति होती है, जिसमें विभिन्न अवयव जैसे कार्बोहाइड्रेट साधारण शर्करा, स्टार्च, सेल्यूलोज, हेमीसेल्यूलोज, पैक्टिन, गोंद, ग्यूसीलेज, प्रोटीन, चर्बी, तेल, मोम, रेजिंस, एल्कोहल, एल्डिहाइड, किटोन्स, कार्बनिक अम्ल, लिगनिन, फिनाल्स, टैनिंस, हाइड्रोकार्बन, एरूकोलायड्स, पिगमेन्टस व अन्य उत्पाद होते हैं। इनका विघटन मृदा में विभिन्न घटकों द्वारा प्रभावित हुआ करता है। जैसे – जीवांश पदार्थ का आकार, प्रकृति, मात्रा, सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति जो विघटन की प्रक्रिया को गति प्रदान करते हैं। अकार्बनिक तत्वों की मौजूदगी (कार्बन, नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश), मृदा नमी,

तापमान, पीएच. मान, वातन अवरोध उत्पन्न करने वाले पदार्थों की उपस्थिति आदि। कार्बनिक पदार्थों में पाये जाने वाले अवयवों का किस प्रकार के सूक्ष्मजीवों द्वारा उपयोग होता है, का विवरण सारणी 10.1 में दिया जा रहा है।

सारणी-10.1 जीवांश पदार्थों के विभिन्न अवयवों को प्रयोग करने वाले सूक्ष्म जीवों की प्रजातियाँ

पदार्थों की प्रकृति		सूक्ष्मजीवों की प्रजातियाँ
सेल्यूलोज	फफूंदी	आल्टरनेरिया, एस्परजिलस, किटोसियम, कूप्रीनस, फोम्स, फ्यूजेरियम माइरोथीसियम, पेनसीलियम, पालीपोरस, राइजोक्टोनिया, राइजोपस, ट्रेमीट्स, ट्राइकोडर्मा, ट्राइकोथेसियम, वर्टीसिलियम, जाइमोरिंकस,
	जीवाणु	एक्रोमोबैक्टर, एंजिओकोकस, बैसिलस, केलफालसिकूला, सेल्यूलोमोनास, सेल्वीब्रियो, क्लास्ट्रिडियम, साइटोफैगा, पालीएन्जियम, स्यूडोमोनास, सोरेजियम, स्पोरोसाइटोफैगा – विब्रियो
	किरण–कवकानि	माइक्रोमोनास्पोरा, नोकार्डिया, स्ट्रेप्टोमाइसीज, स्ट्रेप्टो स्पोरेन्जियम
हेमी सेल्यूलोज	फफूंदी	अल्टरनेरिया, फ्यूजेरियम, ट्राइकोथेसियम, एस्परजिलस, राइजोपस, जाइगोरिंकस, किटोमियम, हेलमिंथोस्पोरियम, पेनीसिलियम कोरियोलस, फोम्स, पालीपोरस।
	जीवाणु	बैसिलस, एक्रोमोबैक्टर, स्यूडोमोनास, साइटोफैगा, स्पोरोसाइटोफैगा, लैक्टोबेसिलस, विब्रियो।
	किरण कवकानि	स्ट्रेप्टोमाइसीज।

लिंगनिन	फफूंदी	क्लेवेरिया, क्लाइटोसाइबा, कोलीविया, प्लेमूला हाइफोलोमा, लेपिपोटा माइसीना, फोलिपोटा, आर्थ्रोवोट्रीज, सिफालोस्पोरियम ह्यूमीकोला
	जीवाणु	स्यूडोमोनास, फ्लेवोबैक्टीरियम
स्टाच	फफूंदी	एस्परजिलस, फोम्स, फ्यूजेरियम, पालीपोरस, राइजोपस,
	जीवाणु	एक्रोमोबैक्टर, बैसिलस, क्रोमोबैक्टीरियम, क्लास्ट्रीडियम, साइटोफैगा
	किरण कवकानि	माइक्रोमोनास्पोरा, नोकार्डिया, स्ट्रेप्टोमाइसीज
पैक्टीन	फफूंदी	फ्यूजेरियम, वर्टीसीलियम
	जीवाणु	बैसिलस, क्लास्ट्रीडियम, स्यूडोमोनास
इनूलिन	फफूंदी	पेनीसिलियम, एस्परजिलस, फ्यूजेरियम
	जीवाणु	स्यूडोमोनास, फ्लेवोबैक्टीरियम, बेनोकीया, माइक्रोकोकस, साइटोफैक्लास्ट्रीडियम
काइटिन	फफूंदी	फ्यूजेरियम, म्यूकर, मार्टीरेली, ट्राइकोडर्मा, एस्परजिलस, ग्लियोक्लेडियम, पेनेसिलियम थैम्नीडियम, एबसीडिया।
	जीवाणु	साइटोफैगा, एक्रोमोबैक्टर, बैसिलस, बेनेकीया, क्रोमोबैक्टीरियम, फ्लेवोबैक्टीरियम, माइक्रोकाकस, स्यूडोमोनास
	किरण कवकानि	स्ट्रेप्टोमाइसीज, नोकार्डिया, माइक्रोमोनास्पोरा
प्रोटीन–न्यूक्लिक अम्ल	जीवाणु	बैसिलस, स्यूडोमोनास, क्लास्ट्रीडियम, सिलसिया, माइक्रोकाकस,

क्यूटिन	फफूंदी	पेनीसिलियम, रोडोटोरूला, मोर्टीरेल्ला
	जीवाणु	वैसिलस
	किरण कवकानि	स्ट्रेप्टोमाइसीज
टैनिन	फफूंदी	एस्परजिलस, पेनीसिलियम
ह्यूमिक अम्ल	फफूंदी	पेनीसीलियम, पालीर्स्टक्टिस
फेलविक अम्ल	फफूंदी	पोरिया

1. जीवांश पदार्थ का विघटन

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि मृदा में जीवांश पदार्थों की उपलब्धि पौधों, जानवरों एवं मृदा में उपस्थित जीवों व सूक्ष्मजीवों के अवशेषों से होती है। इन जीवांश या कार्बनिक पदार्थों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

(क) नाइट्रोजन रहित कार्बनिक पदार्थ, जैसे – सेलूलोज, लिग्निन, चर्बी, पेक्टिन आदि।

(ख) नाइट्रोजन युक्त कार्बनिक पदार्थ जैसे – प्रोटीन, अमीनो अम्ल तथा अमीनो शर्करा आदि।

इन कार्बनिक पदार्थों का विघटन मुख्य रूप से जीवाणु तथा कवकानि की विभिन्न जातियों द्वारा होता है। जीवांश पदार्थ विघटित होकर निम्नांकित रूपों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मृदा उर्वरता को प्रभावित करते हैं।

कार्बन डाई ऑक्साइड का निष्कासन

यह सर्वविदित तथ्य है कि वायुमंडल की कार्बन डाई आक्साइड से पौधे सूर्य के प्रकाश की सहायता से कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करते हैं। यही कार्बोहाइड्रेट इस जीवमंडल (biosphere) पर कार्बनिक पदार्थ का मुख्य स्रोत हैं। वायुमंडल में कार्बन डाई आक्साइड की अधिकतम मात्रा 300 अंश प्रति दश लक्षांक्ष होती है। कार्बन डाइऑक्साइड की यह मात्रा अन्य गैसों की तुलना

में अत्यल्प है। ऐसा अनुमान है कि पृथ्वी की वनस्पतियाँ प्रतिवर्ष 90 मिलियम किलोग्राम कार्बन डाइऑक्साइड प्रयोग करती हैं जो वायुमंडल की पूरी कार्बन डाइऑक्साइड का 1/25वां भाग है। यदि कार्बन डाइऑक्साइड की उत्पत्ति का कोई स्रोत न होता तो वायुमंडल की पूरी कार्बन डाईआक्साइड लगभग 25 वर्षों में समाप्त हो जाती और इस जीवमंडल पर जीवन संभव न हो पाता। इस प्रक्रिया को अनवरत गति से चलते रहने के लिए कार्बन डाईऑक्साइड का बनना अत्यंत आवश्यक होता है। इस प्रक्रिया से वायुमंडल की कार्बन डाईऑक्साइड की क्षति पूरी होती रहती है। इसी क्षति की पूर्ति मृदा–सूक्ष्मजीव कार्बनिक पदार्थ के विघटन से करते हैं। कार्बन डाईऑक्साइड उत्पन्न करने वाले पदार्थों में सेल्यूलोज, लिग्निन, पेक्टिन, स्टार्च, शर्करा तथा ग्लाइकोजन प्रमुख हैं। प्रोटीन और बसा में भी कार्बन पाया जाता है जो विघटन के उपरांत कार्बन डाईऑक्साइड बनाती है। यदि मृदा में वायुवीय दशा (Aerobic condition) है तो पूर्ण विघटन के फलस्वरूप कार्बन डाईऑक्साइड, ऊर्जा और पानी बनता है। यदि अवायुवीय दशा (Anaerobic condition) या अल्प वायवीय दशा होती तो मीथेन, हाइड्रोजन, कार्बन डाईऑक्साइड जैसी गैसें तथा अन्य कार्बनिक अम्ल, अल्कोहल आदि पैदा होते हैं। इस परिस्थिति में कार्बन डाईऑक्साइड का निष्कासन कम होता है। जीवांश पदार्थों के विघटन के फलस्वरूप कार्बन डाईऑक्साइड के निष्कासन की मात्रा जीवांश पदार्थ की प्रकृति, सूक्ष्मजीवों की जाति तथा अन्य मृदा कारकों पर निर्भर करती है। कार्बनिक पदार्थ का विघटन तथा कार्बन डाईऑक्साइड का निष्कासन अम्लीय अथवा क्षारीय भूमि में उदासीन भूमि की अपेक्षा कम होता है। इन मिट्टियों में क्रमशः चूना और जिप्सम के प्रयोग द्वारा कार्बन डाईऑक्साइड निष्कासन में वृद्धि की जा सकती है।

ह्यूमस

मृदा में पाये जाने वाले काले जैव पदार्थ को ह्यूमस कहते हैं जो कि जीवांश यौगिक के भौतिक व रासायनिक गुणों की विवेचना से परे होती है। वैज्ञानिकों का मत है कि ह्यूमस लिग्नो प्रोटीन यौगिक हुआ करता है जिसमें अनुमानतः 45 प्रतिशत लिग्निन का एक मिश्रण है। इन क्रियाओं के संपादन में सूक्ष्मजीव एक महत्वपूर्ण योगदान देते हैं जिसका संक्षिप्त उल्लेख आगे किया जा रहा है।

ह्यूमस का निर्माण

जंतु या पादप अवशेषों (जैव पदार्थ) के विघटन के परिणामस्वरूप कार्बन डाईऑक्साइड या अन्य साधारण अकार्बनिक तत्व या लवण पैदा होते हैं। इस परिवर्तन के साथ ही एक मध्यवर्ती पदार्थ का निर्माण होता है जिसे ह्यूमस कहते हैं। इस ह्यूमस में मुख्य रूप से सूक्ष्म जीवों द्वारा अपनी कोशिकाओं के लिए संश्लेषित पदार्थ विशेषकर पालीसेकराइड, पालीफेनाल, कोषाभित्ति पदार्थ, बहिकोषीय पदार्थ जैसे गोंद, अधिक कठिनता से विघटित होने वाले कार्बनिक अवयव, जैसे लिग्निन, तेल, वसा और मोम आदि पाए जाते हैं। जैसा कि अवगत है कि कार्बनिक पदार्थ के विघटन में जीवाणु और कवकानि भाग लेते हैं। जीवाणु मुख्य रूप से पालीसेकराइड तथा कवकानि पालीफेनाल का संश्लेषण करते हैं। लिग्निन का आंशिक विघटन उसके युक्त भाग पर किसी प्रकार का विघटन नहीं होता। इस आंशिक विघटन के परिणामस्वरूप पालीफेनाल का निर्माण होता है। ये पालीफेनाल स्वतः आक्सीकरण के पश्चात् अन्य पदार्थ जैसे अमीनो अम्ल और पेप्टाइड से पालीमेराइजेशन तथा पालीकंडेंशन विधि द्वारा जुट कर ह्यूमस का निर्माण करते हैं। इस प्रकार ह्यूमस का निर्माण केवल विघटन क्रिया ही नहीं बल्कि यह अपघटन तथा संश्लेषण यौगिक, 35 प्रतिशत एमीनो अम्ल, 11 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 4 प्रतिशत सेल्यूलोज, 7.0 प्रतिशत हेमीसेल्यूलोज, 3 प्रतिशत चर्बी, मोम और रेजिंस तथा 6 प्रतिशत अन्य पदार्थ हुआ करते हैं जिसमें पौध वृद्धि कारक पदार्थ व अवरोधक सम्मिलित होता है। वातावरण में इनके अवयवों व उम्र का आंकलन स्वतंत्र रूप से किया जा सकता है। लेकिन रेडियो कार्बन डेटिंग तकनीकी से ह्यूमस की उम्र वोडोनाल मृदा में 1580–2860 और चरनोजेम में 1000 वर्ष आंकी गयी है। जीवाणुओं व शैवालों के प्रोटोप्लाज्म का ह्यूमस निर्माण में काफी योगदान होता है। लेकिन सूक्ष्म जीवाणुओं के द्वारा होने वाले विघटन में कोई व्यवधान जैसे – कम तापमान, अवायुवीयता, खनिज पदार्थों की अल्प मात्रा, जीवाणुओं की वृद्धि के अवरोधक (जैसे – फिनालिक यौगिक) होता है तो उस समय प्राप्त ह्यूमस को (raw humus) कहते हैं। लेकिन यदि ह्यूमस तत्व मृदा में उपस्थित है तो उनमें शर्करा, स्टार्च, उपलब्ध शक्ति के कारण सूक्ष्म जीवाणुओं के संवर्धन में विशेष सहायता मिलती है। साधारण तौर पर यदि सूक्ष्म जीव ह्यूमस के निर्माण में योगदान करते हैं तो उनमें विशेष रूप से फफूंदी, पेनीसीलियम व एस्परजिलस, किरण कवकानि की बाहुल्यता होती है। किरण कवकानि के कारण ह्यूमस में गहरा रंग संबंधी पदार्थ की

उत्पत्ति होती है और यह रंग एमीनो अम्ल, पेप्टाइड और पालीफिनाल्स के कारण हुआ करता है।

कार्बनिक पदार्थ के विघटन के लिए निम्नांकित अनुकूल परिस्थितियाँ बताई गई हैः

1. जीवांश पदार्थ में लिग्निन तथा मोम की मात्रा कम होनी चाहिए।
2. मृदा में उपस्थित जंतु भी विघटन में सहयोग देते हैं क्योंकि यह जीवांश पदार्थ का विचूर्णन करते रहते हैं।
3. मृदा का पीएच मान उदासीन या हल्का क्षारीय होना चाहिए।
4. मृदा में नमी की मात्रा मिट्टी की कुल जलधारण क्षमता के 50–60 प्रतिशत के लगभग होना चाहिए।
5. वायु की अधिक मात्रा भी आवश्यक है। अवायवीय अथवा जल मग्न दशा का कार्बनिक पदार्थ के विघटन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
6. तापमान 30 से 42° सेंटीग्रेड उचित रहता है।
7. कठिनता से विघटित होने वाले जीवांश पदार्थों (जिनका कार्बनः नाइट्रोजन अनुपात अधिक हो) के साथ अपेक्षाकृत कम कार्बनःनाइट्रोजन वाले पदार्थों के मिश्रण से विघटन की प्रक्रिया विशेष सुगम हो जाती है।

कार्बनिक पदार्थों के विघटन के परिणामस्वरूप निकली कार्बन डाईऑक्साइड का निम्न रूप में प्रयोग हो सकता है।

1. कुछ कार्बन डाईऑक्साइड वायुमंडल में चली जाती है जिसका प्रकाश संश्लेषण में उपयोग होता है।
2. कार्बन डाईऑक्साइड, पानी से मिलकर कार्बोनिक अम्ल बनाता है जो अनुपलब्ध पोषक तत्वों को उपलब्ध अवस्था में परिवर्तित कर देता है।

$$CO_2 + H_2O \longrightarrow H_2CO_3$$

कार्वन डाई आक्साइड + पानी ————> कार्बोनिक अम्ल

3. कुछ कार्बन डाईऑक्साइड स्वपोषी जीवाणु के लिए कार्बन का मुख्य स्रोत बन जाती है जिसे जीवाणु अवकृत करके कार्बोहाइड्रेट बना देते हैं।

$$CO_2 + 2\,H_2 \longrightarrow (CH_2O)\,x + H_2O$$

4. कुछ परिपोषी जीवाणु कार्बन डाईऑक्साइड को अपने किसी कार्बनिक यौगिक में स्थिर कर सकते हैं जैसे पाइरूविक अम्ल कार्बन डाईऑक्साइड से मिलकर आक्जैलो एसिटिक अम्ल बना देता है।

$$\underset{\text{पाइरूविक अम्ल}}{CH_3\,COCOOH} + CO_2 \longrightarrow \underset{\text{आक्जैलो एसिटिक अम्ल}}{HOOCCH_2\,CO\,COOH}$$

कुछ सूक्ष्मजीव इस कार्बन डाईऑक्साइड का शोषण करके कई प्रकार के कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करते हैं जो इनकी कोष संरचना के निर्माण में सहायक होने के साथ ही कुछ चिपचिपे पदार्थ (Slime material) का निर्माण करते हैं जो मृदा संरचना के सुधार में सहायक होता है।

पादप पोषक तत्वों की उपलब्धता

कार्बन के अतिरिक्त पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों जैसे – नाइट्रोजन, फास्फोरस, गंधक आदि भी कार्बनिक रूप में बंधित रहते हैं। इन पोषक तत्वों से युक्त कार्बनिक पदार्थ विघटित होने पर क्रमशः नाइट्रेट, फास्फेट और सल्फेट रूप में परिवर्तित हो जाते हैं जो पौधों को सुगमता से उपलब्ध होते रहते हैं। इस परिवर्तन को खनिजीकरण (Mineralization) की संज्ञा दी जाती है। कार्बनिक पदार्थों के विघटन से कार्बन डाईऑक्साइड का निकलना भी खनिजीकरण के ही अंतर्गत आता है। मृदा में खनिजीकरण के साथ ही साथ अचलीकरण (Immobilisation) की क्रिया भी होती है। इस क्रिया में पोषक तत्वों के खनिजीकृत रूप सूक्ष्मजीवों की कोषाओं के रूप में जटिल कार्बनिक यौगिक बन जाते हैं। वास्तव में मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता इन्हीं दोनों क्रियाओं पर निर्भर करती है। अचलीकरण की क्रिया उस समय अधिक होती है जब भूमि में अधिक कार्बन:नाइट्रोजन अनुपात वाले अर्थात् 1.8 प्रतिशत से कम नाइट्रोजन सांद्रता वाले जीवांश जैसे पुआल आदि को खेत में डाल दिया जाता है। अचलीकरण के फलस्वरूप पोषक तत्व अनुपलब्ध अवस्था में पर्णित हो जाते हैं फलतः मृदा उर्वरता पर कुप्रभाव पड़ता

है। जब इस प्रकार के जीवांश पदार्थ भूमि में डाले जाते हैं तो विघटन के समय अत्यधिक ऊर्जा और कार्बन डाईऑक्साइड उत्पन्न होती है। इसी समय सूक्ष्मजीवों में वृद्धि भी सर्वाधिक होती है। ये जीवाणु अपनी वृद्धि के लिए कार्बन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, गंधक तथा अन्य तत्व जीवांश पदार्थ से ही प्राप्त करना चाहते हैं। परंतु इस प्रकार के कार्बनिक पदार्थों में कार्बन के अनुपात में अन्य पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा गंधक बहुत ही कम मात्रा में होते हैं अतः सूक्ष्मजीव अपने पोषण हेतु मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों का उपयोग करते हैं जिससे मृदा में इन तत्वों का अस्थाई अभाव हो जाता है। यदि खेत में कोई फसल खड़ी हो तो उसमें तत्व विशेष के अभाव के लक्षण भी दृष्टिगोचर होने लगते हैं। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि यदि जीवांश में नाइट्रोजन की मात्रा 1.8 प्रतिशत से अधिक है तो ऐसी परिस्थिति में मृदा में उपस्थित उपलब्ध रूप में नाइट्रोजन का अचलीकरण नहीं हो पाता।

यह सदा ध्यान रखना चाहिए कि हल्की भूमि में अवघिटित कार्बनिक पदार्थ जिसमें नाइट्रोजन की मात्रा 1.8 प्रतिशत से कम हो, उसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। विशेषतया उस समय जब खेत में फसल खड़ी हो अथवा तुरंत फसल बोनी हो। कार्बनिक पदार्थों के विघटन के फलस्वरूप विभिन्न पोषक तत्व निम्नांकित साधारण रूपों में परिवर्तित होकर पौधों को उपलब्ध होते रहते हैं:

(1) कार्बनः कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2), कार्बोनेट (CO_3^{-}), बाइकार्बोनेट (HCO_3^{-}), मीथेन (CH_4)।

(2) नाइट्रोजनः अमोनियम (NH_4^{+}), नाइट्राइट (NO_2^{-}), नाइट्रेट (NO_3)।

(3) फास्फोरसः डाई हाइड्रोजन फास्फेट ($H_2PO_4^{-}$), मोनोहाइड्रोजन फास्फेट (HPO_4)।

(4) गंधकः गंधक (S), हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2S), सल्फाइट (SO_3), सल्फेट (SO_4), कार्बन डाइसल्फाइड (CS_2)

यदि जीवांश पदार्थ में नाइट्रोजन की मात्रा 1.2 से 1.8 प्रतिशत के लगभग हो तो अचलीकरण की संभावना कम रहती है परंतु नाइट्रोजन की मात्रा 1.2 प्रतिशत कम होने पर भूमि में उपलब्ध नाइट्रोजन का ह्रास अचलीकरण द्वारा

अवश्य होता है। पौधों की जड़ों में नाइट्रोजन की मात्रा और भूमि में नाइट्रेट नाइट्रोजन के ह्रास का आपसी संबंध सारणी में दिया गया है।

(5) अन्यः जल (H2O), ऑक्सीजन (O2), हाइड्रोजन (H2), हाइड्राक्सिल (OH–), कैल्सियम (CA^{++}), मैग्नीशियम (Mg^{++}), पोटैशियम (K^{+})।

सूक्ष्मजीवों द्वारा जीवनाशक रसायनों (Biocides) का विघटन

आधुनिकतम कृषि पद्धति में प्रति इकाई क्षेत्रफल से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने हेतु विभिन्न प्रकार के रसायन, कीटनाशक (Insecticide), कवक विनाशक (Fungicide), खरपतवार नाशक (Weedicide) के रूप में सीधे भूमि में या बीज के माध्यम से भूमि में डाले जाते हैं। यदि इन रसायनों का प्रयोग लगातार भूमि में किया जाये और ये रसायन भूमि में अपरिवर्तित रूप में एकत्रित होते रहें तो ये पादप–वृद्धि के लिए अति घातक सिद्ध होगें। प्रकृति नियमानुसार इन रसायनों का विघटन मृदा में उपस्थित सूक्ष्मजीव विशेषकर कवकानि तथा जीवाणु द्वारा हानि रहित पदार्थों में हो जाता है। प्रयोग किये जाने वाले कार्बनिक रसायनों में कुछ तो आसानी से विघटित हो जाते हैं परंतु कुछ बड़ी कठिनाई से विघटित होते हैं और भूमि में बहुत दिनों तक बने रहते हैं। उदाहरणार्थ, 2–4–डी और एम.सी.पी.ए. का विघटन शीघ्र होता है परन्तु 2–4–5 टी. का विघटन देर से होता है जो भूमि में पड़ा रहता है। इसी प्रकार क्लोरीनयुक्त कीटनाशक रसायन जैसे डी.डी.टी. और गैमेक्सीन विघटन अवरोधी होते हैं अतः भूमि में वर्षों बने रहते हैं।

भूमि में पोषक तत्वों का रूपांतरण (Transformation of Nutrients)

मृदा में पाये जाने वाले सभी पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, गंधक, लोहा, मैंगनीज आदि तत्वों का रूपांतरण सूक्ष्मजीवों की विभिन्न प्रजातियों द्वारा संपन्न होता है। सूक्ष्मजीवों की प्रक्रिया के फलस्वरूप पोषक तत्वों का कार्बनिक रूप विघटित होकर अकार्बनिक रूप में परिवर्तित हो जाता है जो पौधों को प्राप्त होता है। साथ ही अकार्बनिक प्राप्य रूप में इन पोषक तत्वों को सूक्ष्मजीव अपने कोषा निर्माण हेतु प्रयोग में लाते हैं। किसी भी समय मृदा में पोषक तत्वों की प्राप्यता इन्हीं दो प्रक्रियाओं की सापेक्षित मांग पर निर्भर करती है और इन्हीं परिवर्तनों के परिणामस्वरूप प्रकृति में इन पोषक

तत्वों का अस्तित्व सर्वदा बना रहता है। सूक्ष्मजीवों द्वारा होने वाले इन परिवर्तनों को चक्रीय परिवर्तन (Cyclic Transfomation) या तत्वीय चक्र (Elemental cycle) कहते हैं।

(अ) नाइट्रोजन का रूपांतरण (Nitrogen Transformation Nitrogen Cycle)

मिट्टी में सूक्ष्मजीवों द्वारा होने वाले नाइट्रोजन सम्बन्धी परिवर्तन निम्नांकित हैं:

1. प्रोटीन का विघटन (Proteolysis)

मिट्टी में पाये जाने वाले प्रमुख नाइट्रोजन युक्त कार्बनिक पदार्थों में प्रोटीन प्रमुख है। पौधे नाइट्रोजन को प्रोटीन रूप में ग्रहण नहीं कर सकते। इनका विघटन सूक्ष्मजीवों द्वारा बनाये गए बाह्य कोषी विकरों (Extra cellular enzymes) द्वारा पेप्टाइड तथा अमीनो अम्ल में हो जाता है।

प्रोटीन —प्रोटीजेनेज विकर—> पेप्टाइड —प्रेप्टाइडेजेज—> अमीनो अम्ल
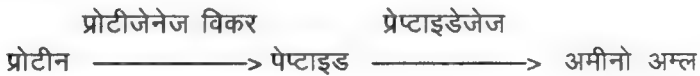
इस प्रक्रिया वाले प्रमुख जीवाणु निम्न है:

क्लास्ट्रीडियम (Clostridium), प्रोटियस (Proteus), स्यूडोमोनास (Pseudomonas) तथा बैसिलस (Bacillus) जीवाणुओं के अतिरिक्त कुछ कवकानि तथा किरण कवकानि भी इस प्रक्रिया में भाग लेते हैं।

2. अमोनीकरण (Ammonification)

प्रोटीन विघटन के परिणामस्वरूप बने अमीनो अम्ल का विघटन विभिन्न प्रकार के परिपोषी (Heterotrophic) सूक्ष्मजीवों द्वारा कई प्रतिक्रियाओं के माध्यम से अमोनिया के रूप में हो जाता है। इस क्रिया को अमोनीकरण कहते हैं। इस अमोनिया का प्रयोग पौधे या सूक्ष्मजीव करते हैं या यह नाइट्रेट रूप में परिवर्तित हो सकता है अथवा मृत्तिका खनिज द्वारा मिट्टी में स्थिर हो जाते हैं।

3. नाइट्रीकरण (Nitrification)

सूक्ष्मजीवों की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप अमोनियम नाइट्रोजन कुछ

स्वपोषी जीवाणुओं द्वारा नाइट्रेट रूप में परिवर्तित हो जाता है जिसे नाइट्रीकरण की संज्ञा दी जाती है। ''नाइट्रीकरण एक जैविक क्रिया है''। इसकी खोज स्क्लोसिंग और मुंज ने 1877 में किया था। इस प्रक्रिया में भाग लेने वाले जीवाणु की खोज सर्वप्रथम रूसी मृदा सूक्ष्मजैविज्ञ डा. एस.एन. बिनोग्रेडस्की ने 1890 में किया।

नाइट्रीकरण की क्रिया दो चरणों में संपन्न होती है और इसमें दो प्रकार के स्वपोषी जीवाणु भाग लेते हैं। नाइट्रीकरण के प्रथम चरण में नाइट्रोजन का अमोनियम रूप मुख्य रूप से नाइट्रोसोमोनास (Nitrogsomonos) जीवाणुओं द्वारा नाइट्राइट (NO2) के रूप में बदल जाता है।

$$2NH_3 + 3O_2 \xrightarrow{\text{Nitrorosmonas}} 2HNO_2 + 2H_2O$$

उदासीन मिट्टी में यह नाइट्राइट नाइट्रोबैक्टर जीवाणु द्वारा शीघ्र ही नाइट्रेट रूप में परिवर्तित हो जाता है। क्षारीय मिट्टी में नाइट्राइट की अपेक्षा नाइट्रेट कम बन पाता है परिणामस्वरूप नाइट्राइट एकत्रित हो जाता है। कभी–कभी पौधों में इस नाइट्राइट के कारण विषालुता (Phyto toxicity) उत्पन्न हो जाती है। नाइट्राइट से नाइट्रेट रूप में परिवर्तन निम्नांकित ढंग से हो जाता है:

$$HNO_2 + \frac{1}{2} O_2 \xrightarrow{\text{Nitrobactor}} HNO_3$$

4. नाइट्रेट का अमोनिया में अवकरण

कभी–कभी अवायुवीय या अल्प वायुवीय अवस्था जैसे जलमग्न मिट्टी नाइट्रेट विभिन्न परिपोषी सूक्ष्मजीवों द्वारा नाइट्राइट या अमोनिया रूप में अवकृत हो जाता है।

$$HNO_3 + 4\ H_2 \longrightarrow NH_3 + 3H_2O$$

5. डिनाइट्रीकरण (Denitrification)

इस प्रक्रिया के फलस्वरूप मिट्टी में नाइट्रोजन की पूर्ण क्षति हो जाती है जिसमें नाइट्रेट कुछ सूक्ष्मजीवों की क्रियाशीलता के फलस्वरूप नाइट्रोजन या नाइट्रस ऑक्साइड गैस के रूप में परिवर्तित होकर वायुमंडल में चली जाती

है। इस प्रक्रिया को डिनाइट्रीकरण कहा जाता है। इस क्रिया में भाग लेने वाले जीवाणु निम्न हैं: थायोवैसिलस डिनाइट्रीफिकेन्स (Thiobacillus denitrificans) और माइक्रोकोकस डिनाइट्रीफिकेन्स (Micrococcus denitrificans) सिरेटिया (Serratia), स्यूडोमोनास (Pseudomonas), एक्रोमोबैक्टर (Archromobactor) की भी कुछ जातियाँ हैं जो इस प्रक्रिया में भाग लेती हैं। डिनाइट्रीकरण की क्रिया को प्रायः जलमग्न मृदाओं में जहाँ जीवांश पदार्थ की अधिकता होती है विशेष प्रोत्साहन मिलता है।

जैविकी नाइट्रोजन स्थिरीकरण
(Biological Nitrogen fixation)

सूक्ष्मजीवों द्वारा संपादित होने वाली यह प्रक्रिया मृदा उर्वरता और पादप पोषण के दृष्टिकोण से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मृदा नाइट्रोजन का प्रारंभिक तथा मुख्य स्रोत वायुमंडल ही है, जिसका लगभग 80 प्रतिशत भाग नाइट्रोजन है। परंतु वायुमंडल की यह नाइट्रोजन (N2) पौधों को उपलब्ध होने की अवस्था में नहीं रहती है। अतः इसे पौधों को प्राप्त होने की अवस्था में परिवर्तित होने के लिए किसी संयुक्त नाइट्रोजन रूप जैसे अमोनियम या नाइट्रेट रूप में परिवर्तित होना आवश्यक है। वायुमंडलीय नाइट्रोजन का यह रूपांतरण नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Nitrogen fixation) कहलाता है। यह अनुमान लगाया गया है कि प्रति हेक्टेयर वायुमंडलीय क्षेत्रफल में लगभग 7×10^6 कि.ग्रा. नाइट्रोजन पाई जाती है। इसका कुछ भाग वायुमंडल में तड़ित विसर्जन (lightening discharge) के माध्यम से स्थिर होता है। इस प्रकार के स्थिरीकरण में नाइट्रोजन तथा आक्सीजन मिलकर नाइट्रिक ऑक्साइड बनाते हैं। यह पानी में मिलकर नाइट्रिक अम्ल बना देता है। यह अम्ल या तो वायुमंडल में उपस्थित अमोनिया में मिलकर अमोनियम नाइट्रेट बनाता है जो भूमि में आकर मिल जाता है, या अम्ल ही भूमि में आकर अमोनिया से मिलकर अमोनियम नाइट्रेट या अन्य नाइट्रेट बना सकते हैं। परन्तु इस प्रकार नाइट्रोजन का स्थिरीकरण बहुत ही अल्प होता है। वायुमंडलीय नाइट्रोजन की अधिक मात्रा सूक्ष्मजीवों द्वारा स्थिर होती है जिसे हम जैविकी नाइट्रोजन स्थिरीकरण कहते हैं। इन प्राकृतिक साधनों के अतिरिक्त मानव भी रासायनिक विधि से वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण रासायनिक उर्वरकों के रूप में करता है जिसे हम रासायनिक या औद्योगिक नाइट्रोजन स्थिरीकरण कहते हैं।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण की विभिन्न विधियों को निम्नांकित रूप में दर्शाया जा सकता है:
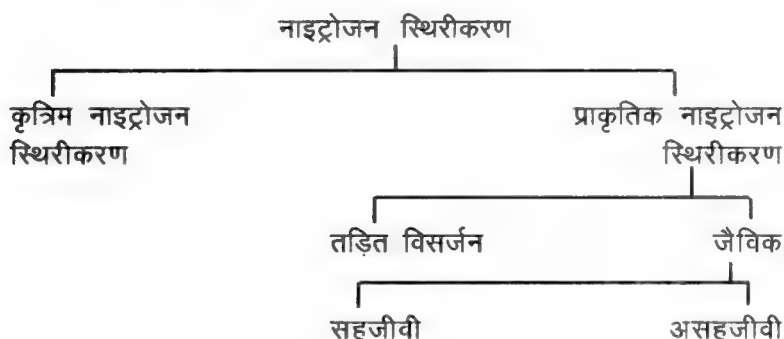
जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण का वर्णन आगे किया जा रहा है।

सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Symbiotic Nitrogen fixation)

इस प्रकार का नाइट्रोजन स्थिरीकरण मुख्य रूप से दलहनी फसलों और एक प्रकार के जीवाणु राइजोबियम के सहयोग से संपन्न होता है। इस प्रकार के सहयोग से दलहनी फसलें तथा जीवाणु दोनों लाभान्वित होते हैं। इसीलिए इस संबंध को सहजीवन (Synbiosis) संपन्न होने वाली क्रिया को सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण कहते हैं। इस प्रकार के सहजीवन में पौधों को नाइट्रोजन प्राप्त होता है और राइजोबियम को पौधों से ऊर्जा प्राप्त होती है। राइजोबियम जीवाणु दलहनी फसलों की जड़ों में प्रवेश करके एक विशेष प्रकार का दैहिक परिवर्तन मूल कोशिकाओं में लाते हैं जिसके परिणामस्वरूप मूल कोषिकाओं के आकार तथा उनके विभाजन की दर में वृद्धि हो जाती है। जड़ों के ऊपरी भाग पर एक असामान्य गोल आकार की वृद्धि हो जाती है जिसे हम जड़ ग्रंथि कहते हैं। सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण मुख्य रूप से दलहनी फसलों में ही पाया जाता है जो निश्चित रूप से राइजोबियम जीवाणु के सहयोग से होता है। परन्तु दलहन के अतिरिक्त अन्य प्रकार के पौधों विशेषकर जंगली झाड़ियों तथा पेड़ों की जड़ों पर भी ग्रंथियाँ पाई जाती हैं जो नाइट्रोजन स्थिरीकरण करती है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इस प्रकार की जड़ ग्रंथियों का निर्माण राइजोबियम से न होकर एक्टिनोमाइसिटीज

की कुछ जाति विशेषकर नोकार्डिया द्वारा संपन्न होता है। इस प्रकार के पेड़–पौधों में मुख्य रूप से एलनस, माइरिका तथा कैजुराइना का नाम जोड़ा जाता है। कुछ ऊष्ण प्रदेशीय पौधों की पत्तियों की सतह पर ग्रंथियों के समान रचनाएँ पाई जाती हैं। इस प्रकार की ग्रंथियों को पर्णग्रंथि कहते हैं जो मुख्य रूप से पावेटा, साइकोट्रिया और आरडीसिया जैसे पौधों पर पाए जाते हैं। पर्ण ग्रंथियों के लिए उत्तरदायी जीवाणु–क्लेवसियेला, माइकोबैक्टीरियम तथा क्रोमोबैक्टीरियम पाये जाते हैं।

सहजीवी जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण के अंतर्गत दलहनी फसलों तथा राइजोविपत्र द्वारा नाइट्रोजन के स्थिरीकरण का मृदा उर्वरता की दृष्टि से बहुत महत्व है। ग्रंथिकरण तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिए राइजोबियम तथा दलहनी फसलों के बीच एक विशिष्ट संबंध होता है अर्थात् राइजोबियम की एक विशेष जाति एक निश्चित दलहनी फसल या दलहनी फसलों के एक विशेष समूह की जड़ों पर ही ग्रंथिकरण का निर्माण तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण कर सकती है। इस प्रकार के दलहनी फसल या फसलों के समूह को क्रॉस इनोक्यूलेशन ग्रुप कहते हैं। कृषि उत्पादकता के दृष्टिकोण से मुख्य क्रॉस संक्रमण समूह निर्धारित किए गये हैं जो सारणी 10.1 में दिये गये हैं।

प्रथम वर्ग के सूक्ष्म जीव दलहनी फसलों के साथ साहचर्य सहजीवन व्यतीत करते हैं और उनकी जड़ों में पायी जाने वाली जड़ ग्रंथियों में वायुमंडलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करते हैं। इन्हें सहजीवी सूक्ष्मजीव के नाम से जाना जाता है। दूसरे वर्ग के सूक्ष्म जीव मृदा में स्वतंत्र रूप से जीवनयापन करते हुए नाइट्रोजन का यौगीकरण करते हैं इन्हें असहजीवी सूक्ष्म जीव कहते हैं। इनमें एजोटोबैक्टर, क्लोस्ट्रीडियम, ऐजोस्पिरिलम, बैसिलस, नील हरित शैवाल (ब्लू ग्रीन एल्गी) आदि प्रमुख हैं।

राइजोबियम

राइजोबियम नामक जीवाणु वायुमंडल की नाइट्रोजन का यौगिकीकरण दलहनी फसल की जड़ ग्रंथियों में कर देते हैं। इसका पौधे कुशलतापूर्वक उपयोग करते हैं। उल्लेखनीय है कि इस साहचर्य सहजीवन में राइजोबियम को पौधों से शक्ति पदार्थ कार्बोहाइड्रेट और पौधों को राइजोबियम द्वारा नाइट्रोजन प्राप्त होता है। फसल कटने के बाद में जड़ ग्रंथियाँ जड़ों के साथ

सारणी-10.1 वायुमंडलीय नाइट्रोजन के यौगिकीकरण के लिए विभिन्न जैविक साधन

जीव साधन	भाग लेने वाले सूक्ष्म जीव
1. सहजीवी	
(क) दलहनी फसलों की जड़ ग्रंथियाँ	राइजोबियम
(ख) अदलहनी फसलों की जड़ ग्रंथियाँ	संभवतया एक्टिनोमाइसिटीज
(ग) शीतरागी जीवाणु की पर्ण ग्रंथियाँ	क्लैबसिला
2. असहजीवी (स्वतंत्र रूप में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीव)	
(घ) जीवाणु (बैक्टीरिया)	'एजोटोबैक्टर', 'बैसिलस', 'विजैरिकिया', 'क्लोरोबियम', 'क्रोमेशियम', 'क्लास्ट्रीडियम', 'डैरक्सिआ', 'डिसल्फोविब्रिओ', 'मेथेनोबैक्टीरियम', 'स्यूडोमोनास', 'रोडोमाइक्रोबियम', 'रोडोस्यूडोमोनास', 'रोडोस्पाइरिलम', 'एजोस्पिरिलम'
(च) नील हरित शैवाल (ब्लूग्रीन एल्गी)	'एना बीना', 'एना बीनोप्सिस', 'आलोसिस', 'कैलोथ्रिक्स', 'क्लोरोग्लोआ', 'सिलिन्ड्रोस्पर्मम', 'फिशचरैला', 'हैप्लोसाइफन', 'मैस्टिगोक्लैडस', 'टोलिपोथ्रिक्स', 'वेस्टिलोप्सिस'
(छ) खमीर (यीस्ट)	'रोडोटोरूला'

भूमि में रह जाती हैं। परिणामस्वरूप अवशेष नाइट्रोजन भूमि में रह जाती है और भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में सहायक होती है।

दलहनी पौधों की ग्रंथियों से राइजोबियम को अलग करके विशेष सक्षम प्रजाति का चुनाव किया जाता है। इसके बाद इसे कृत्रिम रसायन के माध्यम

में उगाया जाता है। अंत में सक्षम प्रजातियों को कंपोस्ट या पीट आधारित माध्यम पर राइजोबियम कल्चर तैयार किया जाता है। दलहनी फसलों के बीजों को इस कल्चर से निवेशित करने पर मिट्टी में सक्षम राइजोबियम की संख्या में वृद्धि होती है जो पौधों की जड़ों पर क्रियाशील ग्रंथियों के निर्माण में वृद्धि करते हैं। इससे अंततः नाइट्रोजन का यौगिकीकरण अधिकाधिक मात्रा में होता है। अभी तक ऐसा विश्वास किया जाता था कि भारत जैसे ऊष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में राइजोबियम कल्चर के प्रयोग की खास आवश्यकता नही है क्योंकि ऐसी जलवायु वाले क्षेत्रों में दलहनी फसलों की खेती बहुत पहले से होती आ रही है और उनसे संबंधित जीवाणु भूमि में पहले से मौजूद हैं। परन्तु भारत एवं अन्य देशों में किए गये परीक्षणों से पता चला है कि ऊष्ण देशों में भी राइजोबियम कल्चर के इस्तेमाल से दलहनी फसलों के उत्पादन में सार्थक वृद्धि होती है।

जड़ ग्रंथियों का निर्माण

दलहनी फसलों की जड़ों से निकलने वाला एक विशेष प्रकार का उत्सर्ग राइजोबियम को आकर्षित करता है। राइजोबियम द्वारा ऑक्सीजन का उत्सर्जन होता है जिससे मूल रोम कुंचित हो जाते हैं और इसी माध्यम से राइजोबियम जड़ के अंदर प्रवेश कर जाता है। प्रजनन–क्रिया द्वारा इनकी संख्या में वृद्धि होती है और संक्रमण सूत्र (Infection thread) का निर्माण होता है। यह संक्रमण सूत्र जड़ों के पैरेनकाइमा कोषा तक पहुंचता है और इससे एक प्रकार के पदार्थ का उत्सर्जन होता है जिससे इन कोशाओं के आयतन में वृद्धि होती है। अब ऊपरी पैरेंकाइमा तथा इपीडर्मल कोषाओं को धक्का देकर जड़ के ऊपर एक शिशु ग्रंथि का निर्माण हो जाता है। राइजोबियम जड़ की कोशा (कार्टेक्स) में पहुंचकर अपना रूप बदल देता है जिसे जीवाणुसम (Bacteroid) कहते हैं। बैक्टीरायड के अंदर नाइट्रोजिनेस एंजाइम बनता है जो लैगहीमोग्लोबिन के साथ नाइट्रोजन यौगिकीकरण में भाग लेता है। बैक्टीरायड और लैगहीमोग्लोबिन की पारस्परिक मात्रा का नाइट्रोजन–यौगिकीकरण पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

जड़ ग्रंथियों की बनावट

प्रायः सभी दलहनी फसलों की जड़ों पर ग्रंथियाँ पाई जाती हैं। फसलों के अनुसार ये ग्रंथियां गुच्छों में या अकेले गोली या गदाकार एक खंडीय या बहुखंडीय हो सकती है। इसका रंग गुलाबी, सफेद या भूरा होता है। यह

मुख्य अथवा द्वितीयक जड़ों पर पायी जाती हैं। जड़ों में ये ग्रंथियां सख्ती के साथ या ढीली लगी रहती हैं। नाइट्रोजन यौगिकीकरण की दृष्टि से मूल जड़ों पर बड़े–गुलाबी रंग की ग्रंथियों की भूमिका विशेष महत्वपूर्ण होती है। छोटे आकार की भूरी या सफेद रंग की ग्रंथियाँ जो कि द्वितीयक जड़ों पर बनती हैं नाइट्रोजन यौगिकीकरण की दृष्टि से कम सक्षम होती हैं, परिणामस्वरूप नाइट्रोजन यौगिकीकरण कम होता है अथवा होता ही नहीं है। सफल ग्रंथिकरण और नाइट्रोजन यौगिकीकरण हेतु मिट्टी में राइजोबियम जीवाणु पर्याप्त संख्या में होने चाहिए।

उल्लेखनीय है कि राइजोबियम की प्रजाति विशेष का निवेशन एक निश्चित दलहनी फसल या उनके एक निश्चित समूह के लिए उपयुक्त होता है, दूसरे पर नहीं। इन्हें प्रति निवेशन समूह (Cross inoculation group) के नाम से जाना जाता है। यद्यपि कुल 20 प्रतिनिवेशन समूह का वर्णन मिलता है परंतु इनमें से 7 समूह प्रमुख हैं जिनका उल्लेख सारणी 10.2 में किया गया है।

सारणी-10.2 प्रतिनिवेशन समूह

प्रति निवेशन समूह	राइजोबियम प्रजाति	समूह विशेष की दलहनी फसलें
1. लूसर्न वर्गीय (रिजका)	राइजोबियम मेलीलौटी	रिजका, स्वीट क्लोवर
2. क्लोवर वर्गीय (तिपतियाचारा)	राइजोबियम ट्राइफोलाई	बरसीम
3. मटर वर्गीय	राइजोबियम लैंगूमिनोसैरम	मटर, मसूर, खेसारी, कामन बैच।
4. सेम वर्गीय	राइजोबियम फैजियोलाई	गोल्डन बीन, किडनी बीन, नैनी बीन, हैरीकाट बीन
5. ल्यूपिन वर्गीय	राइजोबियम ल्यूपिनी	सफेद ल्यूपिन, ल्यूपिनम
6. सोयाबीन वर्गीय	राइजोबियम जैपोनिकम	सोयाबीन
7. लोबिया वर्गीय	राइजोबियम प्रजाति	लोबिया, सनई, मूंगफली, उूर्द, मूंग, अरहर, कुल्थी आदि।

चने को अभी तक किसी समूह में नहीं रखा गया है। सीरमीय (Cerological) परीक्षणों के आधार पर कुछ लोगों का कहना है कि यह मटर समूह में आता है और इसकी राइजोबियम प्रजाति लेग्यूमिनोसैरम है। पहले दूसरे, तीसरे और चौथे समूह के जीवाणु तेजी से वृद्धि करने वाले हैं। प्रयोगशाला में 3–5 दिन में इनकी समुचित वृद्धि हो जाती है जबकि पांचवें और छठे समूह के प्रजातियों की उचित वृद्धि में 5–10 दिन तक लगते हैं। सातवें समूह से संबंधित कुछ राइजोबियम तेजी से वृद्धि करते हैं परंतु इनमें कुछ ऐसे भी हैं जिनकी वृद्धि धीरे–धीरे होती है।

नाइट्रोजन यौगिकीकरण

प्रति निवेशन समूह के राइजोबियम प्रजाति की स्वयं की क्षमता एवं वातावरण की दशाओं का दलहनी फसलों की नाइट्रोजन यौगिकीकरण क्षमता पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

निवेशन विधि

(क) सामान्य भूमि में

आधा लिटर पानी में 80 ग्राम चीनी या गुड़ मिलाकर घोल लें। इसके बाद उसे उबाल कर ठंडा कर लिया जाए। फिर इस घोल में एक पैकेट राइजोबियम कल्चर डालकर मिला दिया जाए। अब एक बाल्टी में 10 किलोग्राम बीज लेकर कल्चर युक्त मिश्रण को इस पर छिड़क कर साफ हाथों से धीरे–धीरे मिलाएँ ताकि हर बीज पर कल्चर की हल्की पर्त चढ़ जाए। निवेशित बीजों को किसी साफ चादर पर फैलाकर छाया में सुखाने के बाद उसी दिन तीसरे पहर बीज की बुआई कर दें। बुआई के बाद पाटा चलाकर कूंड़ों को ढक देना चाहिए।

(ख) क्षारीय या अम्लीय भूमि में

क्षारीय भूमि में राइजोबियम से उपचारित बीज के ऊपर जिप्सम का आवरण और अम्लीय भूमि में खड़िया का आवरण चढ़ा देने से भूमि की क्षारीयता और अम्लीयता का राइजोबियम की क्षमता पर पड़ने वाला कुप्रभाव कम हो जाता है। इस प्रक्रिया को बीज का कोट करना या प्लेटिंग करना कहते हैं।

इस विधि द्वारा बीजों को राइजोबियम कल्चर से उपचारित करने के लिए पानी में शक्कर या गुड़ के साथ ही एक चिपकने वाला पदार्थ अर्थात सफेद गोंद लगभग 200 ग्राम प्रति लिटर पानी की दर से मिला देते हैं ताकि बीज के ऊपर जिप्सम (क्षारीय भूमि में) या खड़िया (अम्लीय भूमि में) का चूर्ण भलीभांति चिपक जाए। राइजोबियम कल्चर से बीज को उपचारित कर लेने के बाद महीन पिसे हुए जिप्सम या खड़िया की 25 से 10 कि.ग्रा. (बीज के आकार के अनुसार) मात्रा प्रति 10 कि.ग्रा. बीज के ऊपर छिड़क कर अच्छी प्रकार मिला देते हैं जिससे खड़िया या जिप्सम बीज पर आवरण जैसा चढ़ जाए। साधारणतया बड़े आकार वाले बीज के लिए जिप्सम या खड़िया की मात्रा 25 कि.ग्रा., मध्यम आकार के बीज के लिए 6 कि.ग्रा. और छोटे आकार के बीज के लिए 10 कि.ग्रा. पर्याप्त होती है। इस प्रकार से उपचारित बीज को छाया में फैला कर सुखाने के बाद बुआई कर देते हैं।

सफल निवेशन के लिए सावधानियाँ

1. हर फसल के लिए उसका विशिष्ट कल्चर ही इस्तेमाल करना चाहिए।

2. कल्चर का इस्तेमाल यथाशीघ्र कर लेना चाहिए। यदि बुआई में विलंब हो तो इसे ठंडे स्थान (30° सेंटीग्रेड से कम ताप पर) में रख दिया जाए। 40° सेंटीग्रेड से अधिक तापक्रम हो जाने पर कल्चर की शक्ति का ह्रास प्रारंभ हो जाता है। कल्चर तैयार करने से 3 महीने के अंदर इसका इस्तेमाल कर लेना चाहिए।

3. एक पैकेट कल्चर से बीज की निर्दिष्ट मात्रा (10 कि.ग्रा.) का निवेशन करना चाहिए।

4. कल्चर को हमेशा हल्के हाथों से मिलाना चाहिए अन्यथा रगड़ से बीज के छिलके अलग हो जायेंगे।

5. यथासंभव बुआई तीसरे पहर की जाए। यदि बुआई दोपहर या पहले की जाए तो कूड़ों को बुआई के बाद तुरंत बंद कर देना चाहिए।

6. खेत में नाइट्रोजन की अधिक मात्रा डालने के बाद कल्चर का पूरा लाभ नहीं मिल पाता। इसके विपरीत फास्फोरस की उचित पूर्ति से राइजोबियम की क्षमता में वृद्धि होती है।

7. कीट–नाशक रसायनों से उपचारित बीजों को 3–4 बार साफ पानी से धोने के बाद ही कल्चर का निवेशन किया जाए। 10 ग्राम खड़िया मिलाना लाभप्रद रहता है।

राइजोबियम कल्चर का फसलों की उपज पर प्रभाव

परीक्षणों से पता चला है कि विभिन्न दलहनी फसलों के बीजों को राइजोबियम कल्चर से निवेशित करके बुआई करने पर दाने की उपज में सार्थक वृद्धि होती है। संबंधित आंकड़े रेखाचित्र 10.1 एवं 10.3 में दिए गये हैं।

उल्लेखनीय है कि जिस फसल में राइजोबियम कल्चर का इस्तेमाल किया जाता है उसकी उपज में वृद्धि होने के अलावा इसका अवशेष प्रभाव बाद में ली जाने वाली फसल पर भी पड़ता है। रेखाचित्र 10.2 में इससे संबंधित परीक्षणों के आंकड़े प्रदर्शित किए गए हैं।

भारत के विभिन्न मृदा–जलवायु वाले क्षेत्रों में किए गए परीक्षणों से पता चला है कि राइजोबियम की सक्षम प्रजातियों से बीजों का निवेशन करके बुआई करने पर बहुत थोड़ी मात्रा में (10–25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर) नाइट्रोजन प्रयोग करने की आवश्यकता होती है।

विभिन्न राइजोबियम विभेद (स्ट्रेन) की दक्षता में अंतर

भारत में किये गये परीक्षणों से स्पष्ट हो चुका है कि विभिन्न राइजोबियम विभेदों की दक्षमता में काफी अंतर पाया जाता है। कानपुर में किए गए परीक्षणों से प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि विभिन्न राइजोबियम विभेदों द्वारा बरसीम की उपज में 18.2 से 75.1 प्रतिशत अतिरिक्त उपज मिली। यह अंतर विभिन्न राइजोबियम विभेदों की दक्षमता में विभिन्नता के कारण ही है।

क्षारीय भूमि में जिप्सम पिलेटिंग द्वारा राइजोबियम की दक्षता में वृद्धि

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि क्षारीय भूमि में बोये जाने वाले बीज पर पिलेटिंग कर देने से राइजोबियम की दक्षमता में वृद्धि हो जाती है।
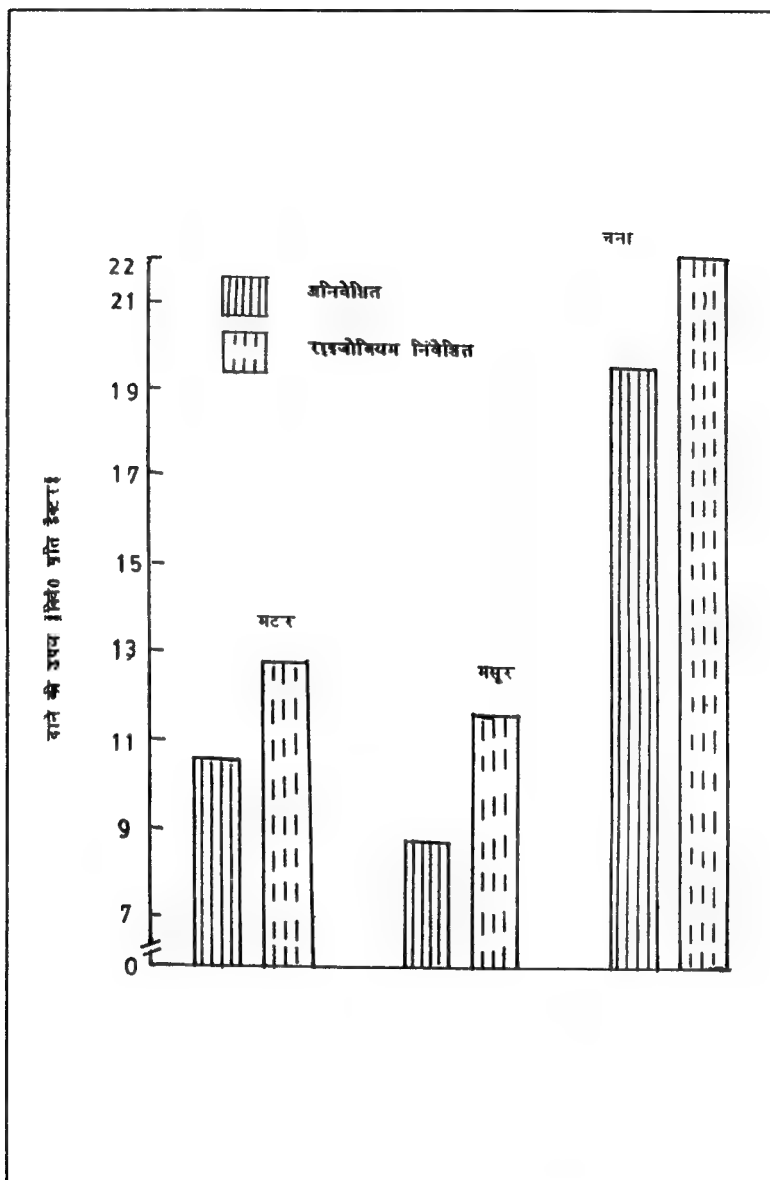
रेखाचित्र-10.1 विभिन्न दलहनी फसलों की उपज पर राइजोबियम निवेशन का प्रभाव
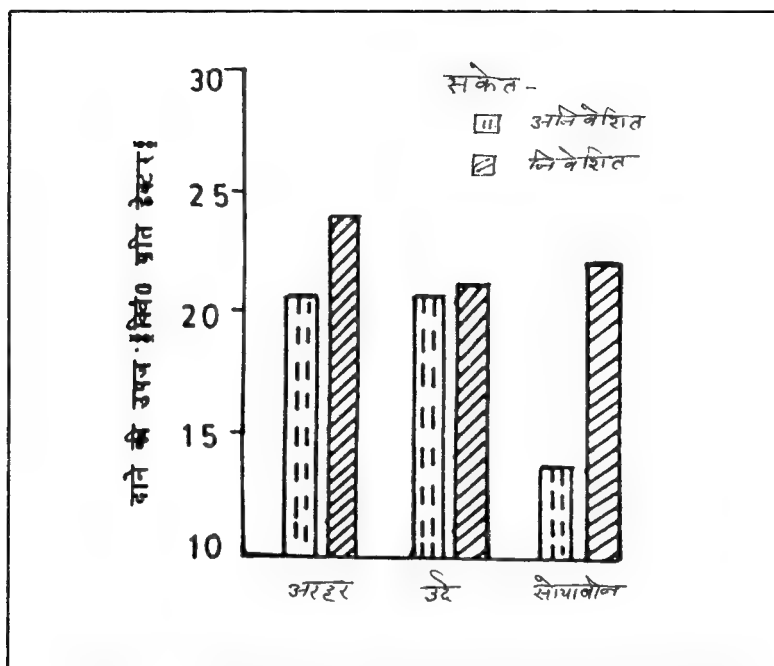
रेखाचित्र-10.2 खरीफ की दलहनी फसलों में प्रयुक्त राइजोवियम कल्चर का गेहूं की उपज पर प्रभाव

असहजीवी जीवाणुओं द्वारा नाइट्रोजन यौगिकीकरण

सहजीवी जीवाणुओं के अलावा प्रकृति में कुछ ऐसे भी सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं जो स्वतंत्र रूप से जीवन–यापन करते हुए वायुमंडलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करने में सक्षम होते हैं। ऐसे सूक्ष्म जीवों द्वारा संपन्न होने वाली वायुमंडलीय नाइट्रोजन के यौगिकीकरण की क्रिया को असहजीवी नाइट्रोजन–यौगिकीकरण कहते हैं। ये परपोषित सूक्ष्म जीव नाइट्रोजन यौगिकीकरण हेतु आवश्यक ऊर्जा जड़ों के उत्सर्ग अथवा मिट्टी के जैव पदार्थ से प्राप्त करते हैं। जैसा कि इनके नाम (परपोषित) से स्पष्ट है कि ये सूक्ष्म जीव अपना भोजन स्वयं तैयार करने में असमर्थ होते हैं और जैव अवशेषों से भोजन प्राप्त करते हैं।

सारणी-10.3 राइजोबियम निवेशन का दलहनी फसलों पर प्रभाव

फसल	उर्वरक द्वारा नाइट्रोजन की पूर्ति (कि.ग्रा. प्रति हे.)	प्रतिशत उपज	संदर्भ
सोयाबीन	–	13–139	बालसुंदरम एवं सुब्बाराव, 1977
	–	26–92	तिलक एवं सुब्बाराव, 1978
	100	10–19	तिलक एवं सक्सैना, 1974
अरहर	–	2–40	रेवारी एवं तिलक, 1988
चना	–	13–39	राय इत्यादि, 1977
मसूर	–	17	रेवारी एवं तिलक, 1988
	25	43	सेखों इत्यादि, 1978
मूंग	20	51	सिंह, 1977
लोबिया	–	33–53	भाग्यराज एवं हेगड़े, 1978
मूंगफली	–	11–32	कुलकर्णी इत्यादि, 1986
उर्द	–	4–29	रेवारी एवं तिलक, 1988

एजोटोबैक्टर

एजोटोबैक्टर स्वतंत्र जीवन–यापन करते हुए नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले जीवाणुओं में एजोटोबैक्टर का महत्वपूर्ण स्थान है। कृत्रिम रूप से तैयार किए गये एजोटोबैक्टर क्रोकोकम के सवंर्धक (कल्चर) के प्रभाव का अध्ययन विभिन्न फसलों की उपज पर देखा गया है जिनसे प्राप्त परिणामों का विवरण सारणी 10.4 में दिया गया है।

एजोटोबैक्टर में नाइट्रोजन यौगिकीकरण के अलावा बीजों के अंकुरण में वृद्धि की क्षमता पायी जाती है, परिणामस्वरूप प्रति इकाई क्षेत्रफल में पौधों की संख्या में वृद्धि हो जाती है। साथ ही पौधों की जड़ों के बीज जीव–भार में भी वृद्धि हो जाती है जिसके फलस्वरूप प्रारंभ में पौधों में विशेष प्रकार

सारणी-10.4 एजोटोबैक्टर निवेशन का फसलोत्पादन पर प्रभाव

फसल	उर्वरक द्वारा पूर्ति			प्रतिशत उपज वृद्धि	संदर्भ
	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटेशियम		
गेहूँ	120	–	7	11	शेंदे एव आप्टे, 1982
	–	–	–	10–30	सुंदरराव इत्यादि, 1963
धान	120	60	60	23	मेहरोत्रा एवं लहरी, 1971
मक्का	–	7	–	34	मिसुस्टिन एवं शिलिनिकोवा, 1969
ज्वार	–	–	–	15–20	रेड्डी इत्यादि, 1977
बाजरा	–	–	–	0–27	वानी, 1988
प्याज	–	50	100	22	जोय एवं शेंदे, 1976
टमाटर	–	–	7	2–24	मेहरोत्रा एवं लहरी, 1971
कपास (रेशे)					
सिंचित	63	30	–	10–20	चहल इत्यादि, 1979
असिंचित	–	–	–	11–16	पोथीराज, 1979
गन्ना	–	7	–	24	हपासे इत्यादि, 1984

की शक्ति का संचार हो जाता है। अध्ययनों से पता चला है कि इन जीवाणुओं से इन्डोल एसिटिक अम्ल, जिबरेलिंस, काइनेटिन, विटामिन बी आदि का उत्सर्जन होता है जिससे पौधों की वृद्धि अपेक्षाकृत अधिक होती है। ऐजोटोबैक्टर क्रोकोकम एक विशेष प्रकार की फफूदी नाशक एंटीबायोटिक का संश्लेषण करने में सक्षम होता है। अतः पौधा फफूंदी द्वारा होने वाले रोगों के प्रति स्वतः सहिष्णु हो जाता है। इसके अलावा एजोटोबैक्टर द्वारा पर्याप्त मात्रा में गोंद या बहु–शर्कराइड (पाली सैकराइड) का उत्सर्जन होता है जो कि मिट्टी की संरचना में सुधार लाता है। ज्ञातव्य है कि मिट्टी तथा पौधों के मूल परवेषी (Rhizosphere) क्षेत्र में ये जीवाणु बहुत कम संख्या में पाए जाते हैं। अतः जीवाणु के संवर्धक के नियमित इस्तेमाल द्वारा इनकी संख्या में वृद्धि के उपाय करते रहना चाहिए।

एजोस्पिरिलम

ब्राजील के डोबेरिनर ने वर्ष 1975 में स्पिरिलम लीपोफेरम नामक बैक्टीरिया की खोज की जिसमें मक्का और कुछ खरपतवारों के साथ 'सहचर्य सहजीवन' स्थापित करने की क्षमता है। इसे ही आजकल 'एजोस्पिरिलम' के नाम से जाना जाता है। भारत में खाद्यान्न फसलों (अदलहनी) के उत्पादन में 'एजोस्पिरिलम' के योगदान संबंधी अध्ययन सर्वप्रथम भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा प्रारंभ किए गये। इसके अंतर्गत धान, मक्का, ज्वार और कुछ खरपतवारों की जड़ों से ऐजोस्पिरिलम के बहुत से विभेद (स्ट्रेन) अलग किये गये। जिसके फलस्वरूप नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने में सक्षम 'एजोस्पिरिलम ब्राजीलेंस' नामक विभेद की पहचान की गई। इस विभेद की नाइट्रोजन यौगिकीकरण क्षमता ब्राजील के पूर्व परीक्षित विभेद की तुलना में अधिक पायी गयी। परीक्षणों से पता चला है कि इस जीवाणु द्वारा नाइट्रोजन का अधिकतम यौगिकीकरण के लिए 30–35° सेंटीग्रेड तापमान विशेष उपयुक्त रहता है। भारत के विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में उगायी जाने वाली विभिन्न फसलों (धान, गेहूँ, जौ, जई और ज्वार) में एजोस्पिरिलम के प्रयोग से होने वाली वृद्धि और नाइट्रोजन की मात्रा में कटौती की संभावनाओं का पता लगाने हेतु एक विस्तृत पैमाने पर क्षेत्र–परीक्षण किये गये जिनसे प्राप्त परिणामों का उल्लेख सुब्बाराव एवं सहयोगियों (1980) ने किया है। संबंधित आंकड़े सारणी 10.6 में दिये गये हैं।

नील हरित शैवाल (काई)

भारत में किये गए अनुसंधानों से पता चला है कि धान में नील हरित शैवाल (काई) की कुछ प्रजातियों के माध्यम से धान के खेतों में नाइट्रोजन के यौगिकीकरण के फलस्वरूप कुछ हद तक नाइट्रोजन की पूर्ति की जा सकती है। इससे अनुमानतः प्रति हेक्टेयर 10–40 कि.ग्रा. (औसत 30 कि.ग्रा.) नाइट्रोजन का यौगिकीकरण होता है। उल्लेखनीय है कि जल गम्यता की दशा जिसमें धान उगाया जाता है, नील हरित शैवाल की औलोसिरा, एनाबिना, एनाबिनाप्सिस, कैलोथ्रिक्स, कैम्पाइलोनिमा, सिलिंड्रोस्पर्मम, फिश्चरेला, हैप्लोसीफान, माइक्रोकीटे, नास्टोक, वेस्टिलौप्सिस और टोलीपोथ्रिक्स नामक प्रजातियों के लिए सर्वथा उपयुक्त रहती है। नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करने के अलावा नील हरित शैवाल द्वारा अनेक विटामिनों एवं वृद्धि पदार्थों (विटामिन–12), आक्जींस (एस्कार्बिक अम्ल) का संश्लेषण एवं उत्सर्जन होता है जिससे पौधों की वृद्धि विशेष अच्छी होती है। साथ ही इसके प्रयोग से जीवांश पदार्थ की मात्रा में भी वृद्धि होती है।

क्षेत्र–परीक्षणों से पता चला कि धान के खेतों में ऐसे शैवाल का निवेशन करने से विभिन्न जातियों की उपज में महत्वपूर्ण वृद्धि होती है। संबंधित आंकड़े सारणी 10.6 में दिये गये हैं। कृषकों के खेतों पर किये गये परीक्षणों में भी नील हरित शैवाल के प्रयोग से महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है।

सारणी-10.6 एजोस्पिरिलम निवेशन का फसलोत्पादन पर प्रभाव

	उर्वरक द्वारा नाइट्रोजन पूर्ति (कि.ग्रा./हे.)	प्रतिशत उपज वृद्धि	संदर्भ
गेहूँ	80	16–20	सुब्बाराव इत्यादि, 1979
धान	40	3–17	सुब्बाराव इत्यादि, 1979
मक्का	120	14	कपुलनिक इत्यादि, 1981
जौ	40	17	सुब्बाराव इत्यादि, 1979
ज्वार	–	23–64	सुब्बाराव इत्यादि, 1979
बाजरा	–	0–37	बानी, 1988

3261 HRD/2000—30

नीलहरित शैवालों से संवर्धक तैयार करने की विधि

नील हरित शैवालों से संवर्धक किसान बड़े सरलता से बहुत कम कीमत पर स्वयं बना सकते हैं और खेतों में डाल सकते हैं।

अनुसंधान के माध्यम से ग्रामोपयोगी विधि का मानकीकरण किया गया है। इस विधि में किसान अपने खेत में जहाँ पर पानी की उचित सुविधा उपलब्ध हो, 5x4 या 2 मीटर की क्यारियाँ जिसका पीएच. मान 8.0 या 8.4 हो, को बनाकर 5.5x4.5 या 2.5 मीटर काली पालीथिन की चादर क्यारी की धरातल पर फैलाकर 15 से.मी. ऊंची व 50 से.मी. चौड़ी मेंड बना लें। तत्पश्चात् 2.0 कि.ग्रा. प्रतिवर्ग मीटर की दर से खेत की मिट्टी सतह पर समतल रूप में फैला दीजिए और 200–500 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से बालू मिला दें। फिर खेत में 10 से.मी. सतह तक पानी भर दें। 50 ग्राम सुपर फास्फेट और 5 ग्राम कार्बोफ्यूरॉन (3.0 प्रतिशत) या बी.एच.सी. (10 प्रतिशत) कीट प्रकोप से शैवाल को बचाने के लिए प्रति वर्गमीटर की दर से डालकर घंघोल देना चाहिए। जब पानी स्थिर अवस्था में हो जाए तो 125 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से बहुप्रजातीय नील हरित शैवाल के मिश्रण (नॉस्टाक, आलोसिरा, फर्टीलिज्मा, टालिपोथ्रिक्स ट्यूनिस, सिलिंड्रोस्पर्मम आदि) का जामन बिखेर देना चाहिए। जामन डालने के बाद 10–15 दिन तक में नीलहरित शैवाल सतह पर एक मोटी चटाई के रूप में उग आयेगी। अब खेत में पानी भरना बंद कर देना चाहिए। जब नील हरित शैवाल की पपड़ी सूख जाए तो उसे खुरच कर इकट्ठा कर लें। यदि नमी हो तो उसे और सुखा लें। इस तरह से एक क्यारी से (20 वर्गमीटर) 35 किलोग्राम नीलहरित शैवाल धान के खेत के लिए प्रयोग करने हेतु तैयार हो जाती है जो 3.5 एकड़ खेत के लिए पर्याप्त होता है। नील हरित शैवाल को खुरचने के बाद खेत में पानी भर दें और पुनः जामन डालकर सवंर्धन की प्रक्रिया साल भर करके काफी मात्रा में नील हरित शैवाल कल्चर तैयार कर सकते हैं। उत्पादित नीलहरित शैवाल को काफी दिनों तक रखे रहने पर इनकी क्षमता में ह्रास नहीं होता है।

एजोला

एजोला की कृषि में उपयोगिता संबंधी जानकारी सर्वप्रथम वियतनाम और थाइलैंड से प्राप्त हुई। एजोला एक जलीय फर्न है। यह एनाबीना एजोली (Anabaena azollae) नामक नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले नील हरित

शैवाल के पृष्ठीय पत्तियों के खोहों (Cavities) में सहजीवी सूक्ष्मजीव के रूप में पाया जाता है। नीलहरित शैवाल एवं एजोला के पारस्परिक सहजीवन के फलस्वरूप वायुमंडलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण होता है। केन्द्रीय धान अनुसंधान संस्थान, कटक में क्षेत्र परीक्षणों से पता चला कि पूरे वर्ष भर एजोला की खेती की जा सकती है। ऐजोला में निम्नांकित विशेषताएँ पाई जाती हैं:

1. इसमें सौर ऊर्जा उपयोग करने की क्षमता पायी जाती है।

2. संयुक्त नाइट्रोजन की उपस्थिति में यह नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करने में सक्षम होता है।

3. सघन पर्णघनत्व के कारण इनसे प्रति वर्ष प्रति हेक्टेयर क्षेत्रफल से 37 टन जैव पदार्थ प्राप्त हो जाता है।

इन विशेषताओं के साथ ही इसमें निम्नांकित दोष भी पाये जाते हैं:

1. यह तेज धूप एवं कम ताप के प्रति संवेदनशील होता है। इन दोनों ही दशाओं में इसमें एंथोसाइऐनिन का निर्माण होने लगता है।

2. यह नहरों एवं अन्य जल स्रोतों में उगकर एक समस्या उत्पनन कर देता है।

3. शीघ्र ही इसका स्वलयन (Autolysis) हो जाने के कारण इनके संरक्षण एवं यातायात में बाधा पड़ती है। साथ ही इसकी बुआई में भी बाधा पड़ती है।

धान की रोपाई के बाद थोड़ी सी मात्रा में फर्न का निवेशन करने से प्रतिदिन 1–2 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से नाइट्रोजन का यौगिकीकरण होता है। इसका मल्टीप्लिकेशन बहुत ही जल्दी होता है। खेत में एजोला का 0.1 से 0.4 किलोग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से निवेशित करने पर इसका विकास इतनी तेजी से होता है कि 8 से 20 दिन के अंदर एक से 8–15 टन हरा पदार्थ प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार साल भर में 347 टन हरा पदार्थ प्राप्त होता है जिसमें 868.5 किलोग्राम नाइट्रोजन होता है। उल्लेखनीय है कि हरे पदार्थ में 0.2 से 0.3 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा शुष्क पदार्थ में 4–5 प्रतिशत नाइट्रोजन पाया जाता है। ऐजोला के हरे पदार्थ में 94 प्रतिशत जल होता है।

मिट्टी में एजोला के हरे पदार्थ विघटन के फलस्वरूप अधिकांश नाइट्रोजन धान की फसल को उपलब्ध हो जाती है। जलाक्रांत की दशा में धान के खेत में नाइट्रोजन की लगभग आधी मात्रा का खनिजीकरण तीन सप्ताह के अंदर हो जाता है और 6–8 सप्ताह के अंदर दो–तिहाई नाइट्रोजन का खनिजीकरण हो जाता है। अतः जलाक्रांत दशा में ऐजोला द्वारा धान की फसल में नाइट्रोजन की पूर्ति का महत्व स्वतः स्पष्ट हो जाता है। अंतर्राष्ट्रीय धान अनुसंधान संस्थान, फिलीपाइन में किये गये प्रयोगों से पता चला है कि छः सप्ताह के उद्भवन के बाद एजोला द्वारा मुक्त किए गए कुल नाइट्रोजन का 62–75 प्रतिशत भाग अमोनिया रूप में पाया जाता है।

एजोला के पौधों में नाइट्रोजन के अलावा शुष्क पदार्थ में 0.5 से 0.9 प्रतिशत फास्फोरस, 2–4.5 प्रतिशत पोटेशियम, 0.4 से 1.0 प्रतिशत कैल्सियम, 0.5 से 0.65 प्रतिशत मैंग्नीशियम, 0.11–0.16 प्रतिशत मैंगनीज और 0.06 से 0.26 प्रतिशत लोहा पाया जाता है। अतः स्पष्ट है कि ऐजोला से नाइट्रोजन के साथ ही अन्य आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति होती है।

एजोला का खेती में उपयोग

एजोला के समुचित विकास के लिए खेत में 5–10 से.मी. ऊंचा पानी भरना तथा 4–8 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से फास्फेट का प्रयोग करना अति आवश्यक होता है। यदि पानी की समुचित व्यवस्था हो तो एजोला का इस्तेमाल हरी खाद की तरह किया जा सकता है। इसके लिए एजोला की बुआई (500–1000 कि.ग्रा. ताजा एजोला प्रति टन) धान की रोपाई के एक महीने पहले कर देनी चाहिए। ज्ञातव्य है कि 2000 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से एजोला की बुआई करने पर अपेक्षाकृत कम समय में ही हरे पदार्थ की आवश्यक पूर्ति हो जाती है। कभी–कभी कीड़े भी नुकसान पहुंचाते हैं। ऐसी दशा में निवेशन करते समय ही 3–15 ग्राम की दर से कार्बोफ्यूरॉन मिला दिया जाता है। लगभग 10–20 दिन के उद्भवन के पश्चात् संपूर्ण क्षेत्र एजोला से भर जाता है जिसे पलट कर मिट्टी में मिलाने के बाद धान के पौध की रोपाई की जाती है।

जब समुचित मात्रा में पानी उपलब्ध न हो तो ताजे एजोला का निवेशन 200–1000 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से सुपर फास्फेट व कीटनाशक रसायन के साथ धान के पौध की रोपाई होने के एक सप्ताह बाद किया जाता

है। निवेशन के 20–40 दिन बाद सारा खेत एजोला की वृद्धि के फलस्वरूप ढक जाता है जिसे 'रोटरी हो' की मदद से मिट्टी में मिला दिया जाता है। यदि संभव हो सके तो खेत का पानी बाहर निकाल देना चाहिए। इसे जलाक्रांत दशा में भी मिट्टी में मिलाया जा सकता है परंतु हरे पदार्थ के विघटन में अपेक्षाकृत समय अधिक लग जाता है जो कि फसल के हित में नहीं होता।

एजोला का धान की उपज पर प्रभाव

इन दोनों ही विधियों से एजोला का इस्तेमाल करने पर धान की उपज में प्रति हेक्टेयर औसतन 0.5 से 2 टन की वृद्धि होती है। किए गये क्षेत्र परीक्षण से पता चला कि 10 टन प्रति हेक्टेयर की दर से धान के खेत में एजोला मिलाने से नियंत्रित तुलना में धान के दाने व पुआल की उपज में 25 से 47 प्रतिशत वृद्धि हुई। भारत में किये गए परीक्षणों के परिणाम सारणी 10.7 में दिये गये हैं।

इसके अलावा कटक में एजोला के प्रभाव का अध्ययन नाइट्रोजन की विभिन्न मात्राओं के साथ किया गया जिससे पता चला है कि नाइट्रोजनधारी उर्वरकों के साथ एजोला विशेष प्रभावकारी सिद्ध होता है।

अन्य सूक्ष्म जीव

माइकोराइजा

अनेक पौधों की जड़ों में सामान्य रूप से वैस्कुलर आरबसकुलर माइकोराइजा (VAM) कवक पाया जाता है जो कि पौधों की जड़ के आपसी सह–संबंध से फास्फोरस के अवशोषण में मदद करता है। जहाँ वी.ए.एम. से संक्रमित पौधों द्वारा पोषक तत्वों का अवशोषण अधिक मात्रा में किया जाता है। अतः इसकी ओर अब विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। वी.ए.एम. से संक्रमित पौधे जल का उपयोग अधिक गतिशीलता से करते हैं। इन कवकों का दलहनी फसलों के पोषण में भी काफी महत्व है यह राइजोबियम जीवाणुओं की क्रियाशीलता पर अनुकूल प्रभाव डालता है, इनकी उपस्थिति में जड़–ग्रंथियों की संख्या और नाइट्रोजन यौगिकीकरण में वृद्धि हो जाती है। इसके अलावा यह लाभकारी पादप वृद्धि पदार्थ भी पैदा करते हैं जिसका पौधों की वृद्धि और उत्पादन पर लाभकारी प्रभाव पड़ता है।

माइकोराइजा निवेशन का फसलोत्पादन पर प्रभाव सारणी 10.8 में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी-10.8 माइकोराइजा (VAM) निवेशन का फसलोत्पादन पर प्रभाव

फसल	उर्वरक द्वारा फास्फोरस की पूर्ति (कि.ग्रा. प्रति है.)	प्रतिशत उपज वृद्धि	संदर्भ
रागी	19	18	गोविंदराव इत्यादि, 1988
सोयाबीन	25–50	19	भाग्यराज इत्यादि, 1979
मिर्च	37.5	55	भाग्यराज एवं श्री राममुलू, 1982
चना	40	25	सिंह एवं तिलक, 1989
मूंगफली	–	10–20	केशवराज इत्यादि, 1980

फास्फोरस का रूपांतरण (Transformation of phosphorus)

मिट्टी में फास्फोरस विभिन्न कार्बनिक तथा अकार्बनिक रूपों में पाया जाता है। इस खनिज तत्व का रूपांतरण सूक्ष्मजीवों द्वारा निम्न प्रकार होता है।

रूपांतरण	भाग लेने वाले सूक्ष्मजीव
1. कार्बनिक फास्फोरस पदार्थ का आर्थोफास्फेट में खनिजीकरण।	वैसिलस, आर्थोबैक्टर, एस्परजिलस, पेनीसिलियम, राइजोपस, कनिधमेला आदि।
2. अघुलनशील फास्फोरस पदार्थों का घुलनशील रूप में परिवर्तन।	वैसिलस, मेगाथीरियम, वैसिलस सर्कुलांस, इस्चेरीसिया फ्रेन्डाई, पेनीसिलियम, स्यूडोमोनास, माइको बैक्टीरियम तथा फेलवो बैक्टीरियम की कुछ जातियाँ।
3. अकार्बनिक एवं घुलनशील फास्फोरस पदार्थों का कोषीय पदार्थों में परितर्वतन।	परिपोषी जीवाणु, कवकानि तथा किरण कवकानि की अनेक जातियाँ।

4. अकार्बनिक फास्फोरस पदार्थों का ऑक्सीकरण।	उपरोक्त सभी सूक्ष्मजीव।
5. अकार्बनिक फास्फोरस पदार्थों का अवकरण।	क्लास्ट्रीडियम न्यूटारिकम, इस्चरोसिया, कोजाई तथा अन्य अवायुवीय सूक्ष्मजीव।

मृदा में होने वाले फास्फोरस के इन परिवर्तनों को निम्नांकित रूप से प्रदर्शित किया जा सकता है।

फास्फोरस घोलक जीवाणुओं का मृदा उर्वरता पर प्रभाव

मृदा और उर्वरक फास्फोरस को घुलनशील बनाने में सूक्ष्म जीवों की महत्वपूर्ण भूमिका है। अनुसंधानों से यह पता चला है कि स्यूडोमोनास स्ट्रेटा व बैलियस पालीमिक्सा नामक जीवाणु तथा एरजिलस एवामोरी नामक कवक इस प्रक्रिया में लाभकारी सिद्ध हुये हैं। विभिन्न फसलों के साथ बीज/पौधों की जड़ों (रोपाई के समय) के माध्यम से इन अणु जीवों का कल्चर निवेशित करने पर अनुपलब्ध फास्फेट घुलनशील अवस्था में परिवर्तित होकर पौधों को आसानी से प्राप्त होने लगता है जिसका उत्पादन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। सारणी में दिये गये आंकड़ों से इस कथन की पुष्टि हो जाती है।
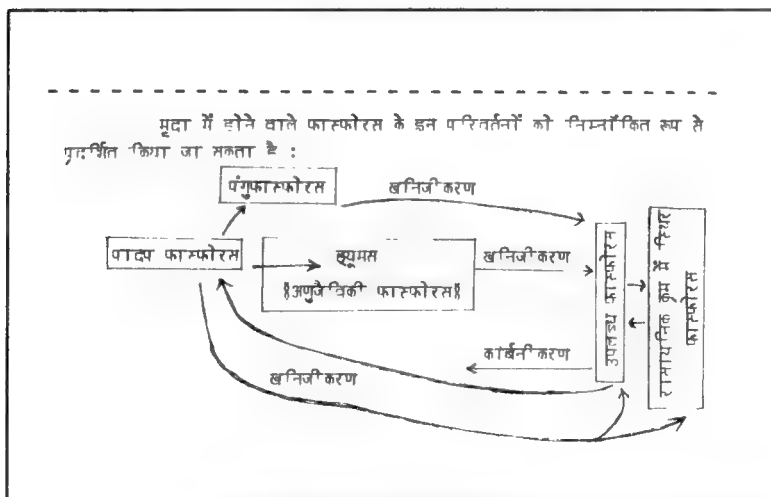
रेखाचित्र-10.3 फास्फोरस–चक्र

कार्बन का रूपांतरण (Transformation of Carbon)

जैसा कि कार्बनिक पदार्थ के विघटन के समय उल्लेख किया जा चुका है इसके विघटन के फलस्वरूप कार्बन डाई ऑक्साइड निकलती है, जो पौधों तथा सूक्ष्मजीवों द्वारा प्रयुक्त होकर कार्बनिक पदार्थ में बदल जाती है। इस प्रकार प्रकृति में कुछ अन्य क्रियाओं के सहयोग से कार्बन का चक्र चलता है जिसे हम संक्षेप में निम्नांकित रूप से प्रदर्शित कर सकते हैं।

कार्बनिक पदार्थों का विघटन एवं सूक्ष्मजीव

कार्बनिक पदार्थों (जो सेल्यूलोज एवं लिग्निन से संबंधित होता है), के विघटन में सूक्ष्मजीवों की भूमिका विशेष रूप में सराहनीय है। इनकी क्रियाशीलता की वजह से कार्बनिक पदार्थों के विघटन में कवक प्रजातियों में ट्राइकुरस स्पाइरेलिस एवं पेसिलोमाइसीज फ्यूजीस्पोरस प्रायोगिक दृष्टि से कारगर सिद्ध हुये हैं। इन कवक प्रजातियों में कुछ ऐसी प्रजातियाँ हैं जो देशज रॉकफास्फेट की अघुलनशील फास्फेट को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित कर देते हैं जिससे कार्बनिक पदार्थों से तैयार कम्पोस्ट में उपलब्ध
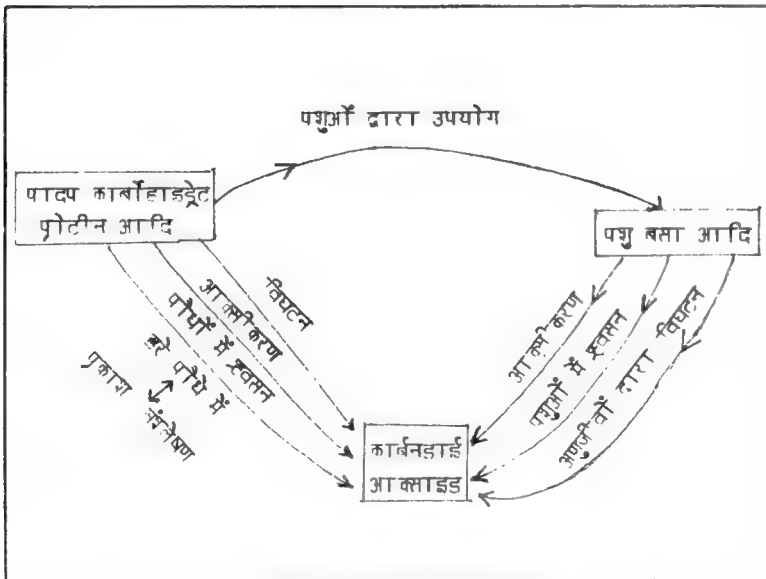
रेखाचित्र-10.4 कार्बन–चक्र

विलेय फास्फेट की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। ऐसी कार्बनिक खादों का फसलों के उत्पादन पर विशेष अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

गंधक का रूपांतरण (Transformation of SSulphur)

प्रोटीन के विघटन (Proteolysis) के फलस्वरूप जैसा कि नाइट्रोजन के रूपांतरण में बताया जा चुका है, अमीनो अम्ल बनते हैं। इनमें से कुछ अम्ल गंधकयुक्त होते हैं जैसे सीस्टीन सिस्टाइन, मेथिओनीन, डाउरीन आदि। इन गंधक युक्त अमीनो अम्ल पर विभिन्न प्रकार के परिपोषी सूक्ष्मजीवों की प्रक्रिया के फलस्वरूप गंधक अकार्बनिक रूप में बाहर निकलता है। फेने (1951) के अनुसार, सिस्टीन अमीनो अम्ल मृदा में पहले सिस्टाइन के रूप में ऑक्सीकृत होता है जो पुनः सिस्टाइन डाई सल्फाक्साइड तथा सिस्टीन सल्फीनिक अम्ल में परिवर्तित हो कर अंततः सल्फेट के रूप में ऑक्सीकृत हो जाता है।

सिस्टीन ———> सिस्टाइन ———> सिस्टाइन डाई सल्फाक्साइड
R —SH R – – R R–SO.OS–R

सिटीन सल्फीनिक अम्ल ———> सल्फेट
R– SO_2 – H SO_4
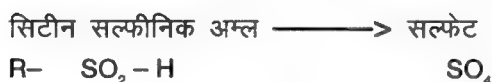
जीवाणु अपने शुद्ध संबर्द्ध रूप में सिस्टीन को पाइरुबिक अम्ल, हाइड्रोन सल्फाइड और अमोनिया में बदल देते हैं।

	सिस्टीन	पाइरूविक अम्ल +		हाइड्रोजन +
सिस्टीन	———>			सल्फाइड
CH_2 SH	डिसल्फोरेज	CH_3	+	H_2S +
CH NH_2 + H_2O		C=O		अमोनिया
COOH		COOH		NH_3
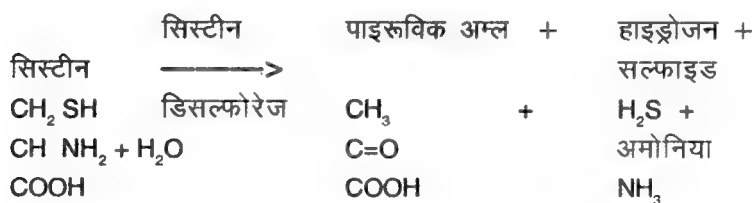
सिस्टीन तथा अन्य अमीनो अम्लों के ऑक्सीकरण के फलस्वरूप बने सल्फेट सूक्ष्मजीव या तो पौधों द्वारा शोषित हो जाते हैं या अवायुवीय दशा में डिसल्फोवाइब्रियो जीवाणु की क्रियाशीलता से हाइड्रोजन सल्फाइड के रूप में अवकृत हो जाता है।

$$Ca\,SO_4 + 4H_2 \longrightarrow H_2S + Ca(OH)_2 + 2H_2O$$
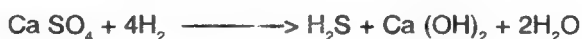
लौह का रूपांतरण (Transformation of Iron)

अन्य खनिज तत्वों की भांति लौह का भी भूमि में सूक्ष्मजीवों द्वारा रूपांतरण होता है। निम्नलिखित परिवर्तन उल्लेखनीय हैं:

(अ) लौह का ऑक्सीकरण (Oxidation of iron)

यद्यपि लौह मृदा का एक प्रमुख रासायनिक अंग है परंतु इसका अधिकांश भाग अप्राप्य रूप में होता है जिसे पौधे अपने उपयोग में नहीं ला पाते। फलतः पौधों में लोहे का अभाव हो जाता है। इसका मुख्य कारण अप्राप्य लोह रूप (फेरस) का कुछ रसायन स्वपोषी (Chemoautotroph) जीवाणुओं द्वारा अप्राप्य रूप (फेरिक लोह) परिवर्तित हो जाता है। इस क्रिया में भाग लेने वाले मुख्य जीवाणु थायो वैसिलस फेरो ऑक्सीडॉस तथा फेरोबैसिलस फेरोऑक्सीडांस हैं।

(ब) लौह-अवकरण (Reduction of iron)

अच्छे जल निकास वाली भूमि में अधिकांश लोह ऑक्सीकृत रूप में रहता है जौ पौधों के लिए उपयोगी नहीं होता। मृदा के जल मग्न हो जाने पर या अवायुवीय अवस्था उत्पन्न होने पर मृदा का ऑक्सीकरण–अवकरण विभव कम हो जाता है। इस दशा में ऑक्सीकृत फेरिक लोह अवकृत होकर फेरस लोह में परिवर्तित हो जाता है। ऑक्सीकरण–अवकरण विभव मान (Eh) 0. 2 वोल्ट से कम होने पर लोहा का सर्वाधिक अवकरण होता है। लौह–अवकरण में भाग लेने वाले मुख्य जीवाणु वैसियल पालीमिक्सा, वैसिलस सर्कुलांस, इस्चेरीचिया फ्रेन्डाई, एरोबैक्टर, एरोजींस आदि हैं।

(स) कार्बनिक लोह पदार्थो से लोह का अवक्षेपण (Precipitation of iron from organic iron compounds)

मृदा में फेरिक साइट्रेट, फेरिक एसीटेट जैसे कार्बनिक लोह पदार्थ पाये जाते हैं, जो पानी में घुलनशील होते हैं। इन पर कुछ परिपोषी जीवाणु जैसे – एरोबैक्टर, स्यूडोमोनास, वैसिलस, सिरेटिया तथा कोरायन बैक्टीरियम क्रियाशील होकर कार्बनिक भाग को विघटित कर देते हैं तथा लोहा अघुलनशील रूप में अवक्षेपित हो जाता है। फलतः पौधों के लिये लोहे की प्राप्यता घट जाती है।

इस प्रकार मृदा में लौह–पदार्थों का परिवर्तन सूक्ष्मजीवों के माध्यम से होता रहता है जो पौधों के लिए प्राप्य लौह की मात्रा को निर्धारित कर मृदा–उर्वरता और पादप वृद्धि को प्रभावित करते हैं।

मैंग्नीज का रूपांतरण (Transformation of Manganese)

मृदा में होने वाले मैंग्नीज के रूपांतरण में ऑक्सीकरण और अवकरण की प्रक्रिया का विशेष महत्व है। मैंग्नीज के ऑक्सीकरण के पश्चात् इसका मैग्नस रूप (Mn2+) मैगनिक रूप (Mn+4) में परिवर्तित हो जाता है। सर्वप्रथम 1913 में एम.डब्ल्यू. विजरिंक ने यह बताया कि मैंग्नीज–ऑक्सीकरण भी यह क्रिया सूक्ष्मजैविकीय है। इस प्रक्रिया में भाग लेने वाले प्रमुख जीवाणु एरोबैक्टर, वैसिलस, कोरायन, बैक्टीरियम तथा स्यूडोमोनास की जातियाँ है। कवकानि के अंदर क्लैडोस्पोरियम, कर्वूलेरिया, हेल्मिंथोस्पोरियम, सिफैलोस्पोरियम हैं। ब्रोमफील्ड तथा स्कर्मन (1950) के अनुसार एक्टिनोमाइसिटीज की जातियाँ – नोकार्डिया तथा स्टेप्टोमाइसीज भी भाग लेती हैं।

मृदा में मैंगनीज का अवकरण मैग्निक रूप से मैग्नस रूप में दो प्रकार से होता है:

(अ) अम्ल उत्पत्ति द्वारा

(ब) जीवाणु द्वारा।

मृदा में कुछ जीवाणु अपनी क्रियाशीलता द्वारा अम्ल पैदा करते हैं। उदाहरणार्थ – थायोवैसीलस थायोआक्सीडांस गंधक पर क्रियाशील होकर गंधक अम्ल पैदा करता है जो अवकरण के पश्चात् मैंग्नीज की उपलब्धता को बढ़ा देता है। जलमग्न मिट्टी में मैंग्नीज डाईआक्साइड प्राप्य मैग्नस रूप में अवकृत हो जाता है। यह प्रतिक्रिया कार्बोहाइड्रेट की उपस्थिति में तीव्र गति से संपन्न होती है। इस प्रतिक्रिया में कुछ परिपोषी जीवाणु भाग लेते हैं।

$$RH_2 + Mn\,O_2 \longrightarrow Mn\,(OH)_2 + 2\,H_2\,O$$

अम्लीय मृदा जिसका पीएच. मान 5.5 से कम हो उसमें अवकृत मैंग्नीज की अधिकता पाई जाती है जो विशेषकर रासायनिक क्रिया द्वारा होती है।

$$MnO_2 + 4\ H^+ + 2\ e = \longrightarrow mn^{++} + 2\ H_2\ O$$

उन मिट्टियों में जिनका पीएच. मान 5.5 से 8.0 तक होता है, उनमें मैंगनीज का रूपांतरण सूक्ष्मजीवों द्वारा होता है। उन मिट्टियों में जिनका पीएच. मान 8.0 से अधिक हो, उनमें मैंग्नीज का रूपांतरण पुनः रासायनिक प्रक्रिया द्वारा संपन्न होने लगता है।

सूक्ष्मजीवों की कोशिकाओं में मैंग्नीज की मात्रा अत्यल्प (0.005 प्रतिशत) होती है। अतः इसके निश्चलीकरण (Immobilisation) का मृदा में हो रहे मैंग्नीज के रूपांतरण पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

सल्फेट के अवकरण या अमीनो अम्ल के विघटन से बने हाइड्रोजन सल्फाइड कुछ प्रकाश संश्लेषी गंधक जीवाणुओं द्वारा गंधक तत्व में ऑक्सीकृत हो जाते हैं।

प्रकाश

इस प्रकार उत्पन्न गंधक तत्व का उपयोग न तो पौधे ही कर पाते हैं और न ही सूक्ष्मजीव। इसलिए यह गंधक तत्व कुछ जीवाणु विशेषकर थायोवैसिलस थायोआक्सीडांस द्वारा सल्फेट में ऑक्सीकृत हो जाता है।

इस प्रकार मिट्टी में गंधक का सक्रिय रूपांतरण चलता रहता है। इसे संक्षेप मे निम्नांकित चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

जैव उर्वरकों के उपयोग की व्यावहारिक सीमाएँ

जैव उर्वरकों की कृषि उत्पादन वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका के बावजूद इनका अपेक्षित उपयोग किसान नहीं कर रहे हैं। इसके प्रमुख कारण निम्नांकित हैं:

- टीकों (इनाकुलेंटस) की गुणवत्ता में कमी।
- प्रसार कार्यकर्ताओं एवं किसानों में टीका लगाने हेतु सही ज्ञान का अभाव।

रेखाचित्र-10.5 गंधक–चक्र

– जैव उर्वरकों की आपूर्ति की सुदृढ़ व्यवस्था का अभाव।

– जैव नाइट्रोजन यौगिकीकरण के सफल एवं सक्षम उपयोग हेतु इच्छाशक्ति पैदा करने के लिए नीति निर्धारण का अभाव।

भारत में जैव उर्वरकों का प्रचलन अभी तक नहीं हो पाया है। जैसा कि ऊपर इंगित किया गया है, उपलब्ध टीकों की गुणवत्ता में कमी के कारण इनके प्रयोगोपरांत फसलों की उपज में अपेक्षित वृद्धि नहीं हो पाती। जैव–उर्वरक तैयार करने वाले प्राइवेट छोटे पैमाने के निर्माताओं के साथ यह समस्या विशेष रूप से देखी गयी है। सुक्षम स्ट्रेनों का चयन एवं जैव उर्वरक का निर्माण मृदा–अणुजैविज्ञों की देख–रेख में ही होना चाहिए अन्यथा सक्षम स्ट्रेनों के स्थान पर असक्षम स्ट्रेनों से तैयार जैव उर्वरक से लाभ की आशा नहीं की जा सकती। प्रसार कार्यकर्ताओं एवं किसानों को जैव उर्वरकों के लाभ, उनके प्रयोग की विधि, समय और रख–रखाव के बारे में ज्ञान कराने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए। अभी तक जैव उर्वरकों

की आपूर्ति के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किया गया है। उर्वरकों एवं बीजों की आपूर्ति के लिए स्थापित केन्द्रों/प्रतिष्ठानों पर जैव उर्वरकों की आपूर्ति और साथ ही उनके सही उपयोग हेतु साहित्य उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

अतः स्पष्ट है कि वांछित गुणवत्ता के जैव उर्वरकों का निर्माण करके यदि उनके महत्व और उपयोग–विधि का ज्ञान किसानों को कराने के साथ ही समय पर उनकी आपूर्ति सुनिश्चित कर देने पर जैव उर्वरकों का सुनिश्चित लाभ मिल सकता है।

संदर्भ साहित्य

Bagyraj, D.J. and Hedge, S.V. 1978. Current Sci. 47:548–49.

Balasundaram, V.R. and Subba Rao, N.S. 1977. Fert. News 22:42–46.

Hapase, D.G., Jadhav, S.K. and Jadhav, J.J. 1984. Indian Sugar 34:569–73.

Joi, M.B. and Shende, A.P. 1976. J. Maharashtra Univ. 1:161–62.

Kapulnik, Y., Sarig, S., Nur, I., Okon, Y. Kigel, J. and Henis, Y. 1981. Expt. Agri. 17:171–78.

Kulkarni, J.H., Joshi, P.K., Sojitra, V.K. and Bhat, D.A. 1986. Proc. Natl. Symp. Current Trends in Soil Biology. Eds. M.M. Misra and K.K. Kapoor, HAU, Hissar, pp. 203–6.

Mishustin, E.N. and Shilnikova, V.K. 1969. Soil Biologyh. Reviews of Research (UNESCO), pp. 72–124.

Mehrotra, C.L. and Lehri, L.K. 1971. J. Indian Soc. Soil Sci. 19:243–48.

Pothiraj, P. 1979. Madras Agri. J. 66:70–72.

Rai, R., Singh, S.N. and Murtuza, M.D. 1977. Current Sci. 46: 572–73.

Reddy, G.B., Reddy, M.R., Reddy, K.R. and Chari, A.V. 1977. Indian J. Agronomy 22:224–227.

Rewari, R.B. and Tilak, K.V.B.R. 1988. Pulse Crops. Eds. B. Baldev, S. Ramanujan and H.K. Jain. Oxford-IBH, New Delhi, pp. 373–411.

Sekhon, H.S., Kaul, J.N. and Dahia, B.S. 1978. J. Agri. Sci. (Cambridge) 90: 325–27.

Shende, S.T. and Apte, R. 1982. Proc. Natl. Symp. Biol. Nitrogen Fixation, New Delhi, pp. 532–41.

Singh, S.D. 1977. Ann. Arid Zone 16: 79–84.

Subba Rao, N.S. 1982. Biofertilizers in Agriculture. Oxford-IBH, New Delhi, pp. 186.

Subba Rao, N.S., Tilak, K.V.B.R., Lakshmi Kumari, M. and Singh, C.S. 1979. Sci. Resp. 16: 690692.

Tilak, K.V.B.R. and Saxena, M.C. 1974. Proc. Indian Natl. Sci. Acad. 40(B): 476–78.

Tilak, K.V.B.R. and Subba Rao, N.S. 1978. Fert. News 23(2): 2528.

Wani, S.P. 1988. Biological Nitrogen Fixation : Recent Developments. Ed. N.S. Subba Rao. Oxford-IBH, New Delhi. pp. 125–74.

Winogradsky, S., 1925. Etudes sur la microbiologie du sol. I. Sur la methode, Ann. Inst. Pasteur, 39: 299–354.

अध्याय-11

भारत में स्थायी और दीर्घकालीन उर्वरक परीक्षण

देश की बढ़ती हुई जनसंख्या तथा उसके भरण पोषण के लिए भोजन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए कृषि पर जितना ध्यान आजकल दिया जा रहा है उतना इसके पहले कभी नहीं दिया गया। यदि भूमि से पोषक तत्वों का छीजन, चाहे वह फसलों द्वारा निष्कासन के फलस्वरूप हो, चाहे अन्य माध्यमों जैसे भू–क्षरण, जल अपवाह आदि कारणों से हो रहा हो, रोका नहीं गया तो भविष्य में भूमि–उर्वरता में इतनी कमी हो जाएगी कि यह फसलोत्पादन के लिए सर्वाधिक घातक सिद्ध होगी। कृषि–उत्पादन के लिए आवश्यक विभिन्न कारकों में उर्वरक सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गय है। इसकी पुष्टि भारत में उर्वरकों की खपत में हुई वृद्धि से हो जाती है। उर्वरकों की खपत में वृद्धि विशेष रूप से 1965 के बाद अधिक उपज देने वाली जातियों के प्रचलन के फलस्वरूप हुई। इन जातियों की पोषक तत्वों की आवश्यकता इतनी अधिक थी कि भारतीय मिट्टियों में मौजूद विभिन्न पोषक तत्वों की मात्रा इनके लिए सर्वथा अपर्याप्त समझी जाने लगी। इससे उर्वरक–उपयोग का महत्व दिनों–दिन मुखर होता गया। वर्तमान–कृषि आमतौर पर उर्वरकों के प्रयोग पर आश्रित है। जनसंख्या में वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति के हिस्से में आने वाली भूमि का क्षेत्रफल घटता जा रहा है। अतः देश में खाद्यान्न की समस्या के हल का एक ही विकल्प रह जाता है, वह है प्रति इकाई क्षेत्रफल से सघन कृषि द्वारा अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त करना। आगामी वर्षों में खाद्यान्न उत्पादन के बढ़ते लक्ष्य की पूर्ति में उर्वरक–उपयोग की भूमिका विशेष महत्वपूर्ण होगी।

रासायनिक उर्वरकों के उपयोग की शुरूआत के साथ ही इस प्रकार की शंकाएँ उत्पन्न होने लगी थीं कि इनके लगातार उपयोग का भूमि की उर्वराशक्ति और फसलों की उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। उल्लेखनीय है कि इन्हीं शंकाओं की पृष्ठभूमि में लाज और गिलवर्ट की सूझबूझ से

राथमस्टेट के विश्व के सब पुराने खाद संबंधी संस्थापक परीक्षण का 1843 में जन्म हुआ। इसके बाद विश्व के विभिन्न भागों में खाद के उपयोग से संबंधित स्थायी परीक्षण प्रारंभ होते गये।

संयुक्त राज्य अमेरिका के इलीनाय, पेन्सिलवेनिया, ओहियो, मिसौरी और अन्य राज्यों में इसी प्रकार के परीक्षण आरंभ हुए। इन परीक्षणों से प्राप्त परिणामों का मृदा उर्वरता से संबंधित समस्याओं को समझने में उल्लेखनीय योगदान है।

भारत में स्थायी उर्वरक प्रयोग का महत्व सर्वप्रथम 1885 में अनुभव किया और इसी समय कानपुर (उत्तर प्रदेश) में राथमस्टेड मॉडल पर पहला परीक्षण प्रारंभ किया गया। इसके बाद दो परीक्षण और प्रारंभ किए। एक 1908 में पूसा बिहार में और अन्य 1909 में कोयबंटूर (तमिलनाडु) में। इसी क्रम में देश के विभिन्न भागों में विभिन्न वर्षों में दीर्घकालीन उर्वरक परीक्षण प्रारंभ किए गए जो निम्नांकित हैं:

– जलंधर, पंजाब (1930)

– शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश (1935)

– पाड़ेगाँव, महाराष्ट्र (1939)

– इंदौर, मध्य प्रदेश (1947)

– चिंसुरा तथा सूरी, पश्चिमी बंगाल (1948)

– कटक, उड़ीसा (1948)

– मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश (1949)

– बेहरामपुर, पश्चिमी बंगाल (1949)

– अनकापल्ले, आंध्र प्रदेश (1950)

ये सभी परीक्षण भी यद्यपि राथमस्टेट परीक्षण के समान प्रारंभ किये गये परंतु इनमें वहाँ की तरह जल निकास, मिट्टियों और फसलों से संबंधित रासायनिक विश्लेषण का कार्य सम्मिलित नहीं किया गया। इन परीक्षणों का

3261 HRD/2000—31

मुख्य उद्देश्य उर्वरकों एवं खादों के लगातार उपयोग का उनकी आपेक्षिक दक्षता और फसलोत्पादन पर प्रभाव संबंधी अध्ययन करना था ताकि विभिन्न फसल प्रणाली के अंतर्गत कालांतर में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का हल खोजा जा सके। इन परीक्षणों से महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त हुए किंतु अधिकांश परीक्षण कुछ वर्ष चलाने के बाद बंद कर दिए गये।

भारत में किए गए दीर्घकालीन मृदा उर्वरता परीक्षणों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. प्रथम चरण में प्रारंभ किए गये दीर्घकालीन परीक्षण।

2. आधुनिक दीर्घकालीन परीक्षण।

प्रथम चरण में किए गए दीर्घकालीन परीक्षण

प्रथम चरण में प्रारंभ किए गये दीर्घकालीन परीक्षणों में से कुछ महत्वपूर्ण परीक्षण जिनके परिणाम उपलब्ध है, निम्नांकित हैं:

1. ऊर्ध्व भूमि में अपनायी जाने वाली विभिन्न फसल प्रणाली के अंतर्गत उगायी गयी विभिन्न खाद्यान्न फसलों में खादों एवं उर्वरकों की आपेक्षिक दक्षता के मूल्यांकन हेतु कानपुर, कोयम्बटूर और पूसा के दीर्घकालीन और स्थायी उर्वरक परीक्षण।

2. गन्ने की फसल में उर्वरकों के दीर्घकालीन प्रभाव का अध्ययन करने के लिए पाड़ेगाँव और शाहजहाँपुर में स्थायी खाद परीक्षण।

3. धान की फसलों में मृदा उर्वरता की समस्याओं के अध्ययन हेतु पश्चिमी बंगाल और कटक के दीर्घकालीन परीक्षण।

4. बारानी खेती में मृदा उर्वरता समस्याओं के अध्ययन हेतु इंदौर में किए गये दीर्घकालीन परीक्षण।

(क) प्रथम चरण में प्रारंभ किए गये परीक्षण

ऊपरी भूमि में विभिन्न फसल प्रणाली में दीर्घकालिक उर्वरक उपयोग संबंधी स्थायी परीक्षण

कानुपर: सर्वप्रथम कानपुर में 1885 में एक स्थायी उर्वरक परीक्षण प्रारंभ किया गया जो 1914 तक चला। यह परीक्षण गंगा की जलोढ़ से विकसित दोमट गठन की मिट्टी में दो सिरीज में प्रारंभ किया गया:

1. मक्का की खरीफ मानक सिरीज और
2. गेहूँ की रबी मानक सिरीज। लेदर (1900) ने 16 वर्ष के परिणामों (1898–99) का मूल्यांकन किया और पृथक खाद एवं उर्वरकों के प्रभाव की चर्चा की। कालमकर और सिंह (1934) ने रबी मानक सिरीज के पूरे परीक्षण काल के परिणामों का उल्लेख किया है (सारणी 11.1)।

सारणी 11.1 कानपुर के स्थायी खाद परीक्षण में विभिन्न उपचारों का गेहूँ की उपज पर प्रभाव (29 वर्षों का औसत)

क्रम सं. उपचार (पौ./एकड़)	दाने की उपज (कि.ग्रा./हे.) औसत उपज	औसत परिवर्तन
1. भेड़ की मेंगनी 112 कि.ग्रा. नाइट्रोजन	2247	+5.34
2. गाय का गोबर 112 कि.ग्रा. नाइट्रोजन	2041	+ 5.39
3. साल्ट पीटर 28 कि.ग्रा. नाइट्रोजन + अस्थि सु.फा. 11.2 कि.ग्रा. नाइट्रोजन	2022	+0.07
4. गाय के गोबर की राख + साल्ट पीटर 28 कि.ग्रा. नाइट्रोजन	1830	−3.93
5. साल्ट पीटर 28 कि.ग्रा. नाइट्रोजन + अस्थि चूरा 11.2 कि.ग्रा. नाइट्रोजन	1827	−3.33
6. साल्ट पीटर 28 कि.ग्रा. नाइट्रोजन	1653	−15.41
7. गाय के गोबर की राख (क्रं.स.) की तरह	1491	0.66
8. बिना खाद	1413	7.75

स्पष्ट है कि सर्वाधिक उपज भेड़ की मेंगनी के प्रयोग से मिली, इसके बाद क्रमशः गाय के गोबर और उर्वरक उपचार (क्रं. स. 3) का स्थान रहा।

उल्लेखनीय है कि साल्ट पीटर द्वारा नाइट्रोजन की मात्रा गाय के गोबर की तुलना में लगभग चौथाई थी। इन परिणामों से स्पष्ट है कि गाय के गोबर की नाइट्रोजन क्षमता साल्ट पीटर के नाइट्रोजन की तुलना में चौथाई थी। उर्वरक मिश्रण की तुलना में गाय के गोबर का इस्तेमाल विशेष प्रभावी सिद्ध हुआ।

कानपुर में एक अन्य स्थायी उर्वरक परीक्षण सन् 1954–55 में प्रारंभ किया गया जो कि इस समय भी चल रहा है। इस परीक्षण के अंतर्गत प्रारंभ में मक्का–गेहूँ फसल–चक्र अपनाया गया और देशी उन्नत जातियाँ बोयी गयीं। बाद में अनाज वाली फसलों की अधिक उपज देने वाली जातियों के विकास के फलस्वरूप मक्का–गेहूँ फसल–चक्र के स्थान पर धान–गेहूँ फसल–चक्र अपनाया जाने लगा और पोषक तत्वों की मात्रा देशी जातियों की तुलना में दो गुनी कर दी गयी है। इस परीक्षण में कुल आठ उपचार हैं।

1. नियंत्रित
2. अमोनियम सल्फेट, 120 किलोग्राम नाइट्रोजन
3. अमोनियम सल्फेट 120 किलोग्राम नाइट्रोजन + सुपर फॉस्फेट 60 किलोग्राम फॉस्फोरस
4. गोबर की खाद, 120 किलोग्राम नाइट्रोजन
5. गोबर की खाद, 120 किलोग्राम नाइट्रोजन + सुपर फॉस्फेट, 60 किलोग्राम फॉस्फोरस
6. गोबर की खाद, 60 किलोग्राम नाइट्रोजन + अमोनियम सल्फेट 60 किलोग्राम नाइट्रोजन
7. गोबर की खाद, 60 किलोग्राम नाइट्रोजन + अमोनियम सल्फेट
8. 60 किलोग्राम नाइट्रोजन यूरिया + सुपर फॉस्फेट, 60 किलोग्राम फॉस्फोरस।

उपज के आंकड़ों से पता चलता है कि दोनों ही फसलों की सर्वाधिक उपज उर्वरकों के संतुलित प्रयोग (अमोनियम सल्फेट + सुपर फॉस्फेट) द्वारा प्राप्त हुई (सारणी 11.2)।

सारणी-11.2 कानपुर में स्थायी उर्वरक परीक्षण में विभिन्न उपचारों के अंतर्गत प्राप्त उपज (कि.ग्रा./हे.)

उपचार	परती–गेहूँ फसल–चक्र देशी गेहूँ की उपज 1954–55 से 1966–67 (12 वर्ष)	धान–गेहूं फसल–चक्र देशी जातियों की उपज 1967–68 से 1972–73 (6 वर्ष)		धान–गेहूँ फसल–चक्र अधिक उपज देने वाली जातियों की उपज 1973–74 से 1989–90 (17 वर्ष)	
	गेहूँ	धान	गेहूँ	धान	गेहूँ
1. नियंत्रित	1304	811	612	1205	1269
2. अमोनियम सल्फेट	1320	1621	1163	2655	2711
3. अमोनियम सल्फेट + सिंगल सुपर फास्फेट	1947	2027	1756	3745	3758
4. गोबर की खाद	1509	1338	945	2987	2757
5. गोबर की खाद + सिंगल सुपर फास्फेट	1643	1500	1045	3167	3153
6. गोबर की खाद + अमोनियम सल्फेट	1499	1745	1312	3289	3418
7. गोबर की खाद + अमोनियम सल्फेट + सिंगल सुपर फास्फेट	1836	1859	1534	3652	3792
8. अंडी की खली/यूरिया	1645	1687	1322	2845	2850

कोयम्बटूर: रोथमास्टेट के अनुरूप एक स्थायी खाद परीक्षण कोयम्बटूर में 1909 में प्रारंभ किया गया जिसका मुख्य उद्‌देश्य उर्वरकों और गोबर कूड़े की खाद के लगातार उपयोग का फसलों के दाने व भूसे की उपज पर प्रभाव और मिट्‌टी के गुणों में परिवर्तन संबंधी अध्ययन करना था। यह प्रयोग 1937 तक सिंचित दशा में किया गया परंतु उसके बाद पानी की कमी के कारण फसलें असिंचित दशा में उगायी गयीं।

इस परीक्षण में निम्नांकित 10 उपचारों के प्रभाव का अध्ययन किया गया।

1. कन्ट्रोल
2. नाइट्रोजन
3. नाइट्रोजन + पोटैशियम
4. नाइट्रोजन + फास्फोरस
5. नाइट्रोजन + फास्फोरस + पोटैशियम
6. पोटैशियम + फास्फोरस
7. पोटैशियम
8. फास्फोरस
9. गोबर की खाद
10. गोबर की खाद का अवशेष

नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम का इस्तेमाल 22.5, 60.5 और 54 पौंड प्रति एकड़ की दर से क्रमशः अमोनियम सल्फेट, सुपर फास्फेट और पोटैशियम सल्फेट द्वारा किया गया। गोबर की खाद का प्रयोग 5 टन प्रति एकड़ की दर से किया गया। इन उपचारों की पुनरावृत्ति (Replication) नहीं की गई है। पशु खाद से उपचारित एक प्लाट में अवशिष्ट प्रभाव की जानकारी हेतु 1916 से खाद डालना बंद कर दिया गया। खेत की मिट्‌टी लाल रेतीली दोमट है। इसमें कार्बनिक नाइट्रोजन और फास्फोरस कम है और यह गैर चूनेदार है।

कृष्णामूर्ति एवं रविकुमार (1973) ने इस परीक्षण से प्राप्त परिणामों का वर्णन किया है। कोयम्बटूर में सन् 1925 में उपरोक्त परीक्षण के समान ही एक नया परीक्षण प्रारंभ किया गया जिसमें फसलें सिंचित दशा में उगायी गयीं। यह परीक्षण दो सिरीज में किया गया। पहले सिरीज में 2000 पौंड प्रति एकड़ की दर से गोबर कूड़े की खाद का मूल खाद के रूप में उपयोग किया गया जबकि दूसरे सिरीज में मूल खाद के रूप में गोबर की खाद का इस्तेमाल नहीं किया गया। ज्ञातव्य है कि पहले सिरीज के परीक्षण की मिट्टी की उर्वरता कम होने के कारण गोबर की खाद का मूल खाद के रूप में प्रयोग किया गया। इन परीक्षणों से प्राप्त परिणामों के आधार पर निम्नांकित निष्कर्ष निकाले गये।

उपज पर प्रभाव

पुराने स्थायी परीक्षणों में गोबर की खाद के उपचार के अंतर्गत असिंचित दशा में उगायी गई चोलम तथा पानी वराग् और नये स्थायी परीक्षण में सिंचित दशा में उगायी गयी रागी कुंब, कपास, गेहूँ और पानी वराग् जैसी फसलों की उपज NPK और NP उपचारों से प्राप्त उपज के लगभग बराबर रही।

NPK उपचार द्वारा असिंचित दशा में रागी की और सिंचित दशा में चोलम की सर्वाधिक उपज मिली परंतु यह उपज गोबर कीखाद तथा NP से प्राप्त उपज के लगभग बराबर ही रही। सिंचित दशा में NP उपचार से प्राप्त लगभग सभी फसलों रागी, कुम्बू, कपास, पानीवराग् गेहूँ आदि की उपज गोबर की खाद और NPK उपचार के अंतर्गत प्राप्त उपज के लगभग बराबर रही। इन परिणामों से स्पष्ट है कि कोयम्बटूर की दशाओं में फसलोत्पादन के लिए नाइट्रोजन और फास्फोरस का प्रयोग विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि पोटैशियम के प्रयोग से सिंचित एवं असिंचित दोनों ही दशाओं में कोई खास लाभ नहीं हुआ। फिर भी ऐसा संकेत मिला कि बिना पोटाश की तुलना में पोटाश के प्रयोग से उपज में वृद्धि हुई।

सिंचित तथा असिंचित दोनों ही दशाओं में गोबर की खाद का प्रत्यक्ष प्रभाव इसके अवशेष प्रभाव की तुलना में हमेशा अधिक रहा। नाइट्रोजन और फास्फोरस की पारस्परिक क्रिया में सार्थक सह–संबंध से स्पष्ट हुआ है कि फास्फोरस के प्रयोग से नाइट्रोजन की क्षमता में वृद्धि होती है। फास्फोरस–पोटैशियम तथा नाइट्रोजन–फास्फोरस–पोटैशियम के बीच पारस्परिक क्रिया का प्रभाव सार्थक नहीं पाया गया।

फसल के गुणों पर प्रभाव

अमोनियम सल्फेट क़े रूप में नाइट्रोजन के इस्तेमाल से कपास, रागी और पानी वराग् के दानों में नाइट्रोजन की मात्रा में हुई वृद्धि से स्पष्ट रूप से दोनों में प्रोटीन में वृद्धि का संकेत मिला। नाइट्रोजन और फास्फोरस के सार्थक सह–संबंध के फलस्वरूप फास्फोरस की उपस्थिति या अनुपस्थिति में नाइट्रोजन के प्रयोग से बिनौले में नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि हुई।

फास्फोरस से पोटाश की अनुक्रिया अप्रभावित रही और इसी तरह पोटाश भी फास्फोरस की अनुक्रिया को प्रभावित नहीं किया। फाइटिन विहीन फास्फोरस के आधार पर दाने की गुणवत्ता का मूल्यांकन करने पर पता चला कि असिंचित दशा में PK और NP उपचार गोबर की खाद की तुलना में विशेष प्रभावी रहता है। अतः स्पष्ट है कि दानों में फाइटिन विहीन फास्फोरस की मात्रा बढ़ाने के लिए नाइट्रोजन और पोटैशियम के साथ फास्फोरस का प्रयोग आवश्यक होगा। नाइट्रोजन और फास्फोरस के प्रयोग से पौधों में एक दूसरे तत्व की सांद्रता में वृद्धि हुई।

मिट्टी के गुणों पर प्रभाव

रासायनिक प्रभाव

असिंचित दशा में किए गये पुराने स्थायी परीक्षण में 46 वर्ष की अवधि में NPK और NK उपचारों द्वारा कुल नाइट्रोजन की मात्रा में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। मिट्टी में कुल फास्फोरस की मात्रा में P, NPK, KP, NP और गोबर की खाद के उपचार से साधारणतया वृद्धि हुई। पोटाश की मात्रा में NPK और गोबर की खाद के उपचार से विशेष वृद्धि हुई।

नये स्थायी उर्वरक परीक्षण में 26 वर्ष की अवधि में P, KP और गोबर की खाद जैसे उपचारों को छोड़कर पहले सिरीज के प्रयोगों में जिसमें मूल खाद के रूप में गोबर की खाद का प्रयोग किया गया था, सभी उपचारों के अंतर्गत मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि हुई। कुल तथा उपलब्ध फास्फोरस की मात्रा में NK, NP, NPK, KP, P और गोबर की खाद जैसे उपचारों से उल्लेखनीय वृद्धि हुई। पहले सिरीज के परीक्षण में जिसमें गोबर की खाद का प्रयोग मूल खाद के रूप में किया गया था फास्फोरस की मात्रा में काफी वृद्धि हुई। इस सिरीज में नाइट्रोजन को छोड़कर लगभग सभी उपचारों के अंतर्गत कुल पोटैशियम की मात्रा में सार्थक वृद्धि हुई।

गोबर की खाद के प्रयोग से अन्य उर्वरक उपचारों की तुलना में मिट्टी में जीवांश पदार्थ की मात्रा में कोई खास अंतर नहीं पाया गया जो कि पुराने स्थायी परीक्षण में गोबर की खाद कम मात्रा में इस्तेमाल करने के कारण हो सकता है। नये स्थाई परीक्षण में मूल खाद के रूप में गोबर की खाद का प्रयोग करने पर जैविक कार्बन की मात्रा में साधारणतया वृद्धि हुई।

विभिनन उपचारों का मिट्टी के पीएच. मान पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा। अतः स्पष्ट है कि इन परीक्षणों में प्रयुक्त उर्वरकों और गोबर की खाद मात्रा के बराबर कोयम्बटूर की चुनही मिट्टियों में उर्वरकों का प्रयोग करने से मिट्टी में अम्लता की समस्या उत्पन्न होने का खतरा नहीं रहता। साथ ही मिट्टी की फसल उत्पादन क्षमता पर कुप्रभाव नहीं पड़ता।

मूल खाद के रूप में गोबर की खाद का प्रयोग करने पर मिट्टी के धनायन विनिमय क्षमता में वृद्धि हुई। विनिमयशील पोटैशियम की मात्रा में कोई खास अंतर नहीं पाया गया।

भौतिक गुणों पर प्रभाव

नये स्थायी परीक्षण में गोबर की खाद और उर्वरकों का संयुक्त प्रयोग करने पर मिट्टी के विभिन्न भौतिक गुणों जैसे रन्ध्रावकाश, जलधारण क्षमता, संलाग बिंदु नमी (Sticky Point Moisture) आर्द्रताग्राही गुणांक (Hygroscopic coefficient) में वृद्धि हुई। हाँ, पुराने स्थायी परीक्षण में गोबर की खाद के प्रयोग से मिट्टी के भौतिक गुणों में उल्लेखनीय सुधार संभव न हो सका, क्योंकि इन परीक्षणों में गोबर की खाद का प्रयोग कम मात्रा में किया गया था।

सूक्ष्म जैविक गुणों पर प्रभाव

पुराने स्थायी परीक्षण में गोबर की खाद के उपचार के अंतर्गत सूक्ष्म जीवों की संख्या सबसे अधिक पायी गयी। इसके बाद NPK उपचार का स्थान रहा। इन परिणामों से पता चलता है कि रासायनिक उर्वरकों का सूक्ष्म जीवों की संख्या और उनकी क्रियाशीलता पर किसी प्रकार का कुप्रभाव नहीं पड़ता। पुराने स्थायी परीक्षण से पता चला है कि 0–7.5 से.मी. की गहराई में फास्फोरस और गोबर की खाद जैसे उपचारों में सूक्ष्म जीवों की संख्या सर्वाधिक रही। 7.5–15 से.मी. की गहराई में फास्फोरस व पोटाश जैसे उपचारों में सूक्ष्म जीवों की संख्या अधिक रही। एक्टिनोमाइसिटीज की संख्या

नाइट्रोजन के उपचार के अंतर्गत सर्वाधिक रही। अवभूमि की अपेक्षा ऊपरी सतह में एक्टिनोमाइसिटीज की संख्या अधिक पाई गयी। फंजाई और एजोटोबैक्टर की सर्वाधिक संख्या 0–7.5 से.मी. की गहराई में गोबर की खाद के उपचार के अंतर्गत पाई गयी। फास्फोरस पोटैशियम और गोबर की खाद के उपचार के फलस्वरूप बैक्टीरिया की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। नये स्थायी परीक्षण में उचित नमी की दशा में गोबर की खाद के उपचार से नियंत्रित की तुलना में सूक्ष्म जीवों की संख्या में तीन गुना वृद्धि हुई।

पूसा: 1908–1909 में एक स्थायी खाद परीक्षण पूसा की चुनी हुई जलोढ़ मिट्टी (कैल्सियम कार्बोनेट 32–34%) में प्रारंभ किया गया। 1930–31 में थोड़ा परिवर्तन करके इसे दो सीरिज में चलाया गया। दोनों सीरिज में 18 प्लाट हैं जिनमें तीन नियंत्रित प्लाट हैं। कोयम्बटूर की भांति यह परीक्षण भी बिना उपयुक्त पुनरावृत्ति (Replication) के प्रारंभ किये गये। दोनों सीरीज के परीक्षण आमने–सामने समानांतर पट्टी में चल रहे हैं। प्रत्येक प्लाट का क्षेत्रफल 1/10 हेक्टेयर है।

1932–33 में पूसा में एक नया स्थायी परीक्षण प्रारंभ किय गया जिसमें 10 उपचारों की 10 बार पुनरावृत्ति की गयी है। प्रत्येक प्लाट का क्षेत्रफल 1/100 हेक्टेयर है।

दोनों परीक्षणों में चार वर्षीय आठ कोर्स वाले फसल–चक्र अपनाये गये हैं। खरीफ में मक्का के बाद रबी में अनाज और दलहनी फसलों को अदल–बदल कर बोया गया। इस प्रकार पुरानी सिरीज के परीक्षणों में मक्का–मटर–मक्का जौ–मक्का–अरहर–मक्का–गेहूँ फसल–चक्र अपनाया गया। एक वर्ष के बाद जिन प्लाटों में हरी खाद का उपचार था उनमें मक्का के स्थान पर सनईं की फसल उगाई गयी। नये सिरीज में खरीफ में मक्का उगाया जाता है और रबी में जईं, मटर, गेहूँ और चना की फसल ली जाती है।

पुराने सिरीज के परीक्षणों में जैविक खाद वाले चार प्लाटों में से दो प्लाटों में 4480 और 8960 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से गोबर की खाद, तीसरे प्लाट में 448 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर की दर से सरसों की खली और चौथे प्लाट में गोबर की खाद (4480 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर) और सरसों की खली (22.4 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर) का संयुक्त प्रयोग किया गया। हरी खाद के तीन उपचार थे, जिनमें पहला अनाज वाले फसल

चक्र में, दूसरा दलहनी फसल–चक्र और तीसरा सुपर फास्फेट (89.6 किलोग्राम फास्फोरस प्रति हेक्टेयर) के साथ सनई की हरी खाद के रूप में था। एक अन्य उपचार में अनाज की फसल खाद या उर्वरक का प्रयोग किए बिना उगायी गयी। इसके अलावा रासायनिक उर्वरकों के 7 अन्य उपचार – (N, P, K, NP, PK, NK और NPK) थे, जिनमें नाइट्रोजन, फास्फोरस (P2O5) और पोटाश (K2O) का प्रयोग क्रमशः 44.8, 89.6 और 56 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से अमोनियम सल्फेट, सुपर फास्फेट और पोटैशियम सल्फेट के माध्यम से किया गया। तीन नियंत्रित प्लाटों में से एक परीक्षण–प्लाट के मध्य में और दूसरे और तीसरे प्लाट खेत के दो किनारे पर स्थित है।

नये स्थायी खाद परीक्षण में कुल 10 उपचार हैं जिनमें 7 पुराने सिरीज की तरह NPK तत्वों के विभिन्न उपचार हैं। इनके अतिरिक्त गोबर की खाद (8960 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर), सरसों की खली (44.8 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर) और नियंत्रित प्लाट से संबंधित उपचार हैं। गोबर की खाद का प्रयोग केवल खरीफ की फसल की बुआई के पहले किया गया और उर्वरकों की आधी मात्रा का प्रयोग खरीफ की बुआई के पहले और शेष आधी मात्रा का प्रयोग रबी की बुआई के पहले किया गया।

सेन एवं कानितकर (1955) ने 1932–1951) 20 वर्ष की अवधि में किए गये नये स्थायी परीक्षण से प्राप्त परिणामों का उल्लेख किया। इससे पता चला कि चना के बाद मक्का की उपज सर्वाधिक हुई। गेहूँ के बाद प्राप्त उपज का दूसरा स्थान था। मटक के बाद की उपज जई के बाद की उपज से अच्छी हुई। लेकिन इसका प्रभाव चना के बाद की फसल की तरह नहीं था।

मौर्या एवं घोष (1972) में नये और पुराने दोनों स्थाई परीक्षणों से प्राप्त परिणामों का विश्लेषण किया है जिनका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

उपज पर प्रभाव

सारणी 11.3 तथा 11.4 में दिये गये आंकड़ों से स्पष्ट है कि विभिन्न उपचारों में गोबर की खाद का प्रभाव सर्वोत्तम पाया गया। खली का प्रभाव गोबर की खाद की 4480 कि.ग्रा. प्रति हे. मात्रा 4480 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर मात्रा के प्रभाव से थोड़ा कम रहा। ज्ञातव्य है कि इन दोनों स्रोतों से समान

सारणी 11.3 पूसा के पुराने उर्वरक प्रयोग में फसलों की औसज उपज (कि.ग्रा./हे.) श्रेणी क और ख का औसत (1930–31 से 1968–69)

उर्वरक की मात्रा (प्रति हे.)	मक्का (जौनपुर पीली 37 फसलें	गेहूँ (एन.पी. 852) 9 फसलें	जौ (एन.पी. 0221	अरहर (एन.पी. 80) 8 फसलें	मटर (एन.पी. 10 फसलें)
1	2	3	4	5	6
1. गोबर की खाद, 8960 कि.ग्रा.	1410	911	1013	1211	584
2. गोबर की खाद, 4480 कि.ग्रा.	1152	669	680	1049	345
3. सरसों की खली, 44.8 कि.ग्रा. नाइट्रोजन	1117	513	681	884	266
4. गोबर की खाद, 4480 कि.ग्रा. + सरसों की खली 22.4 कि.ग्रा. नाइट्रोजन	1368	761	959	1074	471
5. अमोनियम सल्फेट, 44.8 कि.ग्रा. नाइट्रोजन	415	275	359	710	130
6. सुपर फास्फेट, 89.6 कि.ग्रा. फास्फोरस	685	560	708	1101	341
7. पोटैशियम सल्फेट, 56 कि.ग्रा. पोटाश	485	319	383	734	157

1	2	3	4	5	6
8. नाइट्रोजन + फास्फोरस	678	671	942	1230	369
9. फास्फोरस + पोटैशियम	753	603	630	1092	355
10. नाइट्रोजन + पोटैशियम	340	273	423	523	101
11. नाइट्रोजन + फास्फोरस + पोटैशियम	906	757	1006	1111	383
12. फसल चक्र में हरी खाद	–	531	489	–	–
13. दलहनी फसल चक्र में हरी खाद	545	513	745	654	220
14. हरी खाद + सुपर फास्फेट, 89.6 कि.ग्रा. फास्फोरस	799	1191	1634	1067	529
15. बिना दलहन तथा बिना हरी खाद	296	216	205	–	–
16. कोई खाद नहीं (नियंत्रित)	343	253	326	551	128

सारणी 11.4 पूसा के नये स्थायी उर्वरक प्रयोग से औसत फसल उपज (कि.ग्रा. प्रति है.) वर्ष 1932–33 से 1968–69

उर्वरक की प्रयोग की गई मात्रा (प्रति हे.)	10 पुनरावर्तन का औसत				
	मक्का (जौनपुर पीली) 35 फसलें	गेहूँ (एन.पी.–852) 9 फसलें	जईं (एन.पी.–1) 8 फसलें	मटर (एन.पी.–29) 3 फसलें	चना (एन.पी.–55) 9 फसलें
गोबर की खाद, 8960 कि.ग्रा.	1009	709	793	825	1045
सरसों की खली, 44.8 कि.ग्रा. नाइट्रोजन	1095	567	695	626	811
अमोनियम सल्फेट, 44.8 किग्रा. नाइट्रोजन	705	530	611	386	600
सुपरफास्फेट, 89.6 कि.ग्रा. फास्फोरस	571	436	529	539	544
पोटैशियम सल्फेट, 56 कि.ग्रा. पोटैशियम	489	403	462	442	577
नाइट्रोजन + फास्फोरस	799	628	748	562	773
फास्फोरस + पोटैशियम	554	381	462	505	739
नाइट्रोजन + पोटैशियम	688	555	617	373	608
नाइट्रोजन + फास्फोरस + पोटैशियम	780	626	728	557	760
नियंत्रित	475	375	469	380	344
क्रांतिक अतर (5%)	129.4	73.8	167.1	149.5	139.8

मात्रा में नाइट्रोजन दिया गया। NP या NPK की तुलना में केवल (अमोनियम सल्फेट) का प्रभाव बहुत कम रहा। इसके विपरीत फास्फोरस का अकेले या नाइट्रोजन के साथ इस्तेमाल काफी प्रभावकारी सिद्ध हुआ। पोटाश के प्रयोग से उपज में कोई खास वृद्धि न हो सकी। सनई की हरी खाद में सुपर फास्फेट का इस्तेमाल आगामी फसलों की उपज वृद्धि में विशेष सहायक सिद्ध हुआ। गोबर की खाद की तुलना में सुपर फास्फेट + हरी खाद के बाद गेहूँ और जौ की उपज में 1.8 से लेकर 2 गुना वृद्धि हुई।

मिट्टी के गुणों पर प्रभाव

खाद एवं उर्वरकों के लगातार उपयोग का मिट्टी के गुणों पर प्रभाव संबंधी परिणामों के आधार पर निम्नांकित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

जीवांश पदार्थ और नाइट्रोजन की मात्रा

गोबर की खाद (19 टन प्रति हेक्टेयर) तथा हरी खाद + फास्फोरस के लगातार प्रयोग से जीवांश पदार्थ और कुल नाइट्रोजन की मात्रा में सर्वाधिक वृद्धि हुई। उर्वरकों के संतुलित प्रयोग (NP, NPK) द्वारा नियंत्रित की तुलना में काफी वृद्धि हुई। फिर भी यह गोबर की खाद या हरी खाद + फास्फोरस की तुलना में कम थी। बिना खाद का इस्तेमाल किए लगातार अनाज वाली फसल उगाने से मिट्टी में जीवांश पदार्थ और कुल नाइट्रोजन की मात्रा नियंत्रित प्लाट के बराबर रही। फास्फोरस के प्रयोग द्वारा जीवांश पदार्थ और नाइट्रोजन की मात्रा में उल्लेखनीय वृद्धि हुई पोटैशियम का कोई खास प्रभाव नहीं देखा गया।

उपलब्ध फास्फोरस की मात्रा

मिट्टी में उपलब्ध फास्फोरस की मात्रा फास्फ़ोरस या फास्फोरस + पोटाश उपचारों के अंतर्गत सबसे अधिक पायी गयी। इसके बाद हरी खाद + फास्फोरस का स्थान रहा। नियंत्रित की तुलना में गोबर की खाद के इस्तेमाल से उपलब्ध फास्फोरस की मात्रा में नियंत्रित की तुलना में यद्यपि 70 से 90 प्रतिशत की वृद्धि हुई परन्तु फास्फोरस वाले उपचारों की तुलना में यह वृद्धि बहुत कम है। पोटाश के प्रयोग से भी उपलब्ध फास्फोरस की मात्रा में थोड़ी वृद्धि हुई।

धनायन विनिमय क्षमता और विनिमयशील क्षारों की मात्रा

पुराने स्थायी परीक्षण में हरी खाद + फास्फेट के अंतर्गत मिट्टी की धनायन विनिमय क्षमता में सर्वाधिक वृद्धि देखी गयी। इसके बाद दलहनी फसल चक्र में हरी खाद के उपचार का स्थान रहा। इस परीक्षण में गोबर की खाद के इस्तेमाल से धनायन विनिमय क्षमता में कोई खास अंतर नहीं पाया गया परंतु नये स्थायी परीक्षण में खली के उपचार के अंतर्गत मिट्टी की धनायन विनिमय क्षमता सबसे अधिक रही। विनिमयशील कैल्सियम और मैग्नीशियम की मात्रा में कोई खास अंतर नहीं पाया गया परंतु पोटैशियम के इस्तेमाल से विनिमयशील पोटैशियम की मात्रा में थोड़ी वृद्धि अवश्य हुई जो कि सांख्यिकीय दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण रही।

पीएच. मान

पुराने और नये स्थायी परीक्षणों में मिट्टी का पीएच. मान क्रमशः 8.3 से 8.9 और 8.7 से 8.9 के मध्य था। मिट्टी में कैल्सियम कार्बोनेट की मात्रा बहुत अधिक (32–34 प्रतिशत) होने की वजह से पीएच. मान में कोई खास अंतर नहीं पाया गया। हाँ, हरी खाद और गोबर की खाद के अंतर्गत मिट्टी का पीएच. मान क्रमशः 0.3 से 0.4 और 0.2 से 0.3 इकाई घट गया जो कि जैव पदार्थ के विघटन के दरम्यान उत्पन्न अम्लों के प्रभाव से संबंधित हैं।

गन्ने की फसल में खाद और उर्वरकों की दीर्घकालीन प्रभाव का अध्ययन

शाहजहाँपुर

गन्ना अनुसंधान केंद्र, शाहजहाँपुर (उ.प्र.) में एक स्थायी खाद परीक्षण 1935 में प्रारंभ किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य मूल खाद के रूप में जैविक खाद का इस्तेमाल करने और न करने की दिशा में प्रमुख पोषक तत्वों के दीर्घकालीन उपयोग का गन्ने की उपज और मिट्टी की उर्वराशक्ति पर प्रभाव की जानकारी करना था। परीक्षण दो आमने–सामने के खेतों में प्रत्येक एकांतर वर्ष में इस आशय से किया जाता है ताकि प्रत्येक वर्ष गन्ने की फसल ली जा सके।

इस परीक्षण में गन्ना–परती–गन्ना फसल चक्र रखा गया। इसमें 0, 100, 200 पौंड नाइट्रोजन, 0, 70, 100 पौंड फास्फोरस और 0, 75, 100 पौंड पोटाश की मात्रा का प्रभाव देखा गया। इनकी पूर्ति क्रमशः अमोनियम सल्फेट, सुपर

फास्फेट और पोटैशियम सल्फेट के माध्यम से की गयी। इस परीक्षण में 1952–53 में थोड़ा परिवर्तन किया गया जिसके अंतर्गत गन्ने की उपज में कमी को रोकने हेतु मूल खाद के रूप में सनई की हरी खाद देना प्रारंभ किया गया। परीक्षण से प्राप्त परिणामों का विश्लेषण क्रमशः भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् और डॉ. आर.आर. अग्रवाल (1965) ने किया जिससे निम्नांकित निष्कर्ष निकाले गये।

नाइट्रोजन के इस्तेमाल से गन्ने की उपज में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। फास्फोरस या पोटैशियम के उपयोग से उपज में कोई खास वृद्धि न हो सकी। नाइट्रोजन–फास्फोरस या पोटाश के बीच कोई पारस्परिक क्रिया भी नहीं देखी गयी। समयोपरांत सामान्यतया सभी उपचारों के अंतर्गत उपज में कमी देखी गयी। उल्लेखनीय है कि उपज में ह्रास की दर जहाँ केवल नाइट्रोजन का इस्तेमाल किया गया वहाँ सबसे अधिक पायी गयी। नाइट्रोजन के साथ फास्फोरस या पोटाश का इस्तेमाल करने के बावजूद भी उपज में कमी हुई किंतु ह्रास की दर कम रही।

हरी खाद के प्रयोग से मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ जाने के फलस्वरूप गन्ने की उपज का स्तर परीक्षण के प्रारंभ काल में प्राप्त उपज के लगभग बराबर हो गया। उल्लेखनीय है कि हरी खाद की उपस्थिति में उर्वरकों का लगातार उपयोग करते रहने के फलस्वरूप 10 वर्ष की अवधि में रिकार्ड की गयी उपज में कमी, बिना हरी खाद की दशा में आंकी गयी कमी की तुलना में काफी कम थी।

मिट्टी के विश्लेषण से पता चला है कि पीएच. मान को छोड़कर अन्य गुणों पर कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं पाया गया। अमोनियम सल्फेट के इस्तेमाल से पीएच. मान और विनिमयशील कैल्सियम की मात्रा में थोड़ी कमी हुई।

पाड़े गाँव

महाराष्ट्र के पाड़ेगाँव स्थित गन्ना अनुसंधान केन्द्र पर एक दीर्घकालीन खाद परीक्षण 1939 में प्रारंभ किया गया। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा किये गये विश्लेषणों के आधार पर निम्नांकित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं:

3261 HRD/2000—32

मूंगफली की खली (300 पौंड नाइट्रोजन प्रति एकड़) के प्रयोगोपरांत उपज में सर्वाधिक वृद्धि हुई। बिना कम्पोस्ट की तुलना में कम्पोस्ट के प्रयोग से हमेशा अधिक उपज मिली। अमोनियम सल्फेट के प्रयोग से उपज में सार्थक वृद्धि हुई। समयोपरांत सभी उपचारों के अंतर्गत उपज में कमी होती देखी गयी। परंतु नाइट्रोजन उपचारित प्लाटों में यह कभी अधिक रही। इस परीक्षण में 1951–52 में थोड़ा परिवर्तन किया गया जिसके अतंर्गत कम्पोस्ट द्वारा किये गये पोषक तत्वों के बराबर उर्वरक के रूप में नाइट्रोजन + फोस्फोरस + पोटाश के मिश्रण का प्रयोग उर्वरकों के माध्यम से किया गया। कम्पोस्ट की तुलना में उर्वरक मिश्रण विशेष प्रभावी रहा। ज्ञातव्य है कि उर्वरक मिश्रण के लगातार प्रयोग के फलस्वरूप उपज में होने वाली कमी भी रूक गयी।

धान की मिट्टियों में दीर्घकालीन उर्वरक परीक्षण

कटक

धान की फसल में जैविक खाद और उर्वरकों के अकेले और मिश्रित प्रयोग के दीर्घकालीन प्रभाव से संबंधित एक परीक्षण 1948 में केन्द्रीय धान अनुसंधान संस्थान कटक (उड़ीसा) में प्रारंभ किया गया। यह परीक्षण विभक्त भूखंड डिजाइन में 10 उपचारों जिसमें कम्पोस्ट की दो मात्राओं (7 और 100 मन प्रति एकड़) और अमोनियम सल्फेट के माध्यम से नाइट्रोजन की 5 मात्राओं (10, 20, 40, 60 और 80 पौंड प्रति एकड़) के सभी संयोजन उपचारों के दीर्घकालीन प्रभाव के अध्ययन हेतु किया गया। प्रारंभ में 8 वर्षों में प्राप्त आँकड़ों से पता चला है कि 40 पौंड प्रति एकड़ की दर से अधिक नाइट्रोजन का इस्तेमाल करने से धान की उपज में कोई खास वृद्धि नहीं हुई। कम्पोस्ट को अकेले या अमोनियम सल्फेट के साथ 20 पौंड नाइट्रोजन प्रति एकड़ की दर से डालने पर अच्छी अनुक्रिया हुई। इस दीर्घकालीन परीक्षण में यह स्पष्ट रूप से देखा गया कि अमोनियम सल्फेट और कम्पोस्ट से उपज में लगभग समान वृद्धि हुई। खाद का प्रयोग न करने की दशा में भी वर्षों बाद उपज में वृद्धि पायी गयी। ऐसा अनुमान है कि यह वृद्धि प्लाटों में शैवाल की वृद्धि के कारण हुई।

एक अन्य परीक्षण भी इस केन्द्र पर चलाया गया। इसमें कम्पोस्ट और अमोनियम सल्फेट के द्वारा नाइट्रोजन के उपचारों के अलावा क्रमशः 0, 4, 8 हन्डरेट की दर से प्रयुक्त चूने के प्रभाव का भी अध्ययन किया गया।

नाइट्रोजन और कम्पोस्ट अकेले और संयुक्त प्रयोग द्वारा उपज में उल्लेखनीय वृद्धि हुई परंतु चूना डालने से कोई लाभ नहीं हुआ साथ ही चूना और नाइट्रोजन के बीच पारस्परिक क्रिया भी नहीं हुई अमोनियम सल्फेट के लगातार प्रयोग से कोई हानि नहीं हुई। मिट्टी की अभिक्रिया अम्लीय न होने के कारण चूने का इस्तेमाल भी अलाभकर रहा।

पश्चिमी बंगाल

अमोनियम सल्फेट जैसे नाइट्रोजनकारी उर्वरक के दीर्घकालीन प्रभाव को अध्ययन करने के लिए चिंखारा और सूरी में ये परीक्षण 1948 में तथा बहरामपुर में 1949 में प्रारंभ हुए। चिंगारा, सूरी और बहरामपुर की मिट्टियों की अभिक्रिया क्रमशः उदासीन (पीएच. मान 6, 8) अम्लीय (पीएच. 5,5) और क्षारीय (पीएच. 7, 7) थी। प्रारंभ के 8 वर्षों के परिणामों पर आधारित रिपोर्ट भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने तैयार की है जिससे पता चलता है कि तीनों केन्द्रों के अंतर्गत उदासीन या क्षारीय मिट्टियों में अमोनियम सल्फेट के रूप में सामान्य मात्रा में (60 पौंड प्रति एकड़) नाइट्रोजन के इस्तेमाल से कोई हानिकर प्रभाव नहीं पड़ा। हाँ, उदासीन मिट्टियों में अत्यधिक मात्रा में अमोनियम सल्फेट के इस्तेमाल का मिट्टी की उत्पादकता पर हानिकर प्रभाव पड़ता है फिर भी क्षारीय मिट्टियों में ऐसा हानिकर प्रभाव नहीं देखा गया। अम्लीय मिट्टियों में गोबर की खाद के इस्तेमाल से अमोनियम सल्फेट का हानिकर प्रभाव रोका जा सकता है किन्तु उदासीन मिट्टियों में ऐसा नहीं पाया गया। चिंसोंरा मे अमोनियम सल्फेट और चूने की दीर्घकालीन इस्तेमाल का प्रभाव धान पर देखा गया। अमोनियम सल्फेट का दस वर्षों तक लगातार इस्तेमाल होने पर मिट्टी के पीएच. में केवल 0, 3 इकाई की कमी हुई। विनिमय कैल्सियम की मात्रा प्रति 100 ग्राम मिट्टी पर 1, 32 मिली तुल्यांक कम हुई। चूने के प्रयोग से विनिमय की मात्रा में कोई खास सुधार संयम न हो पाया।

आधुनिक दीर्घकालीन परीक्षण

भारत में बहुफसली कृषि प्रणाली में अधिक उपज देने वाली प्रजातियों के प्रचलन के साथ ही वैज्ञानिक कृषि–उत्पादन तकनीक का विकास हुआ जिसके फलस्वरूप परंपरागत कृषि की बाधाओं को दूर कर कृषि उत्पादकता बढ़ाने में उल्लेखनीय सफलता मिली। सघन कृषिप्रणाली में उच्च उत्पादन–लक्ष्य प्राप्त करने के लिए आवश्यक कृषि–निवेशों की खपत में कई

गुना वृद्धि हुई। उल्लखनीय है कि इन प्रजातियों की न केवल उत्पादन क्षमता अधिक है बल्कि देशी जातियों की तुलना में इनकी पोषक तत्वों की आवश्यकता भी कई गुना अधिक है। ऐसी दशा में सघन–कृषि के फलस्वरूप मृदा एवं सस्य वातावरण का प्रभावित होना स्वाभाविक है। आगे आने वाले वर्षों में अनवरत उच्च उत्पादन प्राप्त करने के लिए हमें कृषि निवेशों विशेषकर उर्वरकों पादप सुरक्षा रसायनों आदि के समुचित उपयोग के बारे में सचेष्ट रहना होगा। उल्लेखनीय है कि आवश्यकता से कम मात्रा में इनका उपयोग करने पर मृदा उर्वरता में ह्रास होता है और अपेक्षित उपज नहीं मिल पाती। इसके विपरीत इनके अनावश्यक उपयोग का मृदा–पादप तंत्र पर कुप्रभाव पड़ता है जिससे मृदा की गुणवत्ता में ह्रास होता है और अधिक समय तक उच्च उत्पादन स्तर भी स्थिर नहीं रह पाता। अतः हमें उर्वरकों, पादप सुरक्षा रसायनों आदि का प्रयाग उचित मात्रा में करना चाहिए। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने दीर्घकालीन उर्वरक परीक्षण के लिए एक समन्वित योजना की स्वीकृति दी जिसके अंतर्गत 1970–71 से परीक्षण प्रारंभ किये गये। इस समय संपूर्ण देश में 11 केन्द्रों (लुधियाना, पंतनगर, दिल्ली, राँची, जबलपुर, कोयंबटूर, भुवनेश्वर, हैदराबाद, बैरकपुर, पालमपुर और बंगलौर) पर इस योजना के अंतर्गत स्थायी उर्वरक परीक्षण चल रहे हैं। इन परीक्षणों के निम्नांकित उद्देश्य हैं।

1. बहुफसली कृषि प्रणाली में जैविक खाद और उर्वरकों के एकाकी और संयुक्त प्रयोग का फसलों की उपज पर प्रभाव।

2. आवश्यकतानुसार गौण और सूक्ष्म पोषक तत्वों के उपयोग का फसलों की उपज पर प्रभाव तथा सघन कृषि प्रणाली में इनकी आवश्यकता का निर्धारण।

3. बहुफसली कृषि प्रणाली के अंतर्गत फसलों द्वारा अवशोषित पोषक तत्वों की मात्रा का ज्ञान।

4. खाद व उर्वरकों तथा कृषि प्रणाली के दीर्घकालिक प्रभाव का मिट्टी के भौतिक रासायनिक और जीवाणुविक गुणों पर प्रभाव और मृदा उत्पादकता से संबंध।

5. खाद एवं उर्वरकों के सघन इस्तेमाल के अवशिष्ट प्रभाव का मूल्यांकन और उसका मृदा उत्पादकता से संबंध।

6. खाद और उर्वरकों के निर्धारित उपयोग द्वारा एक निश्चित कृषि–प्रणाली के अंतर्गत मृदा–जनित कीड़ों एवं रोगों के प्रकोप का मूल्यांकन।

इन परीक्षणों में 11 उपचारों के प्रभाव का अध्ययन किया जा रहा है, जो कि निम्नांकित हैं:

1. 50 प्रतिशत ना.फा.पा.
2. 100 प्रतिशत ना.फा.पो.
3. 150 प्रतिशत ना.फा.पो.
4. ना.फा.पो. + हाथ द्वारा निकाई
5. ना.फा.पो. + जिंक
6. 100 प्रतिशत ना.फा.
7. 100 प्रतिशत ना.
8. ना.फा.पो. + गोबर की खाद
9. ना.फा.पो.
10. नियंत्रित।

17 वर्ष की अवधि में इन परीक्षणों से प्राप्त परिणामों का उल्लेख कुछ चुने हुए उपचारों के आधार पर यहाँ किया जा रहा है।

सारणी 11.5 में दिये गये आँकड़ों से स्पष्ट है कि नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम के संतुलित उपयोग से अधिकतम उपज मिलती है। आठ फसल चक्रों में से चार फसल चक्रों अर्थात् धान–गेहूँ–जूट (बैरकपुर), धान–धान (हैदराबाद), धान–गेहूँ (पंतनगर) और मक्का–गेहूँ (पालमपुर) में 150 प्रतिशत ना.फा.पो. देने पर सर्वाधिक उपज मिली। लुधियाना जबलपुर और भुवनेश्वर में 100 प्रतिशत ना.फा.पो. की मात्रा उपयुक्त पायी गयी। कोयम्बटूर में 50 प्रतिशत ना.फा.पो. की मात्रा पर्याप्त रही।

सारणी-11.5 विभिन्न फसल–चक्रों में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम के दीर्घकालीन प्रयोग का फसलों की उपज पर प्रभाव (1971–86 का औसत)

केन्द्र		नियंत्रित के ऊपर उपज वृद्धि (क्विं./हे.)		
जलोढ़ मिट्टियाँ				
		मक्का (150–75–75)	गेहूँ (150–75–37)	लोबिया (चारा) (120–40–28)
लुधियाना	100% N	9.9	17.9	2.3
	100% NP	14.8	30.8	8.3
	50% NPK	12.6	19.8	6.3
	100% NPK	20.7	38.2	12.8
	150%NPK	20.8	38.9	16.3
		धान (120–60–60)	गेहूँ (120–60–60)	जूट (60–30–60)
बैरकपुर	100% N	20.7	13.0	7.6
	100% NP	23.8	14.5	8.1
	50% NPK	15.2	9.3	6.1
	100% NPK	25.6	15.6	10.1
	150% NPK	27.5	21.3	11.1
		रागी (90–45–17)	मक्का (135–67–35)	लोबिया (25–50–0)
मध्यम काली मिट्टियाँ				
कोयम्बटूर	100% N	2.5	1.7	0.6
	100% NP	19.2	18.9	3.3
	50% NPK	17.1	16.4	3.0
	100% NPK	19.0	20.5	3.3
	150% NPK	21.1	22.5	3.8
		सोयाबीन (20–80–20)	गेहूँ (120–80–40)	मक्का (चारा) (80–60–20)
जबलपुर	100% N	2.5	5.1	12.4
	100% NP	10.2	25.7	36.7
	50% NPK	8.9	17.8	27.4
	100% NPK	11.7	27.3	42.0
	150% NPK	12.4	30.4	55.0

		धान		धान
		(100–60–60)		(100–60–60)
लैटेराइट मिट्टियाँ				
भुवनेश्वर	100% N	6.2		9.7
	100% NP	6.6		13.3
	50% NPK	7.6		10.2
	100% NPK	11-8		15-8
	150: NPK	13.5		18.2
		धान		धान
		(115–20–30)		(115–20–30)
लाल दोमट मिट्टियाँ				
हैदराबाद	100% N	11.3		14.7
	100% NP	16.5		18.5
	50% NPK	9.4		9.7
	100% NPK	18.7		18.7
	150% NPK	25.2		30.0
		धान		गेहूँ
		(120–60–45)		(120–60–40)
पर्वतों के निचले भाग की मिट्टियाँ				
पंतनगर	100% N	14.0		20.6
	100% NP	13.0		20.5
	50% NPK	11.9		12.8
	100% NPK	18.3		20.4
	150% NPK	20.7		27.0
उप-पर्वतीय मिट्टियाँ		मक्का		गेहूँ
		(120–60–90)	(90–90–45)	
पालमपुर	100% N	7.4		1.9
	100% NP	22.9		16.0
	50% NPK	16.6		11.8
	100% NPK	29.6		21.6
	100% NPK	38.8		26.0

लुधियाना की जलोढ़ मिट्टियों में संस्तुति के अनुसार (100 प्रतिशत ना.) नाइट्रोजन देने पर मक्के की 9.9 क्विं. प्रति हे. अतिरिक्त उपज मिली, जो कि फास्फोरस देने पर पुनः 50 प्रतिशत बढ़ गयी। नाइट्रोजन और फास्फोरस के साथ पोटैशियम का प्रयोग (100 प्रतिशत ना.फा.पो.) करने पर फसल–अनुक्रिया में फिर 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई। गेहूँ में 100 प्रतिशत नाइट्रोजन देने पर 17.9 क्विंटल प्रति हेक्टेयर अतिरिक्त उपज मिली। 100 प्रतिशत ना.फा. देने पर फसनल अनुक्रिया में होने वाली कुल वृद्धि की दो–तिहाई इस उपचार द्वारा हुई। अतः स्पष्ट है कि मक्के की तुलना में गेहूँ की फसल फास्फोरस के उपयोग से विशेष लाभान्वित हुई। पोटैशियम के प्रयोग के फलस्वरूप गेहूँ की उपज में 25 प्रतिशत वृद्धि हुई।

बैरकपुर की जलोढ़ मिट्टियों में धान की फसल में 100 प्रतिशत नाइट्रोजन से 20.7 क्विंटल प्रति हेक्टेयर अतिरिक्त उपज मिली। इस उपचार द्वारा गेहूँ में होने वाली औसत वृद्धि केवल 13 क्विंटल प्रति हेक्टेयर रही। गेहूँ में फास्फोरस और पोटैशियम के प्रयोग से कोई खास लाभ नहीं हुआ। इसी तरह के परिणाम जूट की फसल में भी देखे गये जिसमें 60 कि.ग्रा. प्रति हे. की दर से नाइट्रोजन (50 प्रतिशत ना) देने से 7.6 क्विं. प्रति हेक्टेयर अतिरिक्त उपज मिली।

कोयम्बटूर की मध्यम काली मिट्टियों में रागी–मक्का–लोबिया फसल चक्र में 100 प्रतिशत नाइट्रोजन के इस्तेमाल से 2.5 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से रागी की उपज में वृद्धि हुई। फास्फोरस के प्रयोग से फसल अनुक्रिया की दर लगभग आठ गुना बढ़ गयी। इस प्रकार 19.2 क्विंटल प्रति हेक्टेयर अतिरिक्त उपज मिली जिससे इन मिट्टियों में फास्फोरस के महत्वपूर्ण योगदान की पुष्टि होती है। मक्के में 100 प्रतिशत नाइट्रोजन देने से केवल 1.7 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की वृद्धि हुई जबकि फास्फोरस द्वारा हुई वृद्धि 10 गुना अधिक थी। लोबिया में संस्तुति के अनुसार फास्फोरस का प्रयोग करने पर 3.3 क्विंटल प्रति हेक्टेयर अतिरिक्त उपज मिली जो कि 100 प्रतिशत नाइट्रोजन की तुलना में 5 गुना अधिक थी। पोटैशियम द्वारा उपज में थोड़ी वृद्धि हुई।

जबलपुर में सोयाबीन में 100 प्रतिशत नाइट्रोजन देने पर 2.5 क्विं. प्रति हे. अतिरिक्त उपज मिली। नाइट्रोजन के साथ फास्फोरस का प्रयोग करने

पर उपज में 10.5 क्विं. प्रति हे. की दर से वृद्धि हुई जो कि नाइट्रोजन द्वारा हुई वृद्धि की तुलना में चार गुना अधिक है। 100 प्रतिशत ना.फा.पो. द्वारा होने वाली उपज वृद्धि 11.7 क्विं/हे. थी। मक्के में 100 प्रतिशत नाइट्रोजन देने पर 12.4 क्विं., 100 प्रतिशत ना.फा. देने पर 36.7 क्विंटल तथा 100 प्रतिशत ना.फा.पो. देने पर 42.0 क्विं. प्रति हे. चारे की अतिरिक्त उपज मिली। गेहूँ की फसल में यह वृद्धि क्रमशः 5.1, 25.7 और 27.3 क्विं. प्रति हे. रही।

भुवनेश्वर की लैटेराइट मिट्टियों में 100 प्रतिशत नाइट्रोजन देने पर खरीफ धान की उपज में प्रति हेक्टेयर 6.2 क्विंटल की वृद्धि हुई। फास्फोरस का उपज–वृद्धि पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा। 100 प्रतिशत ना.फा.पो. द्वारा उपज में 11.8 क्विं. प्रति हे. की वृद्धि हुई। रबी धान में नाइट्रोजन द्वारा 9.7 क्विं. प्रति हे. की वृद्धि हुई। नाइट्रोजन और फास्फोरस के संयुक्त प्रयोग से 13.3 क्विं प्रति हे. तथा नाइट्रोजन एवं फास्फोरस के साथ पोटेशियम का प्रयोग करने पर 15.8 क्विं. प्रति हे. अतिरिक्त उपज मिली।

हैदराबाद की लाल दोमट मिट्टियों में धान–धान फसल–चक्र में खरीफ–धान में नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटैशियम के प्रयोग से उपज में सार्थक वृद्धि हुई परंतु रबी–धान में पोटैशियम के प्रयोग से कोई खास लाभ नहीं हुआ। इन मिट्टियों में संस्तुति से 50 प्रतिशत अधिक मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग आवश्यक प्रतीत हुआ। पंतनगर में धान में 100 प्रतिशत ना.फो.पा. के प्रयोग द्वारा 18.3 क्विं प्रति हे. अतिरिक्त उपज मिली। गेहूँ में संस्तुति से 50 प्रतिशत अधिक मात्रा में उर्वरकों (ना.फा.पो.) का प्रयोग करने पर उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। इसी प्रकार पालमपुर में मक्का तथा गेहूँ दोनों ही फसलों में 150 प्रतिशत ना.फा.पो. का प्रयोग विशेष प्रभावी सिद्ध हुआ।

विभिन्न उपचारों में उर्वरकों के दीर्घकालीन उपयोग से प्राप्त उपज-क्रम

दीर्घकालीन परीक्षणों में विभिन्न वर्षों में वातावरण की दशाओं में अंतर का अनुमान लगाना कठिन हो जाता है, अतः वातावरण का उपचारों पर प्रभाव एक समान समझा जाता है। अभी हाल में सांख्यिकी की सह–प्रसरण तकनीकी द्वारा नियंत्रित प्लाट के उपज आँकड़ों को उपयोग में लेते हुये उपचारित प्लाटों की उपज को समायोजित किया गया है। इस प्रकार विभिन्न वर्षों में वातावरण के अंतर का उपज पर पड़ने वाले प्रभाव को दूर किया जा सका है। इन परीक्षणों से 1972–1987 की अवधि में प्राप्त उपज के समायोजित आँकड़े (नाम्बियार इत्यादि, 1989) रेखाचित्र 11.1 से 11.4 में दर्शाए गये हैं।
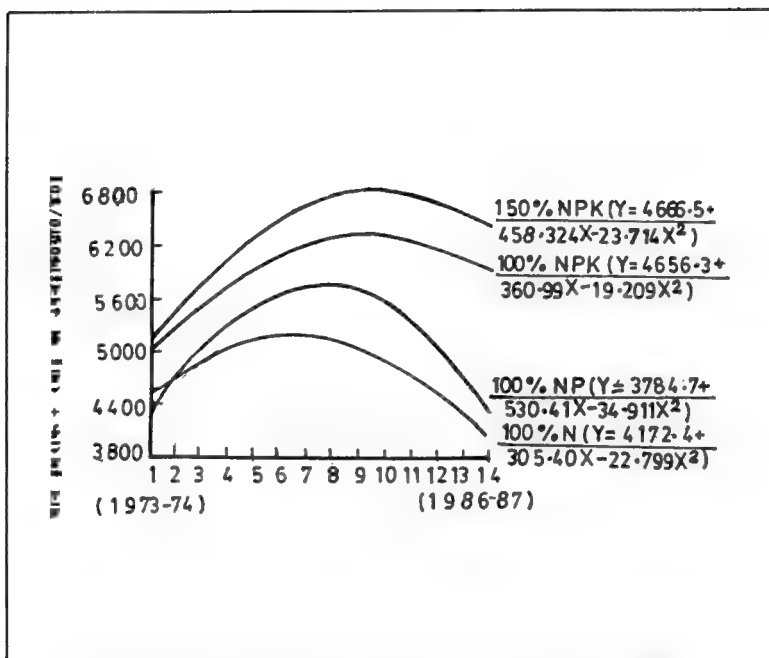
रेखाचित्र-11.1 भुवनेश्वर की लैटेराइट मिट्‌टी में धान की सुधारी गयी उपज (1973-87)

भुवनेश्वर में धान–धान फसल चक्र में खरीफ और रबी धान की उपज के आंकड़ों में क्वाड्रेटिक अनुक्रिया फलन लगाया। सभी उपचारों में क्वाड्रेटिक अनुक्रिया क्रम देखा गया। 100 प्रतिशत ना.फा. उपचार के अंतर्गत सबसे कम उपज प्राप्त हुई। इन उपचारों में प्रथम सात वर्षों तक उपज में वृद्धि हुई किंतु इसके बाद उपज–स्तर घटने लगा। 100 या 150 प्रतिशत ना.फा.पो. का इस्तेमाल करने पर प्रथम 10 वर्षों तक उपज में वृद्धि का क्रम देखा गया परंतु इसके बाद इस उपचार के अंतर्गत भी उपज घटी।

लुधियाना में मक्का की उपज प्रथम 9 वर्षों तक बढ़ी, इसके बाद तीन वर्षों तक स्थिर सी रही और फिर घट गयी। देखें रेखाचित्र 11.2 100 प्रतिशत ना.फा. के प्रयोग द्वारा 100 प्रतिशत नाइट्रोजन की तुलना में अच्छी उपज मिली। 100 प्रतिशत तथा 150 प्रतिशत ना.फा.पो. का प्रयोग करने पर 50
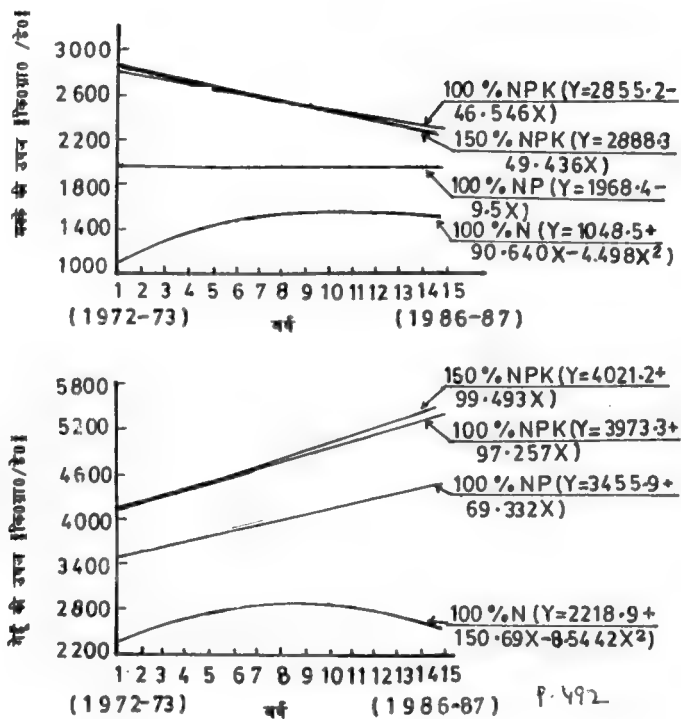
रेखाचित्र-11.2 लुधियाना में जलोढ़ मिट्टी में फसलों की सुधारी गयी उपज का क्रम (1972-87)
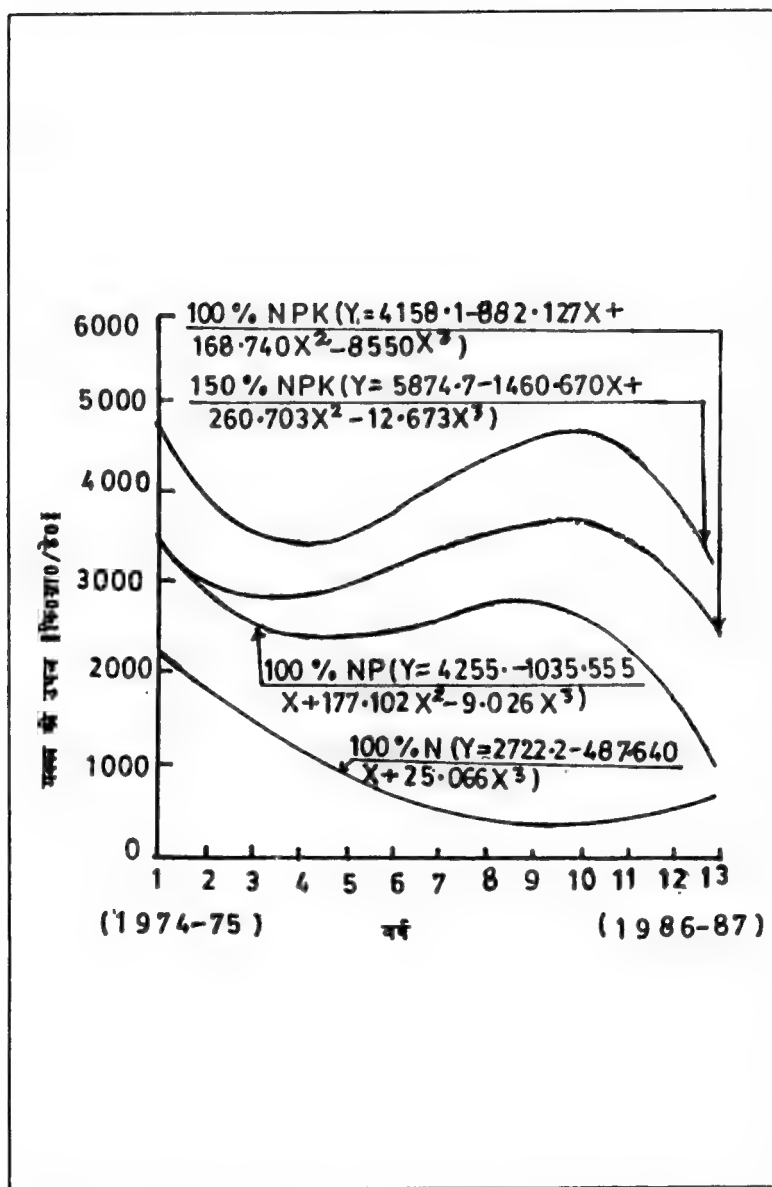
रेखाचित्र-11.3 पालमपुर की उपपर्वतीय मिट्टी में मकका की सुधारी गयी उपज का क्रम (1974-87)
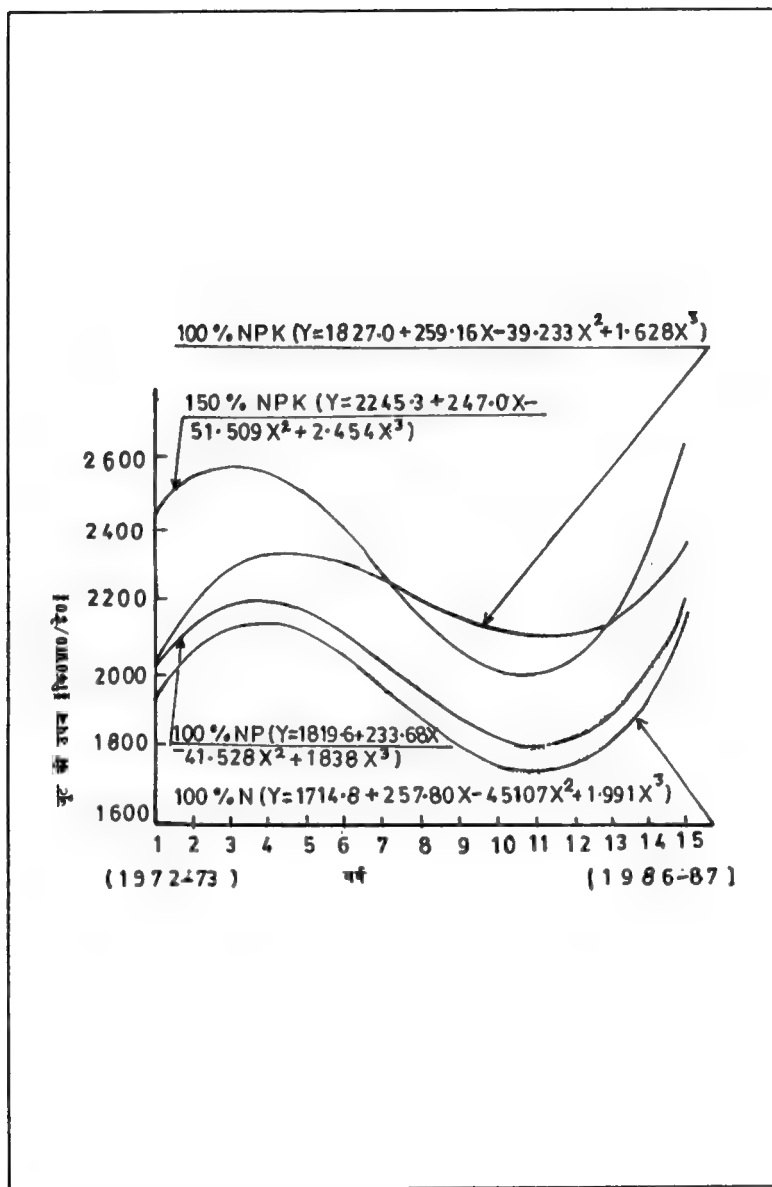
रेखाचित्र-11.4 बैरकपुर की जलोढ मिट्‌टी में जूट की सुधारी गयी उपज का क्रम (1972-87)

कि.ग्रा. प्रति हेक्टर प्रतिवर्ष की दर से उपज में कमी आयी। इसके विपरीत गेहूँ में 100 प्रतिशत और 150 प्रतिशत ना.फा.पो. का प्रयोग करने पर उपज में रेखीय वृद्धि हुई। वृद्धि की दर 1.0 क्विंटल प्रति हेक्टर प्रतिवर्ष थी। 100 प्रतिशत ना.फा.पा. का प्रयोग करने पर 69 किलोग्राम हेक्टर प्रतिवर्ष थी। 100 प्रतिशत ना.फा. का प्रयोग करने पर 69 किलोग्राम प्रति हेक्टर प्रतिवर्ष की रेखीय वृद्धि हुई जबकि 100 प्रतिशत नाइट्रोजन के प्रयोग से प्रथम नौ वर्षों तक तो उपज में वृद्धि हुई किंतु इसके बाद कमी होने लगी। 100 प्रतिशत तथा 150 प्रतिशत ना.फा.पो. के उपचार के अंतर्गत उपज में कमी आयी। ऐसा माना जाता है कि मृदा–अम्लता में वृद्धि के कारण लोहा की मात्रा में वृद्धि हो जाने से उपज पर कुप्रभाव पड़ता है। सारणी 11.5 में दिये गये आँकड़ों से इसकी पुष्टि होती है। इन आँकड़ों से पुनः स्पष्ट होता है कि उपज में होने वाली कमी मिट्टी में फास्फोरस और पोटैशियम की कमी से भी संबंधित है। इसके साथ ही मिट्टी में जिंक की भी कमी हुई जिसके कारण मक्के की उपज में कमी आयी। पोषक तत्वों की इन कमियों का गेहूँ की उपज पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ा।

पालमपुर में 100 प्रतिशत नाइट्रोजन का उपज पर ऋणात्मक रेखीय संबंध देखा गया किन्तु अन्य उपचारों के अंतर्गत नाइट्रोजन अनुक्रिया में क्यूबिक क्रम पाया गया। सभी उपचारों में प्रथम चार वर्षों तक उपज में गिरावट आयी और इसके बाद दसवें वर्ष तक वृद्धि होकर पुनः गिरावट आयी। 100 प्रतिशत नाइट्रोजन के उपचार के अंतर्गत उपज लगातार गिरती गयी। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिक अम्लता के कारण ऐसा हुआ। गेहूँ में लगातार 100 प्रतिशत नाइट्रोजन देने पर 28 किलोग्राम प्रति हेक्टर प्रति वर्ष की दर से उपज गिरी जबकि अन्य उपचारों के साथ कोई खास क्रम नहीं देखा गया।

बैरकपुर में 100 प्रतिशत नाइट्रोजन और 100 प्रतिशत ना.फा. उपचारों के अंतर्गत प्राप्त जूट की उपज 150 प्रतिशत ना.फा.पो. की तुलना में काफी कम रही। धान और गेहूँ में कोई स्पष्ट क्रम नहीं देखा गया।

उल्लेखनीय है कि अधिकाँश मिट्टियों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटैशियम के संतुतिल उपयोग से अपेक्षित उपज प्राप्त करने में मदद मिली। नाम्बियार (1984) तथा नाम्बियार (1986) ने भी ऐसा मत व्यक्त किया है। उच्च फसल सघनता में पोषक तत्वों के असंतुलन के फलस्वरूप उत्पादकता में ह्रास होने लगता है। यह मुख्यतया मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी हो जाने के कारण होता है।

दीर्घकालीन उर्वरक परीक्षणों में स्थिर उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारक

गौण और सूक्ष्म पोषक तत्वों का उपज पर प्रभाव

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि बहुफसली कृषि प्रणाली में अनवरत नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम के संतुलित प्रयोग के बावजूद उपज में कमी का क्रम देखा जाता है। हाल की खोजों से पता चला है कि यह आमतौर पर गौण और सूक्ष्म तत्वों की कमियों से संबंधित होता है। अतः भूमि की उर्वरता बनाए रखते हुए अनवतर अच्छी उपज प्राप्त करने के लिये प्रमुख, गौण और सूक्ष्म पोषक तत्वों का संतुलित मात्रा में उपयोग अनिवार्य हो जाता है।

रेखाचित्र 11.5 में प्रदर्शित परिणामों से स्पष्ट है कि बैरकपुर की जलोढ़ मिट्टियों में धान, जबलपुर की मध्यम काली मिट्टियों में सोयाबीन, गेहूँ और मक्का (चारा), भुवनेश्वर की लैटेराइट मिट्टियों में धान की उपज में गंधक के प्रयोग से उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। उल्लेखनीय है कि परीक्षण के प्रारंभ के वर्षों की तुलना में बाद के वर्षों में उपज में वृद्धि की दर काफी अधिक रही। पालमपुर की उप–पर्वतीय मिट्टियों में गंधक के प्रयोग से मक्का और गेहूँ की उपज में सार्थक वृद्धि हुई। प्रारंभ के वर्षों में वृद्धि की दर बाद के वर्षों की अपेक्षा कहीं अधिक रही।

लुधियाना में मक्का की उपज में जिंक के प्रयोग से सार्थक वृद्धि हुई और यहाँ भी परीक्षण के प्रारंभ के वर्षों की तुलना में बाद के वर्षों में उपज में रेखीय क्रम में वृद्धि देखी गयी। पंतनगर में भी धान और गेहूँ की उपज में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। पहले वर्षों की तुलना में बाद के वर्षों में जिंक के प्रयोग से धान में उपज वृद्धि की दर घटी परंतु गेहूँ में बढ़ी। देखें रेखाचित्र 11.6।

विभिन्न उपचारों का मिट्टी के गुणों पर प्रभाव

लगातार एक निश्चित उपचार के अंतर्गत शस्यन के फलस्वरूप मिट्टी के गुणों में उल्लेखनीय परिवर्तन देखे गये हैं जो कि मृदा–उत्पादकता से काफी हद तक संबंधित हैं। ज्ञातव्य है कि प्रत्येक केंद्र परं एक निश्चित फसल चक्र रखा गया। अंतर केवल विभिन्न उपचारों का था। अतः मृदा उत्पादकता का
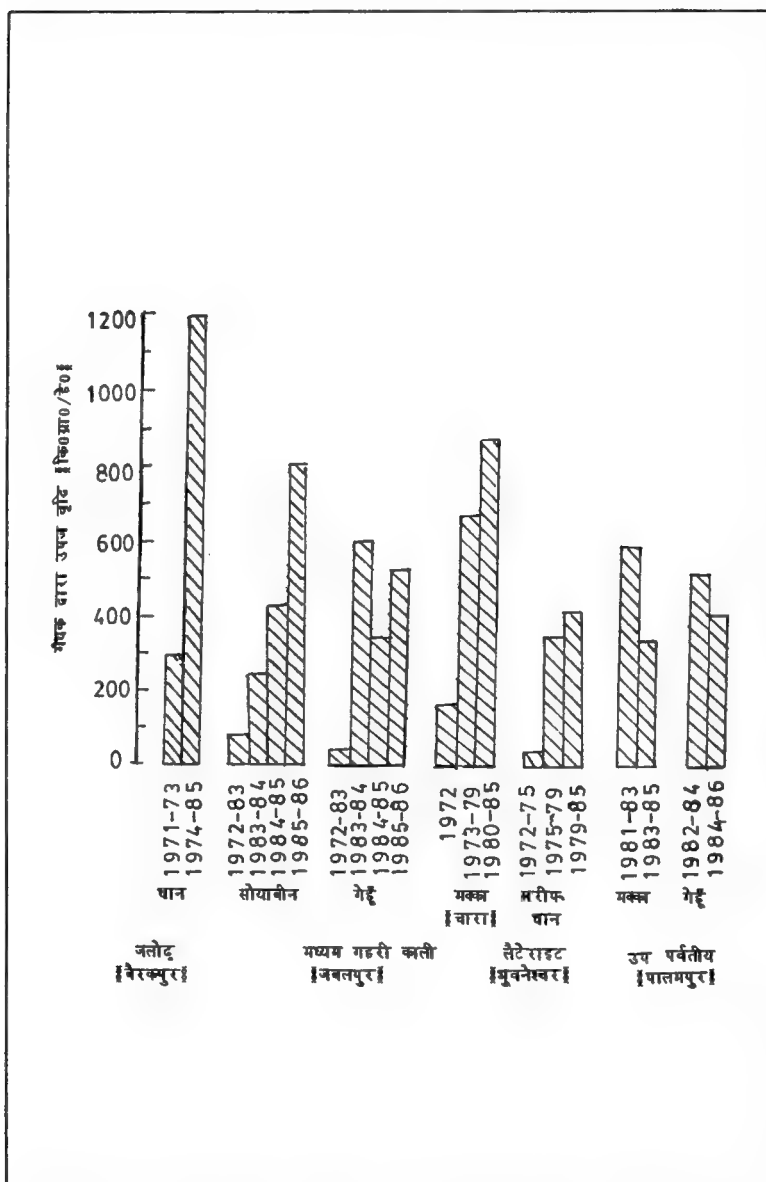
रेखाचित्र-11.5 दीर्घकालीन परीक्षणों में विभिन्न वर्षों में गंधक द्वारा उपज–वृद्धि (1971-86)
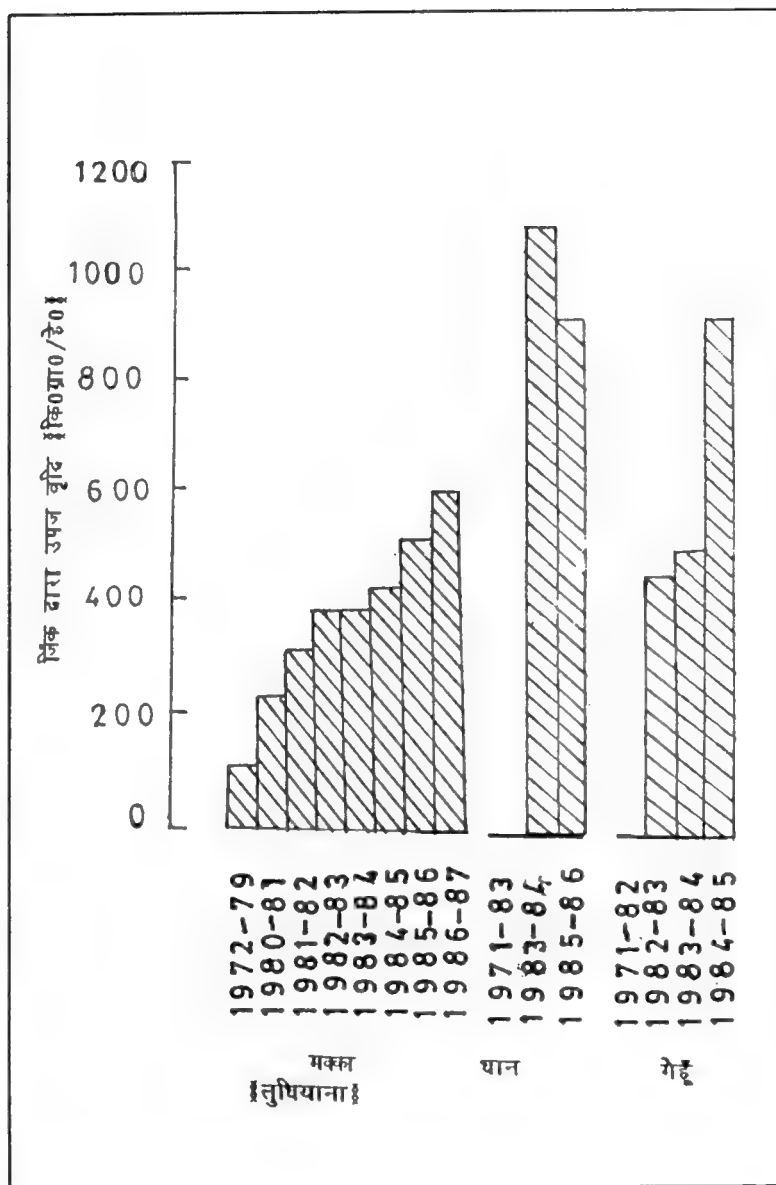
रेखाचित्र-11.5 दीर्घकालीन परीक्षणों में नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश के साथ जिंक डालने पर उपज में वृद्धि (1971-86)

मूल्यांकन उर्वरकों द्वारा पोषक तत्वों की प्रयुक्त मात्रा और फसलों द्वारा पोषक तत्वों की अवशोषित मात्रा के आधार पर किया गया। इसके अलावा विभिन्न उपचारों के अंतर्गत विभिन्न मात्रा में उपलब्ध फसल अवशेष का भी मिट्टी में उपलब्ध फसल अवशेष का भी मिट्टी की उर्वरता पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है परंतु सही रूप में इसका मूल्यांकन कठिन होने के कारण इस पहलू को यहाँ सम्मिलित नहीं किया जा सका है। आठ केंद्रों से संबंधित आँकड़े सारणी 11.1 में दिए गये हैं।

सारणी 11.6 में दिए गये आंकड़ों से स्पष्ट है कि सघन कृषि प्रणाली में मिट्टी परीक्षण के आधार पर शत–प्रतिशत ना.फा.पो. का इस्तेमाल करने पर मिट्टी की उर्वरता शक्ति में सुधार हुआ है। केवल हैदराबाद और कोयम्बटूर में पोटैशियम स्तर में कमी देखी गयी। इन परिणामों से यह सर्वथा स्पष्ट है कि नाइट्रोजन और पोटैशियम के संदर्भ में यदि यह सुधार बहुत अधिक नहीं है तो इतना तो अवश्य है कि इन तत्वों के स्तर में कोई कमी नहीं हुई है। गोबर की खाद के इस्तेमाल से मृदा–उर्वरता में धनात्मक सुधार हुआ है। ना.फा.पो. का 150 प्रतिशत की दर से इस्तेमाल करने पर गोबर की खाद की तुलना में मृदा उर्वरता पर यद्यपि अच्छा प्रभाव देखा गया किंतु उर्वरकों की मात्रा की दृष्टि से यह सुधार विशेष संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। ज्ञातव्य है कि 50 प्रतिशत की दर से ना.फा.पो. का इस्तेमाल करने पर 6 से 8 वर्ष के बाद मिट्टी के उर्वरता–स्तर में बहुत थोड़ी वृद्धि हुई। फास्फेट के प्रयोग से मिट्टी में उपलब्ध फास्फोरस की मात्रा में नियंत्रित की तुलना में बहुत अधिक वृद्धि देखी गयी। लुधियाना, जबलपुर और रांची जैसे केन्द्रों पर फास्फोरस उपलब्धता स्तर में प्रारंभिक स्तर की तुलना में 3–4 गुना वृद्धि हुई। जहां तक उपलब्ध पोटैशियम स्तर का प्रश्न है, फसलों द्वारा लगातार भारी मात्रा में पोटैशियम का निष्कासन होने के बावजूद पोटाश का प्रयोग होते रहने की दशा में पोषक तत्व की उपलब्ध मात्रा में थोडी वृद्धि ही हुई है। मिट्टी में संचित पोटैशियम स्रोत से तत्व की पूर्ति होने के कारण ही ऐसा संभव हो सकता है।

कुछ उपचारों जैसे अनवरत केवल नाइट्रोजन के इस्तेमाल का मिट्टी में कुप्रभाव पड़ा। बिना उर्वरक या खाद की दशा में भी उपलब्ध फास्फोरस का स्तर कम हुआ। 100 प्रतिशत की दर से नाइट्रोजन के इस्तेमाल का मिट्टी में उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा पर कोई खास स्थिर प्रभाव नहीं पड़ा। जैसा

सारणी-11.6 संस्तुत उर्वरक प्रयोग के अंतर्गत प्रमुख और सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलबध मात्रा में परिवर्तन

मृदा समूह/ केन्द्र	मृदा स्थिति (1971 की तुलना में (1987 में)	प्रमुख पोषक तत्वों की उपलब्ध मात्रा (कि.ग्रा./हे.)			सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्ध मात्रा (पी.पी.एम.)			
		N	P	K	Zn	Fe	Mn	Cu
जलोढ़								
लुधियना	प्रारंभिक	9.7	9.0	88	1.10	4.80	5.10	0.40
	वर्तमान	116	67.4	116	0.58	5.40	5.99	0.27
बैरकपुर	प्रारंभिक	171	38.0	135	0.80	60.0	–	4.00
	वर्तमान	235	46.2	190	2.78	32.42	–	2.82
मध्यम काली								
कोयंबटूर	प्रारंभिक	178	11.0	812	2.60	2.80	27.40	0.40
	वर्तमान	194	13.8	556	0.34	2.50	8.50	1.50
जबलपुर	प्रारंभिक	226	8.0	370	0.60	6.50	8.30	1.00
	वर्तमान	235	51.3	455	0.44	15.10	12.00	1.44

लाल दोमट								
लेटराइट	प्रारंभिक	150	31.0	25	1.40	53.00	7.80	14.00
भुवनेश्वर	वर्तमान	199	66.1	53	0.71	146.00	5.90	2.10
हैदराबाद	प्रारंभिक	272	19.0	315	0.80	92.00	35.40	6.90
	वर्तमान	250	22.8	269	1.40	41.42	11.82	6.24
पहाड़ों के नीचे की मिट्टियाँ								
पंतनगर	प्रारंभिक	190	18.0	135	2.70	29.50	17.00	2.90
	वर्तमान	235	56.3	164	0.83	41.25	25.75	4.38
उपपर्वतीय								
पालमपुर	प्रारंभिक	736	28.0	223	1.86	27.00	24.00	0.39
	वर्तमान	684	68.1	213	1.47	18.50	23.26	0.36

कि संभावित है, नाइट्रोजन + फास्फोरस उपचार के अंतर्गत नियंत्रित की तुलना में फसल द्वारा पोटैशियम का निष्कासन बहुत अधिक होने के कारण मिट्टी में उपलब्ध पोटैशियम की मात्रा में भी तदनुसार अधिक कमी होनी चाहिए किन्तु उल्लेखनीय है कि यह अतंर इस अनुपात में नहीं है।

यह प्रायः सभी पोषक तत्वों के संदर्भ में देखा गया है कि प्रारंभ के 3–4 वर्षों में विभिन्न उपचारों के अंतर्गत पोषक तत्वों की मात्रा में विशेष वृद्धि या कमी होती हैं और इसके बाद कुछ ही वर्षों में अधिकतम या न्यूनतम मान पहुंचने के बाद पुनः यह स्थिर–सा हो जाता है। साधारणतया 50 प्रतिशत ना.फा. पो. के अंतर्गत उर्वरता स्तर मिट्टी के प्रारंभिक मान के बराबर पाया गया। हाँ, पंतनगर, पालमपुर और बैरकपुर में थोड़ा अंतर अवश्य देखा गया।

गौण पोषक तत्व-गंधक

जलोढ़, मध्यम गहरी काली, लैटेराइट और उप–पर्वतीय मिट्टियों में गंधक संतुलन संबंधी परिणाम रेखाचित्र 11.7 में प्रदर्शित किए गये हैं जिनसे स्पष्ट है कि सघन कृषि में गंधक विहीन उर्वरकों के लगातार प्रयोग में मिट्टियों में गंधक की कमी बढ़ रही है जिसका मृदा–उत्पादकता पर कुप्रभाव पड़ रहा है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों का स्तर

इन परीक्षणों के परिणामों से स्पष्ट हो जाता है कि पूरे फसल चक्र में फसलों द्वारा अवशोषित सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा पूर्व प्रचलित फसल प्रणाली की तुलना में कहीं बहुत अधिक है, फिर भी 5–7 वर्ष की अवधि में मिट्टी में उपलब्ध लोहा, मैंग्नीज, जिंक और तांबा के स्तर में कोई खास परिवर्तन नजर नहीं आता। परीक्षणों से स्पष्ट है कि सूक्ष्म पोषक तत्व जिंक के प्रयोगोपरांत मिट्टी में इस तत्व की मात्रा में सभी केन्द्रों पर वृद्धि देखी गयी। बैरकपुर में सभी उपचारों के अंतर्गत उपलब्ध लोहे की मात्रा में कमी हुई। यह कमी 100 प्रतिशत ना.फा.पो. के साथ गोबर की खाद का इस्तेमाल करने पर भी देखी गई।

मिट्टी के भौतिक गुणों पर प्रभाव

फसल प्रणाली और उर्वरक उपचारों के संचयी प्रभाव का अध्ययन इस योजना के अंतर्गत चार केन्द्रों – बैरकपुर, भुवनेश्वर, नई दिल्ली और जबलपुर
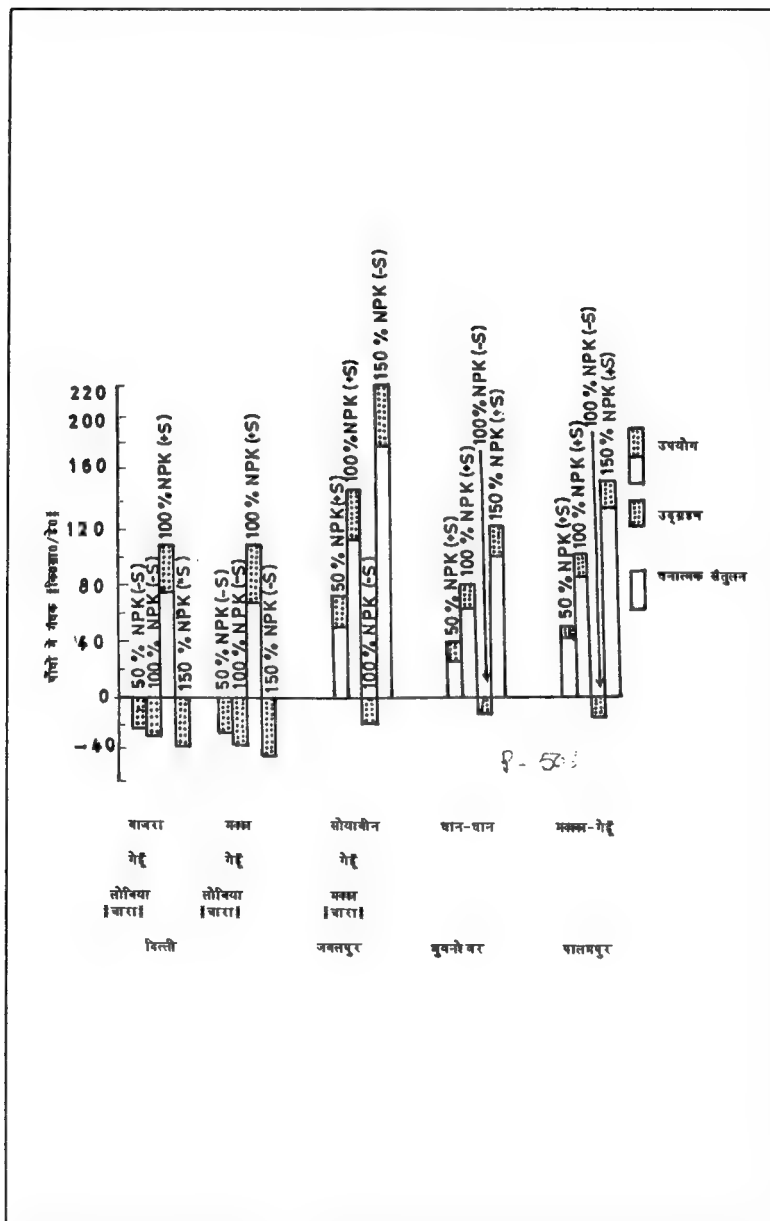
रेखाचित्र-11.7 विभिन्न मृदा–जलवायु क्षेत्रों में गंधक का औसत वार्षिक संतुलन

में किया गया। दो महत्वपूर्ण भौतिक गुणों अर्थात् उपलब्ध जल और जल स्थायी समुच्चयन संबंधी अध्ययन किए गये। चूंकि इन गुणों के प्रारंभिक मान नहीं ज्ञात थे, अतः परती और नियंत्रित उपखंड के मान के आधार पर इनका मूल्यांकन किया गया।

भुवनेश्वर और नई दिल्ली से प्राप्त गोबर की खाद के इस्तेमाल से उपलब्ध जल की प्रतिशत मात्रा में वृद्धि की पुष्टि होती है। वास्तव में जबलपुर की मिट्टी में क्ले की मात्रा अधिक होने के कारण इस तरह का प्रभाव नहीं देखा गया। साधारणतया सभी परिस्थितियों में उर्वरकों के यथोचित मात्रा में प्रयोगोपरांत जल की उपलब्ध मात्रा में वृद्धि पायी गई। कुछ हद तक फास्फेट का लाभकारी प्रभाव देखा गया।

बैरकपुर, नई दिल्ली और जबलपुर में दो वर्ष की अवधि में (1977–78 एवं 1978–79) जल स्थायी समुच्च्य संबंधी अध्ययनों में गोबर की खाद के महत्व की पुनः पुष्टि होती है।

संदर्भ साहित्य

Kalamkar, R.J. 1933. J. Agric. Sci. 23, 161–175.

Nambiar, K.K.M. 1984. Highlights of Research of a Long Term Fertiliserr Experiment in India. (1971–82). IARI, New Delhi.

Nambiar, K.K.M, Soni, P.N., Vats, M.R., Sehgal, D.K. and Mehta, D.K. 1986. Annual Report of All-India Coordinated Research Project on Long Term Fertiliser Experiments, IARI, New Delhi.

Nambiar, K.K.M., Soni, P.N., Vats, M.R., Sehgal, D.K. and Mehta, D.K. 1989. Annual Report (1985–86 & 1986–87). All India Coordinated Research Project on Long-term Fertiliser Experiments, IARI, New Delhi.

Sen, S. and Kavitkar, A.G. 1956. Ind. J. Agric. Sci. 26, 105–109.

अनुक्रमणिका

पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों की खोज का विवरण

तत्व	तत्वों के अन्वेषक वैज्ञानिक	अन्वेषण वर्ष
हाइड्रोजन ऑक्सीजन	पौधों के पोषण में कल की आवश्यकता का ज्ञान आदिकाल से है।	
कार्बन	प्रीस्टले तथा उनके सहयोगियों (1800 ई.) ने पौधों के पोषण में वायुमंडलीय कार्बन डाईऑक्साइड की आवश्यकता की पुष्टि की।	
नाइट्रोजन फास्फोरस	थ्यौडोर डे सासर	1804
पोटेशियम मैग्नीशियम गंधक	सी. स्प्रैंजल	1839
लोहा	ई. ग्रिस	1844
मैंगनीज	जे.एस. मैकहार्ग	1922
जिंक	ए.एल. सोमर तथा सी.वी. लिपमैन	1926
तांबा	ए.एल. सोमर, सी.पी. लिपमैन और जी मैक्किनी	1931
मोलिब्डेनम	डी.आई. आरनोन और पी.आर. स्टाउट	
सोडियम	पी.एफ. ब्राऊनेल और जे.डब्ल्यू. वुड	1957
कोबाल्ट	ए. अहमद और एच.जे. इवांस	1959
	(ब) केवल बड़े पौधों के लिए आवश्यक तत्व	
कैल्सियम	सी. स्प्रेंजल	1839
बोरॉन	के. वारिंगटन	1923
क्लोरीन	टी.सी. ब्रोयर और उनके सहयोगी	1954

कुछ विशेष पादप-प्रजातियों के लिए आवश्यक पोषक तत्व

तत्व	पादप–प्रजाति	तत्वों के अन्वेषक वैज्ञानिक	अन्वेषण वर्ष
वैनेडियम	सेनेडेस्मस आब्लिक्स	डी.आई. आरनोन और जी. पैसेल	1953
सिलिकन	डायऐटम	जे.सी. लेविन	1962
आयोडीन	पाली सिफोनियां	एल. फ्राइज	1966
सैलेनियम	ऐस्ट्रगैलस प्रजाति	एस.एफ. ट्रलीज और एस.एम. ट्रलीज	1938
गैलियम	कासी फफूंद	आर.ए. स्टीनवर्ग	1938
एल्युमिनियम	फर्न	के. टौबक	1942

पादप वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्व

नाम	पौधों में सांद्रता (शुष्क भार के आधार पर)
नाइट्रोजन	1–5 प्रतिशत
फास्फोरस	0.1–0.4 प्रतिशत
पोटेशियम	1–5 प्रतिशत
गंधक	0.1–0.4 प्रतिशत
कैल्सियम	0.2–1.0 प्रतिशत
मैग्नीशियम	0.1–0.4 प्रतिशत
बोरॉन	6–60 पी.पी.एम.
लोहा	50–250 पी.पी.एम.
मैंगनीज	20–500 पी.पी.एम.
ताँबा	5–20 पी.पी.एम.
जस्ता	25–150 पी.पी.एम.
मालिब्डेनम	1 पी.पी.एम. से कम
क्लोरीन	0.2–2.0 प्रतिशत

पोषक तत्वों की कमी दर्शाने वाले सूचक पौधे

	पोषक तत्व	सूचक पौधे
1.	नाइट्रोजन	मक्का, अफलीदार छोटे दाने, सरसों, सेब, नींबू।
2.	फास्फोरस	मक्का, जौ, चुकंदन, टमाटर।
3.	पोटैशियम	आलू, क्लोवर, लूसर्न, सेम, तंबाकू, कपास, टमाटर, मक्का।
4.	कैल्सियम	लूसर्न, अन्य दलहनी फसलें।
5.	मैंग्नीशियम	आलू, फूलगोभी, ग्राउंडवेरी।
6.	गंधक	लूसर्न, क्लोवर, राया।
7.	लोहा	चरी, जौ, नींबू, आड़ू, फल गोभी।
8.	जस्ता	मक्का, प्याज, नींबू, आड़ू, धान।
9.	ताँबा	सेब, नींब, जौ, मक्का, चुकंदर, जई, प्याज, तंबाकू, टमाटर।
10.	मैंग्नीज	सेब, खूबानी, सेम, चेरी, नींबू, मक्का, जई, मटर, मूली, गेहूँ।
11.	बोरॉन	लूसर्न, शलगम, फूलगोभी, सेब, आड़ू।
12.	मॉलिब्डेनम	फूल गोभी, अन्य राई प्रजातियाँ, नींबू, छालें, जई, पालक।
13.	क्लोरीन	चुकंदर।

विभिन्न फसलों द्वारा प्रमुख एवं गौण पोषक तत्वों का औसत निष्कासन

फसल	आर्थिक उपज (टन/हे.)			कुल निष्कासन (कि.ग्रा.)			
धान	3.0	84	14	89	21	9	9
गेहूँ	3.0	125	22	92	16	14	14
मक्का	5.0	170	35	175	27	39	19
ज्वार	2.5	65	10	48	16	12	7
गन्ना	88.0	180	26	270	132	–	26
कसावा	45.0	202	32	286	131	108	15
प्याज	37.0	133	22	177	16	18	34
टमाटर	41.0	84	21	185	31	8	28
काफी	2.0	253	19	232	143	33	27
चना	1.5	91	06	49	28	11	13
सोयाबीन	2.5	125	43	101	35	19	22
अरहर	1.2	85	8	16	23	15	9
मूंगफली	2.0	170	30	110	37	20	15
सरसों	1.5	83	17	71	63	13	26
सूरजमुखी	0.6	38	5	63	41	16	7

स्रोतः टंडन (1989)

विभिन्न फसलों द्वारा सूक्ष्म पोषक तत्वों का औसत निष्कासन

फसल	आर्थिक उपज (टन/हे.)	कुल अवशोषण (ग्राम)					
धान	1.0	40	153	675	18	15	2
गेहूँ	1.0	56	624	70	24	48	2
मक्का	1.0	130	1200	320	130	–	–
ज्वार	1.0	72	720	54	6	54	2
बाजरा	1.0	40	170	20	8	–	–
कसावा	1.0	45	120	45	5	15	–
आलू	1.0	9	160	12	12	50	0.3
चना	1.5	57	1302	105	17	–	–
सोयाबीन	2.5	192	866	208	74	–	–
अरहर	1.2	38	1440	128	31	–	–
मूंगफली	1.9	208	4340	176	68	–	–
सरसों	1.5	150	1684	143	25	–	–
सूरजमुखी	0.6	28	645	109	23	–	–
गिनी घास	269	558	2940	1880	443	–	–
बरसीम	112	980	650	580	95	–	–
लूसर्न	107	433	710	620	75	–	–

स्रोतः टंडन (1989)

फसलों की उपज के संबंध में कैल्सियम का अवशोषण

फसल	उपज (क्विं/हे.)	कैल्सियम की कुल अवशोषित मात्रा (कि.ग्रा./हे.)
कपास (रूई, बीज, तना)	67.2	28.1
मूंगफली (संपूर्ण फसल)	41.44	40.4
मक्का (दाना एवं तना)	67.2	55.2
धान (दाना एवं भूसा)	67.2	20.1
गन्ना (संपूर्ण फसल)	448.0	22.6
गेहूँ (दाना एवं भूसा)	44.8	12.5
तंबाकू (पत्तियाँ एवं तना)	19.04	87.9

स्रोतः चक्रवर्ती, एम., चक्रवर्ती, बी. एवं मुखर्जी, एस.के., इंडियन सासा. स्वायल बुले. नं. 7 (1961)

फसलों की उपज के संबंध में मैग्नीशियम का अवशोषण

फसल	उपज (क्विं./हे.)	मैग्नीशियम की कुल अवशोषित मात्रा (कि.ग्रा./हे.)
चुकंदर	400	54.0
गन्ना	1000	49.8
तंबाकू	30	21.0
सरसों	25	15.6
गेहूँ	50	15.0
मूंगफली	20	12.6
आलू	300	17.4

स्रोतः फर्टिलाइजर एंड प्लांट न्यूट्रिशन गाइड, एफ.ए.ओ. फर्टिलाइजर एंड प्लांट न्यूट्रिशन बुल. नं. 9 (1984)।

फसलों की उपज के संबंध में गंधक का अवशोषण

फसल	उपज (क्विं./हे.)	गंधक की कुल अवशोषित मात्रा (कि.ग्रा./हे.)
धान	51.4	15.7
उर्द	8.9	5.1
मूंग	8.7	6.5
सूरजमुखी	23.8	16.8
सरसों	26.0	44.9
अल्फाल्फा	919	45.9
गन्ना	876	26.9

स्रोतः जैन, जी.एल., साहू, एम.पी. एवं सोमानी, एल.एल., सैकेन्डरी न्यूट्रिएंट रिसर्च इन राजस्थान, प्रोसीडिंग एफ.ए.आई. (एन.आर.सी.) सेमिनार 147–174, (1984)।

विभिन्न सघन फसल चक्रों में आवश्यक मात्रा में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम देने पर सूक्ष्म तत्वों का अवशोषण

फसल चक्र	उपज (टन/हे.)			अवशोषण (ग्राम/हे.)		
जूट–धान–गेहूँ	9.2	728	4641	898	53	–
मक्का–गेहूँ–लोबिया (चारा)	9.6	376	2982	942	114	–
सोयाबीन–गेहूँ	5.7	242	1292	358	134	–
कपास–लोबिया– मूंग	12.2	187	1608	771	113	10
मूंगफली–गेहूँ–ज्वार	26.2	504	6966	754	223	32
लोबिया–कपास–मोठ	28.2	482	7293	1219	279	30

अनाज की फसलें।

स्रोतः नाम्बियार एवं घोष (1984); कत्याल (1984)

भारत में उत्पादित नाइट्रोजनधारी उर्वरकों में नाइट्रोजन की मात्रा

उर्वरक	कुल नाइट्रोजन (प्रतिशत)	अमोनियम नाइट्रोजन (प्रतिशत)	नाइट्रेट नाइट्रोजन (प्रतिशत)	एमाइड नाइट्रोजन (प्रतिशत)	तुल्यांकी अम्लीयता[2]	एक किलोग्राम नाइट्रोजन के लिए उर्वरक की प्रयोग की गई मात्रा से उत्पन्न अम्लता की उदासीन बनाने के लिए कैल्सियम कार्बोनेट की आवश्यक मात्रा (कि.ग्रा.)
1. अमोनियम सल्फेट	20.6	20.6	–	–	110	5.3
2. अमोनियम क्लोराइड	25.0	25.0	–	–	128	5.0
3. कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट	25.0	12.5	12.5	–	उदासीन	–
4. यूरिया	46.0	–	7	46.0	80	1.7

टिप्पणी: 1. उर्वरक (नियंत्रण) आदेश में निर्दिष्ट पोषक तत्व की न्यूनतम मात्रा

2. 100 भाग उर्वरक–सामग्री के प्रयोगोपरांत उत्पन्न अम्लता को उदासीन करने हेतु भार के आधार पर कैल्सियम कार्बोनेट के भाग की संख्या।

भारत में उत्पादित फास्फोरसधारी सरल उर्वरकों में फास्फेट की मात्रा

उर्वरक	कुल फास्फेट फास्फेट प्रतिशत	जल में विलेय प्रतिशत	उपलब्ध फास्फेट प्रतिशत
1. सपुर फास्फेट (सिंगल) ग्रेड 1–16%	18–20	16.0[1]	16.5–17.0
2. सुपर फास्फेट (सिंगल) ग्रेड 11–14%	16–18	14.0[1]	14.5–16.0
3. सुपर फास्फेट (ट्रिपिल)	46.0[1]	42.5[1]	43.0
4. डाइकैल्सियम फास्फेट	34.0	–	34.0[1]
5. पेलोफास	17.0[1]	5.0[1]	16.0[1]
6. अस्थि चूर्ण, कच्ची	20.0[1]	–	8.0[1]
7. अस्थि चूर्ण, वाष्पित	22.0[1]	–	16.0[1]
8. बेसिक स्लैग	3.0–8.0	–	–
9. राक फास्फेट (अयातित)	30.0–40.0	–	–
(अ) उदयपुर रॉक फास्फेट	20.0–35.0	–	–
(ब) मसूरी रॉक फास्फेट	23.0–24.0	–	–
(स) झबुआ रॉक फास्फेट	31.0–38.0	–	–

जिंक उर्वरक

स्रोत	प्रतिशत मात्रा
अकार्बनिक	
जिंक सल्फेट	22
जिंक सल्फेट	25
जिंक आक्साइड	67–80
जिंक क्लोराइड	45
जिंक कार्बोनेट	56
जिंक आक्साइड सल्फेट	55
जिंक अमोनियम फास्फेट	37
स्पोलेराइट	60
जिंक डस्ट	99
जिंक फ्रिट्स	4–16
किलेट	
संश्लेषित	
जिंक–ईडीटीए	12–14
जिंक–एचईडीटीए	8
जिंक–एनटीए	13
जिंक–लिग्निन सल्फोनेट	5
प्राकृतिक	
जिंक पॉलीफ्लेवोन्वायड	10
जिंक ह्यूमिक अम्ल	परिवर्तनीय
जिंक फल्विक अम्ल	परिवर्तनीय

लौह उर्वरक

स्रोत	प्रतिशत मात्रा
अकार्बनिक	
फेरस सल्फेट	20.5
फेरिक सल्फेट	20.0
फेरस कार्बोनेट	42.0
फेरस आक्साइड	75.0
फेरस अमोनियम सल्फेट	14.0
फेरस अमोनियम फास्फेट	20.0
लौह फ्रिट्स	40.0
किलेट	
संश्लेषित	
लौह डीटीपीए	10.0
लौह इडीटीए	9.0–12.0
लौह इडीडीएचए	6.0
लौह एचईडीटीए	5.0–9.0
प्राकृतिक	
लिग्निन सल्फोनेट	6.0
मिथाक्सी फाक्सिल प्रोपेन	5.0
पालीफ्लेवोन्वायड	6.0–9.6

3261 HRD/2000—35

मैंगनीज उर्वरक

स्रोत	प्रतिशत मात्रा
अकार्बनिक	
मैंगनीज सल्फेट	26–28
मैंगनीज सल्फेट	32
मैंगनीज ऑक्साइड	41–68
मैंगनीज कार्बोनेट	31
मैंगनीज क्लोराइड	17
मैंगनीज फास्फेट	20
मैंगनीज आक्साइड	63
मैंगनीज फ्रिट्स	10–25
किलेट	
संश्लेषित	12
मैंगनीज इडीटीए	
प्राकृतिक	
मैंगनीज मिथाक्सीफिनाइल प्रोपेन	10–12
रेप्लेक्स मैंगनीज	परिवर्तनीय

ताँबायुक्त उर्वरक

स्रोत	प्रतिशत मात्रा
अकार्बनिक	
कापर सल्फेट	25
कापर सल्फेट	35
कापर ऑक्साइड	89
क्यूप्रिक आक्साइड	75
संश्लेषित	
कार्बनिक	
कॉपर ईडीटीए	9–13
प्राकृतिक	
कापर रेप्लेक्स	परिवर्तनीय
कापर ह्यूमिक अम्ल/फल्विक अम्ल	परिवर्तनीय

बोरॉन-उर्वरक

स्रोत	प्रतिशत मात्रा
बोरैक्स	11
सोडियम टेट्राबोरेट (उर्वरक बोरेट–46)	14
सोडियम टेट्राबोरेट (उर्वरक बोरेट–65)	20
सालुबोर	20
बोरिक अम्ल	17
कोलमेनाइट	10
बोरान फ्रिट्स	2–6

मालिब्डेनम-उर्वरक

स्रोत	प्रतिशत मात्रा
सोडियम मालिब्डेट	39
अमोनियम मालिब्डेट	54
मालिब्डेनम ट्राईआक्साइड	66
मालिब्डेनाइट	60
मालिब्डेनम फ्रिट्स	2–3

फसलों द्वारा प्राथमिक पोषक तत्वों की अवशोषित मात्रा

फसल	प्रजाति/मृदा/स्थिति		पोषक तत्वों की अवशोषित मात्रा (कि.ग्रा./टन)		
			नाइट्रोजन	फॉस्फेट	पोटाश
1	2	3	5	6	7
(अ) अनाज की फसलें					
1. धान	सोना	दाना	9.74	3.12	3.26
	जया और	भूसा	4.56	0.27	14.50
	आइ.ई.टी. 2815	दाना	14.9	6.9	10.0
		भूसा	12.8	1.25	19.2
	रासी	दाना	11.6	5.08	9.20
2. गेहूँ	अर्जुन	दाना	15.96	1.89	3.43
		भूसा	4.34	0.09	17.50
3. ज्वार	–	दाना + भूसा	9.28	3.21	15.35
4. बाजरा	–	दाना + भूसा	6.69	2.45	22.54
5. मक्का	गंगा 4	दाना + भूसा	8.9	3.1	11.7
6. जौ–		दाना + भूसा	8.1	1.7	13.2
		दाना + भूसा	7.30	3.92	16.91

1	2	3	5	6	7
(ब) तिलहनी फसलें					
1. मूंगफली		बीज	41.05	11.57	23.68
2. सरसों	बीज	32.83	16.41	41.79	
3. अंडी	बीज	30.00	12.00	10.00	
4. अलसी		19.00	12.00	33.00	
(स) गन्ना					
आंध्र प्रदेश में	को. 419	गन्ना	0.67	0.30	1.34
महाराष्ट्र में	को. 740	गन्ना	1.22	0.79	1.55
बिहार में	बी.ओ. 70	गन्ना	3.08	0.26	3.13
(ड) रेशे की फसलें					
1. कपास (वर्षा पर आश्रित)		बीज	75.34	20.69	129.06
2. जूट		रेशा	9.22	0.06	0.45
(इ) रोपी फसलें					
1. रबर	रबड़ क्षीर		143.75	17.50	66.56
2. काफी			22.25	8.06	27.25
3. चाय	तैयार चाय		45.4	5.0	20.0
4. नारियल (70 नट)					

1	2	3	5	6	7
(उ) अन्य फसलें					
1. आलू	कुफरी ज्योति, अम्लीय, बोरान उष्ण मृदा, शिमला		4.70	1.31	9.26
	कुफरी चन्द्रमुखी, जलोढ़ मृदा, लुधियाना		4.66	0.71	5.91
2. तंबाकू (ताप संशोधित	हल्की मिट्टी	13.5	16.0	20.9	
बर्जिनीया	भारी मिट्टी	19.6	22.6	23.0	

स्रोतः 1. शर्मा, एस.एन. और प्रसाद, राजेन्द्र (1980)। फर्टिलाइजर न्यूज, 25 (10), 34–36 तथा 44।
2. मंडल, एस.के., राय, ए.बी. और गोस्वामी, एन.एन. (1980) फर्टिलाइजर न्यूज, 25(9), 60–65।
3. ऑल इंडिया कोआर्डिनेटेड राइस इम्प्रूवमेंट प्रोजेक्ट, हैदराबाद।
4. ऑल इंडिया कोआर्डिनेटेड मेज इम्प्रूवमेंट प्रोजेक्ट, उदयपुर।
5. सुगरकेन, दि फर्टिलाइजर एसोसिएशन ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।
6. गोपालाचारी, एन.सी. (1980) फर्टिलाइजर न्यूज, 25(9), 69–73।

विभिन्न फसल-प्रणालियों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कुल अवशोषित मात्रा

क्र.सं. फसल–प्रणाली	शुष्क पदार्थ (टन/हे.)	अवशोषण (ग्राम/हे.)				
1. कपास–लोबिया–मूंग	12.2	1068	771	187	113	10
2. मूंगफली–गेहूँ–ग्वार	26.2	6966	754	504	223	32
3. लोबिया–कपास–बाजरा	28.2	7293	1219	482	279	30

स्रोतः ऑल इंडिया कोआर्डिनेटेट स्कीम ऑफ माइक्रोन्यूट्रिएन्ट्स इन स्वायल्स एंड प्लान्ट्स।

स्थूल जैविक खादों में पोषक तत्वों की औसत मात्रा

सामग्री	नाइट्रोजन (प्रतिशत)	फास्फेट (प्रतिशत)	पोटाश (प्रतिशत)
1. गोबर की खाद	0.5–1.5	0.4–0.8	0.5–1.9
2. कम्पोस्ट (शहरी)	1.0–2.0	1.0	1.5
3. कम्पोस्ट (ग्रामीण)	0.4–0.8	0.3–0.6	0.7–1.0
4. गोबर गैस संयंत्र से प्राप्त गारे की खाद	1.6–1.8	1.1–2.0	0.8–1.2
5. हरी खादें (औसत)	0.5–0.7	0.1–0.2	0.6–0.8
(अ) ढैंचा	0.62	–	–
(ब) सनई	0.75	0.12	0.51
(स) लोबिया	0.71	0.15	0.58

खलियों में पोषक तत्वों की औसत मात्रा

सामग्री	नाइट्रोजन (प्रतिशत)	फास्फेट (प्रतिशत)	पोटाश (प्रतिशत)
(क) अखाद्य खलियाँ			
1. अंडी की खली	5.5–5.8	1.8–1.9	1.0–1.1
2. महुआ की खली	2.5–2.6	0.8–0.9	1.8–1.9
3. करंज की खली	3.9–4.0	0.9–1.0	1.3–1.4
4. नीम की खली	5.2–5.3	1.0–1.1	1.4–1.5
5. कुसुम की खली (छिलकायुक्त)	4.8–4.9	1.4–1.5	1.2–1.3
(ख) खाद्य फलियाँ			
6. कपास के बीज की खली (छिलका–रहित)	6.4–6.5	2.8–2.9	2.1–2.2
7. कपास के बीज की खली (छिलकायुक्त)	3.9–4.0	1.8–1.9	1.8–1.7
8. मूंगफली की खली	7.0–7.2	1.5–1.6	1.3–1.4
9. अलसी की खली	5.5–5.6	1.4–1.5	1.2–1.3
10. बिनौली की खली	4.7–4.8	1.8–1.9	1.1–1.3
11. सरसों की खली	5.1–5.2	1.8–1.9	1.1–1.3
12. तिल की खली	6.2–6.3	2.0–2.1	1.2–1.3

3261 HRD/2000—36

पशु जनित खादों में पोषक तत्वों की मात्रा

सामग्री	नाइट्रोजन (प्रतिशत)	फास्फेट (प्रतिशत)	पोटाश (प्रतिशत)
1. शुष्क	10.0–12.0	1.0–1.5	0.6–0.8
2. मछली की खाद	4.0–10.0	3.0–9.0	0.3–1.5
3. पक्षियों की खाद	8.0–8.0	11.0–14.0	2.0–3.0
4. खुर और सींग की खाद	14.0	1.0	–
5. सक्रियित अवमल (शुष्क)	5.0–6.5	3.0–3.5	0.5–0.7
6. अवक्षेपित अवमल (शुष्क)	2.0–2.5	1.0–1.2	0.4–0.5

पारिभाषिक शब्दावली

अग्र हुकिंग	Tip hooking
अर्द्ध सूत्रीय विभाजन	Meiosis
अन्योन्य क्रिया	Interaction
अनुपजाऊ भूमि	Unfertile land
अपघटन	Decomposition
अपघटित शैल	Decomposed rock
अपक्षय	Weathering
अपक्षय कारक	Weathering agent
अपक्षय प्रक्रम	Weathering process
अभ्रक	Mica
अभ्रकीय मृत्तिका	Micaceous clay
अमोनियाकरण	Ammonification
अलाभकर उपयोग	Luxury consumption
अवछालन	Eluviation
अवछालन संस्तर	Eluvial horizon
अवशयन	Lodging
अवशयन प्रतिरोधी	Lodging resistance
अवशिष्ट	Residue
अवशिष्ट प्रभाव	Residual effect
अवशिष्ट मृदा	Residual soil
अवायुजीवी	Anaerobic
अवायु अपघटन	Anaerobic decomposition
अवक्षेपण	Precipitation
अस्तरीय मृदा	Azonal soil

अंक्षास	Latitude
आयन विरोधता	Antagonism of ion
आरोही क्रम	Ascending order
आवश्यक तत्व	Essential element
आवृत्ति	Frequency
इलाइट	Illite
इलाइट खनिज	Illite mineral
उच्च भूमि	Upland
ऊर्जा कोष	Energy currency
उत्पादन फलन	Production function
उत्प्रेरक	Catalyst
उत्तकक्षय	Necrosis
उत्तकक्षयी लक्षण	Necrotic symptom
उपापचय	Metabolism
उपापचय सक्रियता	Metabolic activity
उर्वरक तत्व	Fertilizing element
उर्वरता	Fertility
उर्वरता हारी खेती	Exhaustive farming
उर्वरता हारी फसल	Exhaustive crop
ए–मान	A-value
एलुमिनियम विषालुता	Aluminium toxicity
एलुमिनोसिलिकेट मृत्तिका	Alumino silicate clay
एमीनो अम्ल	Amino acid
कवक	Fungus
कवक मूल	Mycorrhyza
कणिक विश्लेषण	Mechanical analysis
कार्य	Function

कारक	Factor
क्रांतिक अंतर	Critical difference
क्रांतिक स्तर	Critical level
क्रांतिक सीमा	Critical limit
किलेट	Chelate
किलेटीकरण	Chelation
कोलाइड	Colloid
कोलाइडी चिकनी मिट्टी	Colloidal clay
कोलाइडी पदार्थ	Colloidal material
कोलाइडी मिट्टी	Colloidal soil
कोशिका	Cell
क्रिस्टल जालिका	Crystal lattice
कृषि सीमांत भूमि	Material land
खनिज अपघटन	Mineral decomposition
खनिज पोषक तत्व	Mineral nutrient
खनिजीकरण	Mineralization
गठन परिच्छेदिका	Texture profile
गुच्छ रोग	Rosette
गतिका	Dynamic
गतिज ऊर्जा	Kinetic energy
गमले में उगाना	Pot culture
चल पोषक तत्व	Mobile nutrient
चुनही/चूनेदार	Calcareous
चूना–पत्थर	Lime stone
चूना मिलाना/चूने का प्रयोग	Liming
चूना विभव	Lime potential
चूना प्रेरित हरिमाहीनता	Lime induced chlorosis

ज्वालामुखी राख	Volcanic ash
जनक शैल	Parent rock
जलाक्रांति	Water logging
जलोढ़ द्रव्य	Alluvial material
जलोढ़ निक्षेप	Alluvial deposit
जालक	Lattica
जीवाणुविक सक्रियता	Bacterial activity
जीवाणुविक सहचर	Bacterial association
जैविक यौगिकीकरण	Biological fixation
जैविक सक्रियता	Biological activity
झुर्री पड़ना (रोग)	Frenching
तकुआकार	Spindly
तत्व	Element
तत्वीय नाइट्रोजन	Elemental nitrogen
तटीय जलवायु	Coastal climate
तंबाकू का शिखर व्याधि	Top sickness of tobacco
दलहनी फसलों का झुलसा रोग	Scald of legume
दक्षता	Efficiency
दावेदार	Granular
दानेदार उर्वरक	Granular fertilizer
द्रव्य अनुपातिक क्रिया नियम	Law of mass action
दीर्घकालीन	Long term
देशी	Indigenous
द्विबीज पत्रीय	Dicotyledons
दृष्टि रीति	Visual method
धनायन	Cation
धनायन विनिमय क्षमता	Cation exchange capacity

धान्य फसल	Food grain crop
धूसर चित्ती	Grey spot
धूसर धारी	Grey stripe
नाइट्रीकारी जीवाणु	Nitrifying bacteria
नाइट्रेट अपचयन	Nitrate reduction
नाइट्रोजन यौगिकीकरण	Nitrogen fixation
निदान	Diagnosis
निवेशन	Inoculation
निवेश द्रव्य	Inoculum
नियंत्रण	Control
न्यूवार पौध परीक्षण	Neubauer seedling test
न्यूनता रोग	Deficiency
पड़ती/पलिहर	Fallow
परास	Range
परासरनी सान्द्रता	Osmotic concentration
पपड़ी	Crust
पर्णीय उर्वरण	Foliar fertilization
पर्णीय विन्यास	Foliar arrangement
पर्णीय निदान	Foliar diagnosis
पर्णीय प्रयोग	Foliar application
पर्णीय पोषण	Foliar nutrition
पुष्प मंजरी सड़न	Blossom end rot
पूरक आयन प्रभाव	Complementary effect
पूरक कारक	Complementary factor
पूरक प्रभाव	Complementary effect
प्ररोह पश्चमारी	Shoot die back
पलेवा लगाना/लेवलगाना	Puddling

पर्ण हरित	Chlorophyll
पादप अवशेष	Plant residue
प्रछन्न भूख	Hidden hunger
प्राप्यता	Availability
प्राप्त पोषक पदार्थ	Available nutrient
पोषक गतिशीलता संकल्पना	Nutrient mobility concept
पोषक तत्व	Nutrient element
वन्धन क्षेत्र	Binding sites
बहुफसली खेती	Multiple cropping
बारानी खेती	Dry farming
बारीक गठन	Fine texture
बालू पत्थर	Sand stone
ब्रांजिंग रोग/कांस्यन रोग	Bronzing
बिखेरना/छिटकवाँ	Broadcasting
बीज चोल	Plumule
बीज पत्र	Cotyledon
वेस विनिमय क्षमता	Base exchange capacity
संतृप्तता	Base saturation
भारी मिट्टी	Heavy soil
भू–रासायनिक	Geochemical
भूरी चित्ती रोग	Grey speck
भू–रासायनिक अभिक्रिया	Geochemical reaction
मक्के का सफेद चित्ती रोग	White bud of maize
मटियार/मृत्तिका	Clay
मटियारी/चिकनी मिट्टी	Clay soil
मटियारी दोमट	Clayey loam
मध्यम गठन	Medium texture

मरूभूमि	Desert soil
मरूस्थल	Desert
मल्च बनाना	Mulching
महीन कण	Fine particles
मिली तुल्य भार	Miliequivalent
मिसेल	Micelle
मिसेलीबंधन	Micellar binding
मूल खनिज	Primary mineral
मूल खाद देना	Basal dressing
मूल परिवेशी	Rhizosphere
मूल शैल	Original rock
मैग्नीशियम वक्रता विकास	Sand drown
मोटी रेत	Coarse sand
मोटे कण	Coarse particle
मृत्तिका अंश	Clay fraction
मृदा	Soil
मृत्तिका क्रिस्टल	Clay crystal
मृत्तिका खनिज	Clay mineral
मृत्तिका ह्यूमस संमिश्र	Clay Humus complex
मृदा उर्वरता	Soil fertility
मृदा गठन	Soil texture
मृदा सुधारक	Soil amendment
मृदा संरचना	Soil structure
मृदा संस्तर	Soil horizon
यौगिकीकरण	Fixation
रासायनिक अभिक्रिया	Chemical reaction
रूपांतरण/परिणमन	Transformation

रेखीय/एक घातीय	Linear
लवणता	Salinity
लवणीय मृदा	Saline soil
लाल मृदा	Red soil
लौह हरिमाहीनता	Iron chlorosis
वन मृदा	Forest soil
वातन	Aeration
वायुवीय	Aerobic
वायुवीय जीवाणु	Aerobic bacteria
वाष्पीकरण, उत्पातन	Volataliztion
विदलित तना	Cracked stem
विद्युत आवेश संतुलन	Electrical charge balance
विनिमय क्षमता	Exchange capacity
विनिमेय	Exchangeable
विनिमेय धनायन	Exchangeable cation
विनिमेय ऋणायन	Exchangeable anion
विरोध	Antagonism
विरोधी प्रभाव	Antagonistic effect
विश्लेषण	analysis
विसरण	Diffusion
विषाणु	Virus
विषालुता	Toxicity
वृद्धिकर हार्मोन	Growth hormone
वृद्धि नियामक पदार्थ	Growth regulating substance
वृद्धि वक्र	Growth curve
शर्करा वियोजन	Glycolysis
शीतोष्ण जलवायु	Temperate climate

शीर्ष गलन	Crown rot
शीर्षारंभी क्षय	Die back
शुष्क गलन	Dry rot
शुष्क चित्ती रोग	Dry spot
शुष्क जलवायु	Arid climate
शैल अपक्षय	Weathering of rocks
शैलाव	Algae
स्थूल गठन	Coarse texture
सघन	Intensive
सघन खेती	Intensive farming
समसूत्री विभाजन	Mitosis
समाकलित कार्यक्रम	Integrated programme
संमिश्र	Complex
संपोहन	Illuviation
सस्य गहनता	Cropping intensity
सस्य क्रम योजना	Cropping system
सस्य प्रतिक्रिया	Crop response
सस्यावशेष	Crop residue
सहकारक	Cofactor
सह–संबंध गुणांक	Coefficient of correlation
सार्थक	Significant
सांद्रण	Concentration
सामान्य मृदा	Normal soil
सिकिल लीफ	Sickle leaf
सूचक पादप	Indicator plant
सूक्ष्म जीव	Microorganism
सूक्ष्म जीवी क्रिया	Microbial activity

सूक्ष्म जीवी अभिक्रिया	Microbial reaction
सूक्ष्म जीवी उपापचय	Microbial metabolism
सूक्ष्म जीवी पदार्थ	Microbial substance
सूक्ष्म जीवी निरोध	Microbial antagonism
सूक्ष्म प्राणि जाति	Microfauna
सूक्ष्म पोषक तत्व	Micronutrient
सूक्ष्म पोषीय उर्वरक	Micronutrient fertilizer
सूक्ष्म जीवी संख्या	Microbial population
सेब का पश्चमारी	Dieback of apple
संघनन	Compaction
संचयी प्रभाव	Cumulative effect
संभावी अम्लता	Potential acidity
संभावी मृदा/उदासीन मृदा	Neutral soil
संतुलित उपयोग	Balanced use
संतुलित पोषण	Balanced nutrition
संयोजकता	Valency
संयोजी प्रभाव	Valence effect
संस्तर	Horizon
हरिमाहीन	Chlorotic
हरिमाहीनता	Chlorosis
हरिमाहीन पत्ती	Chlorotic
हरी खाद	Green manure
हानिकारक	Detrimental
ह्रास	Deterioration
हिपटेल	Whiptail
ह्यूमस	Humus
ह्यूमस बनना	Humification

ह्रासमान प्रतिफल नियम	Law of diminishing return
क्षारीय, खारा	Alkaline
क्षारीयता	Alkalinity
क्षारीय मृदा/ऊसर मृदा	Alkaline soil
क्षारीय रोग	Alkali disease, Reclamation disease
ऋणायन धारण शक्ति	Anion holding power
ऋणायन विनिमय	Anion exchange
ऋणायनिक अवशोषण	Anionic absorption
ऋणायनिक विनिमय	Anionic exchange

प्रकाशन विभाग, विक्री केन्द्रों की सूची

क्र. सं.	पता	फोन न.
1.	प्रकाशन नियंत्रक प्रकाशन विभाग (शहरी मामले व रोजगार मंत्रालय) सिविल लाइन्स, दिल्ली–110054	3967640 3967823
2.	किताब महल भारत सरकार प्रकाशन विभाग बाबा खड्ग सिंह मार्ग स्टेट इम्पोरयिम बिल्डिंग, यूनिट नं. 2 नई दिल्ली–110001	3363708
3.	पुस्तक डिपो के.एस. राय मार्ग प्रकाशन विभाग, भारत सरकार कलकता–700001	033–2483813
4.	प्रकाशन विभाग, विक्री काउन्टर भारत सरकार, सी.जी.ओ. कम्पलैक्स न्यू मेरीन लाइन्स, मुम्बई–400020	
5.	प्रकाशन विभाग, विक्री काउन्टर भारत सरकार उद्योग भवन गेट न. 3, नई दिल्ली–110011	385421/291
6.	प्रकाशन विभाग, विक्री काउन्टर (लायर्स चैम्बर) भारत सरकार दिल्ली उच्च न्यायालय नई दिल्ली–110003	3383891
7.	प्रकाशन विभाग विक्री काउन्टर भारत सरकार, संघ लोक सेवा आयोग धौलपुर हाऊस नई दिल्ली–110001	

List of Addresses of Sales Counters, Deptt. of Publication

S.No.	*Addresses*	*Telephone No.*
1.	Controller of Publication Deptt. of Publication (Min. of Urban Affairs & Employment) Civil Lines, Delhi-110054	3967640/31 3967823
2.	Govt. of India, Deptt. of Publication Kitab Mahal, Baba Kharag Singh Marg State Emporia-Bldg. Unit No. 21 New Delhi-110001	3363708
3.	Govt. of India, Deptt. of Publication Book Depot 8, K.S. Roy Road Calcutta-700001	033-2483813
4.	Govt. of India, Sale-Counter Deptt. of Publications C.G.O. Complex, New Marine Lines Bombay-400020	
5.	Govt. of India, Deptt. of Publication Sale Counter, Udyog Bhawan Gate No. 3, New Delhi-110011	385421/291
6.	Govt of India, Deptt. of Publication Sale Counter (lawyers Chambers) Delhi High Court, New Delhi-110003	3383891
7.	Govt of India, Deptt. of Publication Sale Counter, U.P.S.C. Dholpur House New Delhi-110001	